तुलसी

की

वंदना

वंदनीय गुरुजन

एवं

बुन्देलखण्ड वि० वि० की शोध उपाधि के लिये
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

निर्देशक-
डा० बी० बी० लाल
एम०ए०,पी०एच०डी०,डी०लिट्
अवकाश प्राप्त प्राचार्य
दयानन्द वैदिक कालेज
उरई

शोधार्थी-
श्रीमती सुमन सक्सेना
एम०ए०

श्री श्री गुरवे नमः
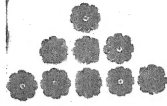
समर्पण
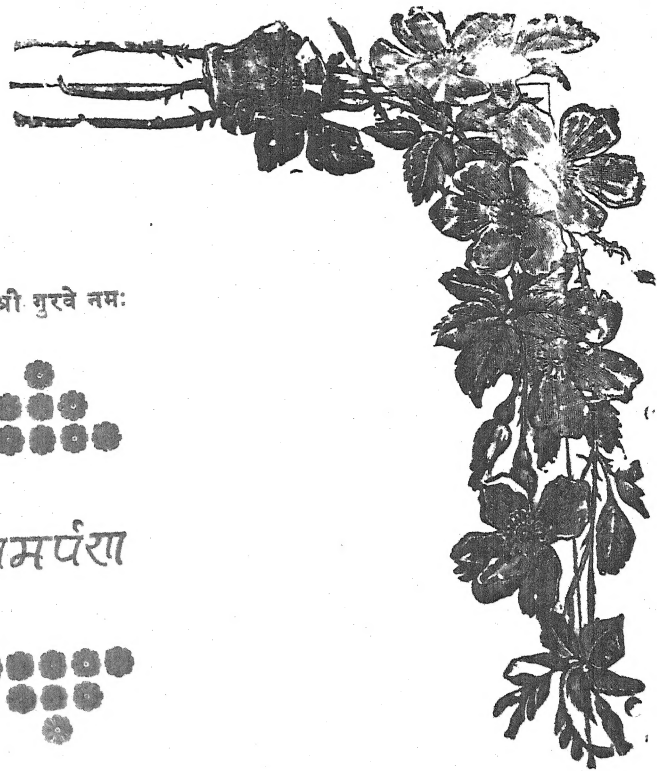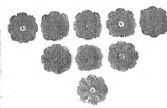
प्रातः स्मरणीय परमपूज्य दादा श्वसुर
परमपिता परमात्मा परमसंत महात्मा समर्थ सद्गुरुदयाल
श्री श्री १००८ श्री श्री रामचन्द्र जी
(श्री श्री लाला जी)
महाराज
के
परम पावन वरदा
कर कमलों
में
सादर
सवंदन
समर्पित

— उनकी प्रिय पौत्र वधू
सुमन

०।
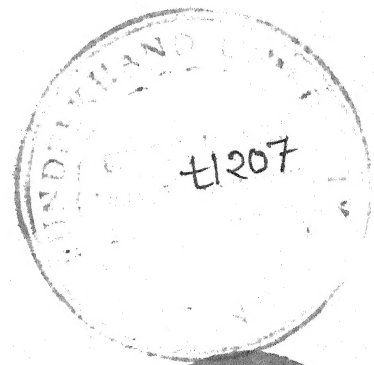
प्र ण ति

यह
बिनती
रघुवीर
गुसाई.

और
आस-
बिस्वास-
भरोसो,

हरो
जीव
ज
ड़
ता
ई

(विं०— १०३)

तुलसी

की

वंदना

वंदनीय गुरुजन

एवं

विनय दर्शन

बुन्देलखण्ड वि० वि० की शोध उपाधि के लिये
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

निर्देशक-
डा० बी० बी० लाल
एम०ए०,पी०एच०डी०,डी०लिट्
अवकाश प्राप्त प्राचार्य
दयानन्द वैदिक कालेज
उरई

शोधार्थी-
श्रीमती सुमन सक्सेना
एम० ए०

अनुक्रमणिका -1

अनुक्रमणिका-2

पृष्ठ
प्रकरण प्रबंध

अनुक्रमणिका-3

दो शब्द

मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे अपना श्वसुरगृह आध्यात्मिक साधना का विश्वविश्रुत केन्द्र मिला . परम पिता परमात्मा समर्थ सद्गुरु महात्मा रामचन्द्रजी (श्रीश्री लालाजी) महाराज के रामाश्रम सत्संग की आज देश-विदेश में एक बड़ी संख्या में संकुलीय इकाइयाँ हैं . उनके प्रेमी भाइयों की इतनी बड़ी संख्या है जितनी अन्य किसी एक संप्रदाय की नहीं हैं . इस केन्द्र की शाहजहाँपुर की संकुलीय इकाई से प्रचुर साहित्य अंग्रेजी में भी प्रकाशित हुआ है . दक्षिण भारत में अनेक उपकेन्द्रों के अतिरिक्त विश्व के विभिन्न २७ देशों में संकुलीय उपकेन्द्र हैं तथा उनके विदेशी साधक बड़े स्नेही सत्संगी हैं . श्रीश्री लालाजी महाराज मेरे दादा श्वसुर थे . उनकी सहज साधना में गृहस्थाश्रम में रहतेहुए ही आत्मसाक्षात्कार संभव होता है . योग और तंत्र की कठोर साधनाओं से , जो उपलब्धि वर्षों में कदाचित् ही संभव होती है , वह आध्यात्मिक चढ़ाई इस मार्गमें गुरुकृपा से सहज ही क्षणों में संभव हो जाती है . इस साधना के सदाचार ,वंदना, विनय प्रमुख बाह्य अंग हैं .

यों तो यह विद्या उपनिषद् , गीता , योगवशिष्ठ , पातञ्जलि योग आदि में वर्णित वेदान्त का ही विकसित रूप है ,फिर भी इस संप्रदाय के आचार्यों नें अपनी धार्मिक पुस्तक के रूपमें महात्मा गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस को मान्यता दी है . मेरे पितृकुल में मेरे परम पूज्य पिताजी श्री डी०बी०सक्सेनाजी,तथा पूज्या माताजी धार्मिक आचारविचार तथा भगवद्भक्ति के लिये प्रसिद्ध हैं . हम बच्चों पर उनका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है ,किन्तु श्वसुरगृह की तो दिनचर्याही सत्संग, ध्यान , मानस का पाठ एवं पारायण है और घरगृहस्थी का कामकाज गौण है . भौतिक सुखसाधनों की किसी को कोई चिन्ता नहीं है ,मात्र जीवनधारण अपेक्षी न्यूनतम आवश्यकताएँ ही सुलभ हों , यह प्रयत्न रहता है . ऐसे धार्मिक वातावरण में मेरी भी रुचि विशेष रूपसे धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन-अनुशीलन के प्रति जाग्रत हुई .

अपने पारिवारिक वातावरण के अनुकूल"तुलसी की वंदना, वंदनीय गुरुजन तथा विनय दर्शन " विषय मुझे अपने शोधकार्य के लिये उपयुक्त एवं प्रिय लगा . विश्वविद्यालय की शोधउपाधिसमिति तथा माननीय कुलपतिजी की कृपा के लिये आभारी हूँ कि यह विषय शोध के लिये स्वीकृत कर लिया गया .

अपने शोधनिर्देशक श्रद्धेय डा० पी०वी०लाल ,पू०पू०प्राचार्य , दयानन्द वैदिक कालेज ,

उरई , के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ . उन्होंने मुझे अपने निर्देशन में लेनाही स्वीकार नहीं किया , प्रत्युत विषय को विवरणात्मक रूपमें प्रस्तुत करने के लिये अपेक्षित कार्ड बनाना, आवृत्ति निकालना , रेखांकन, आदि शोधप्रक्रियागत नवीन विधा से पूर्णरूपेण परिचित भी कराया . सामग्री संकलन तथा विश्लेषण में मुझे बड़ा परिश्रम करनापड़ा और कई अवसरों पर ऐसा लगा कि एकाकी यह शोधकार्य कर सकना संभव नहीं है , किन्तु डा० लाल साहब की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन से अंततोगत्वा यह कार्य संपन्न हुआ. इस विनम्र प्रयास के संपन्न होने का पूरा श्रेय मेरे निर्देशक डा० लाल साहब को है . अपने शोधछात्रों से काम करालेने की उनमें बड़ी सूझबूझ एवं लगन है . एक समर्पित शिक्षकरूपमें मैं उनको सादर नमन करती हूँ .

मेरे परिवार के सदस्यों परम पूज्या श्वसा जी , जिठानी जी , मेरे आराध्य श्रद्धेय पतिदेव (अधुना रामाश्रम संस्थान के प्रमुख आचार्य) श्रीश्री दिनेशकुमार जी से मुझे अपने शोधकार्य के लिये पूर्ण सहयोग तथा प्रोत्साहन मिलता रहता है तथा मेरे लिये पारिवारिक व्यस्त कार्यक्रम में से भी अपने लिये समुचित समय निकालना संभव हो सका है . मैं इन अपने गुरुजनों की विनम्र वंदना तथा उनके चरणों में भक्ति हेतु विनय करती हूँ . उनकी सद्भावना सेवा मेरा सदाचार बने , यही मेरी प्रभु से प्रार्थना है .

मेरी पुस्तक " दिव्य क्रान्ति की कहानी " जो मैंने परम पूज्य श्रीश्री लाला जी महाराज के प्राप्त लेख, नोट, टिप्पणी तथा रचनाओं के आधार पर आत्मकथा की शैली में प्रस्तुत की थी , बुंदेलखंड विश्वविद्यालय केमाननीय कुलपति हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् श्रद्धेय डा० हरवंशलालजी शर्मा को पसंद आई थी तथा उन्होंने अपनी शुभ सम्मति लिखकर मेरा उत्साहवर्धन किया था . उनके आशीष वचनों को मैंने शोधकार्य के लिये निर्देश के रूपमें लिया तथा मुझे संतोष है कि मैं उनकी आशा-अपेक्षाओं को पूरा कर सकी . उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ तथा उनके आशीर्वाद की कामना करती हूँ .

जिन साहित्यकारों की कृतियों से इस शोधप्रबंध के प्रस्तुत करने में सहायता ली है , उनके प्रति विनम्र आभार व्यक्त करती हूँ .

गोस्वामीजी के अनुरूप "खलवंदना" का कोई प्रयोजन अपेक्षित गोचर नहीं होरहा , फिर भी जिन किन्हीं अज्ञात व्यक्तियों के मेरे प्रति अन्यथा दुर्भाव भी रहे हों , उनकी भी वंदना करती हूँ कि उनकी कृपा बनी रही और प्रत्यक्षतः कोई अवरोध उत्पन्न नहुआ प्रातःस्मरणीय कविकुल कुमुद दिवाकर , साहित्य और संस्कृति के पुरस्कर्ता , परमसंत महात्मा श्रीश्री गोस्वामी तुलसीदास जी के चरणकमलों की वंदना करती हूँ जिनके विरा

विश्रुत साहित्य को लेकर मुझे भी शोधकार्य करने का अवसर मिला . उनके एक पृथक् दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का मैंने दुःसाहस भी किया . एतदर्थ मैं उनसे क्षमाप्रार्थिनी भी हूँ और अति अनुगृहीत भी हूँ, इस बालप्रयास में बालसुलभ तोतली वाणी का रस प्राप्तकर उन्हें कदाचित् संतोष ही हुआ है .

अंतमें गोस्वामी जी के शब्दों में करबद्ध कार्पण्य प्रार्थना करतीहूँ-

जड़चेतन जगजीव जत सकल

रामभय जानि .

बंदउँ सबके पदकमल

सदा जोरि जुग पानि ..

....

सुमन ....

(श्रीमती सुमन सक्सेना)

एम. ए.

शोध छात्रा

शोध विषय के संबंध में -

- तुलसी की वंदना, वंदनीय गुरुजन तथा विनय दर्शन स्वीकृत शोध विषय है ।

शोध विषय का स्पष्टीकरण -

- वंदना - एक व्यापक शब्द है । इसके अंतर्गत अभिवंदन, पूजन एवं षोडशोपचार, स्तवन-स्तुति, आरती, तथा विनय के सभी अंग आ जाते हैं ।

- वंदनीय गुरुजन- वंदनीय गुरुजन के अंतर्गत माता पिता गुरु आचार्य आदि आ जाते हैं गोस्वामी जी के शब्द प्रयोग के आधार पर वंदनीय गुरुजन का वर्गीकरण किया जा सकता है -

पूजनीय, नमनीय, वंदनीय, स्मरणीय, गुरुजन

इस रूप में वंदनीय गुरुजनों का विवेचन अभीष्ट है ।

-विनय दर्शन -

विनय - के अंतर्गत गोस्वामी जी ने स्तुति, वंदना, विनय, आत्मग्लानि, आत्म प्रताड़ना, आत्मिक ‖ आध्यात्मिक ‖ शोक आदि विषयों को लिया है । विनयावली के पदों के साथ अन्य पदों को मिला कर विनयपत्रिका का संकलन हुआ है । ऐसा पीयूषकार का मत है तथा इससे जहाँ गोस्वामी जी की रचना-प्रक्रिया एवं प्रगति का दिग्दर्शन होता है, वहाँ विनय से इतर पदों को विनय के अंतर्गत सम्मिलित किये जाने के संबंध में प्रश्नवाचक चिह्न भी लगता है । ज़राथुष्ट्र ‖x‖ विनय के अंतर्गत इसका समाधान मिलता है और आत्मग्लानि जैसे पदों को विनय में सम्मिलित किए जाने का औचित्य प्रतिपादित होता है । इस प्रकार विनय के अंतर्गत विनयपत्रिका के सभी पदों को तथा विनय से संबद्ध सभी विषयों का लेना अभीष्ट है ।

‖x‖ 121 A NOBLE THOUGHT IS A PRAYER.
AN EARNEST DESIRE IS A PRAYER.
A PIOUS LONGING IS A PRAYER.
THE SINCERE SIGHING OF A PENITENT HEART
IS A PRAYER.

FROM- THUS SPAKE ZARATHUSHTRA: Sri Ramkrishna Math
Publication, IInd Edition, [illegible]

दर्शन - पातञ्जल योग को आधार बना कर दर्शन की मुख्य विवेचना अभीष्ट है । 'ईश्वर प्रणिधान द्वा' सूत्र प्रमुख रूप से शोध अभीप्सा का पथ प्रदर्शक है । विनय दर्शन के रूप में प्रतिपादित हो सकती है, यही विनम्र प्रयास है, अन्यथा किसी नई मान्यता की प्रतिष्ठा का कोई आग्रह नहीं है ।

शोध विधा :- विवरणात्मकआधार लेकर शोध कार्य करना अभीष्ट है । गोस्वामी जी के शब्द प्रयोग, प्रयोग आवृति, प्रयोग भिन्नता, प्रयोग आधिक्य दिशा निर्देशक तथ्य हैं जिनके संदर्भ में कार्य करना अपेक्षित है । इस विधा में रेखांकन (ग्राफ) बनते हैं और चाक्षुष बोध की सामग्री प्रस्तुत होती है । विषय प्रवेश के अंतर्गत विकास परक परंपरित संबद्ध सामग्री का अध्ययन अभीष्ट है ।

शोध सामग्री - शोध सामग्री के अंतर्गत गोस्वामी जी की सभी कृतियों का अनुशीलन अभीष्ट है । गीताप्रेस गोरखपुर के प्रकाशन उपलब्ध हैं । साथ में विनय-पत्रिका की पुरानी पण्डित रामेश्वर जी भट्ट की टीका (1917 ई० की प्रकाशित) भी उपलब्ध हुई है । विषय की ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है कि पाठान्तर एवं पाठ-संशोधन संबंधी कोई चर्चा की जाय ।

शोध सीमा - शोध विषय के अनुकूल शोध अनुशीलन कार्य को वंदना, वंदनीय गुरुजन तथा विनय एवं विनय दर्शन तक ही सीमित रखना है । प्रयोग संदर्भों को आधार बनाकर कार्य करने के अभीष्ट के अंतर्गत प्रबंध की विशदता संभावित है । अतएव प्रबंध के कलेवर की सीमा भी दृष्टिगत है ।

सूर की विनय से तुलना संदर्भगत साधारण अपेक्षा हो सकती है किन्तु शोध विषय की सीमा को बनाए रखना अधिक समीचीन समझा जा रहा है । प्रस्तुत शोध विषय से वस्तुतः " तुलसी और सूर की विनय" जैसा पृथक् शोध विषय ही संकेतित है और आशा है इस दिशा में अनुगमन होगा ।

शोध संदर्भ - वंदना एवं वंदनीय गुरुजन के शोध संदर्भ तो गोस्वामी जी की रचनाओं के प्रयोग एवं उनकी आवृति है । विनय दर्शन के अंतर्गत विनय संबंधी गोस्वामी जी के प्रयोगों से इतर विनय संबंधी अन्यान्य संबद्ध संदर्भ लेना अभीष्ट है । जिससे दर्शन की अपेक्षानुकूल विनय के सभी अंगों का प्रतिपादन हो सके जिनकी ओर गोस्वामी जी की दृष्टि गई है तथा जिनका अवान्तर रूप से प्रतिपादन हुआ है । पाश्चात्य विद्वानों के साथ भारतीय साधकों की प्रचुर सामग्री उपलब्ध होगी, ऐसा विश्वास है। भारतीय साधकों में महात्मा गांधी की विनय संबंधी अपनी मान्यताओं ने विशेष रूप से आकृष्ट किया है। तथा इस प्रकार के प्रतिपादन के लिये शोधार्थी प्रेरित हुआ है ।

001-

विषय प्रवेश-

मानव मनोविज्ञान एवं कवि मानस का शील विधान - मनोविज्ञान की दृष्टि से काव्यसृजन एक ओर अहं की तुष्टि है तो दूसरी ओर है उदात्त मनोभावों की अभिव्यक्ति । फ्राइड़ जैसे मनो-विज्ञानियों ने काव्य को काम की प्रकारान्तर अभिव्यक्ति माना है तो जुंग जैसे मनोविज्ञानियों ने इसको उदात्त मनोभावों की कल्पना का प्रसाद कहा है । भारतीय भक्ति कवि के मानस का शील विधान मनोविज्ञानियों की दृष्टि से चाहे काम और अहं की अभिव्यक्ति माना जाये और जो प्रेरणा या प्रासंगिकता के संदर्भमेंएक सीमा तक जलज के मूल की पंक की भांति वास्तविकता भी हो किन्तु मूलतः उदात्त मनोभावों की ही अभिव्यक्ति कही जायगी अथवा यह कहें कि काम एवं अहं की मूल मनोवृत्ति राम और सोऽहं के उदात्त मनोभावों में परिवर्तित एवं पर्यवसित हो गई है। चराचर नारिमय को ब्रह्ममय देखने की कला भारतीय भक्ति भावना का एकमात्र अभीष्ट रहा है तथा यही भारतीय दर्शन और धर्म का मूल वैदिक विवेच्य भी रहा है । अन्यथा भी कवि मानस के शील विधान की प्रक्रिया काव्य के भावन व्यापार में प्रारंभ होती है तथा भावन व्यापार में संस्कृति के परिवेश में आदर्शों, मान-मानकों एवं प्रतिष्ठित अपेक्षाओं की सुषुप्त मानसी क्रियाशीलता का महत्वपूर्ण योग रहता है।

महा काव्य रचना में कथा नायक एवं आराध्य की विशेष कृपा का अवलंब लेकर कवि अग्रसर होता है तथा इस अवलंब की श्रद्धा विश्वासीय मानसी मनोभावना कवि को अपने प्रकृत व्यक्तित्व से ऊपर उठा देती है तथा वह आराध्य के व्यक्तित्व में समारोपित हुआ चिन्तन की उस समग्र नीरवता को प्राप्त कर लेता है जहाँ मनोविज्ञान की मान्यतायें बहुत पीछे छूट जाती हैं । इसी असाधारण स्थिति में भारतीय आत्मदर्शन एवं आत्म साक्षात्कार की अलौकिक मानसी दशा संभव हो जाती है । प्रसाद जी ने संकल्पात्मक अनुभूति कहकर इस विषय को एक निश्चित दिशा दी है जो भारतीय कवि के मानसशील विधान का तात्त्विक विवेचन कहा जायगा ।

काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेय-मयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान-धारा है .... आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है- प्रसाद

श्रेय सत्य अपने मूल चारुत्व में संस्कृति का मूल अंग है तथा इस प्रकार कवि के व्यक्तित्व में संस्कृति का महत्वपूर्ण योग रहता है।

भारतीय संस्कृति एवं गुरुजन के प्रति श्रद्धानिवेदन - भारतीय संस्कृति में ही नहीं प्रत्युत विश्व की सभी संस्कृतियों में गुरुजन के प्रति श्रद्धा निवेदन की एक परंपरा है। भारतीय संस्कृति का तो प्रमुख उपादान ही श्रद्धा निवेदन है।

'सर्व तीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता' ही नहीं प्रत्युत 'नारीयस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' तथा बाल स्वरूप भगवान् की मान्यतायें भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्शों का उद्घाटन करती हैं। इस प्रकार गुरुजन ही नहीं प्रत्युत परस्पर एक दूसरे के प्रति श्रद्धा-निवेदन भारतीयता का प्रमुख आचार है जो अपेक्षित ही नहीं अनिवार्य भी है। भारतीय कवि इसीलिये वंदना के प्रति सदा सद्भावी एवं समर्पित रहता है।

गोस्वामी जी की अनन्य भक्ति तथा वंदना एवं विनय की भूमिकायें -

गोस्वामी जी की अनन्य भक्ति में वंदना एवं विनय की प्रमुख भूमिकायें हैं तथा गोस्वामी जी की रचनाओं को यदि वंदना काव्य कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। लेकिन यह वंदना एक के प्रति है, एक के लिये है और एक से है। गोस्वामी जी की वंदना की यह अनन्यता ही प्रमुख विशेषता है जिसका परिवेश सांस्कृतिक मान्यताओं के ग्रहण ही नहीं प्रत्युत आग्रह में प्रकट होता है। वह अन्यान्य देवताओं की भी वंदना करते हैं किन्तु वह वंदना उन देवताओं के लिये नहीं है, उनसे रामचरण रति की ही विनय हेतु है। विनय की यह भूमिका अपने आप में अप्रतिम है। अनन्यता का एक अनुपम आदर्श है। वंदना का दूसरा उपचार है 'जड़ चेतन जग जीव जत' का व्यापक व्यापार जिसमें वह

अपने आराध्य के दर्शन करते हैं , गद्-गद् होकर वंदना और विनय करने लगते हैं । इस प्रकार वंदना के व्यष्टि एवं समष्टि आलंबनों में गोस्वामी जी को अपने इष्ट एवं आराध्य की वंदना एवं विनय का ही सुयोग एवं सौभाग्य सुलभ होता है । गोस्वामी जी की विनय दर्शन की यह मौलिक उद्भावना है ।

शास्त्रीय वंदना परंपरा - काव्य शास्त्रीय एवं धर्म शास्त्रीय वंदना परंपरायें तत्कालीन सांस्कृतिक धरोहर का रूप ले चुकीं थीं तथा भक्तिकाल केकवियों के लिये उनके प्रति निष्ठावान् होना अपेक्षित था । काव्य शास्त्रीय परंपरा में महाकाव्य की रचना की निर्धारित मान्यतायें थीं जिनमें वंदना का भी विवरण दिया गया था । उस समय दो परंपरायें चल रहीं थीं - भारतीय काव्य शास्त्रीय परंपरा तथा दूसरी फारसी मसनबी परंपरा ।

भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा संस्कृत साहित्यशास्त्र की अपेक्षाओं से प्रारभ होती है । प्राकृतकालीन साहित्यिक परंपरा संस्कृत के निकट एवं अनुरूप है ।

- दण्डी ने काव्यादर्श प्रथम परिच्छेद में महाकाव्य की परिभाषा देते हुए महाकाव्य के प्रारंभ में मंगलाचरण की अपेक्षा की है[×] । यह मंगलाचरण तीन प्रकार का हो सकता है-

आशीर्वचन रूप

नमस्कार रूप

वस्तुनिर्देश रूप

इस अपेक्षा के अनुरूप प्राकृत काव्य की रचना प्रक्रिया रही है । अपभ्रंश काव्य की परंपरा में कतिपय अन्य मान्यतायें भी आ गईं जिनके अंतर्गत दुर्जन निन्दा, सज्जन प्रशंसा, पूर्व कवि प्रशंसा, गुरु वंदना, कवि की विनम्रता की भी अपेक्षा की गई है । यह विषय वंदना के ही अंग हैं । गोस्वामी जी ने अपभ्रंश काव्य की इस परंपरा का अनुकरण किया है । इस प्रकार उनका काव्य पूर्ववर्ती रचना प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है । भारतीय काव्य शास्त्रीय परंपरा की महाकाव्य शैली और फारसी मसनबियों की शैली के मिश्रण से एक नवीन ढंग की महाकाव्य शैली का जन्म हुआ । इसमें जायसी का पदमावत विशेष रूप में उल्लेखनीय है । इस शैली में स्तुति के अंतर्गत निम्नलिखित का वर्णन अपेक्षित रहा है -

---

[×] "आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देश वापि तन्मुखम्"- काव्यादर्श : प्रथम परिच्छेद -010

- आदि कर्ता - आदि एक करतारु
- पैगम्बर मुहम्मद साहब
- तत्कालीन सम्राट - शाहेवक्त
- गुरु वंदना तथा गुरु परंपरा का उल्लेख
- कवि विनम्रता

वंदना की धर्मशास्त्रीय परंपरा - धर्मशास्त्रीय परंपरा के 3 अंग माने जा सकते हैं -

1- पारायण विधि
2- प्रारंभ की स्तुति
3- माहात्म्य

ग्रंथ के पारायण विधि में ग्रंथ पूजन-वंदनतथा देवताओं का आह्वान् होता है जिसको विनियोग:, आह्वान, न्यास, ध्यान के शीर्षों में प्रस्तुत करते हैं । सुचिता संबंधी सामान्य निर्देश पारायण कर्ता के लिये होते हैं [0] स्नान, आचमन, से शुद्ध होकर मंगलपाठ के साथ भगवान् को प्रणाम करे । उसके पश्चात् षोडशोपचार एवं मानसोपचार द्वारा ग्रंथ का विनय व भक्तिभाव से पूजन करे । तब पाठ प्रारंभ करने से पूर्व ग्रंथ के नायक भगवान् से संबंधित मंत्र का जाप करे ।

प्रारंभ की स्तुति को साहित्यशास्त्र का मंगलाचरण कह सकते हैं

माहात्म्य में ग्रंथ की महिमा एवं प्रशंसा की जाती है । इसको प्रारंभ में या अंत में देते हैं। गोस्वामी जी ने अपने मानस में इस परंपरा का पूर्ण पालन किया है । यह अवश्य है कि उन्होने माहात्म्य अंत में दिया है तथा अंत में ग्रंथ की आरती भी दी है । इस प्रकार गोस्वामी जी साहित्य तथा धर्म दोनों परंपराओं का पालन करते हैं । उनका मानस दोनों क्षेत्रों में समान रूप से समाहत भी है ।

---

[0]- स्नात: शुचिर्भूत्वा प्राणानायम्य त्रिराचम्य च मंगलपाठपूर्वकं भगवन्तं प्रणमेत् । तदनु संचितै: षोडशोपचारैर्मानसो चारैर्वा व्यासं शुकं वासुदेवं श्रीमद्भागवतग्रंथं च सादरं सविनयं सभक्तिभावं संपूजयेत् । तत: पाठारम्भात् प्राक्... मंत्रं अष्टोत्तरशतं जपेत् ।-

- श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

-011

राम काव्य वंदना परंपरा - संस्कृत काव्य का प्रारंभ रामायण से होता है । वाल्मीकि रामायण राम काव्य परंपरा का आदि ग्रंथ है । प्राकृत काव्य में विमलसूरि का पउम चरिय राम काव्य है ।अपभ्रंश काव्य में स्वयंभू का पउम चरिउ राम काव्य है । हिन्दी काव्य में गोस्वामी जी का रामचरित मानस राम काव्य है । वाल्मीकि रामायण में प्रारंभ में कोई स्तुति नहीं है । वाल्मीकि मुनि नारद से प्रश्न करते हैं कि इस समय इस लोक में गुणी, शूर, धर्म और उपकार के जानने वाला, सत्यवक्ता और दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति कौन है ‡0‡

---

‡0‡- तप: स्वाध्यायनिरतं त:पस्वी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परिपृच्छ वाल्मीकिर्मुनि पुङ्गवम् ।।
कोन्वस्मिन् साप्रतं लोकेगुणवान् कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रत: ।। वा. बालकाण्ड 1,2

पउमचरियं : आचार्य विमल सूरिकृत ‡ कवि के अनुसार सन् 0060 की रचना ‡
सं0-डा0 हर्मन जेकोबी : प्राकृत ग्रंथ परिषद् : वाराणसी-5 1962 ‡

1- सुत विहाणं-
मंगलम्

सिद्ध -सुर-किन्नरोरग-दणवइ -भवणिन्दवन्दपारिमहियं ।
उसहं जिणवरवसहं, अवसप्पिणि आइतित्थयरं ।। 1 ।।
अजियं विजियकसायं, अपुण ब्भव संभवं भवविणासं ।
अभिनन्दणं च सुमइं पउमाभं, पउम सच्छायं ।। 2 ।।
तिजगुत्तमं सुपासं, ससिप्पभं जिणवरं कुसुमदन्तं ।
अह सीयलं मुणिन्दं, सेयंसं चेव वसुपुज्जं ।। 3 ।।
विमलं तहा अणन्तं, धम्मं धम्मासयं जिणं सन्तिं ।
कुन्थुं कसायमहणं, अरं जियारिं महाभागं ।। 4 ।।
मल्लिंमलिसभवोहं, मुणिं सुव्वयं तियसनाहं ।
पउमस्स इमं चरियं, जस्सं य तित्थे समुप्पन्नं ।। 5 ।।
नमि नेमि तह य पासं, उरगमहाफणिमणीसु पज्जलियं ।
वीरं विलीणरयमलं, तिहु यणपरिवन्दियं भयंवं ।। 6 ।।
अन्ने वि जे महारिसी, गणहर अणगार लद्धमाहप्पे ।
मण-वयण -कायगुत्ते, सव्वे सिरसा नमसामि ।। 7 ।।

विद्या, मंत्र, शिल्प आदि विविध सिद्धियां प्राप्त करने वाले सिद्ध, देव, किन्नर, नाग, असुरपतिएवं भवनेन्द्रों के समूह द्वारा पूजित, जिन वरों में वृषभ के समान श्रेष्ठ और इस अवसर्पिणी ‡उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीनाम से काल के दो मुख्य विभाग ‡ काल में होने वाले प्रथम तीर्थंकर ऋषभ को -कषायों पर विजय प्राप्त करने वाले अजित को -मुक्ति प्राप्त करने से पुन: जन्म धारण नहीं करने वाले संभव को - जन्म का नाश करने वाले अभिनन्दन व सुमति को- पद्म के समान सुन्दर कान्ति वाले पद्मप्रभ को -तीनों लोकों में उत्तम सुपार्श्व को - जिनेश्वर शशिप्रभ ‡चन्द्रप्रभ‡ तथा कुसुमदन्त‡सुविधि‡ को- मुनियों में इन्द्र के समान शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल एवं अनन्त को - धर्म के आश्रयरूप धर्म को-रागादि आन्तरिक शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त करने वाले शान्ति को -कषायनाश करने वाले कुन्थु को शत्रुओं को जीतने वाले तथा अनन्त ऐश्वर्य संपन्न अरको- जन्ममरण के प्रवाह का नाश करने वाले मल्लिको-सुव्रतधारी, देवों के स्वामी तथा पद्म ‡राम‡ की कथा जिनके शासन-काल में घटी ऐसे मुनि सुव्रत को -नमि एवं नेमिको- धरणेन्द्र नामक -नाग की बड़ी बड़ी फणाओं के ऊपर स्थित मणियों के प्रकाश से देदीप्यमान पार्श्व को -कर्ममल को दूर करने वाले और इसीलिये तीनों लोकों द्वारा पूजित भगवान् वीर को तथा दूसरे भी जो महिमा शाली एवं दुष्ट प्रवृत्तियों से मन वचन काम की रक्षा करने वाले महर्षि गणधर व साधु हैं, इन सबको मैं मैं मस्तक झुकाकर नमन करता हूं ।

-0012

अंगों की सार्थकता भगवान् के स्मरण में है । इस भाव को भी विमलसूरि प्रस्तुत करते हैं जिसे गोस्वामी जी ने भी प्रस्तुत किया है ।

ते नाम होन्ति कण्णा, जे जिणवरसासणम्मि सुइपुण्णा ।
॥ कान वही सार्थक हैं जो जिनवर उपदेश से पूर्ण हैं ॥

जिणदरिसणुज्जया वि हु, जे नयणा ते हवन्ति सुपसत्था ।। ॥वही 2।॥

॥ आँखें वही सार्थक हैं जो जिनेश्वर दर्शन हेतु उत्सुक हैं ॥

रामकथा के परंपरा रूप में अवधारण का उल्लेख भी विमलसूरि करते हैं । गोस्वामी जी ने भी इस प्रकार का उल्लेख किया है ।

आठवें बलदेव राम की यह कथा पहिले भगवान् महावीर ने कही। बाद में उत्तम साधुओं ने धारण की । अब विमल ने इसको गाथाबद्ध किया है ।

विमल सूरि कवि विनम्रता का प्रसंग नहीं लेते । प्रत्युत कवि गर्वोक्ति का आश्रय लेते प्रतीत होते हैं । संस्कृत एवं प्राकृत काव्यों की यह एक विशेषता कही जायगी ।

एताहे विमलेण पायडफुडं गाहानि बद्धंकयं ।। ॥ वही 90॥

अब विमल ने इसे स्पष्ट एवं विशद रूप में गाथाओं में निबद्ध किया है ।

कथा के श्रोता वक्ता रूप का भी प्रारंभ विमलसूरि से होता है । गौतम मुनि वक्ता हैं तथा मगधाधिप श्रेणिक श्रोता हैं । गौतम मुनि को प्रणाम करके श्रेणिक पूछते हैं । ॥4.64.65॥

अपभ्रंश महाकवि स्वयंभू भी पउमचरिउ नाम की रचना करते हैं । यह संयोग ही है कि संस्कृत काव्य की भाँति पउमचरिउ भी अपभ्रंश काव्य की प्रथम रचना है ।इस प्रकार रामकथा संस्कृत,प्राकृत,अपभ्रंश तथा हिन्दी के विकासक्रम में साहित्य की गतिमान धारा की प्रमुख गंगा है जिसको आधार बना कर काव्य सृजन हुआतथा जिसकी सांस्कृतिक देन देश की गौरव गाथा बनी । वस्तुतः रामकथा भारतीय लोकमानस की अभिव्यक्ति की आदर्श साधन रही है । स्वयंभू ऋषभ जिन मुनिजन,आचार्य, चौबीस तीर्थंकरों की वंदना करते हैं तथा गुरु वंदना करते हैं ।

रामकथा नदी के रूपक की कल्पना करते हैं । कथा की परंपराका उल्लेख करते हैं । आत्म लघुता तथा कवि की अज्ञानता का वर्णन करते हैं । ।

सज्जन दुर्जन वर्णन करते हैं तथा उनकी वंदना करते हैं । इन रूपों में गोस्वामी जी की वंदना अपभ्रंश कवि स्वयंभू के निकट है तथा गोस्वामी जी के लिये रचना प्रक्रिया की परंपरा है ।

महाकवि स्वयंभू-

अपभ्रंश रचना पउमचरिउ - ॥ 677 ई. से 783 ई. के बीच ॥

अनुवादक - देवेन्द्रकुमार जैन ,भारतीय ज्ञानपीठ काशी ।

- णमह णव-कमल-कोमल-मणहर-वर-वहल-कन्ति-सोहिल्लं ।
  उसहस्स पाय-कमलं स-सुरासुर-वन्दियं सिरिसा ॥। । ॥

मैं नवकमल की तरह कोमल ,सुंदर और उत्तम घनकान्ति से शोभित, तथा देवों और असुरों के द्वारा वंदित , श्री ऋषभ जिनके चरण-कमलों को सिर से नमन करता हूं।

- जे काय-वाय-मणे णिच्छिरिय जे काम-कोह-दुण्णय-तरिय ।। 9 ।।

× × × × × × × ×

स्वयंभू कवि ,एक मन होकर उन गुरु स्वरूप उत्कृष्ट आचार्यों की वन्दना करता है जो काम वचन और मन से शुद्ध है और जो काम क्रोध और दुर्नयों से तर चुके हैं ।

× × × × × ×

तुलसी पूर्व वंदना परंपरा -

वंदना एवं वंदनीय गुरुजन की परंपरा चली आ रही है । आदि काल से ही समर्पण का भाव मानव प्रकृति एवं प्रवृत्ति का अंग बना है । एक ओर अपने से सशक्त एवं सक्षम के प्रति आधीनता मानव की विवशता रही है तो दूसरी ओर आकर्षण एवं अनुराग के संदर्भ में समर्पण हृदय की पुकार बन गई है । संवेगात्मक क्षणों में भी यह भाव जाग्रत हो जाता है। केदारा के प्रभाव का उल्लेख करते हुए डा० वर्मा ने लिखा है कि -

"केदारा के स्वर में यह भावना है कि करुणा की समस्त मूर्छनाएँ एक बार ही हृदय में जाग्रत हो जातीं हैं । ऐसा ज्ञात होता है जैसे सारा संसार तरलहोकर किसी की आँखों से आँसू बन कर निकलना चाहता है । तारिकाएँ आकाश की गोद में सिमिट कर पतली किरणों में प्रार्थना करने लगती हैं । कलिकाएँ सुगंधि की वेदना से फूल बन जाती हैं और बिन्दु में डूबकर पृथ्वी के चरणों में आत्मसमर्पण करना चाहतीं हैं । "(0)

पढमो संधि (पहिली संधि)

~~धुवु~~ -तिहुअणलग्गण-खम्भु गुरु परमेट्ठि णवेप्पिणु ।
पुणु आरम्भिय राम कह आरिसु जोएप्पिणु ।। 1 ।।

तीनों लोकों में लगे स्तम्भ स्वरूप गुरु परमेष्ठी को नमस्कार कर मैं (स्वयंभू) आर्षग्रंथ को देखकर रामकथा आरम्भ करता हूँ ।

- णिम्मल -पुण्ण-पवित्त-कह-कित्तणु आढप्पइ ।
जेण समाणिज्जन्तएण थिर कित्ति विढप्पइ ।। 2:12

निर्मल पुण्य से पवित्र हुई उस कथा का कीर्तन शुरू कर रहा हूँ जिसको भली-भाँति जानने से स्थाई कीर्ति बढ़ती है ।

-बुहयण सयम्भु पइँ विण्णवइ । मइँ सरिसउ अण्णु णाहिं कुकइ ।। 3:1

पंडितजनों से स्वयंभू का केवल यह निवेदन है कि मेरे बराबर दूसरा कोई कुकवि नहीं है। ..... व्याकरण नहीं जानता, वृत्ति और सूत्रों की व्याख्या नहीं की, प्रत्याहारों का विचार नहीं किया, संधियों के ऊपर मेरी बुद्धि कभी स्थिर नहीं हुई ....

सामण्ण भास छुडु सावडउ । छुडु आगम-जुत्ति का वि घडउ ।। 3:10

मैं सामान्य भाषा में यत्नपूर्वक कुछ आगमयुक्ति गढ़ रहा हूँ ।

एँहु सज्जण लोयहों किउ विणउ । जं अवुहु पदरिसिउ अप्पणउ ।। 3:12
जइ एम विरूसइ को वि खलु । तहों हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु ।। 3 :13

वैसे मैं अपना अज्ञान प्रकट कर ही चुका हूँ। फिर भी यदि कोई खलजन (मेरे काव्य) से रुष्ट हो तो मैं उसकी उस प्रवंचना को भी हाथ जोड़ कर स्वीकारता हूँ ।

(0) डा० रामकुमार वर्मा : विभूति -समुद्रगुप्त पराक्रमांक पृ. 93/94 विद्यामंदिर प्रकाशन -014

- जो भाव केदारा से जाग्रत होता है उसके उत्स एवं उसकी अनुभूति मानव मानस की सहज वृत्ति के रूप में विकसित होकर वंदना का रूप ले लेती है ।

वंदना के दो प्रमुख अंग हैं स्तुति एवं विनय ।
स्तुति की परंपरा वैदिक काल से प्रारंभ होती है । स्तुति काव्य का एक युग चला आ रहा है जो अबाध रूप से प्रगतिशील है चाहे शैलीगत विकास के अंतर्गत उसका रूप भले ही परिवर्तित लगे । इस परंपरा का संक्षिप्त उल्लेख अपेक्षित है ।

<u>स्तुति परंपरा</u> - स्तुति ऋग्वेद से ही प्रारंभ होती है । ऋक् का अर्थ ही स्तुति है । इस प्रकार वैदिक साहित्य की आदि रचना ऋग्वेद स्तुति वेद है । जिसमें प्रकृति की देवरूप में स्तुतियाँ हैं । सामवेद की रचना तो स्तुतियों के गायन के लिये ही हुई थीं ।

-उपनिषदों में विवेचन और व्याख्यों के बीच स्तुतियों का आकलन हुआ है । ब्रह्मदेव की स्तुति के अन्यान्य प्रसंग प्रस्तुत हुए हैं ।

पुराणों में ब्रह्म वैवर्त पुराण को तो स्तुतियों के विशाल कोश की संज्ञा देनी चाहिये । इसमें ब्रह्म, देव, ब्रह्मा, शंकर, अष्टावक्र, मोहिनी आदि की अन्यान्य स्तुतियाँ ब्रह्म खण्ड, प्रकृतिखण्ड, तथा कृष्णजन्मखण्ड में दी गई हैं ।
विष्णु पुराण में विष्णु की स्तुतियाँ हैं ।

आगे धार्मिक साहित्य के युग में 14वीं शती तक (×) अनवरत रूप से स्तोत्रों की रचना

प्रथम शताब्दी	- अश्वघोष का गाण्डिस्तोत्र
दूसरी ,,	- बौद्ध कवि मातचेट का चतुःशतक, अध्यर्ध शतक
पाँचवीं ,,	- जैन कवि सिद्धसेन दिवाकर का कल्याण मंदिर स्तोत्र
छठी ,,	- बाण का - चंडी शतक
सातवी ,,	- हर्ष -सुप्रभात स्तोत्र
	मानतुंग - भक्तामर स्तोत्र
	मयूर - सूर्य शतक
	कुलशेखर-कुन्दमाला (सुंदरगेय शैली में रचित)
	- जगद्गुरु शंकराचार्य -स्त्रग्धरा स्तोत्र, लक्ष्मीनृसिंह स्तोत्र, शिव भुजंग स्तोत्र।
नवी ,,	- काश्मीर के पुष्पदन्त- महिमा स्तोत्र
	- रत्नाकर - वक्रोक्ति पंचाशिका, आनन्दवर्धन- देवी शतक
दसवी ,,	- उत्पलदेवस्तोत्रावली, यामुनाचार्य - चतःश्लोकी स्तोत्र रत्न
11वी ,,	- रामानुजार्य - गद्यत्रय(शरणागति वैकुण्ठ, श्रीरंग-तीन स्तोत्र ग्रंथ)
12वी ,,	- जयदेव - गंगास्तव, बिल्व मंगल- कृष्ण कर्णामृत, आनन्दतीर्थ-द्वादशस्तोत्र
14वीं ,,	- वेदान्त देशिक -संस्कृत में -पादुकासहस्त्र, गरुड़ गण्डक, प्राकृत में -अच्युतशतक

होती चली आई है जिनमें स्तुति साहित्य के कीर्तिमान प्रस्तुत हुए हैं जो धार्मिक कृत्यों, देव पूजा एवं अनुष्ठानों के आज भी प्रमुख अंग बने हुए हैं ।

- हिन्दी साहित्य के अंतर्गत परंपरा से आई हुई दोहा चौपाई शैली में रचित महा काव्यों में जायसी और तुलसी का नाम उल्लेखनीय है । इन दोनों महा कवियों ने स्तुति की प्राचीन परंपरा का निर्वाह किया है ।

- पदमावत में जायसी ने पृथक् स्तुति खण्ड रखा है । इस खण्ड में "आदि एक करतारु" पैगम्बर, शाहेवक्त, गुरु परंपरा की स्तुति की की गई है । यह स्तुति **प्राचीन** परंपरागत स्तुति से भाषा एवं शैली में भिन्न है ।

स्तुति का नवीन प्रयोग -

संस्कृत श्लोकों में प्रस्तुत प्राचीन स्तुतियाँ की परंपरा में लोक भाषा में प्रस्तुत जायसी की स्तुति भाषा शैली का एक नवीन प्रयोग कही जायगी ।

- गोस्वामी तुलसीदास ने प्राचीन परंपरा का निर्वाह भी किया है तथा इस नवीन प्रयोग का भी अनुसरण किया है । काण्ड के प्रारंभ में संस्कृत श्लोकों में स्तुति प्रस्तुत की गई है । अन्यत्र तीन प्रकार के उदाहरण मिलते हैं ।

i - संस्कृत श्लोकों में, जैसे रुद्राष्टक
ii - संस्कृत शब्द बहुल भाषा में, जैसे विनयपत्रिका की स्तुतियाँ
iii - लोक भाषा में जैसे, विराध, परशुराम, गीधराज, सुरवृंद, कौशल्या, अहल्या, सुनयना आदि द्वारा की गई अधिकांश राम स्तुतियाँ ।

जायसी और तुलसी की स्तुतियाँ -

जायसी ने शाहेवक्त की स्तुति मसनवी पद्धति के अनुकूल की है । गोस्वामी तुलसीदास ने शाहेवक्त की स्तुति तो दूर प्राकृत जन का गुणगान भी वाणी का दुर्भाग्य माना है ।

" सिर धुनि गिरा लगि पछिताना "

जायसी का आदि करतार का वर्णन गोस्वामी जी के वर्णन के लगभग समान है ।- ‡×‡ दोनों का गुरु महिमा वर्णन भी समान कहा जा सकता है ।

सैयद असरफ पीर पियारा ।
जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा ।।
लेसा हियें प्रेम कर दीया ।
उठी जोत भा निरमल हीया ।।

‡पदमावत स्तुति खण्ड 18‡

गोस्वामी जी-

श्री गुर पद नख मनि गन जोती ।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ।।

गुरु स्तुति की परंपरा तो सिद्ध, नाथ और संतों से चली आ रही है । गोरख, कबीर, गुरु नानक देव ने भी गुरु महिमा का गुणगान किया है तथा गुरु स्तुति की परंपरा को, भक्ति साहित्य के अनिवार्य अंग के रूप में प्रतिष्ठा की चाहे, वह निराकार साधना हो या साकार ।

जायसी का वर्णन

अलख अरूप अबरन सो कर्ता ।
वह सब सों, सब ओहि सों बर्ता ।।
परगट गुपुत सो सरब बिआपी ।
धरमी चीन्ह न चीन्है पापी ।।
ना ओहि पूत न पिता न माता ।
ना ओहि कुटंब न ओहि सँग नाता ।।
जना न काहु न कोइ ओहि जना ।
जहँ लगि सब ताकर सिरजना ।।
जीउ नाहि पै जियै गुसाईं ।
कर नाहीं पै करै सबाईं ।।
जीभ नाहींपै सब कछु बोला ।
तन नाहीं सब ठाहर डोला ।।
स्रवन नाहिं पै सब किछु सुना ।
हिया नाहिं पै सब किछु गुना ।।
नयन नाहिं, पै सब कुछु देखा ।।
कौन भाँति अस जाइ बिसेखा ।।-

स्तुतिखण्ड 7॥8

गोस्वामी जी का वर्णन

राम ब्रह्म परमारथ रूपा ।।
अबिगत अलख अनादि अनूपा ।।-2.12.7

आदि अंत कोउ जासु न पावा ।
मति अनुमानि निगम अस गावा ।।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना ।।
आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी ।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ।।-1.117.4-7

- इस प्रकार स्तुति परंपरा के विकास क्रम में जायसी तथा गोस्वामी जी का योग विशेष रूप से उल्लेखनीय रहेगा । भाषा में भी स्तुति की जा सकती है । यह यों तो एक साधारण विशेषता प्रतीत होती है अन्यथा धार्मिक आस्था एवं विश्वास के रूढ़िवादी परिवेश में यह एक महान क्रान्ति कही जायगी । जायसी मुसलमान थे तथा मसनवी पद्धति को लेकर चल रहे थे । इसलिये उनको इस क्रान्ति का इतना श्रेय नहीं है जितना गोस्वामी जी को जो प्राचीन परंपरा में पालितपोषित सवर्ण होकर तत्कालीन धार्मिक कट्टरता में यह साहस कर सके ।

- सगुण भक्ति का युग 16-17वीं शताब्दी का युग था । इस युग को अन्यथा स्तुतियों का स्वर्णयुग कह सकते हैं । इस युग का उल्लेखनीय स्तुति साहित्य है - अप्पय दीक्षित का वरदराज स्तव, रूप गोस्वामी की आनन्द मंदाकिनी, गंधर्व प्रार्थना स्तव, मुकुन्द मुक्तावली, पण्डितराज जगन्नाथ की सुधा लहरी, गंगालहरी, लक्ष्मी लहरी, करुणा लहरी, अमृत लहरी आदि स्तुति साहित्य के गौरव ग्रंथ हैं । साथ ही राम और कृष्ण संबंधी भी अनेक स्तुति ग्रंथों की भी रचना हुई ।

- रामभद्र दीक्षित कृत रामस्तव, अद्भुत सीमा रामस्तव आदि राम के दस स्तवनग्रंथ तथा नारायण तीर्थ कृत कृष्ण लीला तरंगिणीआदि इन स्तुतियों की उत्कृष्ट रचनायें हैं । गोस्वामी जी को यह स्तुति परंपरा अपने युग तक विकसित रूप में प्राप्त हुई । उन्होंने इस परंपरा का आदर्श रूप में निर्वाह किया । यों उनकी स्तुतियों पर अध्यात्म रामायण की स्तुतियों का सीधा प्रभाव पड़ा है । स्तुति रचना की दृष्टि से अध्यात्म रामायण स्वयं एक आदर्श स्तुति ग्रंथ है । अतएव गोस्वामी जी का उससे प्रभावित होना स्वाभाविक है । विषयवस्तु तथा परिस्थितियों की दृष्टि से कौशल्या, अहल्या, परशुराम, वाल्मीकि, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, शबरी, जटायु, ब्रह्मा, इन्द्र, तथा शिव द्वारा की गई राम की स्तुतियों में मानस तथा अध्यात्म रामायण में पर्याप्त समानता है ।

- विनय परंपरा हमारी आदि मनोभावी अभिव्यक्तियों के रूप में अथर्व वेद की " श्रुधी नोअग्ने, "[x] (प्रभो हमारी प्रार्थनाको सुन) श्रुति में प्रथम उद्घोषित हुई ।

(x)- अथर्व - 18.1.25

विनय परंपरा - आगे विनय परंपरा का मूल उत्स सिद्ध और नाथ कवियों के साहित्य में आभासित हुआ देखा जा सकता है जो संतकवि कबीर, तथा नानकदेव के साहित्य में विकसित हुआ । गोस्वामी तुलसीदास तथा विनय परंपरा के सिद्ध नाथ एवं संतों के दृष्टिकोण में आकाश पाताल का अंतर है । गोस्वामी जी सगुण भक्ति और अयोध्या नरेश दाशरथि राम की प्रतिष्ठा करते हैं । उनके राम निराकार निर्गुण ब्रह्म होते हुए भी भक्तों की रक्षा के हितार्थ सगुण ब्रह्म रूप धारण करते हैं । सिद्ध, नाथ एवं संतों का आग्रह निराकार निर्गुण अलख निरंजन ब्रह्म की प्रतिष्ठा करना था । यद्यपि उन्होंने भी राम को ग्रहण किया है किन्तु उनका राम निर्गुण ब्रह्म ही है, वह दाशरथि राम नहीं है । इस दूरगामी भेद परक दृष्टिकोण के होते हुए भी गोस्वामी जी इस विनय परंपरा से ही जुड़े हुए हैं । यही नहीं इन सिद्ध, नाथ एवं संत कवियों से प्रभावित भी हैं और अन्यान्य विषयान्तर्गत उनका अनुसरण भी करते हैं ।

भाषा - सिद्ध नाथ तथा संतों ने लोक भाषा को अपनाया तथा उसी में अपने उपदेश दिये। यह इनका बड़ा साहसपूर्ण कदम था तथा इस परंपरा ने ही संस्कृत के प्रयोग-आग्रह एवं अनिवार्यता को चुनौती दी । गोस्वामी जी को इस परंपरा से अपनी रचनाओं के लिये बड़ा योग मिला यद्यपि उनको फिर भी बड़े संघर्ष का सामना करना पड़ा ।

शैली - सिद्ध, नाथ एवं संत कवियों ने दोहा चौपाई तथा पद शैली को अपनाया था । गोस्वामी जी ने अपनी रचनाओं के लिये इस शैली का अनुसरण किया है। इसमें सन्देह नहीं कि गोस्वामी जी ने इस शैली को विकसित कर आदर्श एवं मानक रूप दिया ।

भाव एवं भावना - सिद्ध, नाथ, एवं संतों ने यद्यपि निराकार, अलख, निरंजन, रूप ब्रह्म को अपना, आराध्य बनाया किन्तु भाव एवं भावना में सगुण रूप की भाँति उनकी अभिव्यक्ति हुई । कान्ता भाव तक इनके साहित्य से ही प्रारंभ हुआ।

- गोरखनाथ जी की अपवाद स्वरूप एक दो पंक्ति, " तुभि पर वारी हो अण घड़ी या देवा ", कबीर में " मोरे घर आये राजाराम भरतार " में, विकसित हुई तथा कान्ता

भाव का स्पष्ट स्वरूप प्रस्तुत हुआ - [x]

> दुलहनीं गावहु मंगल चार । हम घरि आये हो राम भरतार ।।
> कहै कबीर हम ब्याहि चले है, पुरिष एक अविनासी ।।

यही नहीं कबीर ने पति पत्नी से इतर माता पिता एवं पुत्र, स्वामी-सेवक तथा भक्त भगवान् के संबंध भी उस निर्गुन ब्रह्म से स्थापित किये हैं -

> - हरि जननी मैं बालक तोरा
> - बाप राय सुनि बिनती मोरी
> - कहै कबीर दासनि को दास,
> अब नहिं चाड़ौ हरि के चरन निवास

- गोस्वामी जी ने कान्ता भाव से इतर [0] अन्य सभी संबंधों को अपनाया । " तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावै " कह कर तो उन्होंने संसारी सभी संबंध प्रभु से स्थापित करने की पहल की । गोस्वामी जी की विनयपत्रिका का सार प्रभु से बाप का संबंध स्थापित करना कहा जाय तो असंगत न होगा । बाप के संबंध को मान लेने वाले प्रभु से तो पुत्र रूप भक्त के लिए एकमात्र कल्याण की ही कामना की जा सकती है ।कबीर कहते हैं कि 'बाप राय सुनि बिनती मोरी,' और तुलसी कहते हैं " विनयपत्रिका बापु आपु ही बाँचौ " । निर्गुण आराधकों से उन्हें यह परंपरा मिली और उन्हें सगुण रूप के लिये अपनाने में सुविधा ही हुई । यों अलख अरूप एवं निर्गुण ब्रह्म के साथ, निर्गुण(ब्रह्म रूप) के साथ निर्गुण साधकों का नाते एवं भाव स्थापित करना सचमुच कुछ अटपटा ही था ।

---

[x]- नानकदेव जी ने भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये -
नानका हरि बरु देखि बिगसी सुंध मनि ओमाहओ ।।
हम घर साचा सोहिलडा प्रभ आइ अड़े मीता राम ।।
रावे रँगि रीतडि आ मनु लीअड़ादीता राम ।। [नानकवाणी]

- मेरे घर में आनन्द है,सोहिले राग गाये जा रहे हैं । मेरा प्रियतम राम आया है । अपने पति को देख कर पत्नी प्रसन्न और उल्लसित हुई ।अब तो राम मेरे साथ रँगरेलि करेगा ।

[0]- गोस्वामी जी ने भक्ति में अन्यथा कान्ता भाव की भावभूमि को अपनाने का आग्रह अवश्य किया है। 'कामिहि नारि पिआरि जिमि' कह कर वह प्रेम एवं वासना की इसी अनन्यता की कामना करते हैं ।

-020

राम नाम का आग्रह - सिद्ध, नाथ एवं संतों ने यद्यपि " ना जसरथि घरि औतरि आवा । ना लंका का राव सतावा " कह कर बार बार दशरथि राम को नकारा किन्तु अन्यथा राम नाम का आग्रह किया । इससे साधकों को छोड़कर सामान्य जनता में राम नाम का प्रचार-प्रसार हुआ और निर्गुण का आग्रह वस्तुतः शास्त्र एवं विवेचन की ही बात बन कर रह गई । जन सामान्य ने राम नाम अपनाया और आभासित रूप में सगुण छबि उनके लिये आलंबन बनी, यह कहना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से युक्तियुक्त कहा जायगा । यही कारण है कि गोस्वामी जी को अपने सगुण राम के लिये परंपरा से ही नहीं भाव एवं भावना में भी उर्वर जन मानस मिला तथा " राम सकल नामन ते अधिका" उद्घोष जन-जन की अंतर की पुकार का प्रतिघोष सिद्ध हुआ ।

राम नाम के जाप का आग्रह -

- गोरखनाथ तथा कबीर ने भगवान् के अन्यान्य नामों का प्रयोग किया है किन्तु आग्रह एवं प्रमुखता राम नाम को ही प्रदान की है । कबीर तो इस राम नाम के साथ राजा राम का भी प्रयोग करते हैं, उनका आशय दाशरथि अयोध्या के राजाराम से नहीं होता, निर्गुण राम से होता है ।

मन रे राजाराम होइलै नृदंद

× × × × × × × × ×

निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई

× × × × × × × × ×

भाई रे रामु कहहु चित लाइ

- गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस राम नाम के जाप के आग्रह की परंपरा में अपने दाशरथि ब्रह्म राम के जाप को अपनाया तथा 'भाय कुभाँय अनख आलसहू राम जपत मंगल दिसि दसहू' कह कर राम नाम के जाप को भक्ति साधना का प्रथम एवं प्रमुख अंग प्रतिपादित किया ।

मन तथा जीव को संबोधित कर समझाने की पद्धति - कबीर ने मन तथा जीव को संबोधिक कर उपदेश देने की

पद्धति अपनाई थी । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसको आत्म संवेदन प्रक्रिया ॥
॥ कहा जायगा । इस पद्धति को गोस्वामी जी ने
इस परंपरा से अपनाया ।

जीव - कबीर - जागि रे जीव जागिरे
चोरन कौ डर बहुत कहत हौं, उठि उठि पहिरै लागि रे ।
तुलसी - जागु, जागु, जीव जड़

मन - कबीर - मन रे जबतें राम कहयो, पीछै कहिबे को कछु न रहयौ ।
तुलसी - मन इतनोई या तनुको परम फलु ।

अपने को अपराधी , पापी, दोषी समझकर अपनी भर्त्सना करने, अपने अपराध गिनाने तथा अपनी निन्दा करने की दास्य भक्ति भाव की परंपरा कबीर से प्रारंभ हुई । गुरु नानकदेव भी भगवान् के सामने अपने आपको हरामखोर, पापी आदि कहते हैं । सूरदास जी ने इस परंपरा का अनुसरण करते हुए अपने दोषों और अवगुणों की एक लम्बी सूची दी है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इसी परंपरा के अनुसरण में इसी प्रकार की एक लम्बी सूची दी है जो सूर की सूची से कहीं बड़ी है ।

दास्य भाव की भक्ति की परंपरा - सिद्धों एवं संतों की भक्ति परंपरा दास्यभाव की थी जिसमें अपने आपको दीन हीन तथा अपराधी मानकर प्रभु शरणागति की कामना की जाती थी । इस परंपरा का गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी विनय भक्ति में पूरा अनुसरण किया तथा दास्य भक्ति को अन्यतम साधन सिद्ध किया । " सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि "। भगवत्कृपा का विश्वास इस भक्ति का बड़ा महत्त्वपूर्ण अंग है ।

भगवत्कृपा का विश्वास भी संतों की परंपरा से गोस्वामी जी को प्राप्त हुआ है । अंबरीष, अजामिल, गज, गणिका, आदि भक्तों के उदाहरण कबीर के लिये प्रमाण हैं , जिन पर भगवान् की कृपा हुई थी। गोस्वामी जी भी इसी परंपरा में बार-बार प्रभु को इन भक्तों का स्मरण कराते और अपने उद्धार की विनय करते हैं ।

उपमान परंपरा - गोस्वामी जी ने सिद्धों-संतों की उपमानों की परंपरा को भी अपनाया है ।

- गुलाम, साहिब, दरबार, गरीब, गरीबनिवाज आदि शब्दों के प्रति गोस्वामी जी की विशेष रुचि रही है और ये शब्द गोस्वामी जी को संतों की पदावली से प्राप्त हुए हैं ।

- गोस्वामी जी का भगवान् के विराट रूप की सांगरूपक में आरती उतारना ॥ विनय प 47 व 48 ॥ शरीर के लिये डोली का सांगरूपक 'रामु कहत चल, रामु कहत चल'... ॥ विनय पद 189 ॥ गोरख [x] तथा कबीर [0] के समान सांगरूपक पदों का परंपरागत अनुकरण है ।

- इस प्रकार गोस्वामी जी ने नाथों संतों से प्राप्त भाषा , शैली, भाव एवं भावना तथा अभिव्यक्ति को परंपरागत रूप में प्राप्त किया और आत्मसात कर ग्रहण किया । अपनी कलात्मक प्रतिभा एवं भावविभोरता में गोस्वामी जी नाथों संतों की उपदेश परक अभिव्यक्ति से कहीं आगे बढ़ गये । परंपरा प्राप्त धरोहर को सजसँवार कर वह रूप दिया जो विनय साहित्य का मानक एवं आदर्श सिद्ध हुआ । कला और भक्ति की सुंदर संहिता के रूप में विनयपत्रिका ने प्रतिष्ठा प्राप्त की है तथा मानस से भी कहीं श्रेष्ठ कृति मानी जाती है ।

- : 0 : -

॥x॥ - गोरख बानी पद- 61, 62

॥0॥ - कबीर ग्रंथावली पद- 403

वंदना

वंदना

तुलसी की वंदना

1- तुलसी की वंदना

1.0 तुलसी की वंदना – परमप्रेमरूपा भक्ति का वंदना प्रमुख साधन ही नहीं है प्रत्युत भक्ति का पर्याय भी है । भक्ति की अभिव्यक्ति वंदना में होती है । वंदना शब्द की अर्थ व्यापकता में ईश्वर प्रणिधान की सभी अपेक्षायें समायोजित हो जाती हैं । गोस्वामी तुलसीदास जी ने वंदना के सभी संभव पक्षों [1.1] को लिया है तथा

1.1- वंदना [वंद् + युच् + टाप्] = अर्चन , पूजन , प्रशंसा

√वंद् = प्रणाम करना, अर्चन करना, पूजन करना , प्रशंसा करना

स्तुति -[√स्तु] प्रशंसा, स्तव, विरुदावली, प्रशंसा करना, स्तुति करना, गीत गाना, स्तवन द्वारा पूजन या सम्मान करना ।

स्त्रोत= [स्तु + ष्ट्रन्] प्रशंसा, स्तुति स्तुत्यात्मक श्लोक [ष्टुञ् + तिन्= = स्तुति = गुण वर्णन] = जो पदार्थ जैसा है वैसा कह देना ।

विनय- [वि + नी + अच्] निदेश, अनुशासन , शिष्टाचार, सुशीलता, सदाचरण , व्यवहार में अधीनता का भाव ।

-[आप्टे संस्कृत शब्दार्थ कोश के अनुसार]

आरती- [सं0आरात्रिक] 1- किसी मूर्ति के ऊपर दीपक घुमाना, नीराजन ।
2- वह पात्र जिसमें रखकर आरती की जाती है ।
3- वह स्त्रोत जो आरती के समय पढ़ा जाता है ।

-[हिन्दी शब्द सागर के अनुसार]

नीराजनम् - [निः शेषेण राजनम् प्रकाशनम्] निःशेष रूप से प्रकाशित करना । अनेक दीप बत्तियाँ जला कर विग्रह के चारों ओर घुमाने से अंग-प्रत्यंग स्पष्ट रूप से उदभासित हो सकें -

मंत्रहीनं क्रियाहीनं यत्कृतं पूजनं हरेः
सर्वं संपूर्णतां मेति कृते नीराजने शिवे ।

पूजन मंत्रहीन व क्रियाहीन होने पर भी नीराजन कर लेने से उसमें सारी पूर्णता आ जाती है ।

2------

समुचित प्रतिपादन किया है । वंदना के दो प्रमुख पक्ष हैं - वंदन एवं विनय । इन दो पक्षों के अन्तर्गत अन्यान्य अंगांगी पक्ष हैं ।

→ 1.1- (Contd) आरती- (आर्तिका का प्राकृत रूप) अरिष्ट = अनिष्ट से अपने प्रियतम प्रभु को बचाना (माधुर्य उपासना) आर्ति लेना = उनके कष्टों को अपने ऊपर लेना ।

(आरती संग्रह : चतुर्थ संस्करण गीताप्रेस गोरखपुर (के प्राक्कथन के आधार पर)

आरती- (आङ् = आसमान्तात + रतिः = रमणम्) सब ओर से परमात्मा में रमण् करना , उसके गुण, कर्म, स्वभाव में रमण करना)

(आर्य समाज के विद्वान के अनुसार)

अर्घ - संज्ञा पु० (सं०) 1- पूजनीय 2- षोडशोपचार में से एक । जल, दूध, कुशाग्र, दही, सरसों, तंदुल, और जौ को मिला कर देवता को अर्पण करना । 2- अर्घ देने का पदार्थ । 3- जलदान , आदर के लिये सामने जल गिराना 4- हाथ धोने के लिये जल देना ।

अर्घ्य- वि. (सं.) 1- पूजनीय 2- बहुमूल्य 3- पूजा में देने योग्य (जल, फूल, मूल आदि)

मधुपर्क- संज्ञा पु. (सं.)- दही, घी, जल, शहद और चीनी का समूह जो देवताओं को चढ़ाया जाता है ।

नैवेद्य- संज्ञा पु. (सं.)वह भोजन सामग्री जो देवता को चढ़ाई जाय । देव-बली , भोग ।

भजन - संज्ञा पु. (सं.)1- बार-बार किसी पूज्य या देवता आदि का नाम लेना । स्मरण , जप । 2- वह गीत जिसमें देवता आदि के गुणों का कीर्तन हो ।

(हिन्दी शब्द सागर के अनुसार)

ध्यान- हृदयस्थस्य योगेन देवदेवस्य दर्शनम्

ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्षामि सर्वस्माद्योगतः शुभम् - 15

योग की विधि से सबलता प्राप्त कर हृदय में स्थित अन्तर्यामी प्रभु का दर्शन कर लेने को ही ध्यान कहते हैं । इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृत्ति को

3------

वंदना - विवरणिका का रेखाकंन कुछ इस प्रकार कर सकते हैं -
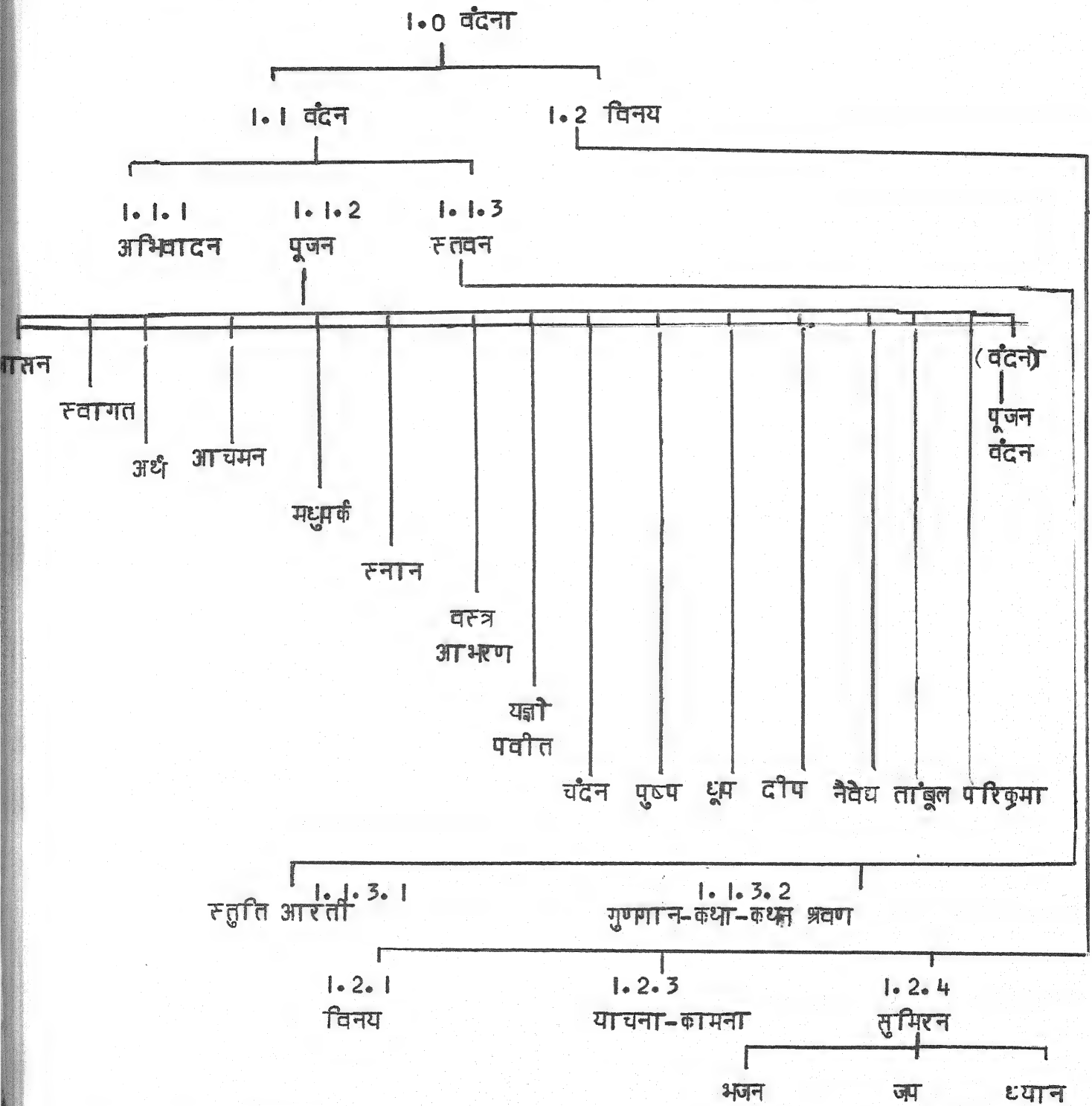
→ 1.1- अन्तर्मुखी करने पर ही ध्यान होता है ।
(contd)

॥ शङ्ख स्मृति के अनुसार ॥

॥ 4-----

1.0.1- वंदन और विनय में सावयवी संबंध है । यों विवेचन की दृष्टि से वंदन तथा वंदन के अन्यान्य अंगों अभिवादन, पूजन, स्तवन तथा विनय एवं विनय के अंगों याचना-कामना स्मरण (सुमिरन) का पृथक्-पृथक विचार करेंगे किन्तु यह स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि एकाकी वंदना या एकाकी विनय की कोई स्थिति नहीं होती । यथास्थान ऐसा लगे भी कि केवल वंदन या केवल विनय का प्रकरण है वहाँ भी प्रच्छन्न रूप में दूसरे अंग का सभाव रहेगा ही तथा विनय वंदन या वंदन विनय का युग्म ही प्रतिष्ठित होगा ।

1.0.2- वंदना अध्यात्म साधना का प्रमुख साधन है । पातञ्जलि योग में ब्रह्म साक्षात्कार के लिये ईश्वर प्रणिधान [1.2], को एक विकल्प मान कर ईश्वर प्रणिधान की अपेक्षा की गई है । ईश्वर प्रणिधान के अंतर्गत भक्ति के सब अंग आ जाते हैं तथा भक्ति का साधन वंदना है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने

→1.1- (Contd) अथर्व वेद में वन्दना संबंधी निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग हुआ है :-

नमः - तस्मैज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।। 10.8.1

स्तुति- स्तुहि देवं सवितारम् ।। 6.1.1

गान- इन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।। 20.44.1

अर्चना- अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।। 20.92.5

(अर्चना करो, अर्चना करो , हे बुद्धिमानो ! प्रभु की अर्चना करो)

उपासना- विभूः प्रभुरिति त्वोपास्महे वयम् ।। 13.4.47

पुकारना- (जप) - शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रम् ।। 20.11.11

पाहि- विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि ।। 2.16.5

(हे विश्वम्भर ! अपनी विश्वभरण शक्ति से मेरी रक्षा करो)

1.2- पातंजलि योग - समाधिपाद : 23 'ईश्वर प्रणिधान द्वा'

हरि भक्ति को सब साधन का फल माना है तथा हरि भक्ति को ही जीवन का परम लक्ष्य एवं अभीष्ट स्वीकार किया है [1.3] वंदना से मन निर्मल होता है तथा निर्मल मन में ही भगवत्साक्षात्कार संभव होता है ।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।।- 1.4

इस निर्मल मन की प्राप्ति वंदना से संभव होती है । इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है ।

ताके जुगपद कमल मनावउँ ।
जासु कृपा निरमल मति पावउँ ।। - 1.5

इसी संदर्भ में वंदना और उससे प्राप्य हरि भक्ति आध्यात्म क्षेत्र की अन्यतम गति समझी जाती है जिसकी कामना जन-जन करता है -

माँगत तुलसीदास कर जोरें ।
बसहिं रामसिय मानस मोरें ।। - 1.6
नाथ भगति अति सुखदायनी ।
देहु कृपा करि अनपायनी ।।- 1.7

1.0.3- गोस्वामी तुलसीदासजी की वंदना इस प्रकार भक्ति का पर्याय है । इससे योग की साधना प्रक्रिया से कोई संबंध नहीं है । कतिपय शब्द विशेष जो यहाँ वंदना के रेखांकन में प्रस्तुत हुए हैं, योग साधना में भी प्रयुक्त होते हैं, उससे किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं होनी चाहिये । यह शब्द हैं -

---

1.3- जहँ लगि साधन बेद बखानी । सब कर फल हरि भगति भवानी ।।-7.125.7
तब पद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुंदर ।।- 7.48.4

1.4- मानस- 5.43.5 , 1.5- मानस-1.17.8 , 1.6- विनयपत्रिका-पद-।

1.7- मानस - 5.33.।

भजन , जप , ध्यान , (तप)

गोस्वामी जी की विनय भक्ति में " भजन, जप, ध्यान " स्मरण के अंग हैं । स्मरण विनय का अंग है ।

विनय मौखिक और प्रत्यक्ष ही नहीं, मानसिक और अप्रत्यक्ष भी होती है । गोस्वामी तुलसीदास जी के सूक्ष्म अध्ययन - अनुशीलन के अन्तर्गत विनय के इस रूप की अवधारणा संभव हुई है । एक-दो उदाहरण अवलोकनीय हैं :-

मन महुँ चरन बंदि सुख माना । - 1.8

सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दये ।- 1.9

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा ।- 1.10

मन महुँ रामहि सुमिर सयानी ।- 1.11

बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ।- 1.12

मनहीं मन मनाव अकुलानी ।- 1.13

मगन ध्यानरस दंडजुग पुनि मन बाहेर कीन्ह ।- 1.14

भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु को दंड ।- 1.15

जगु जप राम रामु जप जेही । - 1.16

गोस्वामी जी की विनय-भक्ति का मूल उत्स अनन्य प्रेम एवं अनुराग है । प्रेम एवं अनुराग में अपने आराध्य का सतत ध्यान बना रहता है, उसके साथ हुये संपर्क का स्मरण होता रहता है , उसके प्रिय वचनों की बार-बार आवृत्ति होती है कि कैसी सुंदर बात कही थी , जो जप बन जाती है, तथा संपूर्ण प्रक्रिया भजन बन जाती है ।

1.8- मानस-3.27.16 , 1.9- मानस-1.320 छं0, 1.10- मानस-1.260.5
1.11- मानस-1.58.4 1.12- मानस-1.248.2 1.13- मानस-1.256.5
1.14- मानस-1.111 1.15- मानस- 6.01 1.16- मानस- 2.217.7

इस प्रक्रिया के संदर्भ में विनय चलती रहती है जो कामना या लालसा के रूप में होती है। वह हो सकती है - हमें दर्शन दीजिये, हमारे ऊपर कृपा कीजिये, हमको अपना लीजिये आदि-आदि । यह सब प्रेम-अनुराग में सहज एवं स्वाभाविक होता है । कहना यह चाहिये कि प्रेम और अनुराग के यह अनुभाव हैं । जब प्रेम अनुराग होगा तो यह स्वत: होगें ही । इन्हें दिवा स्वप्न कहें, प्रेम की मस्ती या पागलपन कहें, ये होते हैं और इन्हीं में विनय भक्ति का आनन्द है । प्रेमी को इन्हीं आवेशित एवं अभिभूत मन: स्थितियों में सर्वत्र अपने आराध्य के दर्शन होते हैं, 'सियाराम मय जगत्' दिखलाई देने लगता है । योग की प्रक्रिया में इसके विपरीत सब कुछ सप्रयास ही नहीं प्रत्युत कठिन साधना से होता है तथा तब कहीं वर्षों की साधना के पश्चात् ब्रह्मरूपता की क्षणिक झलक मिल पाती है ।

भरत के विनय प्रेम प्रसंग में गोस्वामी जी तप शब्द का भी प्रयोग करते हैं। यह तप भी सहज एवं स्वत: स्फूर्त है । इसके लिये प्रयास या कोई कठिन हठसाधना नहीं करनी होती है । अपने आराध्य को कष्ट में देख कर अपनी भूखप्यास स्वत: ही समाप्त हो जाती है । इस स्थिति को यह नहीं कह सकते कि आराध्य के लिये भूखे-प्यासे रह रहे हैं । योग में यह भूख प्यास व्रत के अन्तर्गत सप्रयास अपेक्षित होती है और कष्टकर होती है , सहज एवं स्वाभाविक नहीं होती । भरत के तप का पूरा स्वरूप प्रेमाधूत, प्रेमपोषित तथा प्रेमरूप है । उसमें कहीं लेशमात्र किसी हठ या आग्रह का अंश नहीं है । यही गोस्वामी जी के तप तथा योग के तप का अन्तर है ।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू । जीह नामु जप लोचन नीरू ।।
लखन राम सिय कानन बसहीं । भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं।।-1.17

1.17- मानस-2.325.1,2

इस भरत प्रसंग की संदर्भगत शब्दावली भजन, जप, ध्यान, (तप) के प्रति प्रेम एवं अनुराग परक रूप की स्पष्ट चाक्षुष प्रस्तुति संभव हुई है और इसकी योग एवं योग शब्दावली के रूप से स्पष्ट भिन्नता प्रतिलक्षित होती है।

यों गोस्वामी जी ने यथास्थान विशेष प्रसंग के लिये योग की शब्दावली का योग के अर्थ में में भी प्रयोग किया है। वहाँ प्रेम-अनुराग की तुलना में योग साधना को द्वितीय श्रेणी में रखा है।

See page 23 क्या आवृत्ति हुई है ? क्यों है ?

- अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं ।।- 1.18

- जप तप कछु न होहि तेहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला ।। 1.19

(प्रेम के पाले पड़ने पर जप तप सब कुछ छूट जाता है)

- जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी ।।- 1.20

- आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू ।।-
सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू ।।-1.21(क)

- रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग ।।- 1.21(ख)

- जाग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा ।।- 1.22

- योग तथा प्रेमानुराग दोनों प्रकार के साधनों का फल अन्ततः हरि भक्ति है जो जीव मात्र का परम अभीष्ट है।

1.18- मानस- 2.131.7, 1.19- मानस-1.130.8,
1.20- मानस-1.225.4, 1.21-(क)- मानस-2.106, 5,6
1.21(ख)- मानस- 3.46 1.22- मानस- 3.7.7

- तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिराग ग्यान निपुनाई ।।
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना । संजम दम जप तप मख नाना ।।
- भूत दया द्विज गुर सेवकाई । विद्या विनय बिवेक बड़ाई ।। - 1.23
- जहँ लगि साधन बेद बखानी । सब कर फल हरि भगति भवानी ।।

मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास ।
जो यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास ।।-1.24

1.0.4- वंदन के दो पक्ष हैं - नमन एवं स्तवन

नमन - नमन के अन्तर्गत अभिवंदन, नमन, प्रनमन के भाव निम्नलिखित शब्दों द्वारा प्रस्तुत हुये हैं -

वंदन- वन्दे , वन्दितौ , वंदितं , वंद्यते
बदउँ , बंदि, बंदिअ
बंदत, बंदित, बंदिता,
बंदन, बंदनु, बंदनीय

नमन- नमामि, नमामीं, नमामहे, नमि
नमत
नाइ, नायउ , नायउँ नायो

प्रनमन- प्रनमामि,
प्रनाम, प्रनामा, प्रनामु, प्रनामू,
प्रनवउँ

1.23- मानस- 7.125.4-7

1.24- मानस- 7.126

- धरि ॥ चरन - माथा ॥

परी/ परेउ ॥ चरन

परसत ॥ पद, चरन ॥

लागि ॥ चरन ॥

लागहु ॥ पद ॥

पलोटत , पखारत, धोए , चापत ॥चरन ॥

दण्डवत् , दण्ड प्रनाम,

जय, जयजय, जयजयजय

इन शब्दों की आवृत्ति 1.25 ॥ ॥ इस प्रकार है -

1.25 ॥ ॥ - आवृत्ति आकलन में वंदना के संदर्भगत प्रयोगों को ही लिया गया है । जैसे जय, वंदना से इतर विजय के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है , इसलिए ऐसे प्रयोग छोड़ दिये गये हैं ।

- जो प्रयोग स्तुति के अन्तर्गत आये हैं , उन्हें स्तुति के शीर्ष में विवेचन हेतु छोड़ दिया गया है ।

- आवृत्ति आकलन पर्याप्त सावधानी से किया गया है, फिर भी एकाधिक भूलों के रहने की सम्भावना हो सकती है किन्तु यह भूलें दशमलव बिन्दु से 3 % की संख्या से अधिक नहीं होंगीं , ऐसा विश्वास है । अतएव निष्कर्ष प्रभावित नहीं हुए हैं ।

- आवृत्ति आकलन का आधार बद्रीदास अग्रवाल ॥ कलकत्ता ॥ द्वारा संकिलित "मानस शब्द सागर प्रथम संस्करण रहा है । विनयपत्रिका का आवृत्तिगत शब्द संकलन स्वयं प्रस्तुत किया गया है ।

मानस के काण्ड

शब्द	1	2	3	4	5	6	7	योग	
वंदित्	–	–	1	–	–	–	–	1	
वन्द	5	–	1	–	1	1	–	8	
वन्धते	1	–	–	–	–	–	–	1	
वन्दितौ	–	–	–	–	–	–	–	1	
बंउउँ	24	–	–	–	–	–	1	25	(विनयपत्रिका 1-पद 64 में)
बंदत	2	–	–	1	–	–	–	3	
बंदन	–	1	–	–	–	1	–	2	
बंदनु	1	–	–	–	–	–	–	1	
बंदनीय	1	–	–	–	–	–	–	1	
बंदि	15	18	2	1	2	7	1	46	
बंदिअ	1	–	–	–	–	–	–	1	
बंदित	1	–	–	–	–	1	1	3	
बंदिता	–	–	–	–	–	–	2	2	
नमत	2	–	–	–	–	1	3	6	
नमामि	–	1	2	–	1	8	7	19	
नमामी	2	–	–	–	–	–	* 1	3	(* तरहि न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी ।) (7.123.7)
नमामहे	–	–	–	–	–	–	3	3	
नाइ	17	14	3	5	7	7	9	62	
नाएसि	–	–	–	1	–	–	–	1	
नायउ	1	5	1	–	–	2	3	12	
नायउँ	–	–	–	–	–	–	1	1	

शब्द								योग
नायो	-	-	-	-	-	6	-	6
नावहिं	1	-	-	-	-	-	-	1
प्रनमामि	-	-	-	-	-	-	1	1
प्रनाम	6	10	-	-	3	4	1	24
प्रनामा	7	8	-	-	2	1	1	19
प्रनामु	1	4	-	-	-	-	-	5
प्रनामू	1	4	-	-	-	-	-	5
प्रनवउँ	9	-	-	-	-	-	-	9
दण्डवत्	-	2	2	-	-	-	-	4
दण्ड प्रनाम	1	-	-	-	-	-	-	1
परसत ॥ चरण ॥	-	1	-	-	-	-	-	1
धरि ॥चरन-माथ ॥	1	-	-	-	-	-	-	1
परेउ ॥चरन॥	1	-	-	1	1	1	2	6
परी॥चरन॥	1	-	1	+	-	!	+	3
लागहु ॥पद॥	-	-	-	-	-	-	1	1
लागि ।लागी ॥पद॥	1	-	-	1	-	-	-	2
पलोटत	1	2	-	-	-	-	-	3
चापत	1	-	-	-	-	1	-	2
पखारि/ पखारे	2	-	-	-	-	-	-	2
धाए	2	-	-	-	-	-	-	2

12---

शब्द	1	2	3	4	5	6	7	योग
जय	7	4	-	-	2	9	1	23
जय जय	6	-	-	-	-	-	-	6
जय जय जय	3	-	-	-	1	1	-	5
जयति	2	-	-	-	-	3	1	6
जयति जयति	-	-	-	-	-	2	-	2

उपर्युक्त आवृत्ति परक रेखांकन निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है-

5 या 5 से अधिक प्रयोगों

के आधार पर

नाइ	62
बंदि	46
बंदउ	25
प्रनाम	24
जय	23
प्रनामा	19
नमामि	19
नायउ	12
प्रनवउँ	9
वन्दे	8
जय जय	6
जयति जयति	6
परेउ	6
नमत	6
नायो	6
प्रनामु	5
प्रनामू	05
जय जय जय	5

1.0.5

वंदन पदों के अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :-

(अ) - नाइ , बंदि और बंदउँ के संबंध में -

1. नाइ और बंदि की सबसे अधिक आवृत्ति है ।
2. नाइ और बंदि का प्रयोग प्रत्येक काण्ड में हुआ है ।
3. प्रथम काण्ड में बंदउँ की आवृत्ति सबसे अधिक है ।] 1.25 (a)

4- बंदउँ तथा नाइ एवं बंदि की व्याकरणिक स्थिति भिन्न है । यद्यपि दोनों शब्द क्रिया पद हैं -

बंदउँ - वर्तमान कालिक सकर्मक- उत्तम पुरुष , एक वचन, पुल्लिंग,सामान्य वर्तमान

नाइ एवं बंदि - पूर्वकालिक क्रिया रूप है ।

5- बंदउँ शब्द प्रयोग पूर्ण कार्य बोधक है तथा कार्य का प्रारंभ एवं अन्त , दोनों को अवधारित करता है ।

- बंदउँ से कर्म की ओर संकेत होता है । इसके अतिरिक्त प्रकार , प्रभाव,आदि प्रकरण अछूते रहते हैं फिर भी बंदउँ की सकारणता स्पष्ट की गई है ।

- बंदउँ के कर्म की विवरणिका इस प्रकार है -

1.25 (a)

	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	
बंदउँ	24	-	-	-	-	-	1	25
नाइ	17	14	3	5	7	7	9	62
बंदि	15	18	2	1	2	7	1	46

14----

पद वंदना- 15

व्यक्ति - मनुजन- अवधभुआल, खल

देवजन- शारदा , किन्नर , रजनिचर

वस्तु- चित, वेद

- अवधपुरी

- सुरसरिता

- प्राची दिशा

- नाम

- बालरूप

- पद वंदना में, पद ‡3‡ पदपंकज ‡1‡ पदकंजु ‡1‡ पदपदुम ‡1‡ पदकमल ‡1‡
पदसरोज ‡1‡ पदरेनु ‡1‡ पद जल जाता ‡1‡
चरण ‡3‡ चरणकमल ‡2‡ शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

- बंदउँ साधारणतया दो भागों के लिये प्रयुक्त हुआ है -

1- वंदना हेतु प्रथम काण्ड के 24 प्रयोग

2- कृतज्ञता ज्ञापन हेतु -(सप्तम काण्ड का) प्रयोग जिसमें गरुड़ काकभुशुंडि से अनुगृहीत होकर तथा प्रत्युपकार का अन्य कोई विकल्प न देख कर वंदना के द्वारा ही अनुगृहीत होता है ।

मो पहिं होइ न प्रति उपकारा ।
बंदउँ तव पद बारहिं बारा ।। -1.25 ‡ ५ ‡

- प्रथम काण्ड के 24 प्रयोगों के अन्तर्गत वंदना के साथ वंदना की समीचीनता एवं अपेक्षा की ओर गोस्वामी जी की दृष्टि गई है जिसके संदर्भ में " बंदउँ " की सार्थकता प्रतिपादित हुई है ।

1.25 ‡ ५ ‡ - मानस-7. 124. 4

मुख्य अभीष्ट काव्य रचना की सफलता है ।

सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ ।

तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ ।।- 1.26

इस मंजु मनोरथ 1.27 के पूर्ण होने के लिए प्रभुचरण रति , गुरुजनों के आशीर्वाद, समाज का सद्भाव , पूर्व, वर्तमान एवं भविष्यकाल के कवियों के वरद हस्त, कथा के पात्रों की अनुकूलता अपेक्षित है तथा इन्हीं संदर्भों में वंदना की गई है ।

6- " बंदउँ " शब्द का प्रयोग काव्य रचना की मांगलिकता एवं सफलता के संदर्भ में अधिक किया गया है । बंदि तथा नाइ पदों से काव्य रचना का प्रसंग प्रासंगिक रूप में गिने चुने 1.28 ﴾०﴿ प्रयोगों में ही हुआ है ।

7- बंदि और नाइ पद पूर्वकालिक होकर आगे कथन एवं निवेदन की अपेक्षा करते हैं तथा इसी अभीष्ट हेतु इनका प्रयोग विशेष रूप से हुआ है जिससे यथापेक्षा कथा प्रसंग प्रस्तुत होते जायँ । इस प्रकार बंदि और नाइ पद आचारिक अपेक्षा के पूरक हैं तथा शील सौजन्य की स्थापना की कवि कामना को सफल करते हैं । इन पदों की यह प्रमुख भूमिका है तथा कवि की शक्ति, सौन्दर्य, शील की प्रतिष्ठा को एक महत्वपूर्ण अङ्ग. शील का समुचित प्रतिपादन करते हैं ।

- वंदना का व्यावाहारिक सुफल शील में अवधारित होना चाहिये । इसलिये शील की प्रतिष्ठा वंदना का ही अवान्तर प्रतिपादन है ।

8- नायउ एवं नायउँ तथा नायो पदों का प्रयोग बंदउँ की भाँति आचार एवं शील प्रसंगों में हुआ है ।

1.26- मानस- 1.15

1.27- मानस- होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि - 1.14

1.28 ﴾०﴿- बंदि- 2 प्रयोग 1.3.1. , 1.14

नाइ - 4 प्रयोग -1.12.9,. 1.27.2, 1.29.ग ; 1.33.3

- बंदउँ के समकक्ष नायउँ पद की प्रयोग विस्तृति 5 काण्डों में है ।

9- वंदे, वंधते, वंदितं, वंदितौ पद संस्कृत श्लोकों में प्रयुक्त हुए हैं । इसलिये आगे इन पदों का विवेचन नहीं किया गया है । इसी प्रकार नमामि , पद के कतिपय प्रयोग हैं ।-[1.15]

(आ)- प्रनमन के संबंध में -

1- प्रनमन के प्रयोग अधिक नहीं हैं किन्तु इन भावों की अभिव्यक्ति हेतु अपेक्षा-तया अधिक पदों का प्रयोग हुआ है । [1.28 (६)]

प्रनमन पद -	23	(2 तत्सम पद + 21 तद्भव पद)
नमन पद -	11	(3 तत्सम पद + 8 तद्भव पद)
वंदन पद -	13	(4 तत्सम पद + 9 तद्भव पद)

2- प्रनमन वर्ग के अंतर्गत प्रनाम , जय , प्रनामा , प्रनवउँ पदों की आवृत्तियाँ अधिक हैं ।[1.28 (c)]

3- चरण स्पर्श के भाव को अपेक्षातया अधिक पद प्रयोगों द्वारा प्रस्तुत किया गया है । दास्यभाव की भक्ति की यह सुखद कामना, कल्पना एवं अनुभूति होती है कि चरणों में लोट जायँ , चरण पखारें , चरण पलोटें । इस भाव की इन विविध प्रयोगों के द्वारा समुचित प्रस्तुति संभव हुई है ।

4- प्रनमन के शेष अन्य पद प्रमुख रूप से आचार, अभिवादन, अभिनन्दन, के आदर्शों को प्रस्तुत करने हेतु प्रयुक्त हुए हैं । गोस्वामी जी के पात्र भेंट एवं मिलन के अवसरों पर अभिवादन का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं तथा अभिवादन के पश्चात् ही अभीष्ट निवेदन करते हैं ।

5- प्रनमन पद क्रिया एवं संज्ञा दोनों प्रकार के हैं । किन्तु संज्ञा पदों को √कृ धातु के रूपों का कर्म बना कर क्रिया पद बंध की स्थिति में प्रस्तुत किया गया है ।

6- प्रनमन पदों की कर्म विवरणिका इस प्रकार है -

व्यक्ति वंदना- देवर्षि , सप्तर्षि, देव, मुनि, विप्र, पितृ ,अतिथि,
देववत व्यक्ति एवं सज्जन व खलजन ,

वस्तु वंदना- नगर ‡पुरी ‡, सरिता , तीर्थ , मुनिआश्रम , देवमंदिर,
देवमूर्ति , चरणपादुका ,

1.1 वंदन - वंदना के रेखाकंन में दिये गये विवरण के साथ यह स्पष्ट कर चुके हैं कि वंदन और विनय तथा इनके अन्यान्य उपांग वंदना के ही विस्तार हैं तथा विवेचन की सुविधा की दृष्टि से ही पृथक्- पृथक् ले रहे हैं । वंदन और विनय का संबंध कर्म और वचन जैसा संबंध है । स्तवन भी वंदन की वाणी है किन्तु वह वाणी आराध्य के गुण वर्णन तक सीमित है । विनय की वाणी आराधक या भक्त की अपनी वाणी होती है । इस प्रकार वंदन और विनय मिल कर वंदना के पूर्ण आचार को प्रस्तुत करते हैं। वंदन के अंतर्गत विवेचनीय है- अभिवादन , पूजन एवं स्तवन ।

1.1.1-अभिवादन

वंदन की एक आचारिक शिष्टता है जो भेंट और विदा के अवसरों पर दो व्यक्तियों के मध्य अपेक्षित होती है । अभिवादन के अंतर्गत साधारणतया एक औपचारिकता का निर्वाह होता है किन्तु गोस्वामी जी ने अभिवादन के अंतर्गत भी निष्ठा सत्यता तथा अभिवादन की सद्कामना एवं भावना की अपेक्षा की है ।

अभिवादन की स्थिति - दो व्यक्तियों के मिलन अथवा विदा के अवसरों पर प्रस्तुत होती है । ये दो व्यक्ति भिन्न-भिन्न स्तर के हो सकते हैं ।

अ- उच्च स्तरीय- ‡1‡ सम्मान समादरगत दूरी- जैसे गुरु शिष्य ,स्वामीसेवक ,भगवान्-भक्त , पति पत्नी, अग्रज-अनुज ।

‡2‡ सम्मान-समादरगत निकटता-

जैसे- भगवान् एवं ऋषिमुनि
‡ भगवान् एवं प्रिय भक्त

आ- सम स्तरीय

जैसे- मित्र

- अन्य एक ही स्तर के व्यक्ति

इ- विषम स्तरीय

जैसे-

- शत्रु
- विपक्ष से संबंधित व्यक्ति

उ- राज्य स्तरीय-

जैसे-

राजा, राजदूत एवं अन्य अधिकारी

(अ)- उच्च स्तरीय-

(1) वंदनीय तथा वंदनाकर्ता स्तर के व्यक्तियों के व्यवहार की निम्नलिखित स्थितियाँ उल्लेखनीय हैं -

वंदनीय तथा वंदनाकर्ता :सम्मान समादारगत पर्याप्त दूरी के प्रकरणों में भेंट तथा विदा के अवसरों पर वंदना कर्ता ही अभिवादन सूचक शब्दों का प्रयोग करता है। वंदनीय व्यक्ति की ओर से साधारणतया प्रकट कोई अभिवादन - उत्तर नहीं दिया जाता है। अनुभावों के द्वारा ही यह संकेतित होता है किन्तु गोस्वामीजीने इन संकेतों का प्राय: उल्लेख नहीं किया है। अनुभावों की सूक्ष्मता की दृष्टि से पाठक के अनुमान के लिये ही छोड़ दिया गया है। ये सूक्ष्म अनुभाव हो सकते हैं - नेत्रों में सन्तोष, हर्ष, प्रसन्नता, मन से आशीष आदि।

अभिवादन के स्थान पर अधुना प्रणाम शब्द प्रयुक्त होता है। प्रणाम के साथ नमस्ते शब्द का प्रयोग आर्यसमाज के प्रभाव के कारण प्रारंभ हुआ तथा राम राम या जै राम जी की शब्द गोस्वामी जी के मानस के कारण प्रचलित हुये हैं। यों गोस्वामी जी ने स्वयं मानस में अभिवादन के रूप में कहीं 'राम राम'या 'जय राम'का प्रयोग नहीं किया है। उन्होने प्रणाम शब्द का प्रयोग किया है तथा अभिवादन के स्थान पर भी प्रणाम शब्द को ही स्वीकार किया है। मानस में केवल एक स्थान पर अभिनंदन शब्द का अवश्य प्रयोग किया है जिसका आशय बधाई (greeting) रहा है -

याज्ञवल्क्य तथा भरद्वाज भेंट

- याज्ञवल्क्य मुनि से भरद्वाज भेंट करते हैं तथा रामकथा कहने के लिये अभिवादन एवं आग्रह करते हैं -

जागबलिक मुनि परम बिबेकी । भरद्वाज राखे पद टेकी ।।
सादर चरन सरोज पखारे । अति पुनीत आसन बैठारे ।।-
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी । बोले अति पुनीत मृदुबानी ।।-1.29

इस अभिवादन एवं सम्मान के प्रति याज्ञवल्क्य जी मन ही मन संतुष्ट होते हैं व प्रसन्न होते हैं किन्तु प्रकट कुछ नहीं कहते । अपना संशय निवारण जैसा हेतु प्रस्तुत कर रामकथा सुनने की भरद्वाज मुनि की चतुराई को देखकर याज्ञवल्क्य मुनि केवल मुसकराते हैं । इस मुस्कान की पृष्ठभूमि में ही उपर्युक्त अभिवादन के प्रति मनोगत संतोष एवं प्रमोद के भाव भी प्रकट हुए हैं -

जागबलिक बोले मुसुकाई । तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई ।।- 1.30

- नारद के शैलराज के यहाँ आगमन प्रकरण में भी नारद कोई उत्तर नहीं देते हैं । शैलराज का अभिवादन मौन स्वीकार करते हैं -

नारद समाचार सब पाए । कौतुक हीं गिरि गेह सिधाए ।
सैलराज बड़ आदर कीन्हा । पद पखारि बर आसनु दीन्हा ।।
नारि सहित मुनि पद सिरु नावा । चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा।।
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना । सुता बोलि मेली मुनि चरना ।।-1.31

1.29- मानस- 1.44.4-6 ,
1.30- मानस- 1.46.2
1.31- मानस- 1.65.5-8

20------

सम्मान समादरगत दूरी का अन्य प्रकरण :- राम तथा हनुमान् भेंट -

- हनुमान् भगवान् राम के समक्ष विप्ररूप धारण कर प्रस्तुत होते हैं । मस्तक नवा कर अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत करते हैं । इसके उत्तर में भगवान् राम केवल जिज्ञासा समाधान करते हैं । अभिवादन के प्रकट उत्तर की अभिव्यक्ति नहीं होती ।

- बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ ।
  माथ नाइ पूछत अस भयऊ ।।- 1.32

- प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना ।
  सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ।।- 1.33

सम्मान समादर दूरीगत प्रकरण में वंदनीय गुरुजन की प्रसन्नता आदि के प्रत्युत्तरीय उल्लेख का प्रकरण - विश्वामित्र की दशरथ से भेंट -

विश्वामित्र जी महाराज दशरथ के यहाँ राम लक्ष्मण को यज्ञादि की रक्षा के लिये माँगने जाते हैं । महाराज दशरथ सम्मान समादर तथा अभिवादन करते हैं । मुनि अभिवादन के उत्तर में हृदय में हर्ष अनुभव करते हैं -

करि दंडवत मुनिहि सनमानी । निज आसन बैठारेन्हि आनी ।।
चरन पखारि कीन्हि अति पूजा । मो सम आजु धन्य नहिं दूजा ।।
बिबिध भाँति भोजन करवावा । मुनिबर हृदयँ हरष अति पावा ।।-1.34

अन्य प्रसंग में विश्वामित्र जी महाराज जनक को अभिवादन के उत्तर में आशीर्वाद भी देते हैं -

जनक जी मुनि चरणों में मस्तक रखते हैं तथा मुनि आशीर्वाद देते हैं -

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा । दीन्हि असीस मुदित मुनि नाथा ।।
कुसल प्रस्न कहि बारहिंबारा । विश्वामित्र नृपहि बैठारा ।।- 1.35

1.32- मानस- 4.0.6 , 1.33- मानस- 4.1.5

1.34- मानस-1.206.2,3,4 , 1.35- मानस- 1.214.1 व 3

सम्मान समादर दूरीगत प्रकरण में अन्यत्र वंदनीय गुरुजन की ओर से दोनों प्रकार का व्यवहार हुआ है - ‖1‖ अभिवादन का कोई उत्तर नहीं

‖2‖ अभिवादन के उत्तर में आशीर्वाद देना

धनुष भंग अवसर पर जब परशुराम जी आते हैं तो उपस्थित सभी राजा तथा महाराज जनक अभिवादन करते हैं किन्तु परशुराम जी उसका कोई उत्तर नहीं देते किन्तु सीता तथा राम लक्ष्मण के द्वारा अभिवादन करने पर आशीर्वाद देते हैं -

देखत भृगुपति बेषु कराला । उठे सकल भय बिकल भुआला ।।

पितु समेत कहि कहि निज नामा । लगे करन सब दंड प्रनामा ।।

जनक बहोरि आइ सिरु नावा । सीय बोलाइ प्रनामु करावा ।।

बिस्वामित्रु मिले पुनि आई । पद सरोज मेले दोउ भाई ।।

राम लखनु दसरथ के ढोटा । दीन्हि असीस देखि भल जोटा ।।- 1.36

<u>सम्मान - समादरगत निकटता प्रकरण -</u>

- भगवान् राम तथा नारद भेंट के प्रकरण में भगवान् राम नारद के अभिवादन का ससम्मान व्यवहार में उत्तर देते हैं -

करत दंडवत लिए उठाई । राखे बहुत बार उरलाई ।।

स्वागत पूँछि निकट बैठारे । लछिमन सादर चरन पखारे ।।- 1.37

- भगवान् राम के समक्ष जब हनुमान अपने रूप में प्रकट प्रस्तुत होते हैं तथा भक्त की निकटता प्राप्त करते हैं तो भगवान् राम हनुमान के अभिवादन का प्रकट भावपूर्ण उत्तर देते हैं -

---

1.36- मानस- 1.268.1,2,4,5,6,7

1.37- मानस- 3.40.10,11

अस कहि परेउ चरन अकुलाई । निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ।

तब रघुपति उठाइ उर लावा । निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ।।

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना । तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ।।

समदरसी मोहि कह सब कोऊ । सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ ।।- 1.38

समस्तरीय -

- महाराज दशरथ बरात लेकर आये हैं । इस रूप में वह विशेष सम्मान-समादर के अधिकारी हैं तथा उनसे ऋषिमुनि समस्तरीय व्यवहार कर रहे हैं । मुनि विश्वामित्र जी से भेंट करने पर मुनि महाराज दशरथ को मित्रवत लेते हैं -

मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा । बार बार पद रज धरि सीसा ।।

कौसिक राउ लिए उर लाई । कहि असीस पूछी कुसलाई ।। - 1.39

- पतिपत्नी एक-दूसरे के प्रति समस्तरीय सम्मान-समादर के अधिकारी होते हैं । शिव तथा सती का व्यवहार इसी प्रकार का है -

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा । बाम भाग आसनु हर दीन्हा ।।-1.40

- अतिथि को सम्मान्य मित्र के समान सम्मान - समादर प्रदान किया जाता है । नारद भगवान् के निवास पर पहुँचते हैं तो अतिथि के रूप में विशेष सम्मान- समादर किया जाता है ।

छीर सिंधु गवने मुनि नाथा । जहँ बस श्री निवास श्रुतिमाथा ।।

हरषि मिले उठि रमा निकेता । बैठे आसन रिषिहि समेता ।।- 1.41

- भरत निषादराज के साथ भगवान् राम का कृपापत्र जानकर सुहृद के समकक्ष समस्तरीय व्यवहार करते हैं । हाथ में हाथ डाल कर चलते हैं -

---

1.38-मानस- 4.2.5-8

1.39- मानस-1.307.1,2

1.40- मानस-1.106.3

1.41- मानस-1.127.4,5

23----

चले सखा कर सों कर जोरें । सिथिल सरीरु सनेह न थोरें ।।- 1.42

विषमस्तरीय -

विरोधी या शत्रु पक्ष के व्यक्तियों से भेंट के प्रसंगों में दो स्थितियाँ आती हैं -

1- शरणागति की स्थिति

2- विरोध की स्थिति

शरणागति की स्थिति में शत्रुपक्ष के व्यक्ति को पूर्ण सम्मान समादर देना तथा उसकी सुरक्षा के लिये उसे आश्वस्त करना सांस्कृतिक अपेक्षा रही है । विभीषण भगवान् राम की शरण में आता है । उसका अभिवादन इसी रूप में किया जाता है -

विभीषण का अभिवादन एवं शरणागति-

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भवभीर ।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर ।।-

भगवान् राम का शरण में लेना -

अस कहि करत दंडवत देखा । तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा ।।
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा ।।
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी । बोले बचन भगत भयहारी ।।-1.43

विरोध की स्थिति -

अ - विरोध की स्थिति में अभिवादन न करना अथवा उसका उत्तर न देना, उपेक्षा करना अपमानित करना आदि भाव प्रकट होते हैं । विरोधगत घृणा के भाव सांस्कृतिक अपेक्षाओं की उपेक्षा करा देते हैं -

---

1.42 - मानस- 2.197.5

1.43- मानस- 5.45 तथा 5.45.1,2,3

24-----

हनुमान् रावण की सभा में नागपाश में बंधकर उपस्थित होते हैं तो रावण दुर्बाद व उपहास से वार्ता प्रारम्भ करता है -

कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद । - 1.44

हनुमान् रावण का अभिवादन नहीं करते । बंदर होने के कारण उनसे आशा भी न की गई हो । वह रावण के प्रश्नों का उत्तर ही देते हैं, अभिवादन नहीं करते ।

तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि ।।- 1.45

फिर भी हनुमान् संबोधन में रावण को प्रभु स्वामी शब्दों का प्रयोग करते हैं जो राज्योचित सम्मान समादर सूचक हैं -

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा । कपि सहुभाव तें तोरेउँ रूखा ।।

सबकें देह परम प्रिय स्वामी । मारहिं मोहि कुमारग गामी ।।- 1.46 ॥ ॥

आ - विरोध की स्थिति में अन्यत्र अभिवादन की स्वीकृति तथा आशीर्वाद के प्रकरण दो रूपों में प्रस्तुत हुये हैं -

1- निकट संबंधों की पृष्ठभूमि में विरोधी पक्ष -

विभीषण तथा कुंभकरण युद्धस्थल में युद्ध के लिये उपस्थित होते हैं तथा विभीषण युद्ध करने से पूर्व अग्रज का अभिवादन करते हैं तथा आशीर्वाद प्राप्त करते हैं -

देखि बिभीषनु आगें आयउ । परेउ चरन निज नाम सुनायउ ।।

अनुज उठाइ हृदयँ तेहिलायो । रघुपति भक्त जानि मन भायो ।।

× × × × × ×

धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन । भयहु तात निसिचर कुल भूषन ।।

बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर । भजेहु राम सोभा सुख सागर ।।- 1.46 ॥ ॥

1.44- मानस- 20 1.45- मानस- 5.21

1.46 ॥ ॥- मानस- 5.21.3,4 1.46-॥ ॥-मानस-6.63.3,4 व 8,9

25------

2- शत्रुतावश भी नाम लेने के कारण सुगति प्राप्त करना तथा इस रूप में नाम लेने का अभिवादन बनकर फलदा होना ।

राक्षस युद्ध में 'राम राम' कह कर शरीर छोड़ रहे हैं । उनका आशय यही है कि राम कहाँ हैं, उन पर आक्रमण करें किन्तु नाम महिमा अपने आप में प्रभावशाली है तथा यह नाम लेना उनकी सुगति का कारण बनता है -

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान । - 1.47

राज्यस्तरीय -

राज्य स्तरीय अभिवादन कर्ता राजा, दूत एवं अन्य अधिकारी होते हैं ।

राजा और गुरु प्रकरण -

राजा गुरु को अपने से वरिष्ठ तथा अपना उच्च अधिकारी समझता था । इसी रूप में व्यवहार करता था । इसीलिये राजा के अभिवादन का व्यक्त उत्तर देना न देना उनकी इच्छा पर होता था । अव्यक्त रूप से राजा के अभिवादन से उन्हें सन्तोष, हर्ष आदि तो होता ही था।-

- महाराज दशरथ संतति की चिन्ता में गुरुगृह जाते हैं तथा गुरु का अभिवादन करते हैं गुरु जी की ओर से अभिवादन का कोई उत्तर नहीं दिया जाता -

गुर गृह गयउ तुरत महिपाला । चरन लागि करि बिनय बिसाला ।।
निज दुखसुख सब गुरहि सुनायउ । कहि बसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ ।।-1.48

- महाराज राम के पास जब गुरु वशिष्ठ आते हैं तो वहाँ भी इसी प्रकार का व्यवहार होता है, राम अभिवादन करते हैं किन्तु गुरु जी कोई प्रकट उत्तर नहीं देते हैं -

एक बार बसिष्ट मुनि आए । जहाँ राम सुख धाम सुहाए ।।
अति आदर रघुनायक कीन्हा । पद पखारि पादोदक लीन्हा ।।-1.49

1.47- मानस- 3.20 1.48- मानस- 1.188.2,3

1.49- मानस- 7.47.1,2

इसी प्रसंग में वशिष्ट जी राम से विनय करते हैं । इस विनय के अनुरूप वह हाथ जोड़ कर निवेदन करते हैं -

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी । कृपा सिंधु बिनती कछु मोरी ।।- 1.50॥ ॥

दूत - विपक्ष के राजा के पास पहुँच कर दूत साधारणतया अभिवादन करते थे जिसका उत्तर राजा प्राय: नहीं देता था । यह अभिवादन न होकर वस्तुत: राजदरबार का शिष्टाचार होता था । यही स्थिति राज्य के राज्याधिकारियों के साथ थी । दूत का शिष्टाचार रूप अभिवादन प्रकटत: निरुत्तरित रहता था ।

- अंगद सिर नवा कर अभिवादन करते हैं -

राम प्रताप सुमिरि मन बैठ सभाँ सिरनाइ ।।-1.50 ॥ ॥

- रावण के दूत लक्ष्मण का अभिवादन करते हैं -

तुरत नाइ लछिमन पद माथा । चले दूत बरनत गुन गाथा ।।

- सीता के पास हनुमान् पहुँचते हैं तथा अभिवादन करते हैं किन्तु सीता जी की ओर से इस शिष्टाचारगत अभिवादन का कोई प्रकट उत्तर नहीं दिया जाता।

दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा । रघुपति दूत जानकी चीन्हा ।।- 1.51

कहहु तात प्रभु कृपा निकेता । कुसल अनुज कपि सेन समेता ।।- 1.52

अधिकारी- अधिकारी के रूप में शिष्टाचारगत अभिवादन करना अपेक्षित था जिसके उत्तर की अपेक्षा नहीं की जाती थी ।

लक्ष्मण राम के सुरक्षा- अधिकारी के रूप में अपने दायित्व का बड़ा सुंदर निर्वाह करते हैं । भरत उनको शरण में आये हैं । लक्ष्मण उनके आगमन की सूचना अभिवादन करके राम को देते हैं । भाई होते हुये भी स्वयं भरत से प्रथम भेंट करने के लिये नहीं बढ़ते बल्कि भरत की राम से भेंट के पश्चात् ही

1.50 ॥ ॥- मानस- 7.47.3 1.50 ॥ ॥मानस- 6.19

1.51- मानस- 5.52.1 1.52- मानस-6.106.5,6

27----

भरत को प्रणाम करते हैं और भरत एवं शत्रुघ्न से भेंट करते हैं -

कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ।।

× × × × × × ×

भूरि भायँ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम ।।

× × × × × × ×

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ।।- 1.53 ॥ ॥

- स्वार्थवश अधिकारी का अधीनस्थ व्यक्ति को अभिवादन करना विपक्ष की स्वार्थपरता का उदाहरण रहा है जिसकी भर्त्सना की गई है -

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा । नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ।।

नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ।।- 1.53॥ ॥

विदा प्रसंग -

उपर्युक्त भेंट प्रसंगों के साथ यथास्थान विदा प्रसंगों का भी उल्लेख हुआ है । किन्तु इनकी संख्या अपेक्षातया न्यून है । विदा के अवसर के पूर्ण आचारिक उपचार-स्वरूप का एक सुंदर उदाहरण विश्वामित्र जी के विदा के अवसर पर प्रस्तुत हुआ है । विवाह के पश्चात् विश्वामित्र जी अयोध्या बरात के साथ आ गये हैं । अयोध्या से अपने आश्रम को वापिस जा रहे हैं तथा महाराज दशरथ तथा राम लक्ष्मण आदि से विदा हो रहे हैं । महाराज दशरथ विदा के समय विश्वामित्र जी से कृपा बनाये रखने, एवं पुनः पधारने की विनय करते हैं तथा बड़े सम्मान-समादर एवं प्रेम पूर्वक विदा करते हैं । राम भाईयों सहित पहुँचाने के लिये साथ जाते हैं । पहुँचाने या पठवन के लिये

1.53 ॥ ॥ -मानस-2.239.7 तथा 2.241 व 2.241.।

1.53 ॥ ॥ -मानस- 3.23.6,7

जाना अभिवादन का अति स्नेह-सम्मान सूचक उपचार है ।- 1.54 ॥ 1 ॥

माँगत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे ।।

नाथ सकल संपदा तुम्हारी । मैं सेवकु समेत सुत नारी ।।

करब सदा लरिकन्ह पर छोहू । दरसनु देत रहब मुनि मोहू ।।

अस कहि राउ सहित सुत रानी । परेउ चरन मुख आव न बानी ।।

× × × × × × ×

रामु सप्रेम संग सब भाई । आयसु पाइ फिरे पहुँचाई ।।- 1.54 ॥ ॥

- बिदा के अन्य प्रसंगों में इतना विवरण नहीं दिया है किन्तु कहना न होगा कि अभीष्ट यही रहा है । बिदा मागना जैसी संक्षिप्त अभिव्यक्ति से भी इसी प्रकार का आचार अपेक्षित रहा है -

मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी । चले भवन सँग दच्छकुमारी ।।-1.54॥ 3 ॥

× × × × × × ×

आदर दान बिनय बहुमाना । सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना ।।-1.54॥4॥

× × × xxxx × × ×

करि पूजा सब बिधि सेवकाई । गयउ राउ गृह बिदा कराई।।-1.54 ॥5॥

× × × × × × ×

राम बिदा मागत कर जोरी । कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी।।-1.54॥6॥

× × × × × × × ×

नाइ सीसु पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब मागा ।।-1.54॥7॥

× × × × × × × ×

जथा जोग सनमानि प्रभु बिदा किए मुनिबृंद ।।- 1.54 ॥8॥

1.54 ॥1॥- पठवन का एक और प्रसंग अंगद विदा के प्रकरण में आया है । भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न अंगद को पहुँचाने जाते हैं -

भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता।।-मानस-7.8.।

1.54 ॥2॥-मानस-1.359.5-8, 10 1.54॥3॥-मानस-1.47.6

1.54 ॥4॥-मानस-1.102.2 1.54॥5॥मानस-1.216.8 1.54॥6॥-मानस 1.336.3

1.54॥7॥ - मानस-2.76.2 1.54॥8॥ मानस-2.134

29-----

बिदा किए करि बिनय निषादा । फिरे पायँ परि बिकल बिषादा ।।-1.54﴾9﴿

× × × × × × ×

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू । चलेउ हृदयँ बड़ बिरह बिषादू ।।-1.54﴾10﴿

× × × × × × ×

बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि ।।- 1.54﴾11﴿

× × × × × × ×

मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ ।।- 1.54 ﴾12﴿

× × × × × × ×

मुनि महिदेव साधु सनमाने । बिदा किए हरि हर सम जाने ।।-

× × × × × × ×

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा । बिदा किए सब सानुज रामा ।।-1.54 ﴾13﴿

× × × × × × ×

भरत मातु पद बंदि प्रभु सुचि सनेहँ मिलि भेंटि ।

बिदा कीन्ह सजि पालकी सकुच सोच सब मेटि ।।-1.54 ﴾14﴿

× × × × × × ×

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा । मागा बिदा ताहि सिरु नावा ।।-1.54﴾15﴿

× × × × × × ×

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई । चलेउ पवनसुत बिदा कराई ।।- 1.54 ﴾16﴿

1.54 ﴾9﴿- मानस-

1.54 ﴾10﴿-मानस-2.320.1

1.54 ﴾11﴿- मानस-2.287

1.54 ﴾12﴿-मानस-2.316

1.54 ﴾13﴿- मानस-2.318.4,7

1.54 ﴾14﴿-मानस-2.319

1.54 ﴾15﴿- मानस- 5.1.11

1.54 ﴾16﴿- मानस-5.7.5

अभिवादन प्रकार - अभिवादन, जैसा कि इससे पूर्व विचार कर चुके हैं, एक आचारिक अपेक्षा है। अभिवादन किस प्रकार किया जाय, इस जिज्ञासा का यथास्थान विभिन्न प्रकरणों में गोस्वामी जी ने समाधान प्रस्तुत किया है। अभिवादन प्रकार पर विचार करते हुये इस आचारिक अपेक्षा के दो रूप मुख्य रूप से सामने आते हैं -

(i) आधिकारिक (ii) आचारिक

आधिकारिक अभिवादन शास्त्र एवं परंमपरागत, मान्य एवं अपेक्षित रहे हैं। आधिकारिक अभिवादन में पिता सहित नाम लेकर नमन करना अपेक्षित होता है। इस प्रकार का अभिवादन उन विशेष परिस्थितियों में किया जाता है जहाँ अधिकारी के समक्ष अधीनस्थ रूप में उपस्थित हुआ जाता है। दो प्रकरण मानस में इस प्रकार के आये हैं

परशुराम आगमन प्रकरण - धनुष भंग के पश्चात् परशुराम जी आते हैं। परशुराम जी से क्षत्रिय समाज भयभीत था तथा उनको अपना काल समझता था। उनके प्रति भयभीत होकर राजा आधिकारिक अभिवादन करते हैं।

देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला ।।

पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा ।।- 1.55

सती प्रसंग में सती संशयवश भगवान् राम की परीक्षा लेने जाती हैं। सीता का रूप धारण कर राम के समक्ष प्रस्तुत होती हैं। राम सारी वस्तुस्थिति से अवगत होते हैं तथा उमा का अधिष्ठात्री देवी के रूप में अभिवादन करते हैं।

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू ।।-1.56

आधिकारिक अभिवादन में "दण्ड प्रनाम" तथा "जोरि पानि प्रनाम" दो प्रकार का अभिवंदन प्रयुक्त हुआ है।

1.55- मानस- 1.268.1,2

1.56- मानस- 1.52.7

3|------

दण्ड प्रणाम से साष्टांग प्रणाम अभीष्ट है। दण्डवत होकर चरणों पर गिर जाना साष्टांगप्रणाम कहलाता है जिसमें उर, शिर, पद, कर, जानु भूमि को स्पर्श करें तथा दृष्टि, मन, वचन से अति दीनता प्रकट हो - 1.57

करबद्ध प्रणाम में दोनों हाथ जोड़ कर दृष्टि, मन, वचन से दीनता पूर्वक शिर नवाकर प्रणाम करते हैं।

" प्रणाम करता हूँ " इस शब्दावली का उच्चारण करते हैं।

प्रणाम करते समय यह भी आवश्यक होता है कि शस्त्रास्त्र उतार दिये जावें तब प्रणाम किया जाय। इस प्रकार का एक प्रकरण भगवान् राम द्वारा गुरु को प्रणाम करने के प्रसंग में आया है -

बामदेव बसिष्ठ मुनि नायक। देखे प्रभु महि धरि धनुसायक ।।

धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ।।- 1.58

<u>आचारिक प्रणाम</u> - आचारिक प्रणाम की श्रेणी में आधिकारिक से इतर सभी प्रकार के प्रणाम - प्रसंग आ जाते हैं। इनमें प्रणाम करने के विभिन्न रूप प्रस्तुत हुये हैं। इन रूपों में क्रिया-प्रक्रिया की अधिकता अथवा न्यूनता प्रकट हुई है। जिसके आधार पर इन रूपों की भिन्नता प्रतिलक्षित होती है। प्रणाम कर्ता की भाव विभोरता ही इसका कारण होता है। जिस व्यक्ति को प्रणाम करना है, उसके प्रति प्रणाम कर्ता की कितनी श्रद्धा- सम्मान भावना है, उसी के अनुकूल प्रणाम की क्रिया प्रक्रिया में अधिकता या न्यूनता आ जाती है। इसको क्रमिक विकसित रूप में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं -

---

1.57- आह्निक सूत्र के पूजा प्रसंग में प्रणाम के समय के आठ अंग इस प्रकार बताये गये हैं -

" उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा। पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते "

1.58 - मानस- 7.5.2,3
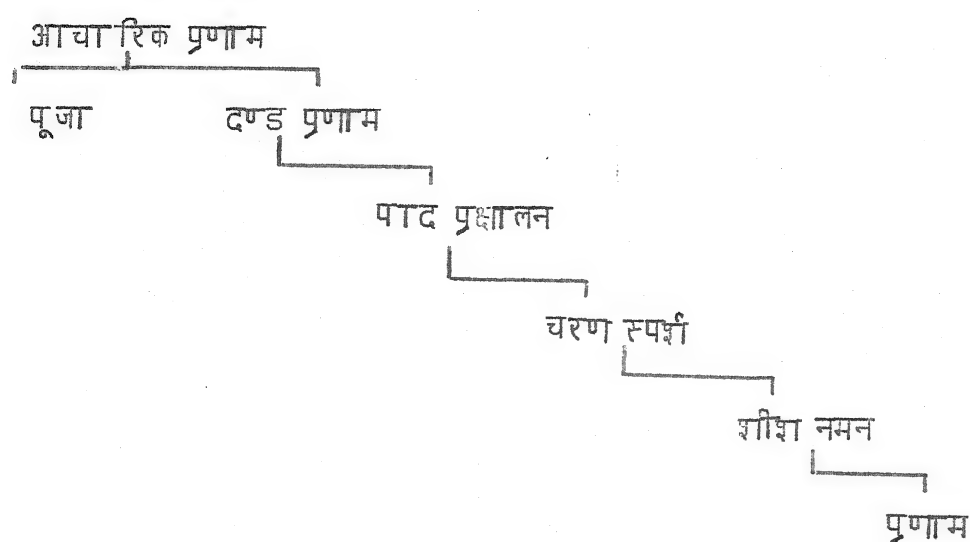
प्रणाम के लिये अन्यान्य सभी रूपों के साथ यह अपेक्षा आवश्यक है कि उठकर, खड़े होकर प्रणाम किया जाय । बैठे रहना या बैठे रहकर प्रणाम करना अपराध समझा जाता है, दारुण पाप की कोटि में आता है ।

गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम । - 1.58 ⁘ ⁘

1.1.2 - पूजन के अंतर्गत मूर्ति पूजा और मानव पूजा, दोनों पूजाओं के प्रकरण आते हैं । मूर्ति-पूजा भय, विस्मय, की विवशता में आदिम विश्वास रहा है जो कालान्तर में विकसित होकर श्रद्धाभक्ति एवं प्रेम का आधार बना । मूर्तिपूजा के कर्मकाण्डीय रूप में भी गोस्वामीजीने भावना एवं जीवन की प्रतिष्ठा की है जिसके फलस्वरूप मूर्तिपूजा में मानवीकरण के संदर्भ में मानव पूजा के दर्शन होने लगते हैं । गोस्वामी जी की मूर्ति मुस्कराती है तथा साक्षात् प्रकट होकर वरदान देती है -

खसी माल मूरति मुसुकानी ....

बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ । - 1.59

इस प्रकार गोस्वामी जी के पूजा - संदर्भ का मूल अभीष्ट मानव पूजा रहा है जिसके परिवेश में परंपरागत मूर्ति पूजा भी आ जाती है । मानव पूजा भावना व प्रेम पर

1.58 ⁘ ⁘ - मानस- 7.106 ⁘क⁘

1.59- मानस-1.235.5,6

33-----

आधारित है , आचार उसकी प्रेरणा है , व्यवहार उसका फल है । मानवपूजा में वंदनीय गुरुजनों को प्रमुखता दी गई है जिससे गृहव्यवस्था सुंदर एवं आदर्श बने, मानव जीवन में सुखशान्ति संभव हो सके । ये वंदनीय गुरुजन माता, पिता, गुरु, अग्रज तथा परिवार के अन्य संबंधी हैं । छोटे बड़ों की पूजा करते हैं , बड़े छोटों को प्यार करते हैं । इस प्रकार श्रद्धा-प्रेम के प्रिय वातावरण में गृह-गृह में स्वर्ग का वास है , सुख , शान्ति और आनन्द का उल्लास है ।

1.1.2- पूजा

पूजा के 16 उपचार माने गये हैं -

आसन, स्वागत, अर्घ, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, चंदन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, परिक्रमा, वंदना

इन 16 उपचारों का पालन मूर्तिपूजा के अंतर्गत होता है । मानव पूजा के अंतर्गत इस प्रकार की पूजा संभव नहीं होती । इन उपचारों में से एक-दो के संदर्भ से ही मानवपूजा का अभीष्ट पूरा हो जाता है । मानव पूजन [1.60 (अ)] का विवेचन ही यहाँ अभीष्ट है आसन- अभिवादन का प्रथम आचार है । अभ्यागत को आसन दिया जाय , बिठाया जा यह प्रथम अपेक्षा है -

आसन- सादर चरन सरोज पखारे । अति पुनीत आसन बैठारे ।।- 1.60 (ब)

× × × × × × ×

सैलराज बड़ आदर कीन्हा । पद पखारि बर आसनु दीन्हा ।।- 1.61

× × × × × × ×

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा । बाम भाग आसनु हरि दीन्हा ।।- 1.62

1.60 (अ)- पूजनीय/ वंदनीय गुरुजन द्वितीय वंदनीय गुरुजन खण्ड में देखें ।

1.60 (ब) - मानस- 1.44.5

1.61-मानस-1.65.6 1.62- मानस-1.106.3

34---

पुनि बसिष्ठु मुनि कौसिकु आए । सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए ।।-1.62 ‖ ‖

× × × × × × ×

करि दंडवत मुनिहि सनमानी । निज आसन बैठारेन्हि आनी ।।- - 1.63

× × × × × × ×

सादर जल लै चरन पखारे । पुनि सुंदर आसन बैठारे ।।- 1.64

× × × × × × ×

भरत दीन्ह निज बसन डसाई । बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ।।- 1.65

× × × × × × ×

आसन तथा स्वागत - अभ्यागत को आसन देना अथवा अपने आसन पर आसीन कराना, अभिवादन की आचारिक अपेक्षा है । आसन देने के साथ स्वागत करना भी अपेक्षित होता है । इसीलिये आसन तथा स्वागत के समन्वित प्रसंग भी आए हैं -

करत दंडवत लिए उठाई । राखे बहुत बार उर लाई ।।

स्वागत पूँछि निकट बैठारे । लछिमन सादर चरन पखारे ।।- 1.66

करि दंडवत मुनिहि सनमानी । निज आसन बैठारेन्हि आनी ।।- 1.66 ‖ ‖

देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह ।

स्वागत पूछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ।।- 1.67

× × × × × × ×

1.62 ‖ मानस ‖- 1.358.3

1.63- मानस 1.206.2

1.64-मानस- 2.33.10

1.65- मानस- 7.49.6

1.66- ‖ ‖ - मानस- 3.40.10,11

1.66- ‖ ‖ - मानस- 1.206.2

1.67- मानस-7.32

35-----

अति आदर खगपति कर कीन्हा । स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा ।।-1.68 ॥ ॥

अर्घ - अर्घ दो अर्थों में प्रयुक्त होता है -

॥1॥ जल, दूध, कुशाग्र, दही, सरसों, तंडुल तथा जौ को मिला कर देवता को अर्पण करना ।

॥2॥ आदर- सम्मान के लिये सामने जल गिराना, सम्मानार्थ जल से सींचना ।

- अभिवादन के लिये अभ्यागत के सामने जल गिराते हैं, जल-सिंचन करते हैं -

करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा । राम गमनु मंडप तब कीन्हा ।।- 1.69

एहि बिधि रामु मंडपहिं आए । अरघु देइ आसन बैठाए ।।- 1.70

× × × × × × ×

निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत ।

बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत ।।- 1.71

अर्घ- आरती, अर्घ पाँवड़े, अथवा केवल अर्घ के द्वारा अभिवादन करते हैं । उपर्युक्त उदाहरणों में तीनों प्रकार से अभिवादन के प्रसंग प्रस्तुत हुये हैं ।

आचमन - आचमन, भोजन के पश्चात् की स्वच्छता क्रिया है । इस क्रिया को व्यक्ति स्वयं करता है किन्तु जब इसको आदर पूर्वक कराया जाता है तब वह अभिवादन का अंग बन जाता है । ऐसे ही प्रसंग मानस में आये हैं =

एहि बिधि सबहीं भोजनु कीन्हा । आदर सहित आचमनु दीन्हा ।।-1.72

अचवाँइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रहयो ।। - 173

1.68 ॥ ॥- मानस - 7.62.7

" स्वागत पूछि" का साधारण अर्थ रहा है " आपका स्वागत है। कहिये आप कैसे पधारे " । इसके साथ कुशलक्षेम भी पूछी जाती है ।

कुसल प्रस्न कहि बारहिं बारा । बिस्वामित्र नृपहि बैठारा ।।- मानस-1.214.3

× × × × × × ×

कौसिक राउ लिए उर लाई । कहि असीस पूछी कुसलाई ।।- मानस-1.307.2

1.69-मानस-1.318.4, 1.70-मानस-1.318.8, 1.71-मानस-1.349

1.72- मानस-1.328.8 1.73-मानस- 1.98 छं.

36-----

मधुपर्क - दही, घी, जल, शहद, और चीनी का मिश्रण जो देवताओं पर चढ़ाया

जाता है । मधुपर्क के उदाहरण मानव पूजा प्रसंग में नहीं आये हैं । केवल मधुपर्क को लिये हुये परिचारकों के उपस्थित होने का उल्लेख हुआ है । यह भी मानस का एकाकी उदाहरण है -

मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महुँचहैं ।।-
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिशहिं परिचारक रहैं ।। - 1.74

- स्नान , वस्त्राभरण , यज्ञोपवीत के संदर्भ अभिवादन के स्थान पर आचारिक दैनिक कर्मकाण्ड के अंतर्गत प्रस्तुत हुये हैं 1.75 ॥१॥ अतएव प्रस्तुत प्रसंग में उन पर विचार नहीं किया गया है । 1.75 ॥२॥

चंदन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य -

- ये उपचार मूर्ति पूजन में प्रयुक्त होते हैं । गोस्वामी जी ने मानव पूजन के अंतर्गत वर वधू के पूजन प्रसंग में इनका प्रयोग किया है तथा अभिवादन के अंतर्गत प्रस्तुत किया है पुष्प अर्पित करने के साथ पुष्प वर्षा का विशेष उल्लेख किया गया है ।

मृग मद चंदन कुंकुम कीचा । मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा ।।- 1.76

× × × × ×

---

* 1.74-मानस-1.322.6

1.75 ॥१॥- एक बार जननी अन्हवाए । करि सिंगार पलना पौढ़ाए ।
निज कुल इष्टदेव भगवाना । पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना ।।-1.200.1,2
× × × × × ×
पीत पुनीत मनोहर धोती । हरति बालरबि दामिनि जोती ।।-1.326.3
पीत पुनीत
पीत जनेउ महा छबि देई । कर मुद्रिका चोरि चितु लेई ।।- 1.326.5
भए कुमार जबहिं सब भ्राता । दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ।।- 1.203.3

1.75 ॥२॥- यद्यपि गोस्वामी जी ने सोलह भाँति पूजा- सम्मान करने का उल्लेख अवश्य किया है किन्तु अभिवंदन के प्रस्तुत प्रसंग में उनका विवरण उपलब्ध नहीं है ।
सादर अरघ देइ घर आने । सोरह भाँति पूजि सनमाने ।।-मानस-2.8.3

1.76-मानस-1.193.8

37--

बरसहिं सुमन रंग बहु माला । गावहिं किंनर गीत रसाला ।।- 1.77

× × × × × × ×

धूप दीप नैबेद बेद बिधि । पूजे बर दुलहिन मंगल निधि ।।

बारहिं बार आरती करहीं । ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं ।।- 1.78

करि पूजा नैबेद्य चढ़ावा । आपु गई जहँ पाक बनावा ।।- 1.79

तांबूल- आचमन के साथ तांबूल दिया जाता है जो अभिवादन के जलपान आचार का अंग है -

अचवाँइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रहयो ।।- 1.80

परिक्रमा-परिक्रमा करके प्रणाम करने की प्रक्रिया भी अभिवादन आचार का रूप रहा है-

परदखिना करि करहिं प्रनामा । देहिं कैकइहि खोरि निकामा ।।- 1.81

वंदना- वंदना का आगे विवेचन किया गया है ।

- पूजा के 16 उपचार से इतर गोस्वामी जी ने कतिपय अन्य उपचारों का भी उल्लेख किया है जो अभिवादन के लिये प्रयुक्त हुये हैं । 16 उपचारों में पूजन का उल्लेख नहीं हुआ । सम्पूर्ण 16 उपचारों की मिलित क्रिया पूजन कही गई है । गोस्वामी जी पूजन को पृथक् भी लेते हैं ।

पूजन - मूर्ति पूजन के समान ही मानव पूजन अभीष्ट रहा है जिसमें अर्ध, पाँवड़े, आसन, आरती, मधुपर्क, चरण-प्रक्षालन, चंदन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, परिक्रमा, वंदना आदि उपचारों का समावेश रहता है ।

1.77- मानस-1.261.6

1.78-मानस-1.349.3,4

1.79- मानस-1.200.3

180 - मानस-1.98 छं०

1.81- मानस-2.201.3

- महाराज दशरथ विश्वामित्र जी की पूजा करते हैं -

रायँ कौसिकहि पूजि दान बिप्रन्ह दिए । - 1.85 ( )

करि दंडवत मुनिहि सनमानी । निज आसन बैठारेन्हि आनी ।।- 1.85 ( )

चरन पखारि कीन्हि अति पूजा । मोसम आजु धन्य नहिं दूजा ।।-

राजा जनक द्वारा महाराज दशरथ का पूजन प्रकरण अवलोनीय है जिसमें गुरु वशिष्ठ, वामदेव आदि ऋषि, महाराज दशरथ तथा बरातियों के पूजन के प्रसंग प्रस्तुत हुये हैं -

कुल इष्टसरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही ।।

कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही ।।

बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस ।

दिए दिव्य आसन सबहि सब सन लही असीस ।।

बहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा जानि ईस सम भाउ न दूजा ।।

कीन्हि जोरि कर बिनय बड़ाई । कहि निज भाग्य बिभव बहुताई ।।

पूजे भूपति सकल बराती । समधी सम सादर सब भाँती ।।- 1.86 ( )

- इसी प्रकार पार्वती मंगल में भी कुलगुरु और देवताओं के पूजन का उल्लेख है -

बिप्र बृंद सनमानि पूजि कुलगुर सुर । - 1.86 ( )

परि- अर्चन - परि-अर्चन (परिछन) के अंतर्गत दही-अक्षत का टीका लगाना, आरती उतारना आदि अभिवादन क्रियायें आती हैं । परिछन शब्द का प्रयोग विवाह के अवसर के लिये ही सीमित हो गया है । यों दही-अक्षत का टीका तथा आरती अन्यान्य अवसरों पर प्रायः होती हैं -

---

1.85 ( )- जानकी मंगल- 123

1.85 ( )- मानस- 1.206.2,3

1.86 ( )- मानस- 1.319.छं.3,4, 1.320, 1.320.1,2,3 जानकीमंगल में भी जनक द्वारा वर पूजन का ही उल्लेख है -
बरहि पूजि नृप दीन्ह सुभग सिंहासन- जानकी मंगल 140

1.86 ( ) (पार्वती मंगल-83

39--

मैना सुभ आरती सँवारी । संग सुमंगल गावहिं नारी ।।

कंचन थार सोह बर पानी । परिछन चली हरहि हरषानी ।।- 1.87

× × × × × ×

नयन नीरु हटि मंगल जानी । परिछनि करहिं मुदित मन रानी ।।- 1.88

पाँवड़े - वह कपड़ा या बिछावन जो आदर-सम्मान के लिये आगन्तुक के मार्ग में बिछाते हैं । अभिवादन का यह एक उपचार है जो आज भी महामहिम पुरुषों के लिये किया जाता है । आचारिक अवसरों पर वर आदि के लिये भी प्रयुक्त होता है।

देत पाँवड़े अरघु सुहाए । सादर जनकु मंडपहिं ल्याए ।।- 1.89

× × × × × ×

निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत ।।- 1.90

आरती- 1.91 ǁ ǁ

आरती उतारना अभिवादन का पूजा-उपचार है । अभ्यागत के अनिष्टों-अरिष्टो को स्वयं अपने ऊपर लेने की भावना के संदर्भ में आरती करना अभिवंदन की मंगल भावना का द्योतक है । अभ्यागत की सेवा-सम्मान-समादर के साथ उसको अनिष्टों से सुरक्षित रखने की कामना भारतीय सांस्कृतिक पक्ष के उच्च आदर्श को प्रस्तुत करती है । आरती के प्रसंग एकाकी तथा अन्यत्र अर्घ आरती अथवा आरती न्यौछावर के समन्वित रूप में प्रस्तुत हुये हैं । निछावर भी एक प्रकार का उपचार है जिसके अंतर्गत अभ्यागत की रक्षा

1.87- मानस-1.95.2,3 1.88- मानस-1.318.1

1.89- मानस-1.319.8 1.90- मानस- 1.349

1.91 ǁ ǁ - भगवान् की विनय -आरती के प्रसंग आगे स्तवन के अंतर्गत प्रस्तुत किये जावेगें । देवमूर्ति के आरती-प्रसंग मात्र कर्मकाण्डीय होने के कारण गोस्वामी जी ने नहीं लिये हैं ।

40------

के लिये कोई वस्तु उसके सिर के ऊपर या संपूर्ण अंगों पर घुमा कर दान कर देते हैं। इस प्रकार आरती-निछावर के उपचार अभ्यागत की मंगल कामना के उपचार हैं। अर्घ्य का भी अभीष्ट(सामने या दायें बायें जल सींचने का अभीष्ट भी)अभ्यागत की मंगलकामना का उपचार है जिसके अंतर्गत अभ्यागत के अनिष्टों को जल से शान्त करने का उपक्रम होता है।

आरती -

बैठारि आसन आरती करि निरखि बरु सुखु पावहीं ।।- 1.91 ( )

× × × × × × ×

सुत बिलोकि हरषीं महतारी । बार बार आरती उतारी ।।- 1.92

× × × × × × ×

आरती तथा निछावर -

करहिं आरती पुर नर नारी । देहिं निछाबर बित बिसारी ।।- 1.93

× × × × × × ×

करहिं निछावर आरती महा मुदित मन सासु ।।- 1.94

× × × × × × ×

बारहिं बार आरती करहीं । ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं ।।
बस्तु अनेक निछावरि होहीं । भरीं प्रमोद मातु सब सोहीं ।।- 1.95

अर्घ आरती -

करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा । राम गमनु मंडप तब कीन्हा ।।- 1.96

1.91 ( ) - मानस- 1.318 छं0
1.92- मानस- 7.11.6
1.93- मानस-1.264.6
1.94- मानस-1.335
1.95- मानस-1.349.4,5
1.96- मानस-1.318.4

पंच शब्द - मंगल सूचक पाँच प्रकार के बाजे अभिवंदन के लिये बजाये जाने का विधान रहा है । ये बाजे थे - तंत्री , ताल , झाँझ , नगाड़ा और तुरही ।

पंच ध्वनि- मंगल सूचक 5 प्रकार की ध्वनियाँ भी अभिवंदन के लिये की जाती थीं । ये थीं - वेद ध्वनि , बंदी ध्वनि , जय ध्वनि, शंख ध्वनि, निशान ध्वनि

- गोस्वामी जी ने पंच शब्द तथा पंच ध्वनियों का यथास्थान उल्लेख किया है तथा अभिवादन के लिये इन उपचारों की अपेक्षा भी प्रदर्शित की है -

पंच शबद धुनि मंगल गाना । पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना ।।- 1.97

× × × × × ×

जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगलगान निसान ।।- 1.98

× × × × × ×

संख निसान पनव बहु बाजे । मंगल कलस सगुन सुभ साजे ।।-

सुभग सुआसिनि गावहिं गीता । करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता ।।- 1.99

× × × × × ×

- गोस्वामी ने इन परंपरित ध्वनियों के साथ दो और ध्वनियों के मंगलसूचक अभिवाद उपचार का उल्लेख किया है - मुनिआशीष ध्वनि, एवं शान्तिपाठ ध्वनि । यह दोनों ध्वनियाँ यों वेद ध्वनि के अंतर्गत आती हैं -

सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला । मुनि असीस धुनि मंगलमूला ।।-1.100

एहि बिधि सीय मंडपहिं आई । प्रमुदित सांति पढ़हि मुनिराई ।।-1.10

1.97- मानस-1.318.3
1.98- मानस-1.324
1.99- मानस-1.312.3, 4
1.100-मानस-1.322.5
1.101- मानस-1.322.7

अगवानी - (अग्र-यान) अभ्यागत को आगे बढ़कर लेना अभिवादन की औपचारिक अपेक्षा रही है । आज भी इसका पालन करते हैं । बारात आदि के अवसर पर तो परंपरागत रूप में यह प्रचलित है तथा विवाह रीति बनी हुई है ।

लै अगवान बरातहि आए । दिए सबहि जनवास सुहाए ।।- 1.102

नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए ।। - 1.103 (अ)

गुर आगमनु सुनत रघनाथा । द्वार आइ पद नायउ माथा ।।- 1.103 (ब)

× × × × × ×

भरत आइ आगें भइ लीन्हे । अवसर सरिस सुआसन दीन्हें ।।- 1.104

× × ×" × × ×

- यकायक अभ्यागत के आ जाने पर आगे बढ़ कर लेने का अवसर नहीं रहता है । अतएव ऐसे अवसर पर उठ कर अभिवादन करते हैं -

हरषि मिले उठि रमानिकेता । बैठे आसन रिषिहि समेता ।। -1.105

आचारिक मंगल शकुन एवं मंगल उपहार[1.106]

अभिवादन करने के लिये मंगल शकुनों की व्यवस्था की जाती है तथा मंगल उपहार भी प्रस्तुत किये जाते हैं । आज सुगंधित पुष्प भेंट करना, इत्र आदि लगाना, इसी उपचार के रूप हैं ।

1.102- मानस-1.95.1

1.103 (अ)- जानकी मंगल -120-15

1.103 (ब)- मानस-2.8.2

1.104- मानस-2.291.7

1.105- मानस-1.127.5

1.106- मंगल सकुन में सवत्स गाय, जीवित मछली, घृत और दही , दीपयुक्त भरे कलश, मधुपर्क, दधि, दूर्वा , गोरोचन, लावा, पुष्प, तुलसीदल, हल्दी में रंगे हुये अक्षत आदि आते हैं । मंगल सुगंध में चन्दन, केशर, कस्तूरी, कपूर , अगर, धूप आदि आते हैं ।

43------

मंगल सगुन सुगंध सुहाए । बहुत भाँति महिपाल पठाए ।।

दधि चिउरा उपहार अपारा । भरि भरि काँवरि चले कहारा ।।-1.107

- दण्ड प्रणाम- दण्ड प्रणाम का विवरण इससे पूर्व प्रस्तुत कर चुके हैं । दण्ड प्रणाम की इस विस्तारपूर्ण प्रक्रिया में कमी होती गई और दण्ड प्रणाम का अभीष्ट अपेक्षातया न्यून प्रक्रियाओं से पूरा समझा जाने लगा । मुख्य प्रक्रिया चरण स्पर्श की रही है जिसका अनुपालन अभिवादन के अंतर्गत आज भी होता आ रहा है । चरण स्पर्श की पक्रिया के विभिन्न रूप अवलोकनीय हैं -

पाद प्रक्षालन - अभ्यागत अथवा आराध्य के पाद प्रक्षालन का उपचार प्राचीनकाल से चला आ रहा है । भगवान् कृष्ण ने सुदामा का अभिवादन पाद प्रक्षालन द्वारा किया था तथा सुदामा की दीन दशा से इतने द्रवित हुये थे कि पाद प्रक्षालन के लिये प्रस्तुत जल के स्थान में अश्रुजल से ही पाद प्रक्षालन किया था ।

" नैनन के जल सौं पग धोये "

- गोस्वामीजीने पाद प्रक्षालन के लिये अनेक प्रसंग प्रस्तुत किये हैं । "नेत्रों के जल से सींचने का प्रसंग कुछ उपर्युक्त प्रकार का ही है -

तब रघुपति उठाइ उर लावा । निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ।।-1.108 (अ)

× × × × × ×

प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए ।।- 1.108 (ब)

सादर जल लै चरन पखारे । पुनि सुंदर आसन बैठारे ।।- 1.108 (स)

× × × × × ×

1.107- मानस-1.304.5,6

1.108 (अ) -मानस- 4.2.6

1.108 (ब) - मानस- 3.2.6

1.108 (स) - मानस-3.33.10

44----

सादर चरन सरोज पखारे । अति पुनीत आसन बैठारे ।।- 1.108 [द]

× * × × × ×

चरन पखारि कीन्हि अति पूजा । मो सम आजु धन्य नहिं दूजा ।।-1.108 [य]

× × × × × ×

ते पद पखारत भाग्य भाजनु जनकु जय जय सब कहैं । - 1.109

× × × × × ×

सादर सबके पाय पखारे । जथाजोगु पीढ़न्ह बैठारे ।। - 1.110

× × × × × ×

धोए जनक अवधपति चरना । सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना ।।

बहुरि राम पद पंकज धोए 1.111

× × × × × ×

लछिमन सादर चरन पखारे 1.112

चरण प्रक्षालन एवं चरणोदक का बड़ा महत्व समझा जाता है । अभ्यागत [1.113 [अ]] को सबका गुरु माना जाता है । महात्माओं के चरण कमल में अनेक तीर्थों का वास रहता है। अतएव चरणोदक लेना तथा उसको पान करना , उससे घर को छिड़क कर पवित्र करना आदि उपचार अभिवादन के शुभ कर्म माने जाते हैं ।

नारि सहित मुनिपद सिरु नावा । चरन सलिल सबु भवन सिंचावा ।-1.113 [ब]

1.108 [द] - मानस- 1.45

1.108 [य]- मानस-1.206.3

1.109- मानस- 1.323 छं० स्तुति

1.110- मानस-1.322.3

1.111- मानस-1.322.4,5

1.112- मानस- 3.40.10

1.113 [अ] - गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः

1.113 [ब] - मानस- 1.65.7

<u>चरणरज लेना</u> - पाद प्रक्षालन का एक रूप चरण रज लेना भी है । इसी आशय से निषाद ने पादप्रक्षालन किया था । चरणरज परम पवित्र व कल्याणकारी समझी जाती है -

- जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू । मोहि पद पदुम पखारन कहहू ।।-1.114 (अ)

- गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन । नयन अमिय दृग दोष विभंजन ।।-1.114 (ब)

- बंदउँ बिधि पद रेनु भवसागर जेहिं कीन्ह जहँ ।।- 1.114 (स)

- प्रभु पद बंदि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बल भाषी ।।- 1.114(द)

- गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर। चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।-1.114(य)

- मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा । बार बार पद रज धरि सीसा ।।-1.114 (र)

<u>चरण स्पर्श</u> - चरण स्पर्श के लिये स्पर्श, पलोटत, चापत, चरणों में मस्तक रखना, चरण रज लेना आदि प्रयोग हुये हैं । इन प्रयोगों के द्वारा इसी मूल भावना का प्रतिपादन हुआ है कि अभ्यागत, आराध्य अथवा गुरुजन के चरणों की, चरणों के स्पर्श की बड़ी महिमा है । सभी प्रकार से कल्याण होता है । अतएवं अभिवादन के लिये चरण स्पर्श अपेक्षित है ।

<u>पलोटत</u> - तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते । गुर पद कमल पलोटत प्रीते ।।-1.115

× × × × ×

सयन कीन्ह रघुबंसमनि । पाय पलोटत भाइ ।।- 1.116

<u>चापत</u> - चापत चरन लखनु उर लाएँ । सभय सप्रेम परम सचु पाएँ ।।-1.117

× × × × ×

बड़ भागी अंगद हनुमाना । चरन कमल चापत बिधि नाना ।।-1.118

1.114 (अ) -मानस : 2:99:8
1.114 (ब)-मानस- 1.1.1
1.114 (स) - मानस-1.~~210~~14 (च)
1.114 (द)- मानस- 2.228.6
1.114 (य) - मानस-1.210
1.114 (र)- मानस-1.307.1
1.115- मानस-1.225.5
1.116- मानस-2.89
1.117- मानस-1.225.7
1.118- मानस- 6.10.7

46-----

चरणों में मस्तक रखना -

- कीन्ह प्रनाम चरन धरि माथा । दीन्हि असीस मुदित मुनि नाथा ।।-1.119

× × × × × × × ×

- हरष बिबस तन दसा भुलानी । परे दंड इव गहि पद पानी ।।- 1.120

× × × × × × × ×

- करि बिनती पद गहि दस सीसा । बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा ।।-1.121

× × × × × × × ×

- गुर गृह गयउ तुरत महिपाला । चरन लागि करि बिनय बिसाला ।।-1.122

× × × × × × × ×

- बिस्वामित्रु मिले पुनि आई । पद सरोज मेले दोउ भाई ।।- 1.123 (अ)

- पुनि रघुपति सब सखा बोलाए । मुनि पद लागहु सकल सिखाए ।।-1.123(ब)

चरण रज लेना - पाद प्रक्षालन के अंतर्गत विवेचन कर चुके हैं और यों चरण रज लेने से चरण स्पर्श होता ही है -

- मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा । बार बार पद रज धरि सीसा ।।- 1.124(अ)

- प्रभु पद बंदि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बलु भाषी ।।-1.124(ब)

शीश नमन - चरण स्पर्श के स्थान पर अभिवादन की न्यून प्रक्रिया शीश नमन है । अभिवादन की प्रक्रिया में प्रमादवश न्यूनता आती गई तथा कम से कम उपचार के प्रति रुचि बढ़ती गई । गोस्वामी ने कदाचित् इस प्रवृत्ति को देखा तथा तदनुकूल अपने पात्रों को यह सुविधा प्रदान की । इस प्रकार के अभिवादन का अपेक्षातया अधिक प्रयोग भी है।

1.119- मानस-1.214.1
1.120- मानस-1.147.7
1.121- मानस-1.176.3
1.122- मानस-1.188.2
1.123(अ) - मानस-1.268.6
1.123(ब)- मानस- 7.7.5
1.124(अ) - मानस-1.307.1
1.224(ब) - मानस-2.228.6

बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई । हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई ।।-1.225

× × × × × × ×

गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ ।।- 1.226

× × × × × × ×

नित्य क्रिया करि गुरु पहिं आए । चरन सरोज सुभग सिर नाए ।।-1.227

× × × × × × ×

सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा । हरषु बिषादु न कछु उर आवा ।।- 1.228

× × × × × × ×

पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाए । प्रेम मुदित मुनिबर उर लाए ।।- 1.229

× × × × × × ×

जनक बहोरि आइ सिरु नावा । सीय बोलाइ प्रनामु करावा ।।- 1.230

मस्तक नमन-

रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ । कहि सिवँ नायउ माथ ।।-1.231

× × × × × × ×

तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु । नाइ सुरसरिहि माथ ।।- 1.232

× × × × × × ×

गाउँ जाति गुहँ नाउँ सुनाई । कीन्ह जोहारु माथ महिलाई ।।- 1.233

× × × × × × ×

1.225-मानस-1.99.4 1.226- मानस-1.225

1.227- मानस-1.238.8 1.228- मानस-1.253.7

1.229- मानस-1.307.5 1.230- मानस-1.268.4

1.231- मानस-1.116 1.132- मानस-2.104

1.133- मानस-2.192.8

48------

तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नायउ माथ ।।-1.234

× × × × × × ×

लछिमन चले क्रुद्ध होइ । नाइ राम पद माथ ।।- 1.235

× × × × × × ×

कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ ।।- 1.236

प्रणाम - प्रणाम अभिवादन का न्यूनतम उपचार है जिसमें कम से कम आंगिक क्रियायें अपेक्षित होती हैं ।

सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा ।।- 1.237

× × × × × × ×

सीय बोलाइ प्रनामु करावा ।।- 1.238

× × × × × × ×

उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा । परम चतुर न कहेउ निज नामा ।।- 1.239 (अ)

- प्रणाम का आशय कतिपय स्थलों पर दण्डप्रणाम भी रहा है तथा दण्डप्रणाम को सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत करने के लिये केवल प्रणाम प्रयोग हुआ है -

- भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा । लिए उठाइ लाइ उर रामा ।।- 1.239 (ब)

प्रणाम[1.240] का आधुनिक रूप मात्र प्रणाम कहना हो गया है । दृष्टि, मन, वचन से दीनता तथा करबद्ध होकर प्रणाम कहना अपवाद बनता जा रहा है । गोस्वामी जी के युग में अभिवादन की यह स्थिति कदाचित् नहीं बनी थी । उनके प्रणाम प्रयोगों में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते हैं जिनमें मात्र वाचिक प्रणाम कहना ही अभिवादन का अभीष्ट रहा हो ।

1.234- मानस-3.42 ख   1.235- मानस-6.82   1.236-मानस- 7.8 (क)
1.237- मानस-1.99.7   1.238- मानस-1.268.4, 1.239 (अ) मानस-1.157.8
1.239 (ब) - मानस-1.307.7,   1.240- मानस-1.204.8

49-----

पारिवारिक अभिवादन -

परिवार में माता पिता एवं गुरुजनों के प्रति श्रद्धा निवेदन करना भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण उपचार रहा है । गोस्वामी जी ने इस अभिवादन का विशेष रूप से उल्लेख किया है और अपेक्षा की है कि समाज की यह सांस्कृतिक परंपरा सुरक्षित रहे ।

- प्रातः उठ कर माता, पिता एवं गुरु का अभिवादन करना -

प्रातकाल उठिके रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहिं माथा ।।

आयसु मागि करहि पुरकाजा । देखि चरित हरषइ मन राजा ।।-1.240

× × × × × × ×

नित्य क्रिया करि गुरु पहिं आए । चरन सरोज सुभग सिर नाए ।।-1.241

- गुरुजनों के पास पहुँच कर बैठने से पूर्व अभिवादन करना -

सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ । - 1.242

- रात्रि में विश्राम के लिये जाने से पूर्व अभिवादन करना -

करि मुनि चरन सरोज प्रनामा । आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा ।।-1. 243 (अ)

× × × × × × ×

बार बार मुनि अग्या दीन्ही । रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही ।।-1.243 (ब)

- किसी कार्य के लिये जाने से पूर्व विदा लेना एवं अभिवादन करना -

बिगत दिबसु गुरु आयसु पाई । संध्या करन चले दोउ भाई ।।- 1.244 (अ)

1.240- मानस-1.204.8 ,
1.241- मानस-1.238.8
1.242- मानस- 1.~~293~~ 239
1.243 (अ)-मानस-1.237.5
1.243 (ब)-मानस- 1.225.6
1.244 (अ) - मानस-1.236.6

समय जानि गुर आयसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ।।- 1.244 ॥ब॥

- निवेदन करने से पूर्व विनम्रतापूर्वक अभिवादन करना और आज्ञा लेना -

परम बिनीत सकुचि मुसुकाई । बोले गुर अनुसासन पाई ।।- 1.245 ॥अ॥

- गुरुजनों के पास सिर नवा कर बैठना -

- जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ ।- 1.245 ॥ब॥

- आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे ।।- 1.245 ॥स॥

सभा-समाज अभिवादन - चित्रकूट में भरत समाज सहित उपस्थित हुये हैं । सभा का आयोजन हुआ तथा यह प्रश्न विचारणीय हुआ कि महाराज दशरथ के असामयिक निधन के पश्चात् क्या किया जाय - राम वनवासी रहें अथवा वापिस चल कर अयोध्या राज्य का प्रशासन सम्हालें । इस सभा में सभा-समाज के अभिवादन के उल्लेखनीय आदर्श अवलोकनीय हैं।-

- इस सभा के सभापति कुलगुरु मुनि वशिष्ठ हैं । सभी सभासद सभापति को प्रणाम करके तथा आज्ञा पाकर सभा में अपना आसन ग्रहण करते हैं-

- गुर पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ ।
 बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ ।।- 1.246

- इस प्रथम सभा में भरत प्रमुख पक्षाधिकारी सभासद हैं । इसलिये सभापति महोदय भरत को व्यक्तिगत तथा अन्य सभासदों को सामूहिक रूप में संबोधित करते हैं -

बोले मुनिबरु समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना ।।- 1.247

1.244- ॥ब॥- मानस-1.226.2

1.245 ॥अ॥ - मानस-1.217.4

1.245 ॥ब॥ - मानस-2.57

1.245 ॥स॥- मानस-2.275.6

1.246- मानस-2.253

1.247- मानस-2.253.1

51-----

- सभासद अपना निवेदन सभापति को सिर नवाकर तथा हाथ जोड़ कर करते हैं -

तब सिरु नाइ भरत कर जोरे ।- 1.248

× × × × × × ×

करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ ।। - 1.249

- सभासद अपना निवेदन सभापति की आज्ञानुकूल विनम्र एवं मधुर शब्दों में प्रस्तुत करते हैं -

बोले गुर आयस अनुकूला । बचन मंजु मृदु मंगल मूला ।।- 1.250

-सभा में अन्य अति प्रतिष्ठित महानुभाव (V.I.P.) के आगमन पर संपूर्ण सभा सम्मानार्थ उठकर अभिवादन एवं स्वागत करती है -

- प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु ।

सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु ।।

भाइ सचिव गुर पुरजन साथा । आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा ।।- 1.251

राज्यसभा में,अन्यत्र भी अथवा राजा का अभिवादन 'जय' शब्द द्वारा होता है । सुमंत्र महाराज दशरथ का 'जय जीव' कह कर अभिवादन करते हैं ।

महाराज राम जब सिंहासन पर विराजमान हुये उस समय उनका अभिवादन जय ध्वनि से किया गया -

- देखि सचिवँ जय जीव कहि कीन्हेउ दण्ड प्रनामु ।।- 1.252 (अ)

- बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे । नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ।।- 1.252 (ब)

- कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए ।।---------------------- 1.252 (स)

1.248- मानस-2.254.4

1.249- मानस- 2.266

1.250- मानस- 2.258.3

1.251 - मानस- 2.274 व 274.1

1.252- (अ)- मानस-2.148

1.252-(ब)-मानस-7.11.4

1.252 (स) - मानस-1.331.8

52-------

विप्र एवं गुरुजनों द्वारा अभिवादन का स्वरूप आशीर्वाद देना था । यह परंपरा आज भी प्रचलित है । विप्रगण अभिवादन के उत्तर में अथवा अभिवादन किये जाने से पूर्व ही आशीर्वाद देने लगते हैं ।

- पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा ।। - 1.253

× × × × × × ×

- सुर किंनर नर नाग मुनीसा ।

जय जय जय कहि देहिं असीसा ।।- 1.254

अभिनंदन - (हर्षाभिवादन) - हर्ष- उल्लास के अवसरों पर बधाई के रूप में अभिवादन या अभिवंदन किया जाता है । आजकल बधाई तार भेजे जाते हैं । गोस्वामी जी ने इस हर्ष - अभिवंदन को बधाई , बधावा , सोहिलो एवं जय शब्दों से व्यक्त किया है । हर्ष- उल्लास के अवसरों पर बधाये गीत गाये जाने की परंपरा अति प्राचीन रही है जिसका अनुपालन गोस्वामी जी ने भी किया है ।

- भगवान् राम के जन्मोल्लास एवं विवाहोत्सवों पर बधाये तथा सोहिले गाये- बजाये जा रहे हैं -

- आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई ।

रूप-सील-गुन-धाम राम नृप-भवन प्रगट भए आई ।।

× × × × × × ×

सदन बेद-धुनि करत मधुर मुनि , बहु बिधि बाज बधाई ।।- 1.255

- सहेली सुनु सोहिलो रे !

सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सब जग आज ।

पूत सपूत कौसिला जायो, अचल भयो कुल - राज ।।

× × × × × × × ×

तुलसिदास प्रभु सोहिलो गावत उमगि उमगि अनुराग ।।- 1.256

1.253- मानस-7.11.5 1.254- मानस-1.264.2
1.255- गीतावली-1 1.256- गीतावली-2

~~1.257-~~

- घर घर अवध बधावने मंगल-साज-समाज ।।- 1.257

- बाजत अवध गहगहे अनंद- बधाए ।।- 1.258

- गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमा कंद ।।- 1.259

- समाचार सब लोगन पाये । लागे घर घर होन बधाए ।।- 1.260

- घर घर बाजन लगे बधाए ।।- 1.261

- जबतें रामु ब्याहि घर आए । नित नवमंगल मोद बधाए ।।- 1.262

सूर-राम-चरितावली में सूरदास भी राम जन्म पर बधाये का उल्लेख करते हैं -

अयोध्या बाजति आजु बधाई ।।- 1.263 [अ]

इसी प्रकार अभिषेक के अवसर पर बधाये बजते हैं -

सुनत राम अभिषेक सुहावा । बाज गहागह अवध बधावा ।।- 1.263 [ब]

जय जयकार युद्ध स्थल में अपने-अपने पक्ष की जय के लिये की जाती है [1.264] साथ ही हर्ष- उल्लास के अवसरों पर भी जय जय कार द्वारा हर्षाभिवादन किया जाता है। साधारण अभिवादन भी जय शब्द द्वारा राज्याधिकारियों तथा भगवान् को किया जाता है। इसका उल्लेख इससे पूर्व कर चुके हैं।

हर्षाभिवादन के अंतर्गत जय प्रयोग के उदाहरण अवलोकनीय हैं -

- पार्वती जी के प्रेम की दृढ़ता से प्रसन्न एवं उल्लसित होकर सप्तर्षि जय जय द्वारा हर्षाभिवादन करते हैं -

देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी । जय जय जगदंबिके भवानी ।।- 1.265

1.257- गीतावली-5
1.258- गीतावली-6
1.259- मानस-1.194
1.260- मानस-1.295.2
1.261- मानस-1.350.6
1.262- मानस- 2.0.1
1.263 [अ]-सूर राम चरितावली-3
1.263 [ब]- मानस-2.5.6
1.264- उत रावन इत राम दोहाई । जयति जयति जय परी लराई।।-मानस6.40.7
1.265- मानस-1.80.8

54----

- भगवान् राम के कृपापूर्ण व्यवहार से उल्लसित होकर प्रभु का हर्षाभिवादन-

सुनि प्रभु वचन कहहिं कपि बृंदा । जय जय जय कृपाल सुखकंदा ।।-1.266

- भगवान् राम के सौन्दर्य से अभिभूत एवं हर्ष विभोर होकर उनका हर्षाभिवादन-

सोभा देखि हरषि सुर बरषहिं सुमन अपार ।

जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार ।।- 1.267

- भगवान् राम के उर पर जयमाल देख कर सभी हर्षोल्लसित होते हैं तथा जय जय द्वारा अभिवादन करते हैं -

सुर किंनर नर नाग मुनीसा । जय जय जय कहि देहिं असीसा ।।- 1.268

अभिवादन के उत्तर - मौन स्वीकृति, आशीर्वाद, उठाकर हृदय से लगा लेना, भेंटना आदि सभी में अभिवादन के उत्तर दिये गये हैं । उपर्युक्त विवरण में इस संबंध में यथास्थान संकेत किये गये हैं । कतिपय उदाहरण अवलोकनीय हैं । मौन स्वीकृति सम्मान-समागत दूरी के सभी प्रसंगों में रही है । कहीं कहीं उसका अन्यथा हर्ष, प्रसन्नताआदि शब्दों में उल्लेख हुआ है -

मौन स्वीकृति - मुनिबर हृदयँ हरष अति पावा ।।- 1.269

आशीर्वाद - दीन्हि असीस मुदित मुनि नाथा ।।- 1.270

हृदय से लगाना- तब रघुपति उठाइ उर लावा । निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ।।- 1.271

भेंटना- भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई ।।- 1.272

आज्ञा देना - करि मुनि चरन सरोज प्रनामा । आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा ।।- 1.273

1.266-मानस- 5.33.5
1.267- मानस-6.86
1.268- मानस-1.264.2
1.269- मानस-1.206.4
1.270- मानस-1.214.1
1.271- मानस- 4.2.6
1.272 - मानस-2.241.1
1.273- मानस-1.~~236.6~~ 237.5

55----

अभिवादन की अपेक्षा- आधुनिकता के संदर्भ में अभिवादन क्यों जैसी जिज्ञासायें भी होने लगें, तो कोई आश्चर्य नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने चार शती पूर्व इसकी अपेक्षा का प्रतिपादन किया था जो इस प्रकार की जिज्ञासा का समाधान करता है। गोस्वामी जी के समय में इस प्रकार की किसी जिज्ञासा का प्रश्न ही नहीं उठता था। आचार-प्रधान तत्कालीन समाज में अभिवादन तो सहज स्फूर्त आचरण था। उसके लिये किसी हेतु के प्रतिपादन की अपेक्षा न थी। भक्ति के परिप्रेक्ष्य में ही मैं इसकी अपेक्षा का प्रासंगिक उल्लेख आया है। जिसका अभीष्ट भक्ति के लिये न्यूनतम कुछ करने का आग्रह-अनुरोध रहा है। अभिवादन की साधारण-सी न्यूनतम आंगिक क्रिया से ही भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। अतएव भगवान की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये अभिवादन की साधारण-सी अपेक्षा पूरी करनी ही चाहिये।

भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै ।।- 1.274

हाथ जोड़ कर मस्तक झुकाकर अभिवादन करना न्यूनतम आंगिक मुद्रा है किन्तु अभिवादन की दृष्टि से यह विशेष मुद्रा बड़ी प्रभावशाली तथा फलदा है। दण्डप्रणाम, एवं चरण स्पर्श के पश्चात्यही एक मुद्रा ऐसी रहती है जो अभिवादन के अपेक्षित उपचार को पूर्ण करती है।

- भगवान् को यह मुद्रा स्वयं प्रिय है। वह इसी मुद्रा में अभिवादन करते हैं -

प्रभु कर जोरे सीस नवावहिं। - 1.275

पूजन- वंदन-1.276 (अ) अभिवादन के वंदन आचार-उपचार के अतिरिक्त अन्यान्य

1.274- वि.- 135 1.275- मानस-7.32.4

1.276 (अ)- वंदना के अंतर्गत आने वाले प्रसंगों में इस खण्ड के प्रारंभ में उल्लेख कर चुके हैं कि वंदन एवं विनय का समन्वित रूप रहता है किन्तु विवेचन की दृष्टि से दोनों प्रकार के रूपों को पृथक्-पृथक् लिया गया है। कतिपय ऐसे प्रसंग हैं जिनमें विनय का अंग प्रतिलक्षित नहीं होता, अन्य में वंदन का अंग प्रकट नहीं होता किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वंदन विनय रहित होता है अथवा विनय वंदन रहित हो सकती है। दोनों का अंगांगी भाव है, वंदन के साथ विनय होती हैऔर विनय के साथ वंदन की पूर्व-अपेक्षा रहती है। यह अवश्य है कि वंदन या विनय के ऐसे प्रसंग प्रस्तुत हुये हैं जिनमें एक का भाव प्रत्यक्ष एवं प्रकट रहता है तथा दूसरे का भाव, अभाव न होकर प्रच्छन्न अथवा प्रतिभासित रूप में अन्तर्निहित रहता है। वंदन के विभिन्न रूपों में विनय का भाव किस प्रकार समाहित रहता है, इसका विवेचन विनय दर्शन के अंतर्गत किया जायेगा।

56----

प्रसंगों में की जाने वाली वंदना पूजन-वंदन का अंग है ।

पूजन-वंदन के अंतर्गत वंदन में दो प्रकार के वर्ग लिये गये हैं -

चेतन वर्ग तथा जड़ वर्ग 1.276 (ब)

चेतन वर्ग में निम्नलिखित व्यक्तियों की वंदना की गई है -

देव वंदना- देव वंदना के अंतर्गत देवर्षि, सप्तर्षि, मुनि, देव एवं देववत व्यक्तियों को लिया गया है । राम एवं राम पंचायतन भी देव वर्ग में ही आते हैं-

X| - देवर्षि हैं - नारद, अत्रि, मारीचि, भरद्वाज पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु,

- सप्तर्षि हैं - कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वशिष्ठ, (पुनः मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, वशिष्ठ)

- मुनि हैं - सनकादि,-सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार, शुकदेव (कुंभज) अगस्त्य, अत्रि, सरभंग, सुतीक्ष्ण, वाल्मीकि,

- देव हैं - सरस्वती, गणेश, शंकर, पार्वती, हनुमान, सूर्य, विष्णु, देवी, नर-नारायण, बिन्दुमाधव, गन्धर्व, किन्नर,

- देववत हैं - माता, पिता, गुरु, अतिथि, विप्र, संत, पति, पितृगण,

- भगवान् राम एवं पंचायतन हैं -

- श्रीराम, श्री सीताजी, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न,

- नर-नारायण, बिन्दु माधव, श्रीरंग

मनुज वंदन- मनुज वंदना में आते हैं,

सत्जन संत, साधु, कविगण, विप्र, ज्ञानी, दास,

खलजन-असाधु, खल,

1.276 (ब) - जड़ चेतन जग जीव जत । सकल राम मय जानि ।।-मानस-1.7(ग)

57-----

दनुज वंदन- राक्षस

पशु वर्ग- बंदर, रीछ ,

पक्षी वर्ग - गरुड़ , काक ,

जड़ वर्ग- में निम्नलिखित का वंदन है -

धाम- अयोध्या, काशी,

नदी- गंगा, जमुना, सरयू,

पर्वत - चित्रकूट,

समुद्र- सागर

दिशा- प्राची दिशा

वस्तु- वेद,

वंदन रूप -

- अभिवादन से इतर वंदन के लिये निम्नलिखित वंदन शब्दों का प्रयोग किया गया है -

वंदन , नमन , प्रनमन

वंदन- प्रकार -

1- केवल वंदन शब्दों का कथन तथा वंदनीयजन के गुण वर्णन

2- वंदन शब्द एवं उपचार का वर्णन

1- ﴾अ﴿- अधिकांश प्रसंगों में केवल वंदन शब्दों का कथन तथा वंदनीयजन के गुण वर्णन की पद्धति अपनाई गई है । गुण वर्णन का संयोग अवांतर से वंदन के हेतु पर भी प्रकाश डालता है जिसका आशय अप्रत्यक्षत: उन गुणों से अपनी कल्याण कामना रहा है ।

बंदउँ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि ।
महामोह तम पुंज , जासु बचन रबि कर निकर ।।- 1.277

1.277- मानस-1.0.5

- बंदउँ प्रथम महीसुर चरना । मोह जनित संसय सब हरना ।।- 1.278

- बंदउँ मुनिपद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ ।। .279

- बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस ।।- 1.280

- बंदउँ अवधपुरी अति पावनि । सरजू सरि कलि कलुष नसावनि ।।-1.281

- बंदउँसीताराम पद जिन्हहि परमप्रिय खिन्न ।।- 1.282

- बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद ।।- 1.283 (अ)

- बंदौ रघुपति करुना निधान । जाते छूटै भव-भेद-ग्यान।।- 1.283 (ब)

-पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना । पर अघ सुनइ सहस दस काना ।।- 1.283 (स)

-भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे । प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागे ।।- 1.283 (द)

- गुरु पितु मातु महेस भवानी । प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी ।।- 1.283 (य)

- प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी । ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ।।- 1.283(र)

1. (आ) - वंदन के साथ अभीष्ट याचना भी की गई है और इस प्रकार वंदन का स्वरुप वंदना एवं याचना के रुप में प्रस्तुत हुआ है ।

- चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे । पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे ।।- 1.284

- बंदउँ किन्नर रजनिचर कृपा करहु अब सर्व ।।- 1.285

- सबहिं बँदि मागहिं बरदाना । भाइन्ह सहित राम कल्याना ।।- 1.286 (अ)

1.278- मानस- 1.1.3

1.279-1.14 (घ)

1.280- मानस- 1.14 (ङ)

1.281-मानस-1.15.1

1.282- मानस-1.18

1.283(अ)- मानस-1.16

1.283 (ब)- वि0- 64

1.283(स)- मानस-1.3.9

1.283 (द)- मानस-1.13.6

1.283(य)- मानस-1.14.3

1.283 (र)- मानस-1.15.2

1.284- मानस-1.13.3

1.285- मानस- 1.7 (घ)

1.286-(अ)- मानस-1.350.2

- प्रनवउँ सबहि धरनि धरि सीसा । करहु कृपा जन जानि मुनीसा ।।- 1.286 ॥ब

-करउँ प्रनाम करम मन बानी । करहु कृपा सुत सेवक जानी ।।- 1.286 ॥स॥

2- वंदन शब्द एवं उपचार का वर्णन-

वंदन शब्द के साथ वंदन के उपचारों का वर्णन करके वंदन का विवरणात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है । षोडशोपचारों की विस्तृत व्यवस्थाओं में से , गिनी चुनी मुद्राओं को ही लिया गया है ।

हाथ जोड़ कर वंदन करना -

- बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ।। -1.287

- गई भवानी भवन बहोरी । बंदि चरन बोली कर जोरी ।।- 1.288

- धरि धीरज पद बंदि बहोरी । बिनय सप्रेम करत कर जोरी ।।-1.289 ॥अ॥

- सीय राम मय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।-1.289 ॥ब॥

हाथ जोड़ कर तथा सिर नवा कर वंदन करना -

- बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि ।।- 1.290 ॥अ॥

- जानि गरुड़ गुर गिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर जोरी ।।-1.290 ॥ब॥

पद वंदन करना -

- बंदउँ लछिमन पद जलजाता । सीतल सुभद भगत सुख दाता ।।- 1.291

- बंदउँ सबके चरन सुहाए । अधम सरीर राम जिन्ह पाए ।।- 1.292

- मोपहिं होइ न प्रति उपकारा । बंदउँ तव पद बारहिं बारा ।।- 1.293

- कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा । दीन्हि असीस मुदित मुनि नाथा ।।+ 1.294

1.286 ॥ब॥-मानस-1.17.6
1.286 ॥स॥-मानस-1.15.7
1.287-मानस-1.7 ॥ग॥
1.288- मानस-1.234.4
1.289 ॥अ॥- मानस-2.194.6
1.289 ॥ब॥- मानस-1.7.2
1.290 ॥अ॥- मानस-1.109
1.290 ॥ब॥-मानस-2.212.2
1.291- मानस-1.16.5
1.292- मानस-1.17.2
1.293- मानस-7.124.4
+ 1.294- मानस-1.214.1

60------

पूजन वंदन का स्वरूप- पूजन वंदन उपचार रहित या सहित किसी भी प्रकार का हो, उसका स्वरूप वंदना का ही होता है जिसके अंतर्गत दण्डप्रणाम की स्थिति आती है। मात्र बंदउ या करउँ प्रनाम जैसी अभिव्यक्तियों का कोई स्वरूप नहीं बनता है। कहना यह चाहिये कि ये प्रतीक शब्द हैं तथा पूजन की सम्पूर्ण अभीप्सा को द्योतित करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी को भक्ति एवं पूजन वंदन की औपचारिकता अभीष्ट नहीं थी। प्रत्येक भक्तिपरक कर्म के साथ मन वचन का समावेश उन्होने आवश्यक समझा है। यही नहीं भक्ति परक कर्म इस निष्ठा तथा सत्यता से होने चाहिये कि उनका मानव आचार-विचार पर प्रभाव पड़े। इसी रूप में उनकी भक्ति व्यावहारिक पक्ष को लेकर चलती है तथा सदाचार उसका सुफल एवं अभीष्ट परिणाम होता है।

करउँ प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी ।।- 1.295

× × × × × × ×

सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें। सब सुभगुन बसहहिं उर तोरे ।।- 1.296

वंदन सूचक शब्द का एकाकी कथन के साथ में भी वंदनीय जन के गुणों का उल्लेख किया गया है जिसका अभीष्ट अवान्तर रूप से यही रहा है कि वंदनीयजन के उल्लिखित गुणों का अनुकरण हो सके, उन गुणों का अपने दीन-हीन व्यक्तित्व में समावेश हो सके तथा अपना सदाचार बन सके। हम अपने आचार विचार में सुधार एवं परिवर्तन देख सकें।

(तुम)हौं अपनायौ तब जानिहौं जब मन फिरि परि है ।- 1.297

× × × × × × ×

मैं जानी, हरिपद-रति नाहीं। सपनेहुँ नहिं बिराग मनमाहीं ।।-

जे रघुबीर चरन अनुरागे। तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे ।।- 1.298

× × × × × × ×

सुनि सीतापति -सील-सुभाउ।

मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ ।।- 1.299

1.295-मानस 1:15:7

1.296-मानस-7.84:6

1.297- विनयपत्रिका 268

1.298-विनय-127

1.299- विनय-100

पूजन वंदन में चराचर जगत् में व्याप्त ब्रह्म की वंदना का उपक्रम है तथा इसी अभीष्ट से पूजन और वंदना की जाती है -

सियाराम मय सब जग जानी । करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।- 1.300

वंदन के प्रकरण - निम्नलिखित हैं -

विवरण	संदर्भ	पंक्ति संख्या					पंक्ति योग
		छंद	दोहा	सोरठा	चौपाई	पद	
1-देव वंदना प्रकरण	1.01.-04	-	-	8	-	-	= 8
2- गुरु वंदना	1.05-1.1.2	-	2	2	10	-	= 14
3- महीसुर	1.1.3	+	-	-	1	-	= 1
4- सुजन समाज	1.1.4-1.3 (क)(ख)	-	6	-	22	-	=28
5- खलगन	1.3.1-1.4.2	-	2	-	13	-	=15
6- संत असज्जन	1.4.3-1.7 (क)(ख)	-	4	-	28	-	=32
7- कार्पण्ययुत - जड़ चेतन जगजीव	1.7.(ग) (घ) 1.7.2	-	4	-	- 1	-	= 5
8- कवि वंदना	1.13.2.-1.14 (ग)(घ)	-	8	-	10	-	=18
9- चारों वेद	1.14 (ङ)	-	2	-	-	-	= 2
10- ब्रह्म	1.14 (च)	-	2	-	-	-	= 2
11- देवताब्राह्मण पंडित ग्रह	1.14 (छ)	-	2	-	-	-	= 2
12- सरस्वती, गंगाजी	1.14.1,2	-	-	-	2	-	= 2
13- महेश भवानी	1.14.3-1.15	-	2	-	9	-	=11
14- अवधपुरी, सरयू	1.15.1	-	-	-	1	-	= 1

1.300- मानस-1.7.2

62--

विवरण	संदर्भ	छंद	दोहा	सोरठा	चौपाई	पद	पंक्ति योग
		पंक्ति संख्या					
15- पुरनरनारि	1. 15. 2, 3	-	-	-	2	-	= 2
16- कौशल्याजी दशरथ सहित	1. 15 ॥4, 5 ॥6, 7- 1. 16	-	2	-	5	-	= 7
सब रानी		-	-	-	2	-	= 2
17- परिवार सहित राजा जनक	1. 16. 1, 2	-	-	-	2	-	= 2
18- भरत	1. 16. 3, 4	-	-	-	2	-	= 2
19- लक्ष्मण	1. 16. 5. 6, 7, 8	-	-	-	4	-	= 4
20- शत्रुघ्न	1. 16. 9	-	-	-	1	-	= 1
21- हनुमान	1. 16. 10, 1. 17	-	2	-	1	-	= 3
22- कपिपति रीछ, विभीषण, अंगदादि	1. 17. 1, 2	-	-	-	2	-	= 2
23- खग मृग सुर नर असुर ॥रामचरन॥ ॥उपासक॥	1. 17. 3, 4	-	-	-	2	-	= 2
24- शुकदेव, सनकादि, नारद	1. 17. 5, 6,	-	-	-	2	-	= 2
25- जनकसुता	1. 17-7, 8	-	-	-	2	-	= 2
26- श्रीराम	1. 17-9, 10-1. 18 1. 104. 5, 6, 7	-	2	-	2 3	-	= 7

	छंद	दोहा	सोरठा	चौपाई	पद	पंक्ति योग
27- नाम वंदना 1.18.1-1.27.2	-	18	-	75	-	= 92
28- सती द्वारा 1.59.4	-	-	-	1	-	= 1
शिव वंदना 1.109	-	2	-	+	-	= 2
29- शिव द्वारा 1.111..3-5 बालक राम वंदना	-	-	-	3	-	= 3
30- प्रतापभानु 1.159.2 द्वारा कपटी 1.160.5 मुनि वंदना	-	4	-	02	-	=02
31- सीताजी 1.234.4- द्वारा 1.235.4 पार्वती की वंदना	-	4	-	8	-	=12
32-जनकपुर 1.254-7,8 नरनारियों द्वारा शिवधनु राम द्वारा टूटने हेतु पित्र, सुर वंदना	-	-	-	2	-	= 2
33- विताननुनी 1.286.8 लोगों द्वारा कार्य प्रारंभ वंदना	-	-	-	1	-	= 1
34-वन-आगत 2.272.4,5 अयोध्या नरनारी द्वारा वंदना	-	-	-	2	-	= 2
35- राम वंदना- मंदोदरी द्वारा 6.103 छं.	4	-	-	-	-	= 4

64----

विवरण	संदर्भ	छंद	दोहा	सोरठा	चौपाई	पद	योग
		पंक्ति संख्या					
36- राम वंदना (विनयपत्रिका) पद 64		-	-	-	-	9	= 9
37- गुह द्वारा	6.120 छं.	4	-	-	-	-	= 4
38- भुशुण्डि द्वारा	7.123.7,8	-	-	-	2	-	= 2
39- कवि द्वारा	7.129 छं.	4	-	-	-	-	= 4

- सबसे बड़ा वंदना प्रकरण नाम का है । गोस्वामीजीने नाम को स्वयं भगवान् राम से बड़ा कहा है । इस रेखांकन से उनका कथन स्पष्ट होता है, अन्यथा यह कथन अंलकारिक प्रत्युक्ति मात्र प्रतीत होती है ।

निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार ।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार ।।- 1.301

- नाम के पश्चात् संत असज्जन और सुजन समाज का क्रम आता है । कवि की काव्य संबंधी समाज सापेक्ष्य मान्यता के अंतर्गत नायक या आराध्य के पश्चात् समाज की मान्यता प्रमुख हो जाती है । काव्य की कसौटी यही है कि बुध आदर करें[1.302] । इसी क्रम में हैं खलजन जो बिन काज दाहिने बायें रहते हैं तथा दूसरों के कार्यों में बाधा पहुँचाना ही जिनकी प्रकृति होती है ।

- गुरु तथा कविजन का वंदन मांगलिक है एवं आशीर्वाद प्राप्त करने के अभीष्ट से किया जाता है । गोस्वामी जी की वंदन क्रिया मात्र औपचारिक नहीं है । गुरु तथा कविजन वंदन प्रकरण में पूर्ण निष्ठा तथा भाव-भावना है जिसके संदर्भ में यह प्रकरण वंदन का आदर्श बन गया है ।

1.301- मानस- 1.23
1.302- जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं । सो श्रम बादि बाल कवि करहीं ।।-मानस- 1.13.8

65----

- महेश भवानी का वंदन प्रकरण रामकथा का प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है जिसमें वैष्णव एवं शैव संप्रदायों की तत्कालीन दूरी एवं विषमता दूर हो । इस प्रयास में गोस्वामी जी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है तथा राम और शिव की आराधना एक-दूसरे के लिये अन्योन्याश्रयी बन गई है ।

- राम वंदन प्रकरण परिवार के अन्य सदस्यों, माता कौशल्याजी, महाराज दशरथ सहित अन्य रानियों, के वंदन प्रकरण के समान है । यों तो सम्पूर्ण मानस एवं मानसेतर अन्यान्य तुलसी काव्य ग्रंथों में राम वंदना के ही प्रकरण हैं तथा उनकी एकमात्र राम वंदना लक्ष्य है किन्तु मानस महा काव्य की प्रस्तुति एवं प्रारंभ में राम वंदन प्रकरण अपेक्षातया छोटा है तथा महाराज दशरथ के परिवार के वंदन प्रकरण का अंग है । मानस में अन्यान्य स्थलों पर राम वंदन के अनेक प्रकरण हैं जो 5 की आवृत्ति से कम होने के कारण रेखांकन में प्रस्तुत नहीं हुए हैं ।

- वंदन प्रकरण में आवृत्ति का जितना महत्त्व है उससे कहीं अधिक क्रम वरीयता का है । प्रथम द्वितीय तृतीय, आदि के जिस क्रम में वंदन प्रकरण प्रस्तुत किये गये हैं, उस क्रम से वंदन प्रकरणों का महत्त्व प्रतिलक्षित एवं प्रतिपादित होता है । वंदनीय गुरुजन के अंतर्गत इस संबंध में विचार किया जायगा ।

- वंदन में प्रयुक्त बंदउँ, प्रनवउँ तथा नमामि की पदक्रम स्थिति निम्नलिखित है -

	प्रथम अद्‌र्धाली				द्वितीय अद्‌र्धाली			
	(1)	(2)	(3)	(4)	(1)	(2)	(3)	(4)
बंदउँ 24+1	20+1	1	1		1	-	1	-
प्रनवउँ 9	6	1	-		2	-	-	-
नमामि 5	-	-	-	2	-	1	2	-

इस प्रकार बंदउँ तथा प्रनवउँ के प्रमुख रूप से प्रथम पदीय प्रयोग हैं तथा नमामि के अंतिम या अंतिम पूर्व पदीय प्रयोग हैं ।

प्रथम पदीय प्रयोग से पद पर बल पड़ता है तथा अर्थ की दृष्टि से प्रथम पद का अर्थ केन्द्रीय भाव, बन जाता है । प्रथम पदीय वंदना प्रयोग से वंदनीय जन के प्रति श्रद्धा के पूर्व भाव एवं पूर्वाग्रह बने होते हैं जिनके संदर्भ में प्रसंग आते ही , चर्चा होते ही अथवा साक्षात्कार होते ही बंदउँ, प्रनवउँ शब्द अनायास ही मुखरित हो उठते हैं । इन शब्दों से वंदन का एक रूप मन में प्रकट होता है कि वंदना करने वाला व्यक्ति मस्तक झुकाये हुए, हाथ जोड़े हुये अथवा पैरों पर मस्तक रखे हुए वंदना कर रहा है । इस छबि के ये शब्द प्रतीक बन गये हैं ।

नमामि शब्द के प्रयोग के पूर्व वंदनीयजन के गुणों का वर्णन किया जाता है तथा उन गुणों के संदर्भ में अथवा हेतु नमन किया जाता है । नमामि शब्द के साथ श्रद्धा भक्ति के , नमन के हेतु प्रस्तुत होते हैं तथा नमन की सकारणता प्रतिपादित होती है । नमन की छबि भिन्न नहीं होती है । मस्तक झुकाना प्रमुख मुद्रा होती है जिसके साथ हाथ जोड़े रहते हैं ।

नमामि के साथ नायउँ/नायउ पद भी अभिवादन से इतर वंदन के अंतर्गत प्रयुक्त हुये हैं । इनका प्रयोग नमामि के विकल्प के रूप में ही हुआ है -

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा । पूजि पारथिव नायउ माथा ।।- 1.303

× × × × × × × × × × ×

देखि चरन सिरु नायउँ बचन कहेउँ अति दीन ।।- 1.304

1.303- मानस-2.102.1

1.304- मानस- 7.110 [ख]

1.1.3 स्तवन - स्तव या स्तवन के अंतर्गत स्तुतिगत सभी उपचार आ जाते हैं । स्तुति-आरती, गुणगान, कथा-कथन एवं श्रवण ये सभी स्तवन के अंग हैं । वंदन के पूजन उपचार का वाणीगत रूप स्तवन में प्रस्तुत किया जाता है । पूजन के षोडशोपचार तथा स्तवन मिल कर पूजन अथवा वंदन की अपेक्षा पूरी करते हैं । पूजन कर्म है तो स्तवन वचन है , मन तो दोनों में अपेक्षित एवं अन्तर्निहित होना ही चाहिये मन की तन्यता में ही कृत पूजन-स्तवन अथवा वंदन सार्थक एवं फलदा होते हैं ।

x ॰॰॰

- स्तवन के अंग स्तुति आरती, गुणगान एवं कथा-कथन-श्रवण मूलतः गुणगान के ही स्वरूप हैं ।

√स्तु धातु का अर्थ होता है प्रशंसा करना ,[1.305] स्तुति करना, किसी की प्रशंसा में गीत गाना, स्तवन द्वारा पूजन या सम्मान करना । स्तुति, स्तव, स्त्रोत , इन तीनों शब्दों का, किसी देवता के छंदोबद्ध स्वरूप कथन या गुणगान या गुण कथन का अभीष्ट होता है । स्तुति के साथ दीप धूप लेकर देवता के चारों ओर घुमाना आरती हो जाती है । विनयपत्रिका के पद संख्या 45,64 दो, स्तुति के पद हैं तथा इनमें कहीं आरती शब्द का प्रयोग भी नहीं किया गया है किन्तु इन दोनों स्तुति के पदों को श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार ने आरती संग्रह [1.306] में आरती के रूप में प्रस्तुत किया है । विनय-पत्रिका के पद संख्या 47 तथा 48 में आरती शब्द का प्रयोग हुआ है तथा आरती के शीर्षक में प्रस्तुत किये गये हैं । इन दोनों पदों को तो आरती संग्रह में रखा ही गया है। -स्तुति पूजा के साथ हो सकती है तथा पूजा से पृथक् भी हो सकती है किन्तु आरती पूजा के साथ ही होती है , पूजा से पृथक् आरती नहीं गायी जाती ।

1.305- राम करौं केहि भाँति प्रसंसा - मानस : 1.340.4

1.306- आरती संग्रह : गीताप्रेस गोरखपुर 21 वाँ संस्करण ।

68------

पूजा के अन्यान्य षोडशोपचारों के पश्चात् आरती की जाती है । पूजोपचार में मंत्र या क्रिया की कमी या त्रुटि का निराकरण आरती से हो जाता है तथा पूजा सम्पूर्ण हो जाती है ।

मंत्रहीनं क्रियाहीनं यत् कृतं पूजनं हरेः ।

सर्वं संपूर्णतामेति कृते नीराजनं शिवे ।।- 1.307

कथा-कथन एवं श्रवण, भगवान् का गुणगान ही है । गुणगान में सीधा-सीधा गुणकथन होता है जबकि कथा में कथा के माध्यम से गुणकथन होता है । कथा के माध्यम से गुणकथन होने पर गुणगान की प्रक्रिया रोचक ही नहीं प्रत्युत सामाजिक भी हो जाती है । गुणगान व्यक्तिगत आराधना है तो कथा-कथन एवं श्रवण एक सामाजिक-धार्मिक साधना है । इसीलिये गुणगान के अंतर्गत व्यक्ति की अपनी आशा-अपेक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में गुणों का संकलन होता है , जबकि कथा में जनसामान्य की रुचि के लोक कल्याणकामी गुणों का समावेश होगा । कथा एक प्रकार का सत्संग है जिसमें भगवद् भक्ति के एक उद्देश्य को लेकर जन समुदाय उपस्थित होता है तथा लाभान्वित होता है ।

- स्तुति- रचना के दो अंग होते हैं -

प्रथम आराध्य के गुणगान

द्वितीय स्तुतिकर्ता की याचना-कामना ।

स्तुतियाँ स्तुतिकर्ता की याचना- कामना विशेष के संदर्भ में भी प्रस्तुत होती हैं । इसीलिये इस संदर्भ के अनुकूल ही स्तुतियों में आराध्य के गुणों का समावेश होता है ।

1.1.3.1- स्तुति-आरती

मानस पीयूषकार ने मानस की 28 राम-स्तुतियों का उल्लेख किया है -

---

1.307 - आरती संग्रह: गीताप्रेस गोरखपुर 21 वाँ संस्करण पृष्ठ- 8

69-----

ये हैं -

	स्तुति	संदर्भ	विवरण पंक्ति संख्या [सभी प्रकार के छन्दों की] छन्द	दोहा	सोरठा	चौपाई	योग
रामस्तुति	1- विधिकृत	1-186 छं.	16	-	-	-	=16
	2- कवि [कौशल्या] कृत	1-191 छं. + 1.192	16	2	-	-	=18
	3-अहल्याकृत	1-210 छं.	10	-	-	-	=10
	4- परशुरामकृत	1-284-1-6	-	-	-	6	= 6
	5- सुनयना कृत	1-335 छं. + 1.336	4	-	2	-	= 6
6	6- जनक कृत	1-340-4-8+ 1-341+ 1.341.1-5	-	2	-	5 + 5	=12
	7- भरद्वाज कृत	2.106-5-8	-	-	-	4	= 4
2	8- वाल्मीकिकृत	2.125 छं. + 2.126 + 2.126.1-8 2.127	4	2	2	8	=16
	9- अत्रिकृत	3-3छं.+ 3.4	24	2	-	-	=26
5	10-शरभंगकृत	3-7.4-8+ 3.8	-	2	-	5	= 7
	11-सुतीक्ष्णकृत	3-10-1-21 + 3.11	-	2	-	21	=23
	12- कुंभजकृत	3-12-9-13	-	-	-	5	= 5
	13- जटायुकृत	3-31 छं.+ 3.32	16	2	-	-	=18
1-	14-हनुमानकृत	4.1-8,9+ 4.2.5	-	2	-	2+5	= 9
1-	15- विभीषण कृत	5.44.7,8+ 5-45	-	2	-	2	= 4

70----

	स्तुति	संदर्भ	विवरण पंक्ति संख्या (सभी प्रकार के छन्दों की) छन्द	दोहा	सोरठा	चौपाई	योग
4	16- देवकृत	6. 120. छं.	8	-	-	-	= 8
	17- विधिकृत	6. 110 . छं.	22	-	-	-	=22
	18 इन्द्रकृत	6. 112. छं. (दो छंद)	16+4	-	-	-	=20
	19- शिवकृत	6. 114. छं.	9	-	-	-	= 9
9-	20- वेदकृत	7. 12 छं.	24	-	-	-	=24
	21- शंभु कृत	7. 13. छं. +7. 14 (क)	20	2	-	-	=22
	22- सुग्रीव विभीषण जाम्बवान् कृत	7. 16-2-4 (केवल अनुभाव)	-	-	-	3	=03
	23- अंगदकृत	7-17-1-8	-	-	-	8	= 8
	24- पुरजन कृत	7-29-2-10	-	-	-	9	= 9
	25-सनकादिकृत	7-33-2-8 +7. 34+ 7. 34. 1-9	-	2	-	7+9	=18
	26- पुरजनकृत	7-46-2-6	-	-	-	5	= 5
	27- वशिष्ठ कृत	7. 424-8+ 7. 49	-	4	+3	13	=17
	28- नारदकृत	7.50-1-9	-	-	-	9	= 9
							=344

विनयपत्रिका की स्तुतियाँ निम्नलिखित हैं -

स्तुति	पद संख्या	पंक्ति संख्या	पद संदर्भ
गणेश	1	4	1
सूर्य	1	5	2
शिव	12	118	3-14
देवी	2	22	15, 16
गंगा	4	43	17-20

स्तुति	पद संख्या	पंक्ति संख्या	पद संदर्भ
यमुना	1	4	21
काशी	1	18	22
चित्रकूट (तथा कामतानाथ)	2	21	23-24
हनुमत्	12	138	25-36
लक्ष्मण	2	35	37-38
भरत	1	20	39
शत्रुघ्न	1	16	40
श्री सीता जी	2	14	41, 42
श्रीराम	17	332	43-44, 49-61, 62-63
श्रीरंग	3	18+18+18	57, 58, 59
श्री नरनारायण	1	18	60
श्री विन्दुमाधव	3	18+27+19	61, 62, 63
श्री राम नाम	1	18	46

मानस की आरती निम्नलिखित हैं -

आरती	संदर्भ	पंक्ति संख्या
1- मैनाकृत	1.95.2, 3	2
2- पुरनरनारीकृत	1.264.5, 6	2
3- नारीकृत	1.300.4	1
4- वर नारीकृत	1.318.[illegible]	2
5- रानीकृत	1.318.4	1
6- ,, ,,	1.318 छं.	2

आरती	संदर्भ	पंक्ति संख्या
7- तासु कृत	1.335	2
8- सौभाग्यवती कृत	1.344.6	2
9- मातु कृत	1.345.4-8	5
10- मातु कृत	1.348.1	1
11- ,, ,,	1.349.4,5	2
12- कैकेयी कृत	2.158.3	1
13- माताओं कृत	7.6.4	1
14- स्त्रियां कृत	7.8.6	1
15- ,, ,,	7.8.7	1
16- माताओं कृत	7.11.6	1
17- कवि कृत रामायण आरती	अंतिम पृष्ठ	9
		36

विनय पत्रिका की आरती निम्नलिखित हैं -

आरती	पद संख्या	पंक्ति संख्या	पद संदर्भ
राम	4	41	45, 47, 48, 64

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं -

1- सबसे अधिक स्तुतियां श्रीराम की की गई हैं ।

मानस एवं विनयपत्रिका में उनका आकार लगभग समान है ।

मानस में - 342 पंक्तियां

विनयपत्रिका में 332 पंक्तियां

73, 74, 75-----

प्रमुख पात्र , नायकएवं अन्यतम आराध्य होने की दृष्टि से राम के लिये इतनी स्तुतियाँ की जानी अपेक्षित थीं ।

2- हनुमान् एवं शिव दूसरे स्थान पर हैं जिनके लिये अपेक्षातया अधिक स्तुतियाँ प्रस्तुत की गई हैं -

हनुमान्	138 पंक्तियों में
शिव	118 पंक्तियों में

भगवान् राम के परम भक्त एवं प्रेमी होने के कारण इन दो पात्रों को यह वरीयता दी गई है ।

3-स्तुति एक प्रकार की केन्द्रीयकृत आराधना है । इसलिये 14 पात्रों की स्तुति करते हुये भी केन्द्रीय स्थिति भगवान् राम तथा उनके परम प्रेमी भक्त हनुमान् एवं शिव की रहती है । हनुमान् शिव के ही अवतार कहे जाते हैं । इस प्रकार केन्द्रीयकृत स्थिति में एक भगवान् राम हुये तथा दूसरे हुये उनके भक्त हनुमान् ।

4-स्तुति पंचदेव उपासना[1.308] की धार्मिक अपेक्षा का भी उपचार है । अतएव स्तुति के अंतर्गत पंचदेवों को लिया गया है -

गणेश , सूर्य , शिव , देवी तथा भगवान् राम ‡ केशव ‡

5- मानस में स्तुतियाँ भगवान् राम कीकी गई हैं, विनयपत्रिका में भगवान् राम के सहित पंचदेव एवं पचायतन तथा पंच तीर्थ ‡ गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, कामतानाथ ‡ (चित्रकूट में स्थित) एवं पंच विभव ‡ श्रीराम, श्रीरंग, श्री नर- नारायण,श्री विन्दु माधव, श्री राम नाम ‡ को लिया गया है ।

1.308- आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम् ।
पञ्चदेवमित्युक्तं सर्व कर्मसु पूजयेत् ।।

6- स्तुतियों में विधि, शिव, वेद, अत्रि, इन्द्र, इन पाँच की स्तुतियाँ क्रमशः 38,31, 24, 24, 20, पंक्तियों में होकर अपेक्षातया अधिक पंक्ति संख्या वाली हैं। कदाचित् कवि की इन विश्रुत वंदनीयों के व्यक्तित्व के अनुकूल स्तुतियाँ प्रस्तुत करने की कामना रही है। इस तथ्य की पुष्टि विकल्प से सुग्रीव, विभीषण, जामवान् की संयुक्त स्तुति की न्यूनतम पंक्ति संख्या से होती है जो 02 है जहाँ वाचिक अभिव्यक्ति वस्तुतः नाम मात्र की है। इन पात्रों की अल्पज्ञता इसका कारण रखा गया होगा।

7- स्तुतियों में तत्सम शब्दावली का प्रयोग बाहुल्य है जो स्तुति की परंपरागत प्रकृति के अनुकूल है। फिर भी विभीषण, अंगद, सुग्रीव, जामवान् जैसे पात्रों की शब्दावली में तद्भव शब्दावली की प्रधानता है। इस प्रकार गोस्वामी जी स्तुतिकर्ता के व्यक्तित्व से स्तुति को संबद्ध तथा अनुकूल बनाना चाहते हैं।

8- स्तुतियों के अंतर्गत आराध्य के स्वरूप में शील और शक्ति परक गुणों को आधार बनाया गया है। शील के साथ शोभा का अंग संपृक्त रहता है। इस प्रकार स्तुतियं को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं -

स्वरूप [शील:: / शक्ति::] स्वरूप [शील स्तुतियाँ / शक्ति स्तुतियाँ]

- किन्तु इसका यह आशय नहीं है कि यह वर्गीकरण सीमा बद्ध है तथा एक प्रकार की स्तुति में दूसरे गुणों का समावेश संभव न होगा। वस्तुस्थिति यह है कि आराध्य का समग्र व्यक्तित्व इन दोनों प्रकार के गुणों में अवधारित होता है। इसलिये दोनों प्रकार के गुणों का आकलन प्रत्येक स्तुति की अपेक्षा रहती है। तब अपेक्षातया प्रयोग आधिक्य के आधार पर ही इस प्रकार के वर्गीकरण संभव हो पाते हैं।

77------

9- स्तुतिकर्ता की अपनी याचना-कामना का संदर्भ-विशेष, स्तुति की रचना में विशेष महत्वपूर्ण होता है। अपनी आशा -आकांक्षाओं के परिवेश में स्तुतिकर्ता का आकर्षण जिन गुणों की ओर अधिक होगा, उन्हीं के आधार पर स्तुति-रचना संभव होगी। साधारणतया विद्वद्जन की स्तुतियों में दर्शन पक्ष प्रमुख रहा है तथा भक्तजनों की स्तुतियों में शोभा-शील पक्ष।

<u>स्तुतियों का रचना स्वरूप</u> - रचना की दृष्टि से स्तुतियों को दो वर्गों[1.309] में रख सकते हैं -

वंदना स्तुति - जिनमें जय जय शब्दों का प्रयोग हो

विनय स्तुति - अन्य जिनमें विनय प्रमुख हो। जय जय शब्दों का प्रयोग इनमें नहीं होता है।

<u>स्तुतियों का विवरण</u> - स्तुतियाँ विभिन्न स्वरूपों को प्रस्तुत करती हैं जिनमें शक्ति और शील के भाव समाहित किये गये हैं। इनका विवरण निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं -

स्वरूप

<u>शक्ति स्वरूप (16)</u>		<u>शीलस्वरूप (11)</u>	
<u>अद्भुत रूप (2)</u>	विधि 1, कौशल्या 2	अहल्या	- 3
<u>वीर रूप (1)</u>	सुर 16	परशुराम	- 4
<u>अनूप रूप (8)</u> -	अत्रि 9, वेद 20, सुतीक्ष्ण 11, गीध 13, इन्द्र 18, शिव 19, सनकादि 25	सुनयना	- 5
<u>नेतिनेति रूप (2)</u> -	वाल्मीकि 8 तथा जनक 6	अगस्त	-12
<u>सर्व रूप (1)</u> -	विधि 17	हनुमान्	-14
<u>छबि रूप (3)</u> -	भरद्वाज 7, शरभंग 10, सुग्रीव, जामवान्, अंगदादि 22	विभीषण	-15
<u>सुख रूप (1)</u> -	नारद 28	शिव	-21
		अंगद	-23
		नारिनर	-24
		नारिनर	-26
		वशिष्ठ	-27

1.309- मानस की स्तुतियों को इस दृष्टि से निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं-

<u>वंदना स्तुतियाँ (9)</u> - 1 विधि, 4 परशुराम, 13 गीधराज, 16 सुरवृंद, 17 विधि, 18 सुरपति, 20 वेद, 21 शंभु, 25 सनकसनातनादि

<u>विनय स्तुतियाँ (19)</u> - 2 कौशल्या जी, 3 अहल्या, 5 सुनयना, 6 जनक, 7 भरद्वाज, 8 वाल्मीकि 9 अत्रि, 10 सरभंग, 11 सुतीक्षण, 12 अगस्त, 14 हनुमान्, 15 विभीषण, 19 त्रिपुरारि, 22 जामवान आदि 23 अंगद 24 [illegible]

अद्‌भुत स्वरूप- अद्‌भुत स्वरूप के दर्शन विधि, तथा कौशल्या जी करते हैं।

विधि- पालन सुर धरनी अद्‌भुत करनी मरम न जानइ कोई।

कौशल्या जी - हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्‌भुत रूप बिचारी ।।- 1.310

अद्‌भुत रूप की छबि विधि और कौशल्या जी एक समान ही अवलोकित करते हैं -

विधि	कौशल्या जी
सुरनायक -------------------------	सुरभूपा
जन सुख दायक---------------------	जन अनुरागी
असुरारी-------------------------	खरारी
गो द्विज हितकारी------------------	बिप्र धेनु सुर------ हितकारी
अविनाशी ------------------------	अनन्ता
गोतीतं-------------------------	गोपार, गुन------ अतीता
मायारहित-----------------------	मायातीता
श्री भगवान/भगवंता------------------	प्रभु
गुन मंदिर------------------------	सब गुन आगर
सब बिधि सुंदर--------------------	शोभा सिंधु
सुख पुंज ------------------------	सुख सागर
मुनिमन रंजन---------------------	मुनि मन हारी
व्यापक -------------------------	अमाना ॥ अप्रमेय ॥
सिंधुसुता प्रिय कंता-----------------	श्रीकंता
परमानंदा -----------------------	यह सुख परम अनूपा
अद्‌भुत करनी --------------------	अद्‌भुत रूप
सहज कृपाला/दीनदयाला --------------	प्रकट कृपाला
प्रनतपाल/दीन पिआरे	दीनदयाला

1.310- मानस-1.185 छं. 3
मानस-1.191छं. 2

79-----

विधि	कौशल्या जी
चरित पुनीता ----------------------------	यह चरित जे गावहिं
भव भय भंजन----------------------------	ते न परहिं भव कूपा
जेहि सृष्टि उपाई --------------------	ब्रह्माण्ड निकाया, निर्मित माया
अति अनुरागी------------------------	जन अनुरागी
अबिगत/मरम न जानइ कोई---------------- जाकहँ कोउ नहिं जाना	ज्ञानातीता
वेद पुकारे ------------------------	जेहि गावहिं श्रुति

इन दोनों स्तुतियों की समान गुणावली में जनसुख दायक तथा उसके समकक्ष जन अनुरागी गुण विशेषणों की समानता के साथ विशेषता भी है । देव तथा पृथ्वी असुरों के अत्याचारों से दु:खी है, भयभीत है । अतएव जन सुखदायक रूप की कल्पना करते हैं-[1.312] ।
कौशल्या जी को कोई दु:ख नहीं है । अपने प्रेमानुराग के संदर्भ में पुत्र रूप में भगवान् की प्राप्ति की याचना उन्होंने की थी तथा इस प्रकार उन्हें भगवान के जन अनुरागी रूप के दर्शन हुए ।

किन्तु दोनों स्तुतिकर्ताओं की आशा-आकांक्षायें भिन्न हैं । अतएव समान गुणों के वर्णन के साथ अभीप्सागत अंतर भी है । विधि पृथ्वी और देवताओं के कष्टों के निवारण के लिये, उनकी संकटपूर्ण स्थिति से अवगत कराने के लिये स्तुति करते हैं । अतएव उनकी स्तुति में निम्नलिखित विशेष गुणों का समावेश किया गया है तथा उनके द्वारा देवताओं तथा पृथ्वी के पालन पोषण के दायित्व के प्रति भगवान् का ध्यान आकृष्ट किया गया है ।

1.312- इस याचना का सुखकर रूप एवं सुख प्रदान करने का उल्लेख होता है रावण वध पर -

कृपा दृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किए सुरवृंद

80------

- पालन सुर धरनी
- सब घट बासी
- गंजन बिपति बरूथा
- भव बारिधि मंदर
- सच्चिदानन्दा

कौशल्या जी भगवान् के बालरूप की कामना करती हैं तथा पुत्र रूप में उनकी बाल लीलाओं के अवलोकन के लिये लालायित हैं । अतएव इस अद्भुत रूप के स्थान पर कौशल्या जी भगवान् के सौन्दर्य तथा बाल क्रीड़ाओं को ही देखना चाहती हैं तथा इस अद्भुत रूप को त्यागने का आग्रह करती हैं -

- लोचन अभिरामा
- तनु घनस्यामा
- निज आयुध भुज चारी
- भूषन बनमाला
- नयन बिसाला

= समग्र छबि - सोभा सिंधु

- माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
- कीजै सिसु लीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ।।
- सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा ।।- 1.313

- इन दोनों स्तुतियों में प्रकृतिगत यह अन्तर भी है कि विधि द्वारा की गई स्तुति भगवान् की शक्ति का आह्वान करती है और शक्ति आराधना में ही उसकी परिणति होती है । कौशल्याजी द्वारा की गई स्तुति में शक्ति स्वरूप का दर्शन होता है तथा

1.313- वही- मानस - 1.185 छं. तथा मानस- 1.191 छं.

8 I-----

शोभाशील स्वरूप में उसकी परिणति होती है । पुत्र रूप में प्राप्त होने के प्रदत्त वरदान की कदाचित् यह अपेक्षा थी कि अवतरित होने से पूर्व शक्ति रूप का दर्शन कराया जाय तथा अवतार की प्रमाणिकता सिद्ध की जाय । अन्यथा बाल रूप में शक्ति स्वरूप की कोई समीचीनता नहीं थी । यही कारण है कि इस शक्ति स्वरूप के दर्शन, अनुगामी शोभा शील एवं सुंदर बाल रूप के पूर्वाभास- रूप में ही होते हैं ।

- इन दोनों रूपों की समान शक्ति छवि, प्रस्तुत संदर्भ के अनुकूल है । विधि जिस रूप में स्तुति करते हैं, अवतार हेतु याचना करते हैं, उसी रूप में अवतार के दर्शन होते हैं ।

वीर रूप - रावण वध के अवसर पर भगवान् राम के वीर स्वरूप के दर्शन देवताओं को होते हैं जो राक्षसराज के त्रास तथा आतंक से अति पीड़ित थे ।

स्वरूप दर्शन-[1.314]

सिर- जटा मुकुट सहित, बीच-बीच में प्रसून

भुजदंड- भुजदंडों से धनुष बाण घुमाते हुये

तन- रुधिरकणों से शोभित

अनूप रूप- अनूप रूप भूप शिरोमणि रूप है । इस रूप की विशेष रूप से प्रतिष्ठा की गई है । मानस की संशयगत स्थिति का कारण यह भूप रूप ही है । सती को इस रूप के दर्शन से ही संदेह होता है -

सतीं सो दसा संभु कै देखी । उर उपजा संदेहु बिसेषी ।।
संकरु जगतबंद्य जगदीसा । सुर नर मुनि सब नावत सीसा ।।
तिन्ह नृप सुतहि कीन्ह परनामा । कहि सच्चिदानंद परधामा ।।-1.315

1.314- सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं ।
जनु नील गिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं ।।
भुजदंड सरकोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने ।
जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने ।।-मानस-6.102छं.5-8
- अध्यात्म रामायण में भी वीर राम का ऐसा ही वर्णन है -
हत्वा युद्धे दशास्यं त्रिभुवन विषमं वामहस्तेन चापं,
भूमौ विष्टभ्य तिस्ठन्नितर कर धृतं भ्रामयन्बाणमेकम् ।
आरतो पांगनेत्रः शरदलितवपुः सूर्य कोटि प्रकाशो वीर श्री,
बंधुरांग स्त्रिदशमतिनुतः पातु मां वीर रामः ।। अ०रा० 12/88

1.315-मानस-1.49.5,6,7

82--

भरद्वाज को भी ऐसा ही संशय होता है -

एक राम अवधेस कुमारा । तिन्ह कर चरित बिदित संसारा ।।

नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा । भयउ रोषु रन रावनु मारा ।।

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि ।।-1.316

- भगवान् का रूप अनूप इस प्रकार है कि न उसको निर्गुण कह सकें न सगुण - वह ब्रह्म रूप में निर्गुण है तथा अवतार रूप में सगुण है । वेद इसीलिये जय सगुन निर्गुन रूप कह कर अनूप रूप में भूप शिरोमणि रूप अवलोकित करते हैं ।

- इस अनूप रूप की स्तुति निम्नलिखित सात भक्त करते हैं -

अत्रि, सुतीक्ष्ण, गीध, इन्द्र, शिव, वेद तथा सनकादि,

अत्रि- अनूप रूप भूपतिं । न तो ऽहमुर्विजा पतिं ।।- 1.317

सुतीक्ष्ण- निर्गुण सगुण विषम सम रूपं । ज्ञान गिरा गोतीतं अनूपं ।।- 1.318

गीध - जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही ।।- 1.319

इन्द्र- मोहि भाव कोसल भूप । श्रीराम सगुन सरूप ।।- 1.320

शिव- अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर ।... बसहु राम नृप मम उर अंतर ।।- 1.321

वेद- जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने ।।- 1.322

सनकादि- जय निर्गुन जय जय गुनसागर
जय इंदिरा रमन जय भूधर । अनुपम अजअनादि सोभाकर ।।-1.323

अनूप स्तुतियों में दो पक्ष प्रमुख रूप से लिये गये हैं -

- निर्गुण सगुण रूप तथा उससे संबंधित विशेषण ।

- भूपति रूप तथा उससे संबंधित विशेषण ।

1.316- मानस-1.45.7,8 एवं 1.46

1.317- मानस- 3.3.छं.2।

1.318- मानस- 3.10.11

1.319- मानस-3.31.छं. 1

1.320- मानस-6.112.छं. 14

1.321-मानस-6.114 छं. 3 व 8

1.322- मानस-7.12. छं. 1

1.323-मानस-7.33-3,4

निर्गुण सगुण रूप के संबंध में निम्नलिखित गुणों का अवलोकन हुआ है -[1.324]

अत्रि - अप्रमेय बैभव , विशुद्ध बोध विग्रह, निरीह, शाश्वत , ईश्वर , विभु , प्रभो , मुनीन्द्र संतरंजनं , सुरारि वृंद भंजनं , देखि राम छबि नयन जुड़ाने

सुतीक्षण - निर्गुण सगुण विषम सम रूपं , ज्ञान गिरा गोतीत अनूपं ,अमलमखिलमनवद्यमपारं व्यापक , अविनाशी ,

गीध- अप्रेमय, अज, अव्यक्त, अगोचर, निर्गन सगुन गुन प्रेरक ,

इन्द्र - ब्रह्म , निर्गुन, अव्यक्त, श्रीराम सगुन सरूप,

शिव - अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर

वेद - सगुन निर्गुन रूप , अनूप, अव्यक्त मूल मनादि ,

सनकादि - अज, अनादि, निर्गुन , गुन सागर, अनंत , अनामय,

-भूपति रूप तथा उससे संबंधित विशेषण निम्नलिखित रूप में प्रयुक्त हुये हैं-[1.325]

अत्रि-	दिनेश वंश मंडनं	इंदिरा पतिं/उर्विजापतिं	प्रलंब बाहु विक्रम
सुतीक्षण -	दिनकर कुल केतु:	सीतानयन चकोर निशेसं	उर बाहु विशाल, अतुलित भुजप्रताप बलधाम
गीध -		रमानिवास	बाहु विशाल, राजीव आयत लोचनं
इन्द्र-	कोसल भूप	रमा निवास	अतुलित बल, भुजदंड प्रबल प्रताप
शिव-	राम नृप, महिपाल	श्री रमनें	धृत बर चाप रुचिर कर सायक
वेद-	भूप शिरोमणि	संजुत शक्ति	प्रबल खल भुजबल हने
सनकादि-	भूप मौलमनि	जय इंदिरा रमन	रघुकुल केतु सेतु श्रुति रक्षक,

---

1.324 }
1.325 } - कृपया देखें स्तुतियों के अंकित संदर्भ 1.1.3.1 के अंतर्गत ।

84----

नेति नेति रूप - वाल्मीकि जी तथा जनक जी भगवान् के नेति नेति रूप में दर्शन करते हैं । वेदों ने प्रभु के अनेक रूपों का वर्णन किया है तथा अंत में इन रूपों की कोई इति न पाकर नेति नेति कहा है । वाल्मीकि जी वेदों के वर्णन के अनुकूल ही प्रभु के दर्शन करते हैं । जनक जी परम ज्ञानी हैं । वह वेदों के अनुकूल ही प्रभु के गुणों का वर्णन करते हैं

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर ।

अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ।।- 1.326

- जनक जी ने भी वेदों के निर्गुण रूप के गुणों का वर्णन किया है तथा नयन विषय होने के लिये अपना परम सौभाग्य माना है -

ब्यापकु ब्रह्मुअलखु अबिनासी । चिदानंद निरगुन गुन रासी ।।

मन समेत जेहि जान न बांनी । तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ।।

महिमा निगमु नेति कहि कहई । जो तिहुँ काल एकरस रहई ।।- 1.327

सर्व रूप - विधि इस रूप की स्तुति करते हैं -

अनवद्य अखंड न गोचर गो ।

सब रूप सदा सब होइ न सो ।। - 1.328

आप सर्व रूप हैं अर्थात् यह सारा जगत् आपका ही रूप है किन्तु यह सर्व रूप ही आप नहीं हैं । सब आपका रूप होते हुए भी यह सब आप नहीं हैं जगत् जड़ है, माया की रचना है, आप उसको धारण करने वाले हैं।- 1.329

इस रूप की स्तुति 1.330 में भगवान् के सभी रूपों के गुणों का समाहार किया गया है -

निर्गुण रूप - अज व्यापकमेकमनादि सदा, अनबद्य अखंड न गोचर गो ,

1.326- मानस- 2.126 1.327- मानस-1.340.6,7,8

1.328- मानस- 6.110छं0 15 (विधि कृत लंका काण्ड की द्वितीय स्तुति)

1.329- वाल्मीकि रामायण में कहा है - त्वं धारयति भूतानिवसुधांच सपर्वताम् 6.21

छान्दोग्यउपनिषद् में भी कहा है - सर्व ~~खलु~~ खल्विदं ब्रह्म छं. 3/14/1

1.330- मानस-6.110 छं. 1-22 एवं 6.111

85----

सगुण रूप - जय राम सदा सुखधाम हरे , रघुनायक सायक चाप धरे ,

अनूप रूप - तन काम अनेक अनूप छबी

नृप नायक दे बरदान मिदं जलजारूनलोचन भूप बरं ,

वीर रूप - भुजदंड प्रचंड प्रतापबलं । खल वृंद निकंद महा कुसलं

शील रूप - बिनु कारन दीनदयाल हितं । छबिधाम नमामि रमा सहितं

सोभा सिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात

इसीलिये एक अद्धांली में उल्लेख भी किया -

अवतार उदार अपार गुनं । महिभार बिभंजन ग्यान घनं

इस स्तुति की, सर्व रूप अनुकूल , यह भी रचनागत विशेषता है कि इसमें विभ्रमित एवं आश्चर्यचकित मन:स्थिति दृष्टिगोचर होती है । कोई क्रम नहीं है- एक अद्धांली से दूसरी अद्धांली में गुण वर्णन का क्रम टूटा हुआ है । अभी एक गुण पर दृष्टि जाती है तो अनुक्रम में उससे भिन्न गुण दृष्टिगोचर होता है । स्तुति के उत्तरार्द्ध में याचना के अंतर्गत क्रम बद्धता बन पाई है । इस रचना विशेषता से मानों गोस्वामी जी सर्वरूप दर्शन के समय की विभ्रमित मन:स्थिति की ओर भी संकेत करना चाहते हैं जैसी मन: स्थिति अर्जुन की सर्वरूप दर्शन के समय थी ।

छबि रूप - भरद्वाज , शरभंग सुग्रीव जाम्बवान् अंगदादि की स्तुतियों में किसी गुण विशेष के स्थान पर समग्र छबि के दर्शन होते हैं । इसलिये दर्शन ही प्रमुख गुण बन गया है-

भरद्वाज-[1.331] सफल सकल सुभ साधन आजू । राम तुम्हहि अवलोकत आजू ।।

तुम्हरे दरस आस सब पूजी ।

शरभंग-[1.332] चितवत पंथ रहेउं दिन राती । अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ।।

तब लागि रहहु दीन हित लागी । जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी।

1.331- मानस-2. 106.6,7

1.332- मानस- 3.7.3, व 6

सुग्रीव , जामवान, अंगद नीलादि -[1.333]

एकटक रहे जोरि कर आगे । सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे ।।

प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं । पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं ।।

इन स्तुतियों में प्रभु दर्शन ही इत्यलम् है ।इसलिये गुण वर्णन का अभाव है । गुण वर्णन के स्थान पर दर्शनगत मानसी सुखद अनुभूतियों का उल्लेख है ।

सुख रूप - सुख रूप स्तुति में 'रावनारि सुख रूप भूपबर' विशेष गुण का उल्लेख है । रावण दुख रूप रहा है । उसके अरि सुखरूप हुये, यह उपपत्ति प्रस्तुत की गई है । इस स्तुति[1.334] में इसीलिये तीन पक्ष प्रस्तुत हुये हैं जिनमें नर-अवतार के भूपवर रूप को ही सुखद माना है ।

राक्षस संहार - जातुधान बरूथ बल भंजन

खरदूषन बिराध बध पंडित

भुजबल बिपुल भार महि खंडित

दीन रक्षण - गुनि सज्जन रंजन अघ गंजन

भूसुर ससि नव बृंद बलाहक

असरन सरन दीन जन गाहक

शोभाशील- पंकज लोचन, कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन

नील तामरस स्याम काम अरि।हृदय कंज मकरंद मधुप हरि ।

गोस्वामी जी का यह सुख रूप गीता के सौम्य रूप का पर्याय है । गीता[1.335] में मानुष रूप जिस प्रकार सौम्य एवं सुखद है उसी प्रकार मानस में यह मानुष भूप रूप सुखद है,

---

1.333- मानस- 7.16.2 व 3   1.334- मानस- 7.50.1-6

1.335- गीता - 11.5.1

दृष्ट्वा इदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।

इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ।।

सुखरूप है । गोस्वामी जी इसी रूप की प्रतिष्ठा करते हैं तथा इस रूप का प्रतिपादन ही मानस का अन्यथा अभीष्ट बन गया है ।

शीलस्वरूप - शीलस्वरूप की 11 स्तुतियाँ हैं जिनमें भगवान् के शील सौन्दर्य संबंधी गुणों का उल्लेख हुआ है । यह 11 स्तुतियाँ निम्नलिखित स्तुति कर्ताओं द्वारा की गई- अहल्या , परशुराम , सुनयना , अगस्त , हनुमान् , विभीषण , शिव , अंगद , अयोध्या के नरनारि- (दो स्तुतियाँ) , वशिष्ठ ।

इनका विवरण[1.336] इस प्रकार है -

अहल्या -	राजीव विलोचन देखेउँ भरि लोचन	प्रभु जग पावन भव भय मोचन
परशुराम-	सुभग सब अंगा सरीर छबि कोटि अनंगा	मद मोह कोह भ्रम हारी विनयसील करुना गुन सागर
सुनयना-	बोले राम सुअवसरु जानी सील सनेह सकुचमय बानी	भवप्रिय दोषदलन परिपूरन काम करुनायतन गुनि गाहक राम बिदित गति सबकी अहै
अगस्त-	सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर	संतत दासन्ह देहु बड़ाई
हनुमान्-	देखत रुचिर बेष कै रचना	सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें सेवक सुत मातु भरोसें रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें
विभीषण -	राम छबिधाम बिलोकी भुज प्रलंब कंजारुन लोचन स्यामल गात, आनन अमित मदन मन मोहा	प्रनत भय मोचन प्रभु भंजन भवभीर

1.336- कृपया देखें स्तुतियों के अंकित संदर्भ 1.1.3.1 के अंतर्गत

88----

शिव- महि मंडल मंडन चारु तरं गुन सील कृपा परमायतनं
धृत सायक चाप निषंग बरं बिलोकय दीन जनं

अंद- करुना सींव असरन सरन बिरदु संभारी ।
मोहि जन तजहु भगत हितकारी ।।
निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ
मोरें तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता ।
जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता ।।

अयोध्या नरनारि- जलज बिलोचन स्यामल गातहिं धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि
- प्रनत प्रतिपालक सोभा सील रुप गुन धामहि प्रभुहि उदारहि] प्रथम
-जननि जनक गुरु बंधु हमारे कृपा निधान प्रानते प्यारे प्रनतारित, हेतु रहित जग जुग उपकारी] द्वितीय

वशिष्ठ- देखि देखि आचरन तुम्हारा तव पद पंकज प्रीति निरंतर
होत मोह मम हृदयँ अपारा सब साधन कर यह फल सुंदर

स्तुतियों की विनय- स्तुति कर्ता गुण वर्णन एवं प्रशंसा करने के साथ अपनी याचना-कामना प्रस्तुत करता है । स्तुति का यह महत्त्वपूर्ण अंग होता है । इनका अनुशीलन इसीलिये पृथक् से किया जा रहा है ।

2। स्तुतियाँ ऐसी हैं जिनमें भगवान् का सहज स्नेह, एवं भक्ति, की याचना की है ।
7 स्तुतियाँ ऐसी हैं जिनमें भिन्न-भिन्न इतर याचनायें की गई हैं ।

2। स्तुतियों को इस प्रकार पुनः वर्गीकृत कर सकते हैं -[1.337]

चरणकमलों में प्रेम बने रहने की याचना - सात स्तुतियाँ -

3- अहल्या- पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ।

6- जनक- मनु परिहरै चरन जनि मोरें ।

7-भरद्वाज- निज पद सरसिज सहज सनेहू ।

9-अत्रि- चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि ।

1.337- कृपया देखें स्तुतियों के अंकित संदर्भ 1.1.3.1 के अंतर्गत

शिव- महि मंडल मंडन चारु तरं गुन सील कृपा परमायतनं
धृत सायक चाप निषंग बरं बिलोकय दीन जनं

अंगद- करुना सींव असरन सरन बिरदु संभारी ।
निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ मोहि जन तजहु भगत हितकारी ।।
मोरें तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता ।
जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता ।।

अयोध्या नरनारि- जलज बिलोचन स्यामल गातहिं धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि

- प्रनत प्रतिपालक सोभा सील रूप गुन धामहि प्रभुहि उदारहि] प्रथम

-जननि जनक गुरु बंधु हमारे कृपा निधान प्रानते प्यारे प्रनतारित, हेतु रहित जग जुग उपकारी] द्वितीय

वशिष्ठ- देखि देखि आचरन तुम्हारा तव पद पंकज प्रीति निरंतर
होत मोह मम हृदयँ अपारा सब साधन कर यह फल सुंदर

स्तुतियों की विनय- स्तुति कर्ता गुण वर्णन एवं प्रशंसा करने के साथ अपनी याचना-कामना प्रस्तुत करता है । स्तुति का यह महत्त्वपूर्ण अंग होता है । इनका अनुशीलन इसीलिये पृथक् से किया जा रहा है ।

21 स्तुतियाँ ऐसी हैं जिनमें भगवान् का सहज स्नेह, एवं भक्ति, की याचना की है ।
7 स्तुतियाँ ऐसी हैं जिनमें भिन्न-भिन्न इतर याचनायें की गई हैं ।

21 स्तुतियों को इस प्रकार पुनः वर्गीकृत कर सकते हैं -[1.337]

चरणकमलों में प्रेम बने रहने की याचना - सात स्तुतियाँ -

3- अहल्या- पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ।

6- जनक- मनु परिहरै चरन जनि मोरें ।

7-भरद्वाज- निज पद सरसिज सहज सनेहू ।

9-अत्रि- चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि ।

1.337- कृपया देखें स्तुतियों के अंकित संदर्भ 1.1.3. के अंतर्गत

17- विधि - दे बरदानमिदं - चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं ।

20- वेद- मन वचन कर्म विकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं ।

27- वशिष्ठ- जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ।

हृदय में निवास करने की याचना - पाँच स्तुतियाँ

10- सरभंग - मम हियँ बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम ।

11-सुतीक्ष्ण - मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम ।

12- अगस्त- बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता ।

13- गीध - मम उर बसउ सो समन संसृति..... ।

19 शिव - अनुज जानकी सहित निरंतर । बसहु राम नृप मम उर अंतर ।।

भक्ति की याचना - तीन स्तुतियाँ

18 सुरपति - दे भक्ति रमा निवास त्रास हरन सरन सुखदायकं ।

21 शिव - बार बार बर मागउँ

पद सरोज अनपायनी भगति सदा सत्संग ।

25-सनकादि- प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ।

अति प्रेमगत निकटता से -प्रकट कोई याचना नहीं- संदर्भ - पाँच स्तुतियाँ

22 जामवान सुग्रीव अंगद नीलादि- प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं

पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं

24, 26] अयोध्या के नगरवासी- - भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहिं ।

- गहे सबनि पद कृपाधाम के ।

- विस्मरण या विलग न करने की याचना -

14 हनुमान्- मोहि बिसारेउ दीन बंधु भगवान ।

23 अंगद- राखहु सरन नाथ जन दीना

अब जनि नाथ कहहु गृह जाही ।

कृपा विलोकन की याचना - एक स्तुति

28-नारद- मामवलोकय पंकज लोचन । कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन ।।

इतर यातनाओं की सात स्तुतियाँ- 1.338

﴾1﴿ - भगवान् दया करें और हमारी चिन्ता करें , हमारे कष्टों का निवारण करें-

-1 विधि द्वारा पृथ्वी तथा सुरों के कष्ट निवारणार्थ -

द्रवउ सो श्री भगवाना

करउ अघारी चिंत हमारी

﴾2﴿ 2-कौशल्या-शिशु लीला देखने के लिये उत्सुक कौशल्या जी द्वारा एतदर्थयाचना-

कीजै सिसु लीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा ।

﴾3﴿ 4-परशुराम जी द्वारा अपने द्वारा किये गये व्यवहार के लिये क्षमा याचना-

अनुचित बहुत कहेउ अग्याता

छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता

﴾4﴿ 5 - सुनयना जी की सीता जी को किंकरी मानकर दया व कृपा करते रहें -

तुलसीस सीलु सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी

﴾5﴿ 8- वाल्मीकि जी द्वारा निवास हेतु 14 निकेतों का उल्लेख तथा निवास याचना-

सुनहु राम अब कहउँ निकेता । जहाँ बसहु सिय लखन समेता ।।

1.338- कृपया देखें स्तुतियों के अंकित संदर्भ 1.1.3.1 के अंतर्गत

§6§ 15 विभीषण द्वारा शरणागत याचना -

त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर

§7§ 16- सुरवृंद द्वारा राक्षसों के भय से मुक्त होने की याचना -

कृपा दृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किए सुरवृंद

विनय पत्रिका की स्तुतियाँ -

1- विनय पत्रिका में पंचस्तुति के चार प्रकरण हैं -

पंचदेव[1.339] - पंचदेव उपासना सभी धार्मिक कार्यों के लिये अपेक्षित होती है

गणेश, सूर्य, शिव, देवि, केशव § राम §

पंचायतन- श्री राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, § हनुमान् §

पंच तीर्थ- गंगा, यमुना, चित्रकूट, कामदकूट § चित्रकूट §, काशी

पंच विभव-[1.340] हरि, हर, रंग, नर-नारायण, विन्दु माधव (रामस्वरूप)

1.339- आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्
पञ्चदेवभित्युक्तं सर्वं कर्मसुपूजयेत् ।।

शास्त्रों में भगवान् के चार प्रकार के अवतार माने गये हैं - आवेश, अंश, कला और पूर्ण ब्रह्म, शिव, इन्द्र, गणेश, सूर्य, शक्ति आदि देवताओं में भगवान् की शक्ति आवेशित होकर कार्य करती है अतएव ये आवेशावतार हैं। इनमें श्री जानकी वल्लभ ही तत्त्व दैवत रूप में हैं, ऐसा समझ कर वंदना की गई है।

1.340- पंच विभव में श्री रंग श्री रामजी का ही नाम और संबोधन है। पद 57 में श्री रंग की स्तुति है। यह स्तुति श्रीराम की ही है। पद के अंत में श्रीराम संबोधन आता है

तत्र त्वदभक्ति सज्जन समागम सदा भवतु मे राम विश्राममेकं

रंगनाथ नाम से दक्षिण देश में राम की वंदना होती है। रघुकुल के इष्टदेव श्रीरंगजी की मूर्ति थी, ~~ही~~ जो राज्याभिषेक के पश्चात् विभीषण को दी गई थी §

§ विनय पीयूष : पृ 452 सं. 2020

नरनारायण- श्री लाला भगवानदीन जी ने अपनी टीका में लिखा है - इसे श्रीराम जी का विशेष तपस्वी रूप मानकर विनय करते हैं।
-महाभारत शान्ति पर्व के अंतर्गत नारायण आख्यान में स्वयंभुव मन्वन्तर के नर सतयुग में चार स्वयंभू अवतार बताये हैं जिनके नाम हैं - नर, नारायण, हरि और कृष्ण। नर-नारायण बदरिकाश्रम में जाकर घोर तप करते हैं।

विंदुमाधव- स्कन्द पुराण के काशीखण्ड में विवरण है कि भगवान् विष्णु काशी जाते हैं। वहाँ अग्निविन्दु नामक महर्षि की स्तुति से प्रसन्न होकर पंचनद तीर्थ विन्द तीर्थ कहलाता है तथा विष्णु भगवान अग्निविन्दु के विन्दु को अपने नाम के पूर्व जोड़ कर विन्दु माधव कहलाते हैं।
§ स्क० -का. उ. 58-60

92------

i पंच स्तुतियों के साथ श्री रुद्र के अवतार , पंचायतन के अंग , परम भक्त एवं अनन्य सेवक हनुमान् तथा 'ब्रह्म राम तें नामु बड़' रूप में नाम, 'राम' की स्तुति की है ।

ii स्तुतियों की संख्या विशेष रखी गई है । श्रद्धा निवेदन के अंतर्गत संख्या की दृष्टि भी महत्वपूर्ण होती है -

	पद संख्या		पद संख्या
श्री गणेश -	1	श्री हनुमान् -	12
श्री सूर्य -	1	श्री लक्ष्मण -	2
श्री शिव-	12 + 1	श्री भरत -	1
श्री देवी -	2	श्री शत्रुघ्न -	1
श्री गंगा-	4	श्री सीता -	2
श्री यमुना-	1	श्री राम सभी विभव रूपों में	17
श्री काशी-	1		
श्री चित्रकूट- एवं कामदकूट	2		

iii विनय पत्रिका की स्तुतियों के स्तुतिकर्ता स्वयं गोस्वामी जी हैं । अपनी दीनता एवं उच्च विद्वता एवं अध्ययन - अनुशीलन वृत्ति के संदर्भ में स्तुतियों में उनके व्यक्तित्व की अपनी छाप है ।

- स्तुतियाँ में तत्सम शब्दावली की प्रमुखता एवं अधिकता है ।
- स्तुतियों में अन्यथा भाषागत क्लिष्टता आ गई है , कृदन्त, तद्धित तथा कूट पद रचना जिसके प्रमुख कारण हैं ।
- स्तुतियों की संख्या जहाँ एकाधिक है , वहाँ स्तुतियाँ स्तुति प्रकरण के रूप में प्रस्तुत हुई हैं ऐसे 3 प्रकरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं -

  शिव स्तुति प्रकरण

  हनुमान् स्तुति प्रकरण

  श्री राम स्तुति प्रकरण

4- मानस की स्तुतियों में स्तुतिकर्ता भिन्न- भिन्न थे । उनकी अपनी योग्यता, संस्कार एवं श्रद्धाभक्ति का परिवेश था । इस कारण स्तुतियों में प्रकट भिन्नता स्तुतिकर्ता की भिन्नता के कारण थी । विनय पत्रिका की स्तुतियों के स्तुतिकर्ता एक हैं । अतएव मानस की स्तुतिकर्ताओं की भाँति उनके कारण भिन्नता आने का प्रश्न नहीं उठता है । यहाँ भिन्नता विभिन्न स्तुत्य आराध्यों के प्रति उनकी अपनी श्रद्धा सेवा भावना की भिन्नता के कारण आती है । प्रत्यक्ष रूप में श्रीराम परम आराध्य हैं तथा शेष आराध्य उनके संबंध से संबंधित हैं , उनके प्रति स्तुतिगत अंतर स्तुतियों के पद तथा स्तुतियों की पंक्ति संख्या के आधार पर किया जा सकता है तथा तदनुकूल किया गया है । इससे अधिक रचनाकार के अंतर में पैठने का प्रयत्न करना दुष्प्रयास होगा । स्तुति मनमानस की भाव-भावनाओं के तरंगित एवं स्वरित रूप होते हैं । किस धुन में, किस मौज में एवं किस विह्वलता में स्तुति [1.341] उपज आती है इसका आकलन स्वयं रचनाकार नहीं कर सकता, न करना चाहेगा । यदि सप्रयास कुछ होता है तो वह इतना ही कि संख्या विशेष के प्रति आग्रह हो जाय अथवा वंदनीय देव विशेष की स्तुति भी बना कर सम्मिलित कर ली जाय । यथा 20 स्तुतियाँ रच गई हों तो 21 करने के लिये एक और की रचना कर ली जाय ; " निज निज अवसर सुधि किये बलि जाउं " की दृष्टि से पंचायतन के सभी सदस्यों के लिये स्तुतियाँ प्रस्तुत की जाँय अथवा स्मार्त संप्रदाय की अपेक्षानुकूल पंच देवों के लिये स्तुतियाँ प्रस्तुत हों । विनय पीयूषकार ने कुछ ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं -

संगीत कला कुशल पूज्य कवि ने समय समय पर कुछ गीत के पद रचे और फिर उनको एकत्र करके उस ग्रंथ का नाम 'श्री राम गीतावली' रख दिया । कुछ वर्षों के बाद किसी कारण से उन्होंने कुछ विनय के पद और लिखे ....
दोनों को किसी समय एकत्र कर उस पूरे ग्रंथ का नाम विनय पत्रिका रखा ....
अंत के तीन पद तभी संगत हो सकेंगेजब श्री लक्ष्मण जी आदि के विनय के पद भी उसमें ह
1.342

5- विनयपत्रिका वंदना और विनय की संहिता है । विनय से पूर्व वंदना अपेक्षित भी है इसी दृष्टि से प्रथम पदों में स्तुति एवं वंदना की गई है तथा अनुवर्ती हैं , याचना, कामना ,' और विनय के पद । इस प्रकार विनय पत्रिका वंदना और विनय के समन्वित रूप को प्रस्तुत करती है ।

1.341- आह से उपजा होगा गान - पंत

1.342- विनयपीयूष - भूमिका पृ0 5, 6:स.74

5 (अ) - स्तुतियों की अभिव्यक्ति स्तुति के अतिरिक्त व्याज स्तुति द्वारा भी की गई है।
शिव स्तुति प्रकरण में यह प्रयोग अवलोकनीय है -

बावरो रावरो नाह भवानी
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, वेद बड़ाई भानी
निज घर की बरबात बिलोकहु , हौ तुम परम सयानी । - 1.343

- गोस्वामी जी ने इस प्रयोग को " प्रेम- प्रसंसा-विनयब्यंगजुत " कहा है तथा व्याज स्तुति को व्यंग्य स्तुति नाम से अभिहित किया है ।

5 (ब)- अन्यत्र हनुमत् स्तुति प्रकरण में स्तुतिकर्ता की की एक अन्य मनः स्थिति प्रस्तुत की है -

अति आरत, अति स्वारथी , अति दीन-दुखारी
इनको बिलगु न मानिये बोलहिं न बिचारी ।

इसको 'कटु कहिये गाढ़े परे' का संदर्भ मानना चाहिये तथा स्तुतिकर्ता के कटु वचनों को क्षमा कर देना चाहिये । इस संदर्भ में कटु स्तुति प्रस्तुत की गई है ।

जानत हौं कलि तेरेऊ मन गुनगन कीले ।
सो बल गयो किंधौं भये अब गरब गहीले ।।- (पद 32)

7- स्तुतियों में विधागत भी प्रयोग अवलोकनीय है । एक पद में हर-हरि दोनों की स्तुतियाँ प्रस्तुत की हैं तथा इसको हरिशंकरी पद की संज्ञा दी गई है । पद की 1,3, 5,7,9,11,13,15,17, पंक्तियों में विष्णु की तथा 2, 4, 6, 8, 10, 12, 14, 16, पंक्तियों में शिव की स्तुति प्रस्तुत की गई है । - 1.344

8- अलंकारिक प्रयोगों की भी इन स्तुतियों में विशेष रुचि रही है -
(अ)- गोस्वामी जी रूपक अलंकार के लिये सुविख्यात हैं जैसे उपमा के लिये कालिदास हैं। स्तुतियों में रूपकों के साधारण प्रयोगों के अतिरिक्त सांग रूपकों के भी सुंदर उदाहरण हैं । अवलोकनीय हैं - 1.345

1.343- वि0 पद 5 1.344- वि0 पद 49

1.345- वि0 पद क्रमशः 58व59

95----

- शरीर रूपी ब्रह्माण्ड में मन रूपी मयदानव द्वारा रचित सुप्रवृत्ति रूपी लंका , मोह रूपी रावण आदि तथा विभीषण रूपी जीव
- संसार रूपी भयानक वन , कर्मरूपी वृक्ष , वासनारूपी लताएँ, चित्त की वृत्तियाँ रूपी मांसाहारी पक्षी , क्रोध रूपी मतवाला हाथी, काम रूपी सिंह आदि तथा मृग रूपी जीव

(अ)- शब्दालंकार में अनुप्रास गोस्वामी जी को बहुत प्रिय हैं । साधारण प्रयोगों के अतिरिक्त पद की पूरी पंक्ति में एक- एक वर्ण की सुंदर अनुप्रास योजना विशेष रूप से उल्लेखनीय है । यह कोमला वृत्ति के संदर्भ में वृत्यानुप्रास की सुंदर प्रस्तुति है- 1.346

देव-

दनुजसूदन, दयासिंधु , दंभापहन, दहन दुर्दोष, दर्पापहर्ता
दुष्टतादमन , दमभवन, दुःखौघहर, दुर्ग दुर्वासना , नाशकर्ता
भरिभूषण , भानुमंत, भगवंत, भव भंजनाभयद, भुवनेश भारी .. आदि 1.347

(इ) -इस अनुप्रास योजना में पद की पंक्तियों का वर्णक्रम प्रयोग विशेष रूप से अवलोकनीय है-

9-(अ) -आवृत्ति के अंतर्गत गोस्वामी जी को 5 , 7, 9, संख्यायें विशेष प्रिय हैं । स्थान- स्थान पर संख्या विशेष की आवृत्ति की योजना परिलक्षित होती है । अवलोकनीय हैं कतिपय उदाहरण

- जयति - 5 बार - पद संख्या 27, 29, 38, 39, 40- प्रत्येक पद में
- जयति- 9 बार - पद संख्या 25, 26, 43, 44,- प्रत्येक पद में
- जयति- 3 बार- पद संख्या 28 (3 की दो आवृत्तियाँ) - प्रत्येक पद में
- देव- 1.349 (अ) 9 बार-पद संख्या 10, 11 तथा 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58, 59, 60, 61 में प्रत्येक पद में = 15 स्तुतियाँ ।

1.346- वि0 पद -56 1.347- वि0 पद-56 (रेखांकन)

1.348- विनयपीयूष के पदों में देव की आवृत्ति 9 बार दिखलाई गई है ।गीता प्रेस की विनयपत्रिका की प्रति में इन पदों में केवल एक बार संबोधन के स्थान पर देव का प्रयोग है ।

1.349 (अ)-नाम सार्थक विशेषण होते हैं । इसीलिये नाम का अर्थ पूछा जाता था -कहहु नाम कर अरथ बखानी - मानस-1.161.8 । कालान्तर में नाम रूढ़ हो गये अर्थ का महत्वपूर्ण पक्ष विलीन हो गया । केवल एक अभिधान हेतु रह गया । इसी संदर्भ में उक्ति बनी आँखों के अंधे नाम नैनसुख

10- विनयपत्रिका की स्तुतियों का वर्गीकरण -

10- ﴾अ﴿ -सामग्री संकलन पद्धति से तीन प्रकार की स्तुतियाँ बनती हैं -

1- व्यक्तित्व संबंधी - जिनमें व्यक्तित्व प्रकाशक गुणों एवं स्वरूप का वर्णन किया गया है यथा- साकार, निराकार, अज जैसे विशेषणों युत

2- कृतित्व संबंधी - जिनमें कृतित्व या लीला प्रकाशक विवरण प्रस्तुत किये गये हैं यथा- कालनेमिहंता, भूमि-भर भार हर, जैसे विशेषणों युत

3- प्रभाव संबंधी - जिनमें प्रभाव सूचक विवरण प्रस्तुत किये गये हैं - यथा- शरण-भयहरण, त्रयलोक शोकहर जैसे विशेषणों युत

- विनयपत्रिका की स्तुतियों में प्रायः तीनों प्रकार की सामग्री का संकलन हुआ है जैसी कि स्तुति की प्रकृतिगत अपेक्षा होती है, साथ ही पृथक् स्तुतियाँ भी हैं जिनमें एक प्रकार की सामग्री की अधिकता है तथा इस प्रकार इस आधार पर एक विशेष प्रकार की स्तुति कही जा सकती है ।

10 ﴾अ﴿- आवृति संख्या का अभीष्ट सम्मानसूचक भी प्रतीत होता है । जैसे सम्मानसूचक 'श्री' का विशेष संख्याओं में प्रयोग हुआ करता था, कदाचित् उसी संदर्भ में जयति 1.349 ﴾ब﴿ तथा देव पदों का उपर्युक्त प्रयोग हुआ है । इनके आधार पर स्तुतियों को दो वर्गों में रख सकते हैं - जय स्तुति और देव स्तुति

जय स्तुति	जयति- 5 बार- लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के लिये	-पद38, 39, 40	प्रत्येक पद में
	5 बार- हनुमान् के लिये	- पद- 27, 29	,,
	3 बार -हनुमान् के लिये	- पद-28	,,
	9 बार- हनुमान् के लिये	- पद-25, 26	,,
	9 बार- भगवान् राम के लिये	- पद-43, 44	,,

1.349 ﴾ब﴿-जयति का प्रयोग वंदना की प्राचीनरीति के अंतर्गत अपेक्षित रहा है -
जयेति नामो च्चार्य्यंततो स्तोत्रमुदीरयेत
प्रथम जय शब्द उच्चारण करके स्तुति करें । ﴾वि.पी., 47- ११, 3﴿
इस रूप में सम्मान सूचक पद के रूप में जयति का प्रयोग होता था ।

देव स्तुति [देव 9 बार - भगवान् शिव के लिये - पद 10, 11, 49 प्रत्येक पद में
9 बार - भगवान् राम के लिये - पद 49से61 तक ,,
13 पदों में

10 (इ) - स्तुतियों का विशेषणपरक वर्गीकरण - स्तुतियों में 5 रूपों में विशेषणों का प्रयोग हुआ है । इनमें से कतिपय रूढ़ होकर नाम [1.349 (स)] रूप में प्रयुक्त हुये हैं

1- संबंध गत - संबंधों के संदर्भ में प्रस्तुत यथा- गिरिजापति, गजाधर ,

2- रूप गत - वेशभूषा परिचायक - यथा त्रिनेत्र, शूलपाणि ,

3-लीला गत - लीला के आधार पर प्रचलित - यथा त्रिपुरारि

4-शील गत - [1.349 (स)] शील परिचायक - यथा नर्मद,, वरद

5- रूढ़िगत - अन्य जो प्रारंभ में किसी उपर्युक्तवर्ग से संबंधित थे , कालान्तर में रूढ़ हो गये - यथा शिव, हर

- पुनःस्तुतियों के विशेषण अन्य दो रूपों में भी प्रयुक्त हुये हैं -

1- संबोधन संकेत - स्तुति के प्रारंभ या अंत में संबोधन के रूप में प्रयुक्त । इनमें ऐसे विशेषणों का प्रयोग होता है जो रूढ़ होकर अभिधान की कोटि में आ जाते हैं ।

2- अन्य प्रयोग संदर्भ- अन्य प्रयोग वेशभूषा , शील, लीला, आदि के प्रकाशक होकर प्रशंसा के साधन बनते हैं ।

- इस दृष्टि से स्तुतियाँ पुनः दो वर्गों [1.350 (अ)] में रखी जा सकती हैं -

(1) संबोधन संकेत सहित

(2) संबोधन संकेत रहित

11- स्तुतियों की पद क्रम योजना - राम स्तुतियों के बीच में ही 3 पद आरती के भी

1.349 (स)-शील के अंतर्गत क्षमाशीलता, दया, उदारता, अहैतुककृपा, भक्तवत्सलता आदि गुण आते हैं जिनके द्वारा भक्त के पाप ताप दोष दूषण क्षमा करके उसका कल्याण किया जाता है , उसको अपनाया जाता है । भगवान् राम के शील रूप का वर्णन शील की व्याख्या करता है -प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किय आपु समान
तुलसी कहूँन राम से साहिब सील निधान (1.29 क)

1.350 (अ)- यह दो वर्ग स्तुति की प्रकृति को भी स्पष्ट करते हैं । संबोधन रहित स्तुतियों में गुणगान एवं प्रशंसा के साथ विनय की गई है । विनय के लिये संबोधन करना अपेक्षित होता है ।

98-----

भी रखे गये हैं । देवक्रम योजना तथा पदक्रम योजना अनुशीलन- अपेक्षी है - 1.350ऽबऽ

विनय पत्रिका की स्तुतियों का विवरण -

ऽ1ऽ शिव स्तुति प्रकरण - शिवजी के लिये 12 स्तुतियाँ पृथक् तथा एक स्तुति हरिशंकरी पद में सम्मिलित रूप में प्रस्तुत हुई है ।

संबोधन संकेत - इन स्तुतियों में शिव के लिये निम्नलिखित संबोधन संकेत प्रयुक्त हुये हैं । पद संख्या 3, 4, 5, 6, 12 में प्रारम्भ में कोई संबोधन संकेत नहीं हैं तथा पद संख्या 4, 5, 6, 8, 11, 12, 13, 14, 49 में अंत में कोई संबोधन संकेत नहीं हैं ।

रुद्र नाम प्रयोग -1.351

रुद्रनाम आवृत्ति- 1.352

शंकर-	6	रुद्र -	2
शिव-	7	शंभु -	4
महेश-	1	सदाशिव -	1
हर -	4	भैरव -	1
वामदेव-	2	ईशान-	1
			29

शंकर- 6
शिव 7
महेश 1
हर 4
वामदेव 2
रुद्र 2
शंभु 4
सदाशिव 1
भैरव 1
ईशान 1
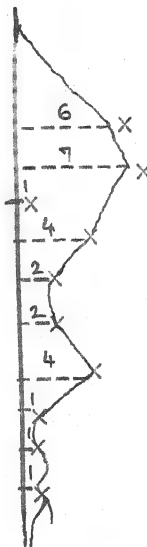
1.350ऽबऽ- विनयपत्रिका की देव एवं पदक्रम योजना पृथक् से अनुशीलन अपेक्षी है ।स्तुति तथा आरती का रचना की दृष्टि से सीमाबद्ध अंतर भी प्रस्तुत होना चाहिये । पदों का संकलन विनयपत्रिका है जिनकी समय समय पर कवि ने रचना की तथा पहिले राम गीतावली संकलन बनाया और अंततोगत्वा विनयपत्रिका संकलन बना । फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कवि की कोई पदक्रम योजना नहीं थी । विनय पीयूषकार ने प्रस्तुत पदक्रम योजना को प्रमाणिक माना है । हनुमत् स्तुति के अंतर्गत देवक्रम के संबंध में उन्होंने सकारण विवेचन किया है ।

1.351- सारदा तिलक तंत्र के अनुसार शिवजी की प्रधान अष्ट मूर्तियाँ हैं -
1. सदाशिव 2. ईशान ऽस्वामी ऽ 3. तत्पुरुष ऽ अपनी आत्मा में स्थितिलाभ कर्ता ऽ 4. अघोर ऽ निंदित कर्मकर्ता भी शिव कृपा से निंदित कर्म को शुद्ध कर लेते हैं ऽ 5. वामदेव ऽविकारों के नाशक ऽ 6. सद्योजातऽ बालसम परम शुद्ध एवं निर्विकार ऽ 7. हर-पार्वती 8. मृत्युंजय,

1.352- मानस में भी शिवनाम आवृत्तिसबसे अधिक है- शिव, शंभु, शंकर, हर, महेश
142 88 66 49 46
99------

स्वरूप वर्णन

वपुस् गत

नयन- जलज नयन (9)

सुविशाल लोचन कमल (10)

इंदु-पावक-भानु-नयन (11)

तापरत लोचन (12)

त्रयनयन (13)

लोचन विशाल (14)

नवनील कंज (15)

त्रैनैन (49)

कंठ- गरल कंठ (10)

गरल (गंगा) धरं (12)

अंग - अर्धांगशैलात्मजा (10)

- तरुण रवि कोटि तनु तेज भ्राजै (10)

- विपुल विस्तार (11)

- विग्रह गौर अमल अति (11)

- कर्पूर गौर (13)

- वदन छवि अनूप (11)

- तेजायतन (49)

- कंबु-कुंदेंदु -कर्पूर- गौरं (12)

- कुंदकर्पूर-वपु-धवल (49)

स्वरूप-परमरम्यं (12) काममद मोचनं (12)

भीषणकार, भयंकर (11)

विकट वेषं (12)

उग्ररूपं (10) क्रोधराशि (49)

सुंदरं (12) सर्वसौभाग्यमूलं (12)

लोकाभिरामं (10)

काम सतकोटि लावण्य धामं (10)

वेशभूषागत

मौली- मौली संकुल जटा मुकुट (10)

सिरसि संकुलित-कल-जूट-पिंगलजटा (11)

मौलि जटा (49)

भाल- बाल शशि भाल (10)

ललित लल्लाट पर राज रजनीशकल कलाधर (11)

बर बाल निशाकर मौलिभ्राज (13)

भ्राज बिबुधापगा (11)

गंगाधर (12)

चन्द्रशेखर (49)

श्रवण- श्रवण कुंडल (10) (11)

उरग- नर-मौलि-उर मालधारी (11)

भुजगेन्द्रहार (13)

कण्ठ- व्याल नृकपाल माला (10)

कर- शूलनायक पिनाक-कर (10)

चर्म असि शूलधर (11)

- शर-चापकर (11)

शूलिनं (12)

शूल-पाणि (49)

परिधान -व्याघ्र गज चर्म परिधान (10)

व्याघ्र चर्माम्बरं (11)

मतगजचर्मधर (49)

भूषागत

भूषण - अहि भूषण ॥9॥

- भस्म सर्वांग ॥10॥ भस्म तनु भूषणं ॥11॥

यान- वृषभयानं ॥ 10॥

- यान वृषभेशा ॥11॥

- वृषभगामी ॥49॥

-रूप, शक्ति, शील, व्यक्तित्व विधायक एवं परिचायक विशेषण हैं । शक्ति के अंतर्गत, लीला, प्रभाव, गुण संबंधी विशेषण आते हैं ।

लीलागत -

विषपान- कालकूट जुरजरत सुरासुर निजपन लागि किये बिषपान ॥3॥

- नदत सुर असुर नरलोक शोकाकुलं कृत गरल पानं ॥11॥

त्रिपुरवध- दारुन दनुज जगत दुखदायक मारेउ त्रिपुर एक ही बान ॥3॥

॥त्रिपुरारि॥- शिव भव दंभ संभव पुरारी ॥ 10॥

त्रिपुर मर्दन ॥ 11॥

त्रिपुर मद भंगकर ॥49॥

मर्दनमयन- मर्दनमयन ॥11॥

॥कामारि॥-काममद मोचनं ॥ 12॥

-मदनमर्दन ॥13॥

- मार करि- मत-मृगराज ॥49॥

दक्षमख विध्वंसकर्ता - दक्षमख अखिल विध्वंसकर्ता ॥49॥

जलंधर वधकर्ता[1.353] - सिंधुसुत गर्व गिरि-वज्र ॥49॥

1.353- जलंधर शिव जी की कोपाग्नि से समुद्र में उत्पन्न हुआ । जन्म लेते ही इतनी जोर से रोने लगा कि देवता व्याकुल हो गये । बड़े होकर इसने अमरावती पर अधिकार कर लिया । शिवजी लड़ने गये । उसकी स्त्री वृन्दा ने अपने पति की रक्षा के लिये ब्रह्मा जी की पूजा प्रारंभ की । जब देवताओं ने देखा कि वह किसी तरह नहीं मर सकता है तो भगवान् विष्णु ने जलंधर का रूप धारण कर वृन्दा को छला और शिवजी ने जलंधर को मार डाला । ॥ पद्म पुराण ॥ छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह । मानस- 1.123

101-----

लीलागत

1.354
अंधकासुरहंता - अंधकोरग - ग्रसन पन्नगारी ।49।

प्रभावगत -

समर्थ - सब प्रकार समरथ ।3।

- मारि कै मार थप्यौ जग मैं । 4।

- जिनके भाल लिखी .. सुख की नहीं निसानी, तिन रंकन कौ नाक सँवारत ।5-

- जो गति अगम महामुनि गावहिं तब पुर कीट पतंगहु पावहिं ।7।

- महा कल्पांत ब्रह्माण्ड-मंडल दवन ।10।

भुवन दहन इव धूमध्वजं । 10।

- अतुलबल , विपुल विस्तार, ।11।

डाकिनी शाकिनी खचरं भूचरं यंत्र मंत्र भंजन ,प्रबल कल्मषार । 11।

- काल-अतिकाल, कलिकाल।11। भीमकर्म भारी । 11।

सकल लोकान्त - कल्पान्त शूलाग्र कृत । 11।

- कलि कालं ।12। कठिन कलिकाल कानन कृशानुं ।12।

- प्रचुर भवभंजनं ।12। त्रैलोक शोकहर ।13।

- अपहरण संसार -जाला ।49।

- विज्ञान घन , ज्ञान - कल्यानधामं ।49।

शक्ति संपन्न-

कृपा-अपेक्षा-विनु तव कृपा राम पद पंकज सपनेहुँ भगति न होई ।9।

-तव पद विमुख न पार पाव कोउ कल्प कोटि चलि जाहीं ।9।

-बहु कल्प उपायन करि अनेक बिनु संभु-कृपा नहिं भव बिबेक ।13।

1.354- हिरण्याक्ष के पुत्र अंधक ने ब्रह्मा की आराधना करके वरदान पाया कि जब उसे ज्ञान प्राप्त हो तभी शरीरान्त हो । यह वरदान प्राप्त कर उसने त्रिलोकी को जीत लिया । भयभीत देवता मंदराचल पर चले गये।वह वहाँ भी पहुँच कर उनको त्रसित करने लगा । देवता त्राहि त्राहि करने लगे तथा महादेव जी से आर्त प्रार्थना की । महादेव जी के साथ अंधकासुर का भयंकर युद्ध हुआ तथा उसका अंत हुआ । मरते समय उसने वर माँगा कि अनन्य भक्ति प्राप्त हो ।
। शिव पुराण कथा ।

शक्ति संपन्न -

अधिकारी - ब्रह्मेन्द्र , चंद्रार्क, वरुणाग्नि, वसु, मरुत, यम, अर्चि, भवदंघ्रि सर्वाधिकारी ‌।10।

- सिद्ध - सुर-मुनि -मनुज सेव्यमानं ।10।
- भूतप्रेत प्रमथाधिपति ।11।
- सिद्ध -सनकादि-योगीन्द्र-वृंदारका, विष्णु-विधि-वंद्य चरणारविंदं ।12।
- लोकनाथ ।12। पृथमराज ।13।

गुण संबंधी - अच्युत ।10। अकल ।10। अज ।10।

- अज, अनघ, अमित, अविच्छिन्न, अनवधऽखिल , ।49। कर्मपथं एकम् ।10।
- गुननायक ।13। गुनअयन ।9। ।11। तज्ञ ।10।
- देव ।8। देव देव ।9।
- निरुपाधि, निर्गुण, निरंजन ।10।
- निर्विकार ।10।
- निर्गुन ।13। निराकार ।3।
- ब्रह्म ।10। भगवान ।3।
- भव ।49।
- महिमा अपार ।13। यज्ञेश ।10।
- विभो ।10।
- विरज ।49। ।19।
- सर्वज्ञ ।10।
- संसार-सार ।3।

शीलगत -

दीनदयाल - दीनदयाल ।3। दीन दयालु दिवोई भावै ।4। सकत न देखि दीन कर जोरे ।6।

शीलगत-

कृपा निधान- कृपानिधान ॥3॥ दारुन बिपति हरन करुनाकर ॥7॥
करुणानिधान ॥11॥ करुणाकर ॥12॥

सेवत सुलभ- सेवत सुलभ ॥3॥ द्रवित पुनि थोरें ॥6॥
सेवा, सुमिरन, पूजि बौ, पात आखत थोरे ॥ 8 ॥
सुलभमति दुर्लभं ॥12॥

दानी- उदार कलपतरु ॥3॥ दानी कहुँ संकर सम नाहीं ॥4॥
जाचक सदा सोहाहीं
उदार ॥4॥ दानि बड़ो, जाचकता अकुलानी, दुख-दीनता दुखी ॥5॥
औढरदानि ॥6॥ वेद पुरान कहत उदारहर ॥7॥
दिये जगत जहँ लगि सबै, सुख, गज, रथ, थोरे ॥8॥
ज्ञान- वैराग्य, धन-धर्म, कैवल्यसुख, सुभग सौभाग्यशिव सानुकूलं॥10॥
करुनाउदार ॥13॥
उपकारी कोऽपर हर-समान, कल्याण अखिलप्रद कामधेनु ॥13॥
वरद, ॥49॥

भक्ति आर्तिहर - भगति आरतिहर ॥3॥ गये सरन आरति कै लीन्हैं निरखि निहाल
निमिष महँ कीन्हे ॥6॥ किये दूर दुख सबनि के निज निज कर जोरे॥8॥
सरन सोक भयहारी ॥9॥
हरण मम शोक ॥10॥ विपतिहर्ता ॥11॥ संसार भयहरण॥11॥
तारण तरण ॥11॥ अभयकर्ता ॥11॥ शोकशूल निर्मूलनं ॥12॥
प्रणतजन रंजनं ॥12॥ त्रास समन ॥13॥ सुखद॥49॥ नर्मद ॥49॥
॥कल्याणप्रद ॥

परम सुजान - परम सुजान ॥3॥ भावगम्यं ॥12॥
भोले - - बावरो ॥5॥ संकर बड़े भोरे ॥8॥
मृदुलचित ॥11॥ सानुकूलं ॥12॥

देवि स्तुति - शिव स्तुति के अंग के रूप में देवि स्तुति का अनुशीलन शिव पार्वती स्तुति को संपूर्णता प्रदान करता है । अतएव शिव स्तुति के साथ ही देवि स्तुति का अनुशीलन अपेक्षित है ।

संबोधन संकेत - आरंभ में - देवि (15) (16) जगजननि (16)
अंत में - मा (15) महेश- भामिनी (16)
प्रणतपालिका (16)

संबंध नाम प्रयोग - हिम-शैल-बालिका (16)... पुत्री
- शंभु-जायासि, भवानी (15)
महेश भामिनी (16) .... पत्नी
- षण्मुख- हेरम्ब- अंबासि (15) .... मा

रूढ़ नाम प्रयोग - देवि, वामा, अंबा, जगदंबा, भवानी 15
कालिका (16)
- अनेक नामिनी (16)

रूढ़ नाम प्रयोगक्रम -
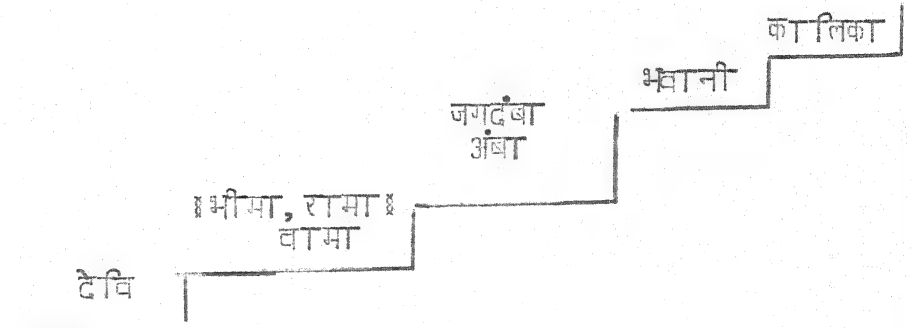
स्वरूप वर्णन -

यष्टिगत

मुख - चन्द्रवदनि (15)
- पर्वशर्वरीश-वदनि (15)

नेत्र- बालमृग-मंजुखंजन-विलोचनि (15)

वेशभूषागत

कर- शूलधारिणी (15)
(में)
- चर्म कर कृपाण, शूल-शैल-धनुबाण धारिणी (16)

स्वरूप वर्णन-

~~माहिरमत~~ वपुस्गत

रूप - रूप-सीमा ॥15॥

- कोटि रतिमार लाजै ॥15॥

- भीमा ॥15॥

- अनेक रूपा ॥16॥

सर्वांग छबि -सर्वांग-तड़ित गभींग सुंदर लसत ॥15॥

वेशभूषागत

शरीर - कवच ॥चर्म॥ ॥16॥
॥पर॥

वस्त्र - दिव्य पट ॥15॥

भूषण - भव्य भूषण ॥15॥

प्रभावगत -

गुण - विश्वमूलाऽसि ,॥15॥ समस्त लोक स्वामिनी ॥16॥

महामूल माया ॥15॥ वरबुद्धिबानी ॥15॥

महिमा- निगम-आगम-अगम गुर्वि !

तव गुन=कथन , उर्विधर करत, जेहि सहसजीहा ॥15॥

सुर-नर-मुनि-असुर-सेवि ॥16॥

शक्ति - पूतना- पिशाच-प्रेत-डाकिनी-शाकिनी-समेत ,

भूत-ग्रह-वेताल-खग-मृगालि-जालिका ॥16॥

दलनि दानवदलं , रणकरालिका ॥16॥

लीला- चंड भुजदंड-खंडनि ॥15॥ ॥चंड॥

- विहंडनि महिष ॥ 15॥ ॥ महिषासुर ॥

- मुंड-मद-भंगकर अंग तोरे ॥15॥ मुंड॥

- शुंभ निःशुंभ कुम्भीशरण -केशरिजि ॥15॥ ॥ शुंभनिःशुंभ ॥

शीलगत- मा ॥15॥

- जगजननि ॥ 16॥

- प्रणत पालिका ॥16॥

स्तुतिगत विनय- शिव पार्वती स्तुति प्रकरण में गोस्वामी जी राम भक्ति के लिये विनय करते हैं ।

शिवजी से - राम चरनरति ‡ 3 व 7‡ भगति रघुपति ‡6‡ भगति ‡9‡ भक्ति अनवरत गत भेद माया ‡10‡ पदों में रामभक्ति की याचना की गई है ।

- भव विवेक (जिसका अभाव त्रास है) प्राप्त करने की कामना की है जो शिव कृपा से संभव है तथा भक्ति के लिये अपेक्षित है ।

बिनु संभु कृपा नहिं भव बिबेक तुलसिदास मम त्रास समन ‡13‡

- काम की भ्रम-फाँसी को काटने की प्रार्थना की है जिससे हृदय में सुखराशि राम का निवास हो और भक्तिगत सच्चा सुख मिल सके ।

करि कृपा हरिय भ्रमफंद काम, जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम ‡14‡

पार्वती जी से-चातक जैसा प्रेम नेम राम के प्रति प्राप्त हो

देहि मा, मोहि पन प्रेम यह नेम निज, राम घनश्याम तुलसी पपीहा ‡15‡

- रघुपति-पद परम प्रेम प्राप्त हो , ऐसा अचल नेम प्राप्त हो

रघुपति-पद परमप्रेम, तुलसी यह अचल नेम ,
देहु ह्वैप्रसन्न पाहि प्रणत-पालिका ‡16‡

- इस प्रकार शिवपार्वती स्तुति का अभीष्ट रामभक्ति मानते हुए गोस्वामी जी इसी दृष्टि से शिव पार्वती की आराधना करते हैं । राम भक्ति की अनिवार्य अपेक्षा शिव कृपा है । इसलिये शिव स्तुति आवश्यक भी है ।

शिवस्तुति- बिनु तव कृपा राम पद पंकज , सपनेहुँ भगति न होई ।

देवी स्तुति ------------------ × × × × ×

शिव पार्वती स्तुति प्रकरण - विवेचन -

1- स्तुति के पदक्रम से गोस्वामी जी शिव पार्वती स्तुति को शील-शक्ति -शील-शक्तिशील के संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं । पहिले 7 पदों में शील के आकर्षक, उदार तथा भक्तजन-अनुरागी रूप को प्रस्तुत करते हैं । बीच के तीन पदों में शक्ति रूप के दर्शन कराते हैं । अंतिम दो पदों में शील और अंतिम हरिशंकरी पद में शक्तिशील का रूप प्रतिपादित करते हैं । वक्र रेखांकन कुछ इस प्रकार बनेगा(संलग्न ग्राफ)

इस प्रतिपादन के लिये आराध्य के स्वभाव, पूजा सामग्री एवं पूजा प्रक्रिया तीनों अंगों को अति सरल एवं सहज संभव रूप में प्रस्तुत करते हैं -

स्वभाव - भोला ॥ संकर बड़े भोरे -3 ॥, उदार ॥4॥, औढर दानि ॥6॥ द्रवित पुनि थोरें ॥ ॥6॥

पूजा सामग्री-सेवा, सुमिरन, पूजिबो पात आखत थोरे ॥8॥

पूजा प्रक्रिया-मात्र हाथ जोड़ना - किये दूर दुख सबनि के जिन जिन कर जोरे ॥8॥
सकत न देखि दीन कर जोरे ॥6॥

इसीलिये निश्चय करते हैं कि शिवजी के अतिरिक्त और कोई ऐसा नहीं है जिससे याचना की जाय ।

को जाँचिये संभु तजि आन ॥3॥ दानी कहुँ संकर - सम नाहीं ॥4॥
जाँचिये गिरिजापति कासी जासु भवन अनिमादिक दासी ॥6॥

2- जय एवं देव स्तुति वर्गीकरण के संदर्भ में केवल देवस्तुति ही शिवजी के लिये शांति त्था देवी के लिए एक जय स्तुति प्रस्तुत की है । शील पक्ष की वरीयता के अंतर्गत देवस्तुतिही उपयुक्त थीं, विनय एवं प्रार्थना जिनका अभीष्ट होता है ।

3- अन्त्य संबोधन संकेतों के अंतर्गत कामरिपु संबोधन की प्रमुखता गोस्वामी जी की इस मान्यता का प्रतिपादन करती है कि साधना में काम बड़ा बाधक है तथा उस पर विजय पाये बिना साधना संभव ही नहीं है । कामरिपु शिव की स्तुति से अभीष्ट पूरा होता है ।

4- इसलिये स्तुतियों की याचना इस कामरिपु संबोधन के संदर्भ में हुई है तथा इसी संदर्भ में कामरिपु संबोधन संगत तथा समाचीन है ।

1.355
देहु काम-रिपु राम-चरन रति ॥3॥
बिमल भगति रघुपति की पावै ॥6॥
देहु काम-रिपु ! राम-चरन रति ॥7॥

तुलसिदास हरि-चरन-कमल-बर, देहु भगति अबिनासी ॥9॥
देहि कामारि ! श्रीराम-पद-पंकजे भक्ति अनवरत गत भेद माया ॥10॥

1.355- कामिहि नारि पिआरि जिमि 7.130

'देहु काम रिपु राम-चरन रति' की शब्दशः आवृत्ति (3) तथा (7) दो पदों में हुई है तथा यही शिव याचना की केन्द्रीय भाव भूमि है तथा शिव स्तुति प्रकरण का अभीष्ट है। इस याचना में गोस्वामी जी की राम भक्ति की अनन्यता एवं एकान्तिक साधना की ओर भी स्पष्ट संकेत है । शिव जी को एकमात्र याचना करने योग्य समर्थ देव मानते हुये भी मात्र राम भक्ति की ही याचना करते हैं ।

5- स्तुति की सीमा में शिवजी के संपूर्ण स्वरूप की समाहिति के लिये उनके भीषणाकार, भयंकर , विकट वेश एवं उग्ररूप का भी विवरण प्रस्तुत करते हैं किन्तु यह विवरण केवल तीन पदों में है तथा उन पदों में भी साथ में करुणा निधान (1) करुणाकर (12) संसार भय हरण (1) अभयकर्ता (1) , सुखद, नर्मद (49) आदि विशेषणों का प्रयोग करके संभ्रम को क्षणिक रखने का प्रयास किया है । साथ ही संसार का भय दूर करने के लिये उग्र रूप की भी उपेक्षा होती है , मानों यह भी प्रतिपादित करना चाहते हैं ।

6- शिव स्तुतियों में शिव जी के संबंध में सभी अपेक्षित प्रसंगों को लिया है तथा विनय एवं आग्रह का विशेष अंग रख कर स्तुति प्रकरण को शिव स्तोत्र अथवा अष्टक जैसा रूप प्रदान किया है जिसकी फलश्रुति 'हरिय भ्रमफंदकाम' तथा 'शिवलोक सोपान', मानस के अष्टक की फलश्रुति 'शम्भुः प्रसीदति' के अनुकूल है ।

7- शिव स्तुति के प्रत्येक पद में संबंधगत नाम 'पार्वतीपति' के विभिन्न रूपों का प्रयोग किया गया है । इन नामों में पार्वतीपति की अर्थ अनुकूलता में प्रस्तुत पर्यायों की आवृत्ति अधिक है । अन्य नाम उमापति, एवं उमावर भी कठोर तपस्या के संदर्भ सूचक हैं । इस प्रकार इन प्रयोगों के माध्यम से गोस्वामी जी अन्यथा शिव पार्वती जी के दृढ़ निश्चय को ओर संकेत करते हैं तथा भक्त को आश्वस्त करते हैं कि उनके औढर स्वभाव के अंतर्गत दिये गये दान या वचन अवश्य पूरे होते हैं । संबंध सूचक इन नामों से गोस्वामी जी का शक्ति सहित स्वरूप की आराधना में विश्वास प्रकट होता है । आराध्य देव के साथ वह आराध्या देवी की वंदना और विनय करना आवश्यक मानते हैं । वंदना और विनय के दोष एवं त्रुटियाँ स्तुति से शान्त होते हैं , ऐसी शास्त्रीय व्यवस्था है । इसके साथ मानों गोस्वामी जी यह भी कहना चाहते हैं कि फिर भी शेष दोष अथवा स्वयं स्तुति संभावित दोष आराध्य के साथ आराध्या शक्ति की

वंदना एवं स्तुति से शान्त हो जाते हैं । आराध्या मातृ शक्ति का ममतामय क्षमाशील स्वरूप आराध्य तक पहुँचने में, अपनी विनय को पहुँचाने में सदा सहायक सिद्ध होता है शिव स्तुति के अनुक्रम में ही देवी स्तुति रखी गई है तथा देवी स्तुति को मिलकर ही शिव स्तुति या शिवपार्वती स्तुति प्रकरण पूर्ण होता है ।

8- प्रचलित युग्म नामावली के क्रम में सूक्ष्म तत्व की ओर भी गोस्वामी जी की दृष्टि गई है । शिवपार्वती तथा सीताराम युग्मनाम प्रचलित हैं । इनके क्रम के अनुकूल स्तुतियों में शिव स्तुति के पश्चात् देवी (पार्वती जी) की स्तुति रखते हैं तथा दूसरे राम स्तुति प्रकरण में राम स्तुति से पूर्व सीता स्तुति रख कर युग्म नाम क्रम का ध्यान रखते प्रतीत होते हैं । यों विनयपीयूषकार ने अन्यथा, पंचायतन की परिक्रमा करके विनयपत्रिका प्रस्तुत करने के उपक्रम में सीता जी की आसन्न स्थिति परिक्रमा में पहिले पड़ती है, इस तथ्य को दृष्टिगत रख कर, सीता जी की स्तुति राम से पूर्व रखने का कारण बताया है (जैसे मानस में भी है)

9- शिव स्तुति में शिव नाम की वरीयता के साथ 'शिव शिव' एवं 'शिवपद' जैसे प्रयोगों में शिव को विशेषण रूप में भी प्रस्तुत किया है । शिव शब्द की व्याख्या से इस प्रकार के प्रयोगों का अभीष्ट स्पष्ट होता है । कदाचित् शिव ही एक ऐसा नाम है जो शिव के सर्वांग स्वरूप को प्रस्तुत एवं प्रकट करता है । शिव का अर्थ है कल्याण, आनन्दसुख, ये सारे शब्द पर्यायवाची हैं । यथा श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मंगलं शुभं इत्यमरे । एवं शिवं च मोक्षे क्षेमे च महादेवे सुखे इति विश्वकोशे । शिव शब्द शुभावह या श्रेयस्कर वस्तु का वाचक है । शुभार्थक √शीङ् धातु के साथ वनिक् प्रत्यय का योग होने से शिव शब्द बनता है । पुनः शिव शब्द की उत्पत्ति वश कान्तौ धातु से यदि माने तो उसका तात्पर्य यह है कि जिसको सब चाहते हैं उसका नाम शिव है । सब चाहते हैं अखंड आनंद को । अतएव शिव शब्द का अर्थ आनन्द हुआ । जहाँ आनन्द है वहीं शान्ति है और परम आनंद को ही परम मंगल और परम कल्याण कहते हैं । अतएव शिव शब्द का अर्थ परम मंगल, परम कल्याण रूप समझना चाहिये । इस आनंददाता, परम कल्याण रूप शिव को ही शंकर कहते हैं । शं आनन्द को कहते हैं और कर से करने वाला समझा जाता है । अतएव

जो आनन्द करता है वही शंकर है।..... शिवजी आनन्द रूप ही हैं । जो कोई उनके संपर्क में आ जाता है वह भी आनंद का रूप कहा है । उनके चारों ओर आनन्द के परमाणु फैले रहते हैं । यही महेश का सबसे बड़ा गुण है । इसलिये आप शिव (कल्याणरूप) एवं शंकर (कल्याणकर्ता) और आनन्ददाता कहलाते हैं । - 1.356

10- देवी की स्तुति शिव शक्ति के पूरक रूप में की गई है । देवी वस्तुतः शिव की शक्ति अर्द्धांग हैं । इस प्रकार शिव- पार्वती के शक्ति रूप की एक सम्मिलित छबि प्रस्तुत होती है ।

	शिव	देवी
शक्तिगत	- डाकिनीशाकिनी खेचरंभूचरं यंत्रमंत्र भंजन प्रबल कल्मषारी भूत प्रेत प्रमथाधिपति	- पूतना - पिशाच - प्रेत-डाकिनी-शाकिनी-समेत, भूत-ग्रह -वेताल-खग मृगालि जालिका
	शत्रुवन दहन इव धूमध्वज	- दलनि दानवदल
	- भीषणाकार , भयंकर	- भीमा
	- संसार-सार	- विश्वमूलाऽसि
	- ब्रह्मेन्द्र चंद्रार्कवरुणाग्नि, वसु, मरुत, यम, अर्चिभवदंध्रि, सर्वाधिकारी	- समस्त लोक स्वामिनी
शक्ति के अनुकूल स्वरूपगत	- भव , वाम	- भवानी , वामा
	- शूल-शायक-पिनाकासि-कर चर्म-असि- शूलधर	- चर्म कर कृपाण, शूल-सेल धनुष बाण धारणि
	- तरुण-रवि कोटि तनु तेज भ्राजे	- सर्वांग तडित गर्भांग सुंदर लसत
महिमा	- यस्य गुण-गण गणति विमल मति- शारदा, निगम-नारद- प्रमुख ब्रह्मचारी	निगम-आगमअगम गर्वि तव गुन-कथन , उर्विधर करत जेहि सहसजीहा
	- सिद्ध -सुर-मुनि -मनुज सेव्यमानं-	सुर नर मुनि असुर सेवि

1.356- विनयपीयूष : 47 प्रथम हिलोर पृष्ठ 177 व 178

।।।-----

11- शिव पार्वती दोनों आदि शक्ति रूप हैं , फिर भी गोस्वामी जी ने शिवजी की स्तुतियों के द्वारा शिव के शील स्वरूप को प्रमुखता प्रदान की है तथा देवि पार्वती जी के शक्ति रूप को । इस प्रकार शिव स्तुतियों को शिव पार्वती जी की शील स्तुति तथा देवी स्तुतियों को शक्ति स्तुति कह सकते हैं । यों गोस्वामी जी मा तथा प्रणत पालिका संबोधनों से देवि के शक्ति रूप में भी भक्तजन हेतु शील सुरक्षा का प्रावधान रखते हैं तथा भक्तजन के प्रति मा के सहज शील स्नेह एवं उदारता से भक्तों को आश्वस्त करते हैं ।

हनुमत् स्तुति प्रकरण - [1.357] हनुमत् स्तुति प्रकरण में 12 पदों में स्तुति की गई है । हनुमान् जी रुद्र के अवतार हैं । इसलिये शिवजी के लिये अनुस्यूत 12 पदीय स्तुति ही हनुमान् जी के लिये भी रखी है । गोस्वामी जी ने हनुमान् जी की 12 मूर्तियाँ स्थापित की थीं । इस दृष्टि से भी 12 पदीय स्तुति प्रकरण समीचीन है ।

संबोधन संकेत - प्रारंभ में-हनुमत् स्तुतियों में संबोधन संकेत सामासिक पदों में प्रस्तुत किये गये हैं । 25 से 29 तक 5 पदों में जय विनय है । 30, 31, 34, 35, 36 विवरणात्मक पद हैं जिनमें संबोधन संकेतों का प्रयोग नहीं हुआ है । 32, 33 पदों में संबोधन संकेतों का प्रयोग हुआ है ।

गीताप्रेस की विनयपत्रिका की टीका में प्रारंभ में एक बार हनुमान् पद को अपनी ओर से संबोधन के रूप में जोड़ कर पाँच जय पदों का पदार्थ किया गया है । विनयपीयूषकार ने जय पद प्रयोग को संबोधन पद-रचना मानकर संपूर्ण सामासिक पद को संबोधन के रूप में पदार्थ में रखा है ।

1.357- हनुमत् स्तुति का कवि द्वारा श्री भरत, श्री लक्ष्मण, श्री शत्रुघ्नसे पूर्व प्रस्तुत करने का विनयपीयूषकार का विवेचन - सभा में प्रवेश करने के लिये पू0 श्री गोस्वामी जी को प्रथम फाटक पर विघ्नविनाशक श्री गणेश जी, दूसरे पर श्री सूर्य भगवान्, तीसरे पर शिवजी, चौथे पर श्री पार्वती जी, पाँचवे पर श्री गंगा जी तथा श्री यमुना जी , छटवें पर श्री काशी जीऔर सातवें पर चित्रकूट द्वारपाल मिले । इनसे प्रवेश आज्ञा प्राप्त कर भीतर जाने पर श्री राम जी के सिंहासन के सामने श्री हनुमान् जी ,दाहिने चँवर लिए हुये श्री भरत जी, पीछे छत्र लिए हुए श्री लक्ष्मण जी तथा बाएँ हाथ की ओर व्यंजनधारी श्री शत्रुघ्नजी के दर्शन हुए । इस प्रकार सबसे पहिले हनुमान् जी मिले फिर प्रदक्षिणा करते हुए क्रमशः श्री भरत, श्री लक्ष्मण , और श्री शत्रुघ्नजी से भेंट हुई । बायीं ओर से सिंहासन के अति निकट जाते हुए अंबा श्री जानकी जी की कृपा प्राप्त कर श्रीसरकार के करकंजों में पत्रिका भेंट की । विनयपीयूष: 47 - द्वितीय हिलोर 4, 5, 6

।12----

पदान्त में- गीताप्रेस की टीका, पद 3। में संबोधन का पदान्तीय प्रयोग दिखलाया गया है किन्तु विनयपीयूषकार ने पदार्थ को भिन्न रूप में रख कर संबोधन का प्रयोग नहीं दिखलाया है । वस्तुतः विनयपीयूषकार का पदार्थ सही है । संदर्भित पंक्ति इस प्रकार है -

तुलसी फल चारों करतल जस गावत गई बहोरको ॥ पद 3। अंतिम पंक्ति ॥

गीताप्रेस की टीका - हे तुलसीदास ! गई हुई वस्तु को फिर दिला देने वाले श्री हनुमान जी का जो गुण गाता है ....

विनयपीयूषकार - तुलसीदास कहते हैं कि गई बहोर श्री हनुमान् जी का यशगान करने से इस प्रकार हनुमत् स्तुतियों में ।। पदों में प्रारंभ में तथा दो पद 26 व 29 में अंत में संबोधन संकेतों का प्रयोग हुआ है ।

- 25 से 29 तक के 5 जय पदों की संबोधन संकेत पद रचना है । पद 25 व 26 दो पद में 9 बार तथा 27, 28, 29 तीन पदों में 5 बार जयति का प्रयोग हुआ है । इस प्रकार 25 व 26 में पद की पूरी 9 पंक्तियाँ सामासिक संबोधन हैं तथा 27, 28, 29 में पूरी 5 पंक्तियाँ । 32 व 33 में क्रमशः हठीले हनुमान् तथा समरथ सुअन समीर के एवं रघुबीर पियारे संबोधन प्रयोग हैं ।अंत में पद 26 में -भयतमारी ,29 में-शूलपाणि ।

संबंध नाम प्रयोग -

अंजनी नंदन - अंजनी-गर्भ-अम्भोधि-संभूत सुखद ॥25॥ मरुदंजना मोद-मंदिर ॥27॥ दिव्य भूम्यंजना- मंजुलाकर -मणे ॥29॥

केसरी सुअन- केसरी- चारु लोचन-चकोरक-सुखद ॥25॥

- लसदंजना दितिज, कपि-केसरी-कश्यप प्रभव ॥26॥ केसरीसुअन ॥29॥ केसरी किसोर ॥31॥

पवन पुत्र - वातसंजात ॥28॥

- सुअन समीर ॥33॥ मारुत नंदन ॥36॥पवनतनय ॥36॥
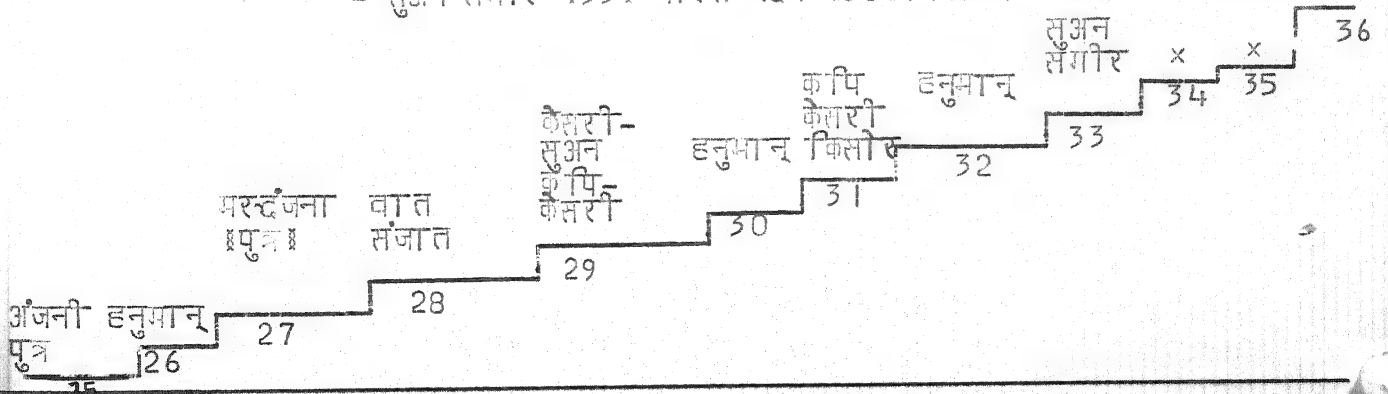
1.358- मानस में हनुमान् नाम की आवृत्ति अधिक है -

113------

स्वरूप वर्णन -

अवतारगत स्वरूप - 1.359

रुद्र अवतार 25 — कपाली 26 — पुरारी 27 — वामदेव 28
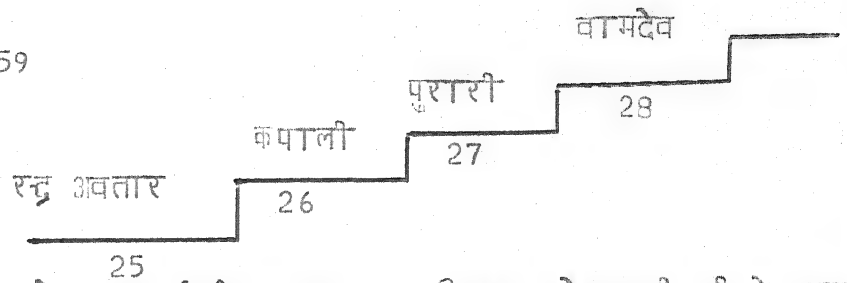
- हनुमान् जी रुद्र अवतार थे। इस संदर्भगत स्वरूप का विवरण गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया है -

रुद्र- अवतार (25) महादेव मुद मंगलालय कपाली (26) बानराकार विग्रह पुरारी (27) वामदेव (28)

	वपुसगत	वेशभूषागत
सिर -	कपिश-कर्कश-जटाजूट धारी (28)	
नेत्र -	पिंगल नयन (28)	
भृगुटी-	विकट (28)	
दशन -	वज्रसम (25) वर (26) वज्र (28)	
नख -	वज्रसम (25) कुलिश (26), वज्र (28)	
मुख -	विकट वज्रसम (25) ग्रीव-	शस्त्रास्त्रधर (26)
ग्रीव-	नत (27)	कुधरधारी (26)
तनु -	वज्रसम (25) वज्रसार सर्वांग (26)	तरु-शैल-पानी (25)
	बालार्कवर-वदन (28)	शूलपाणी (29)
भुजदंड-	चंड, भारी (26) बृहद् बाहु (28)	(हनुमान् रूपी शिव)
बालधि-	बृहद (26) बालाधि विसाल (28)	
रोमावली-	लसल्लोम विद्युल्लता ज्वालमाला (28)	
विग्रह-	सुविशाल-विकराल (26)	
	- मंगलमूरति (36)	
	- विप्र-सुर-सिद्ध-मुनि-आशिषाकारवपुस (25)	
	बानराकार विग्रह (27)	
	- जातरूपाचलाकार विग्रह (28)	

1.359- दोहावली के संदर्भ- जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान ।
रुद्र देह तजि नेह बस संकर भे हनुमान ।। -142

जानि राम सेवा सरस समुझिकरब अनुमान। पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान ।। 43
(ब्रह्मा-जाम्बान, शिव-हनुमान)

लीलागत -भानुग्रास- जयति जय बालकपि केलि-कौतुक उदित चंडकर-मण्डल -ग्रासकर्ता ‖2

जाको बल बिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को ‖31‖

सुग्रीव रक्षादिरक्षण - सुग्रीवरक्षादि रक्षण निपुण ‖25‖ सुग्रीव-दुःखैक बंधो ‖27‖

गतराजदातार ‖28‖ जस गावत गई बहोर को ‖31‖

बालिबध - बालि बलशालि -बध मुख्यहेतु ‖25‖

समुद्र लंघन - जलधि लंघन ‖25‖ जलधि-लाँधि ‖31‖

सिंहिका वध - सिंहिका-मद-मथन ‖25‖

सीता शोक मुक्ति - भूनन्दिनी-शोच-मोचन‖25‖ जानकी-शोच-संताप-मोचन‖26‖

संपाति दिव्य देह - धर्मकेतु -संदग्ध-संपाति-नवपक्ष-लोचन- दिव्य देह दाता ‖28‖
प्राप्ति

अशोकवाटिका ध्वंस- विपिन दलन‖25‖ दलनकानन ‖26‖

लंकादहन- लूमलीलाऽनल ज्वालमाला कुलित, होलिकाकरण लंकेश-लंका ‖25‖

कीश कौतुक-केलि-लूम -लंकादहन ‖26‖ दहिलंक ‖31‖

संजीवनी लाना - सौमित्रि -रघुनन्दनानंदकर ‖25‖ रामलक्ष्मणानंद-वारिज-विकासी-

कटक संयोजन- ऋक्ष -कपि-कटक-संघट-विधायी ‖25‖

सेतु बंधन- बद्ध वारिधि सेतु ‖25‖ पाथोधि -पाषाण- जलयानकर‖26‖

नाश हेतु - दशकंठघटकर्ण- -वारिद-नाद-कदन-कारन ‖25‖दुष्ट रावण -कुंभकर्ण-

पाकारिजित-मर्मभित्- कर्म-परिपाक-दाता ‖26‖ दनुजदर्पहारी‖28

कालटूक सुयोधन -चमू-निधन-हेतु ‖28‖

त्राण हेतु - धनंजय-रथ-त्राण-केतु ‖28‖

- भीष्म-द्रोण-कर्णादिपालित‖28‖

मंदोदरी केश कर्षण- मंदोदरी-केश-कर्षण ‖29‖

कालनेमि हनन - कालनेमि हंता ‖25‖

विभीषण वर प्राप्ति-विभीषण वरद ‖26‖

गर्वहरण - भीमार्जुन व्यालसूदन गर्वहर ‖28‖ बिहगेश-बलबुद्धि -बेगाति-मद-

मथन ‖29‖ राहु-रवि-शक्र- पवि गर्व- खर्वीकरण ‖25‖ मनगर्वमथन-

‖29‖ जाको चिबुक-चोट चूरन किय रद-मदकुलिस कठोर को‖31‖

प्रभावगत विशेषण -

समर्थ - अमर-मंगल हेतु ।25।

- भानुकुलकेतु-रण-विजयदायी ।25।

- विहित कृतराम-संग्राम साका ।26।

- समर-तैलिक-यंत्र तिल-तमीचर-निकर, पेरि डारे सुभट घालि घानी ।25।

-अघट घटना -सुघट-सुघट विघटन विकट ।25। उथपे -थपन, थपे उथपन पन ,
बिबुधबृंद बँदिछोरको ।31।

- भूमि-पातालजल- गगन-गंता ।25।

- भुवनैक भूषण ।26। भुवनैक भर्ता ।29।

- पर-यंत्र-मंत्राभिचार-ग्रसन, कारमन-कूट-कृत्यादि-हंता ।26।

- शाकिनी-डाकिनी-पूतना-प्रेत बेताल--भूत-प्रथम -यूथ-यंता ।26।
ईति-अति-भीति-ग्रह-प्रेत -चौरानल-व्याधिबाधा-शमन घोर मारी ।28।
समरथ सुअन समीर के ।33। समरथ हितकारी ।34।

शक्ति संपन्न - रणधीर , रुद्र -अवतार ।25। मर्कटाधीश ।26। मृगराज विक्रम ।26।
महादेव ।26। कपाली ।26। बानराकार विग्रह पुरारी ।27। विख्यात
विक्रम ।28। कपि केसरी ।25। वेदपुरान प्रगट पुरुषारथ ।31।

गुणसंबंधी- विमलगुण ।25। विमलगुण गनति शुक नारदादी ।26।
विश्व-वंद्यगुणी ।27। वामदेव ।28।

- विश्व विख्यात बानैतविरुदावली, बिदुष बरनत वेद बिमल बानी ।25।
भानुकुल भानु कीरति-पताका ।26। अघटित-घटन, सुघट-बिघटन, ऐसी
बिरुदावली नहिं आनकी ।30। बंदि छोर विरुदावली निगमागम गाई ।35।

- सीता रमण संग शोभित राम-राजधानी ।25। पुष्पकारूढ़ सौमित्रि -सीता
सहित ।26।

- बुद्धि वारिधि विधाता ।25। तो सो ग्यान निधान को सरबग्य बिया रे3
ज्ञान-विज्ञान -वैराग्य भाजन विभो ।26। ब्रह्म लोकादि-वैभव-विरागी ।29।

116-----

वेदान्तविद ।26। विविध विधा -विशद ।26। वेद वेदांग विद ।26। ब्रह्मवादी ।26
कालगुण कर्म-माया-मथन।26। निश्चल-ज्ञान वृत ।26। सत्यरत ।26। धर्मचारी ।26।
वचन-मानस-कर्म-सत्य-धर्मव्रती ।29। सामगाताग्रणी ,कामजेताग्रणी ।27। सामगायक।28
निगमागम व्याकरण करणलिपि ,काव्यकौतुक कला-कोटि-सिंधो ।28। महानाटक नि
कोटि कविकुल तिलक , गानगुण-गर्व-गंधर्व जेता ।29।

शीलगत- लोगगन-शोक-संतापहारी ।25। शोकशमन ।25। जगदार्तिहर्ता-लोक-लोकप-को
कोकहर।26। हंत संसार भारापहर ।27। हंतार संसार संकट।28।

लोक मंगल कर- शरण भय हरण।25। भक्त-कामदायक ।28। भक्तसंताप चिंतापहर्ता।29।
सुमिरत-संकटसोच-विमोचन ।30। प्रणत भय-तमारी।26। जनरंजन।31।
मोह-मद-क्रोधकामादि-खल-संकुला, घोर संसार-निशि किरणमाली ।26
भगत-कामतरु नाम ।31। सो सब बिधि ऊबर करै,अपराध बिसारी।34
करहिं अनभलेउ को भलो,आपनी भलाई ।35। संतनहितकारी ।36।

लोक रक्षक- भुवन भर्ता ।25। संसार पाता । 25।

मंगल मूर्ति - मुदमंगलालय ।26। कल्याणकर्ता ।26। मंगलागार ।27। निर्भरानंद-
संदोह ।29। मूरति मोद-निधान की ।30। मंगल-मूरति।36। सकल
अमंगलमूल निकंदन । 36। सिद्ध -सुर- सज्जनानंद सिंधो ।27।

सर्व फल दाता- धर्मार्थ -कामापवर्गद विभो ।29। फल चारों करतल ।31।

रामप्रिय एवं - रामहितरामभक्तानुवर्ती
रामभक्त राम संदेसाहर, कौशला-कुशल कल्याणभाषी।27।
रामविरहार्क -संतप्त-भरतादि-नरनारि-शीतलकरणकल्पशाखी।27।
श्रीराम प्रिय प्रेम बंधो ।28।
जानकीनाथ चरणानुरागी ।29।
रामपद पद्म -मकरंद-मधुकर, ।29।
राम परिपूरन चंदचकोर ।31।
रघुबीर पियारे ।33।
तेरे स्वामी राम से , स्वामिनी सियारे ।33।
हृदय बिराजत अवध बिहारी ।36।
- सिंहासनासीन सीतारमण , निरखि निर्भर हरष नृत्यकारी ।27।

117---

रामायण श्रवण संजात रोमांच, लोचन, सजल, शिथिल वाणी ॥29॥

कपि कृपा - कपि की कृपा बिलोकनि, खानि सकल कल्यान की ॥30॥

प्रभाव - तापर सानुकूल गिरजा, हर लखन, राम अरु जानकी ॥30॥

- जाके गति हनुमान् की

ताकी बैज पूजि आई, यह रेखा कुलिश पषान की ॥30॥

- जाको है सब भाँति भरोसो कपि केसरी किसोर को

ताकि है तमकि ताको ओर को ॥31॥

- लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन कोर को ॥31॥

- जो सेवक रनरोर को, सदा अभय जयमुदमंगलमय ॥31॥

- तोसे न उसीले ॥सहायक॥ ॥32॥

हनुमत- दास तुलसी त्रासशमन ॥25॥

स्तुति-विनय दास तुलसी प्रणत भय-तमारी ॥26॥

तुलसि मानस -रामपुर-विहारी ॥27॥

प्रणत तुलसीदासतात-माता ॥28॥

पाहि, दासतुलसी शरण शूल पाणी ॥29॥

उपालंभ- साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही ले ॥32॥

उद्बोधन - तहँ तुलसी के कौन को काको तकिया रे ॥33॥

निक्षेप - नीको तुलसीदास को तेरिये निकाई ॥35॥

वंदना - चरनबंदि बिनवौं सब काहू । देहु रामपद -नेह-निबाहू ॥36॥

हनुमत् स्तुति -विवेचन -

---

1 - हनुमत् स्तुति प्रकरण की रचना योजना कुछ निम्नलिखित प्रकार कीहै-

शक्ति रूप - लीला - 25, 26 ॥अ॥

गुण- 27, 28, 29 ॥आ॥

प्रभाव- 30, 31 ॥इ॥

शीलरूप - विनय-उपालंभ -32 ॥ई॥

उद्बोधन - 33 ॥उ॥

निक्षेप- 34, 35 ॥ऊ॥

वंदना -36 ॥ए॥

(ii) -(अ)- हनुमान् शिव के अवतार हैं। अतएव स्तुतियों में शक्तिपरक विशेषणों की समानता आ गई है।

शिव	हनुमान्
-डाकिनी शाकिनीखेचरं भूचरं यंत्र मंत्र भंजन प्रबल कल्मषारी भूत प्रेत प्रमथाधिपति	शाकिनी डाकिनी पूतना-प्रेत-बेताल-भूत प्रमथ-यूथ-यंता पर-यंत्र-मंत्राभिचार -ग्रसन
- अतुल बल विपुलविस्तार	- बृहद् बाहु, बल बिपुल, बालधिबिसाला
- विकट वेष	- वज्र तनु दशन नख मुख विकट
- मर्दन मयन	- मनमथ मथन ऊर्ध्वरेता
- रुद्र, बामदेव, शूलपाणि नर-मौलि उर मालधारी	- रुद्र-अवतार, कपाली, रुद्राग्रणी, वामदेव, शूलपाणी

(ब)- शिव एवं हनुमद् स्तुतियों की पदक्रम व्यवस्था में अंतर है।

शिव स्तुतियाँ शील से प्रारम्भ होती हैं तथा शक्ति का विन्यास करती हुई पुनः शील में प्रकट होती हैं।

हनुमद् स्तुतियाँ शक्ति से प्रारम्भ होतीं हैं तथा शील में उनका पर्यवसान होता है।

(स)- शिव के लिये प्रयुक्त विशेषण अजर, निर्गुण, निराकार, निर्विकार, सच्चिदानंद-कंद, जगदीश आदि का प्रयोग उनके अवतार हनुमान् जी के लिये नहीं हुआ है। इससे प्रकट होता है कि वह अंशावतार हैं।

3- हनुमद् स्तुतियों में हनुमान् जी की 18 लीलाओं का उल्लेख किया गया है जिनमें उनके शौर्य, शक्ति और सामर्थ्यकी प्रशंसा की गई है। इन स्तुतियों से स्तुतिप्रकरण प्रारंभ होता है तथा इनके अनुकूल उनके वज्रांग का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार हनुमान् जी के शक्ति संपन्न एवं समर्थ रूप की झाँकी प्रस्तुत होती है जो भक्तजन में प्रिय एवं प्रसिद्ध है। लीला स्तुतियों में कृष्ण अवतार के प्रसंग भी लिये गये हैं। इस प्रकार हनुमान् के अवतार की सारी लीलाओं का आकलन किया गया है।

4- इन स्तुतियों में उपर्युक्त शक्ति पक्ष के अतिरिक्त अन्य दो पक्षों को विशेष रूप से उजागर किया गया है -

i - बुद्धि वारिधि विधाता

ii - राम के अनन्य भक्त
एवं राम प्रिय

हनुमान् जी का बुद्धि वारिधि विधाता स्वरूप साधारणतया लोकज्ञात नहीं हैं इस स्वरूप के साथ हनुमान् जी का जो समग्र व्यक्तित्व उभर कर आता है वह अप्रतिम है । वह विविध विद्या विशारद हैं - वेदान्त विद , वेदवेदांग विद, ब्रह्मवादी
- साम गायक व्याकरण करणलिपि,
काव्यकौतुक कलाकोटि सिंधी

हनुमान् जी के स्वरूप की इस विशेषता से यह निश्चय होता है कि वानर पशुयोनि न होकर कोई मानवजाति रही है जो अपनी विद्याबुद्धि के लिये प्राचीन युग में प्रसिद्ध भी रही है ।

भगवान् राम के परम भक्त एवं परम प्रेमी स्वरूप की प्रचुरख्याति है तथा इस संदर्भ में ही वह शक्ति स्वरूप होते हुए भी शील स्वरूप की निकटता एवं प्रियता प्राप्त किये हुये हैं । उनकी यह विशेषता तो सर्व विदित है ही कि वह अपनी भक्ति करने वालों को भगवान् के दरबार में प्रस्तुत कर देते हैं । इसीलिये लोक में उनकी भक्ति का अपेक्षातया अधिक प्रचार एवं प्रभाव है ।

5- शीलस्वरूप की निकटता में ही गोस्वामी जी उपालंभ, उद्बोधन, निवेदन के अंतर्गत 'कटु कहिये गाढ़े परे' का साहस कर लेते हैं तथा हनुमद् स्तुति को आत्मीयजन की स्तुति का स्वरूप प्रदान करते हैं ।

6- संबोधन संकेत तथा रूढ़ नाम प्रयोगों के अंतर्गत अधुना प्रचलित निम्नलिखित नामों का उल्लेख नहीं है ।

[हनुमान्, पवनपुत्र, अंजनी नंदन, जैसे नाम ही आवृत्ति एवं प्रयोग वरीयता की दृष्टि से कदाचित् विनयपत्रिका के लिये भी निश्चित रखे गये हैं।]

बजरंग, (वज्रांग का विकसित रूप)

रामदूत [1.360] ः यह नाम मानस में प्रयुक्त है ः

महावीर- ः यह नाम मानस में प्रयुक्त है ः

बली - ः लोक में जय अली के सांप्रदायिक नारे के प्रत्युत्तर में प्रयुक्त जय बली ः

7- जय स्तुतियों में प्रयुक्त संबोधन दीर्घ समासान्तिक पदों में हैं ।

भाषा शैलीगत - इन पदों की भाषा शैलीगत यह विशेषता उल्लेखनीय है । इस प्रकार के संबोधन अन्य स्तुतियों में, विशेष कर राम स्तुतियों में, प्रचुरता से प्रयुक्त हुए हैं । जय स्तुतियों में प्रयुक्त जय पद संख्या 33 हैं । इस संख्या के प्रति भी गोस्वामी जी का कदाचित् आग्रह रहा है, ऐसा प्रतीत होता है।-

8- हनुमान् की रामभक्ति दो प्रकार प्रस्तुत की है -

i- अनुरागी, मधुकर, चकोर आदि पदों द्वारा राम प्रेमी तथा रघुबीर पियारे कह कर, रामप्रिय उल्लेख करना ।

ii - भक्तिगत अनुभावों के वर्णन द्वारा -

हरष नृत्यकारी

संजात रोमांच लोचन सजल शिथिलवाणी

गोस्वामी जी ने केवल हनुमान् स्तुति में ही स्तुति के आराध्य को स्तुतिकर्ता की स्थितिगत अनुभावों से अलंकृत किया है । भक्त के अनुभाव ही उसकी परम उपलब्धि होती है । गोस्वामीजी जी का भक्ति का मानक भी यही है -

सुनि सीतापति सील सुभाऊ

मोद न मन तन पुलक नयनजल सो नर खेहर खाऊ

हनुमान् स्तुतियों के भक्त स्वरूप का अनुभावगत वर्णन ही हनुमान् के व्यक्तित्व का बीज बिन्दु है जिसका जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ा है तथा जिसके फलस्वरूप हनुमान् का भक्तस्वरूप ही उनके व्यक्तित्व का प्रमुख एवं प्रधान अंग बना है और विद्यावारिधि आदि रूप तिरोहित हो गए हैं ।

1.360- राम दूत नाम से हनुमान् आराधना मण्डल इलाहाबाद से एक पत्रिका भी प्रकाशित हो रही है ।

|2|-----

9- स्वरूप वर्णन में 11 अंगों का वर्णन किया गया है - सिर, नेत्र, भृकुटी, दशन, नख, मुख, ग्रीव, भुजदंड, बालधि, रोमावली तथा विग्रह । इस प्रकार दर्शन में मुख, कर, बालधि तथा रोमावली मुख्य अंग रहते हैं, कटि, उदर, नाभि, पदनख तथा चरणों का कहीं उल्लेख नहीं है । साधारणतया स्तुतियों में पद वंदना होती है किन्तु हनुमान् - स्तुतियों में पद वंदना नहीं रखी गई है । हनुमान् जी आराध्य के दास हैं तथा भक्तों को भगवान् तक पहुँचाने के कार्य में भगवान् के दासों के संपर्क में आते हैं । अतएव बंधुत्व मानकर अपनी पदवंदना नहीं कराते । इस प्रकार का समाधान किया जा सकता है ।

10- हनुमान् जी की प्रसन्नता तथा कृपाविलोकन का सबसे बड़ा सुफल यह मिलता है कि आराधक के लिये पार्वती, शिव, लक्ष्मण, राम और जानकी अनुकूल हो जाते हैं । उसके प्रण एवं प्रतिष्ठा की रक्षा होती है । 'पैज पूजि आई होगी,' यह दृढ़ निश्चय है । भक्त का सभी भाँति कल्याण ही होगा ।

11- हनुमत् स्तुतियों में गोस्वामी जी अपने त्रास के शमन की विनय करते हैं- 1.358 (ब) यह त्रास जन - जन का त्रास है । रामप्रेम एवं रामभक्ति में आने वाली सभी बाधायें भक्तजन के त्रास होते हैं । राम के प्रिय भक्त एवं रामप्रेमी हनुमान् जी से यही विनय की जा सकती है और की जानी चाहिए, गोस्वामी जी का यह आग्रह है ।

1.358 (ब) - पापतें, सापतें, तापतिहूँ तें सदा तुलसी कहँ सो रखवारो ।।
- - - - - - - - - - - - - - - - - - हनु० बा० 19

122----

श्रीराम स्तुति प्रकरण - स्तुतियों में श्रीराम स्तुति प्रकरण सबसे बड़ा है । इसमें आरती सहित 21 पद हैं । हरिशंकरी पद अतिरिक्त संयुक्त स्तुति प्रसंग पद है । इस प्रकरण का भी श्री सीताराम स्तुति प्रकरण के रूप में, श्रीराम के स्थान पर युगल सरकार श्री सीताराम के रूप में अनुशीलन करना चाहिये । दोनों अभिन्न हैं ।-1.359

सीता जी की स्तुति दो पूर्व पदों में की गई है । शिव पार्वती प्रकरण में पार्वती की स्तुति अनुवर्ती दो पदों में है, इसका उल्लेख किया जा चुका है ।

श्री सीता स्तुति - स्तुति के दो पदों में श्री सीता जी की प्रशंसा में कोई विशेषण प्रयुक्त नहीं हुआ है । कवि की विनय ही प्रमुख है, किन्तु कवि के विनय-संदर्भ से श्री सीता जी की प्रभावगत स्थिति एवं स्तुति प्रस्तुत होती है । साधारणतया यह दोनों पद विनय के पद हैं तथा स्तुति के अंतर्गत रखने की समीचीनता प्रकट नहीं होती है किन्तु प्रभावगत प्रच्छन्न प्रशंसा स्तुति के एक विशेष प्रयोग को प्रकट करती है ।

श्री सीता स्तुति शील स्तुति है तथा शील की पृष्ठभूमि में शक्ति के प्रभाव का संकेत ही विशेष प्रयोग है ।

संबोधन - प्रारंभ में - अंब [मा] मेरी मातु जानकी [42]
अंत में - जानकी जगजननि [41]

रूढ़ नाम प्रयोग - जानकी

स्वरूप वर्णन - × × ×

शील वर्णन - प्रभावगत संकेतितशील

1- अवसर पाकर भगवान् को स्मरण कराती हैं -

कबहुँक अंब, अवसर पाइ
मेरिऔ सुधि द्याइबी [41]
- कबहुँ समय सुधि द्यायबी [42]

1.359- परम सक्ति समेत अवतरिहउँ 1.186.6
प्रभु करुनामय परम बिबेकी तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी ।
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई । कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई [1-2.96.5,6

ii - जन की सहायक हैं -

जनकी किये बचन सहाइ ॥41॥ 1.360

iii - करुणा निधान भगवान् को जानती हैं और उन पर उनका प्रभाव है -

- सरल प्रकृति आपु जानिए करुना निधान की ॥42॥

- विस्मरणशील प्रवृत्ति को भी जानती हैं -

बानि बिसारन सील हैं ॥42॥

- अमानित को मान देने की उनकी वृत्ति को भी जानतीं हैं -

मानद अमान की ॥42॥

स्तुतिगत विनय -

प्रभावगत उपर्युक्त संदर्भों के अनुकूल गोस्वामी जी विनय करते हैं -

i - समय पाकर मेरा भी स्मरण करा दीजिये । आप ऐसा किया करतीं हैं ।

अवसर पाइ, मेरिऔ सुधि घाइबी ॥41॥

ii - भगवान् मुझे न भूलें -

तुलसीदास न बिसारिये ॥42॥

1.360- विनय पीयूषकार ने श्री जानकी जी के पुरुषकार वैभव का विवरण दिया है ।
॥ वि.पी. 47 ~~———~~ - 30-33 ॥

- पुरुष कारत्व के लिये कृपा, पारतन्त्रय और अनन्यार्हत्व तीन गुण अपेक्षित हैं, ये तीनों श्री जनक नन्दिनी जी में हैं । इन्हीं गुणों के संदर्भ में उनका पुरुषकार है तथा भगवान् उनकी बात मानते हैं ।

कृपा - - कृपा उनकी सहज प्रकृति एवं प्रवृत्ति है । जगजननी के उपयुक्त उनमें मातृत्व की क्षमाशीलता है । वह अपराधियों को, पापियों को क्षमा करतीं हैं तथा प्रभु की शरणागति प्राप्त करातीं हैं । जयंत को उन्होने प्राण दान दिलवाया । लंका की राक्षसनियों को जिन्होने उन्हें रावण की आज्ञा से त्रसित किया था, क्षमा किया तथा राम विजय पर हनुमान् द्वारा दण्ड दिये जाने की अनुमति नहीं दी । ॥ वा. 6/116- 38 से 45 ॥

अनन्यार्हत्व- मन वचन कर्म से प्रभु के लिये होना अनन्यार्हत्व है। सूर्य की प्रभा जैसे सूर्य से अभिन्न है उसी प्रकार श्री सीता जी राम से अभिन्न हैं - अनन्याराघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा ।॥ वा. सु. सर्ग 26 ॥

पारतन्त्रय - प्रभु के प्रति पूर्ण समर्पित भाव में अपनी परतन्त्रता को अनुभव करती हैं । अपने प्राण भी, प्रभु हित हेतु, इस परतन्त्रता को अनुभव करती हुई उस समय रखती हैं जब उन्हें गर्भावस्था में पुनः वनवासी होना पड़ता है तथा प्रभु के वंश की रक्षा हेतु (अंश रूप गर्भ की रक्षा की ॥ परतंत्रता अनुभव करती हुई) प्राण रक्षा करना अपना पारतन्त्रय समझती हैं । ॥वा. 7/48/8

विनय करने का साहस -

।i। - माता और पुत्र का संबंध है ।

।ii। - अंब ।41। मेरी मातु जानकी ।42।
प्रभु की दासी तुलसी का दास तुलसीदास है । प्रभु-दासी-दास कहाइ ।41।

।iii। - पिता कृपालु हैं । दीन पर वह कृपा करते हैं ।

।4। - जन ।.36। ।दास। की जगजननि सहायता करती हैं । उनका पुरुषकार वैभव है । भगवान् उनकी बात मानते हैं । जीव के कल्याण के लिये वह भगवान् से हठ करतीं हैं ।

जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ- ।.36। ।41।

श्रीराम स्तुति - श्रीराम स्तुति विनय पत्रिका की मुख्य स्तुति है । श्रीराम की भक्ति, अनुराग, प्रेम, दया व कृपा प्राप्त करने के लिये ही अन्य स्तुतियाँ की गई हैं । मुख्य अभीष्ट राम स्तुति है । राम स्तुति इसी संदर्भ में सबसे अधिक पदों में प्रस्तुत की गई है ।

संबोधन संकेत - प्रारंभ में - पद 43 तथा 44 जय स्तुति हैं । इनमें सामासिक पदों में संबोधन संकेत प्रयुक्त हुए हैं । प्रारंभ की दो-दो पंक्तियों में तथा अंत की एक पंक्ति में सामासिक पद बंध संबोधन -।.362 चलता है । उदाहरण स्वरूप-

---

।.36। - 'बचन सहाइ' से पुरुषकारत्व प्रार्थना सूचित है । जन के लिये कुछ भी अदेय नहीं है। जन कहँ कछु अदेय नहिं मोरे । अस विश्वास तजहु जनि भोरे ।मानस-3.41.5

।.362-इन पदों का पदार्थ संबोधन के रूप में करना उचित है जैसा विनय पीयूषकार ने किया है । गीताप्रेस की विनयपत्रिका का पदार्थ इस दृष्टि से भ्रान्तिपूर्ण है । उदाहरणार्थ -

गीताप्रेस की टीका का पदार्थ	श्री रामचन्द्र जी की जय हो । आप सत्, चेतन, व्यापक, आनन्दरूप, परब्रह्म हैं । आप लीला करने के लिये ही अव्यक्त से व्यक्त रूप में प्रकट हुए हैं । जब ब्रह्मा आदि सब देवता और सिद्धगण दानवों के अत्याचार से व्याकुल हो गये, तब उनके संकोच से आपने निर्मल गुण संपन्न नर शरीर धारण किया । पद 43 ।
संबोधन के रूप में जो होना चाहिये	हे सत् चित् व्यापक आनन्दरूप परब्रह्म ! हे लीला करने के लिये ही अव्यक्त से व्यक्त रूप में प्रकट होने वाले, हे ब्रह्मादि, सुर, सिद्ध के दानवों के अत्याचार से व्याकुल होने पर उनके संकोच से निर्मल गुण संपन्न नर शरीर धारण करने वाले ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो ।

सच्चिद व्यापकानंद परब्रह्म -पद विग्रह- व्यक्त लीलावतारी, विकल ब्रह्मादि , सुर , सिद्ध , संकोचवश, विमल गुण-गेह नर-देह - धारी, जयति ।

दो पदों में इस प्रकार के 18 सामासिक पद बंध संबोधन हैं ।

- 49 से 61 , तेरह पदों में देव संबोधन है जो प्रत्येक दो पंक्ति के प्रारम्भ में प्रयुक्त हुआ है । इस प्रकार देव संबोधन 117 बार प्रयुक्त हुआ है । देव संबोधन के साथ प्रारंभ में अन्य नाम संबोधन भी हैं । प्रारंभ में प्रयुक्त अन्य नाम संबोधनों तथा पदान्त में प्रयुक्त अन्य नाम संबोधनों का तुलनात्मक विवरण इस प्रकार है -

प्रारंभ में	अन्त में
- रघुनाथ (51), कौशलाधीश (52) रघुवर्य (59)	- रघुवंश भूषण (59)
- जगदीश (52)	- ईश (54)
- जानकीनाथ (51)	- वैदेहिभर्ता (44)
- राम (55)	- श्रीराम (61) राम (56)
- श्रीरंग (57) बिंदुमाधव (61)	....
	रावणारि (54)
	करुणाधाम (56)

रूढ़ नाम प्रयोग -

रामावतारगत	अन्य अवतारगत
राम (44) , (44) (49) (50) (51) (52) (53) (55) (55) (56) (56) (57) (61)	गोविंद (49) कृष्ण (49) मुरारी (53)(57)(59)
	वामन (49) (52) (53) (56)
	नर नारायण (60)
	बुद्ध (52)
श्रीरंग (57) बिंदुमाधव (61)(62) (63)	कल्कि (52)
	संकेतित - मत्स्य, शूकर, कच्छप, नृसिंह, परशुराम , (52)

126-----

रूढ़ नाम विशेषण -

भगवंत (49) (54) (56)

परमात्मा (49) (52) (53)

ब्रह्म (49) (56)

विष्णु (49) (54)

जगदीश (52)

ईश (54)

हरि (49) (58) (58)
(60) (60)

प्रभु (60)

रूढ़ नाम आवृत्ति विवरण -[1.363(a)]

(1) भगवंत 3

(2) परमात्मा 3

(3) ब्रह्म 2

(4) विष्णु 2

(5) जगदीश 1 ⎤
ईश 1 ⎦ 2

(6) हरि 5

(7) प्रभु 1

[1.363(b)]

(15) राम- 12

(16) श्रीरंग 1

(17) बिंदुमाधव 3

(8) कृष्ण - 2

(9) गोविंद)

(9) मुरारी 3

(10) वामन 4

(11), (12) नर-नारायण- 1

(13) बुद्ध - 1

(14) कल्कि -1

स्वरूप वर्णन -

1.363(a) 63-17(-9) -

62-12 -

58-(x) 59-(x) 60-7, 61-14
62-18
63-20
64- 1

14 (1 + 13)

(13-78, 12, 16, 18, 20 227

1.363(b) राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ खगगन बधिका ।।- 3:41.8

127-----

वपुस् -

1- वदन - विधुवदन ‡44‡ सुमुख ‡56‡
वदन राकेश ‡60‡
वदन- अमित छबि ‡62‡
ससि आनन ‡63‡

2- कच
- अलक - अलि व्रात इव ‡61‡
- कच - कुंचित कच ‡62‡
- कच ‡मधुप-अवली ‡63‡

3- भ्रू - रुचिर अति ‡51‡
वर ‡61‡
भ्रू ..भावन ‡62‡
ललित ‡63‡

4- नेत्र -राजीव लोचन ‡44‡ ‡49‡
अरुण, राजीवदल-नयन ‡50‡
अरुण अंभोज लोचन विशाल ‡51‡
वनज लोचन ‡ 54‡
तरुण पंकज नयन ‡55‡
कमल लोचन ‡56‡
तरुण रमणीय राजीव-लोचन ललित‡60‡
अरुण शतपत्र लोचन ‡61‡
नयन ‡भावन ‡ ‡62‡
नव राजीव नयन ‡63‡

5-नासिका- चारु ‡51‡ चारु ‡61‡
नासा ‡भावन‡ ‡62‡
उन्नत नासा ‡65‡

6- ग्रीवा- दरग्रीव ‡61‡ कंबुग्रीव ‡63‡
सुखसीव ‡61‡
सोभासील ‡62‡

वेशभूषा

1- भाल 2-
- भाल- तिलक भलक भलि भाल‡44‡
  तिलक ‡51‡‡61‡‡62‡‡63‡
- मुकुट- कलधौत मणि-मुकुट-कुंडल 44
  - रत्न-हाटक-जटित-मुकुट-मंडित-मौलि ‡51‡
  - मुकुट‡कुंडल तिलक‡ ‡61‡
  सिर मुकुट ‡62‡ ‡63‡

3- श्रवण - कुंडल ‡44‡‡51‡‡61‡‡62‡‡63

4-माला
उर -
- सुमन सुविचित्र नव तुलसिकादल युतं मृदुल वनमाल उर ‡51‡
- भ्रमत आमोदवश मत मधुकर निकर हार ‡51‡ ‡61‡
- मंदार माला ‡‡54‡
- वनमाल सुविशाल नवमंजरी‡61‡
- गज मनिमाल बीच भ्राजत पदक ‡62‡
- बनमाल पदिक अति सोभित‡63

श्रीवसन् श्रीवत्स‡51‡‡61‡‡62‡‡63‡

शरीर-वसन- 6
- पीत ‡44‡
- किंजल्कधर ‡49‡
- तप्त कांचन वस्त्र शस्य‡50‡
- पीत कौशेय वरवसन ‡51‡
- पीत पट ‡ तड़ित इव जलद नीलं‡ ‡61‡
- निरमल पीतं दुकूल अनूपम ‡62‡
- पीत वसन ‡63‡

7- अधर - बिंबोपमा ‖51‖

वर ‖61‖

अधर ..अमित छबि ‖62‖

अरुन अधर ‖63‖

8- दाँत- द्विज वज्र द्युति ‖51‖

वर ‖61‖ द्विज ‖63‖

9- श्रवण- ललित श्रुति ‖62‖

10-कपोल- सुकपोल ‖51‖

रुचिर सुकपोल ‖61‖ ‖63‖

कपोल भावन ‖62‖

11- ठोड़ी-चिबुक.. अमित छबि ‖62‖

छबि सीव चिबुक ‖63‖

12- दृष्टि-वक्र-अवलोक ‖51‖

विलोकनि-चारु ‖61‖

सुंदर चितवनि ‖63‖

13- हास- मधुर ‖51‖

कर-निकर हासं ‖60‖

मधुर ‖इंदुकर-कुंदमिव‖ ‖61‖

14- कर- प्रबल भुजदंड ‖50‖

‖भुजदंड‖ आजानु भुजदंड ‖51‖

नाम मुंडसम भुजचारी ‖63‖/

पाथोज पानी ‖56‖

15- उदर- त्रिबली उदर ‖63‖

16- नाभि-पाथोजनाभ‖50‖ क>जनाभ‖53‖

वनजनाभ ‖54‖

गंभीर नाभि सर ‖63‖

7- उपवीत ‖44‖

8- चर्मवर ‖55‖

‖कवच‖

कर- कर- 9- कंकण ‖51‖‖61‖‖63‖

भुज - 10- केयूर ‖51‖‖61‖‖63‖

चारभुज11- चक्र ‖सारंग ‖

12- कोदंडधर ‖49‖‖50‖‖56‖

बामबाहु कोदंड मंडित‖51‖

13- दर

14- कंज

15- कौमोदकी ‖61‖‖62‖63

16- दक्षिण पाणि बाणमेकं‖51‖

खंगकर ‖55‖

शक्ति सारंगधारी ‖55‖

17- चर्म धर ‖55‖

कटि - 18- किंकिनी ‖51‖ ‖62‖

19- मणि मेखल ‖61‖

कनकजटित मनि नूपुर

मेखल ‖63‖

20- तूणशर ‖50‖ ‖55‖

17-पद, अंगुली पद नख- पदज, नख, अद्भुत
उपमाई ।62।
नखद्युति ।63।

18-पद- मृदुल चरन।62। चरन मृदु ।63।

19-समग्र कान्ति- नील नव -वारिधर-सुभग-
शुभ कांति ।51। श्याम
तनकांति दर वारिदाभं ।50।

आभा- नीलजलदाभ तनु श्याम ।49।
श्याम नव तामरस-दामद्युति
वपुष ।60। जलदाभा तनु ।53।
वनदाभ-वपु।54। ।56।

श्याम- स्याम तामरस-दाम-बरन बपु।63।
अमल मरकत श्याम ।61।
श्याम सुरुचि ।62।

तेज - तारुण्यतनु, तेजधामं ।51।
भानुशतसदृश उद्योतकारी।51।
अर्क अगणित प्रकाशं ।60।

पद- पद पद्म चिन्ह ।21।
- कुलिशादि शोभित भारी- ।51।
- शुभ चिन्ह ।62।
- कुलिस-केतु-जव-जलज रेखा बर । 63।
- नूपुर[22] ।61।

स्वरूप की समग्र छबि - स्वरूप की समग्र छबि का विवरण 50, 51, 61, 62, 63, पाँच पदों में विशेष रूप से दिया गया है ।

छबि विवरण - नर भूप रूप ।50।
- विश्व विग्रह ।50।

विशेषण-सुंदर- सुंदर ।53। सहज सुंदर ।56। बिसद किसोर पीन सुंदर बपु ।60।
सकल सौन्दर्य निधि ।60। सुभग सर्वांग सौंदर्य वेश ।61।
- सुकपोल ।51। सुंदर चितवनि ।63।

लवण - लावन्य बपुष।64। लावण्य राशि ।54। अखिल लावण्य गृह ।50।

सुषम - सुषमा-अयन ।50। सौभाग्य-सौन्दर्य-सुषमारूप ।44।

रुचिर - रुचिर रूप ॥53॥

चारु - नासिका चारु ॥51॥

सुभग- सब अँग सुभग छबि ॥63॥

अभिराम- अभिराम ॥51॥

मनोहर- मनोहर ॥ मति येहि सरूप अटकै ॥ ॥63॥

- तुलना- बहु काम छबि ॥49॥ कोटि कंदर्प छबि ॥50॥छबि कोटि मदन ॥60॥

काम शत कोटि छबि ॥61॥अगनित अनंग ॥ 64॥

मदन मर्दन ॥56॥

मदन मद मथन सौन्दर्य सीमाति रम्यं ॥53॥

श्रेणी[1.364] - पदों के क्रम को दृष्टिगत रखते हुए प्रयुक्त शब्दों को श्रेणी में माना गया है ।

प्रयुक्त शब्द - लवण — सुषम — अभिराम — सुंदर — मनोहर

पद की संख्या - 50 — 50 — 51 — 61 — 63

लीलागत - व्यक्त लीलावतारी ॥43॥ प्रकट परमात्मा ॥49॥ ॥53॥ चरित निरुपाधि॥43॥

शिव धनुष भंजन - भंजि भव चाप ॥43॥ शिव चाप भंजन ॥50॥
दलिदाप भूपावली सहित

परशुराम गर्व दलन- भृगुनाथ नतमाथ भारी ॥43॥ उग्र - भार्गवागर्व -गरिमापहर्ता ॥50॥

1.364- मानस में शब्द -आवृत्ति की दृष्टि से यदि इन शब्दों को श्रेणीबद्ध किया जाय तो निम्नलिखित स्थिति बनती है -

प्रयुक्त शब्द - अभिराम — सुषम — मनोहर — सुंदर

प्रयोग आवृत्ति - 6 — 10 — 64 — 144

मदन मद भंजन - मदन मर्दन ‖56‖ शक्र-प्रेरित घोर मदन मद भंग कृत ‖60‖

जयंत को दंड देना- पाकारिसुत-काक-करतूति - फलदानि ‖43‖

विराध नाश - खानि गर्त्त गोपित विराधा ‖43‖

शूर्पनखा: विरूपण- दिव्य देवी वेश देखि लखि निशिचरी जनु विडंबितकरी विश्वबाधा- ‖43‖

खर संहारकर्ता - खर .... संहारकर्ता ‖43‖ खरारि ‖55‖

त्रिशिरा संहारक-र्ता- त्रिशिर ..... संहारकर्ता ‖43‖

दूषण संहारकर्ता - दूषण ...... संहारकर्ता ‖43‖

मारीच संहार कर्ता - मारीच ... संहारकर्ता ‖43‖ हरण मारीच माया कुरंगं ‖50‖

कबन्ध वध - मद अंध कुकबंध बधि ‖43‖

बालि वध - बालि बलशालि बधि ‖43‖बालि बलमत गजराज इव केसरी ‖50‖

सैन्य संयोजन- सुभट मर्कट भालु कटक संघट सजत ‖43‖

सेतु बंधन - पाथोधिकृत सेतु ‖43‖ बद्ध पाथोधि ‖50‖

रावण वध - दलित दशकंठ रण ‖43‖ दलन दस सीस भुज बीस भारी ‖50‖
रावनारि ‖55‖

कृष्ण-कालीदहन- दवन कालीय खल ‖49‖

कंस वध - कंसादि निर्वंशकारी - ‖49‖

मधु वध - मुग्ध-मधु-मथन ‖56‖

राज त्याग - गुरु - गिरा-गौरव-अमरसुदुस्त्यज्य राज्य त्यक्त ‖50‖

विश्वामित्र के यज्ञ के रक्षक - ऋषि मख पाल ‖43‖ विप्रहित यज्ञरक्षण दक्ष ‖50‖

अहल्या उद्धार - शाप वश मुनि वधु पापहारी ॥43॥

शाप वश मुनि वधु मुक्त कृत ॥50॥

सुग्रीव को राजा बनाना- करन सुग्रीव राजा ॥43॥ सुहृद-सुग्रीव-दुख राशि भंगं ॥50॥

शबरी की भक्ति - शबरी ...... विवश ॥43॥

गीध की भक्ति - गृध्र .... भक्ति विवश ॥43॥

विभीषण शरणागति - नमत पद रावणानुज निवाजा ॥43॥

प्रभाव एवं फल - वर्णाश्रमाचारपर नारि- नर,

सत्य-शम-दम-दया-दानशीला

विगत दुख-दोष, संतोषसुख सर्वदा ,

सुनत, गावत राम राज लीला ॥44॥

- रुचिर हरिशंकरी नाम मंत्रावली द्वंदुख हरनिआनंदखानी

विष्णु-शिव-लोक-सोपान-सम सर्वदा वदति तुलसीदास

विशद बानी ॥ 49 ॥

प्रभावगत विशेषण -

सामर्थ्य संबंधी - जय रामराजा ॥44॥

दनुज वन दहन ॥49॥

निशाचर-निकर-तिमिर-घनघोर-खर किरणमाली ॥44॥

परब्रह्म पद विग्रह ॥43॥

भुज बल अतुल हेलया दलित भू भार भारी ॥44॥

राजराजेन्द्र ॥44॥

लोक नायक कोक शोक संकट शमन ॥44॥

लोक लोकप किये रहित शंका ॥43॥

अंतक ॥यम॥ त्रास शमन ॥49॥ अनय अंभोधिकुंभज ॥44॥

गुणवृति हर्ता ॥49॥

133-----

त्रास शमन (49) त्रैलोक शोकापहं (51) त्रिविध आर्ति हर्ता (43)

धारमिक धुर (43) रागादि-तम-तरणि (51)

गुण संबंधी विशेषण -

- अकल (49) (55) अचल (56) अनघ (51) (56) अज (56) (61) अजित (53) (61)
  अजय (53) अद्वैत (50) (56) अद्वितीयम् (53) (56) अनंत (49) (53) अनिकेत (56
  अमल (50) (54) (55) अमित (56) अविकार (56) अविचल (55) अविनाशी (49)
  अव्यक्त (49) (53) अविच्छिन्न (51) अविरल (56)
- अनवद्य (50) (56) अनामय (56) अनारंभ (56)
- अग्नि (54) आनन्दकंदाकर (51) आदिमध्यान्त (54)
- ईश (54) इन्द्रिय (54)
- उर्वी (54) उर्विपति (56)
- एकम् (53)
- कूटस्थ (53) कल्पांतकृत (54) कल्पनातीत (54) कालपरमाणु (54) कलाकोश (56)
  कल्पान्तकारी (56) क्रोधगत (60)
- ग्यानगोतीत (49) (53) ज्ञानघन (53) गूढ़ार्चि (53) गुरु ग्यान ग्याता (54)
  गूढ़ (54) गंभीर (54) गर्वघ्न, गूढ़ार्थवित (54) गुप्त (54) गोतीत (54) (61)
  ग्येय (54) ग्यानप्रिय (54) गतभेद (54) ज्ञान विज्ञान वैराग्यैश्वर्य निधि (61)
  गतमन्यु (61) गुण ग्राम (53) गुण सन्निपात (53)
- चितात्मा (54) चिच्छक्ति (54)
- जगदंत (49) जिष्णो (54)
- तपस्वी- (55)
- दुष्प्राप्य (53) दुष्प्रेक्ष्य (53) दुस्तर्क्य (53) दुष्पार (53) दु:कर (54) दुराराध्य-54
  दुर्ग (54) दुर्द्धर्ष (54) देवता (54) दूषणारि (55)
- नि:कंप (56) निर्गुण (50) (53) (55) (56) निर्मल (53) निरुपाधि (53)
  नित्य (53) (55) (56) निर्मम (53) निर्मान (53) निरंजन (56) निर्मोह (56)
  निर्मुक्त (55) (56) नि:सीम (56) निरुपाधि (56)

- नित्य युक्त ﴾53﴿ न्यायक ﴾55﴿ नियंता ﴾55﴿ निर्वान स्वामी ﴾54﴿
- पावन ﴾49﴿ परमपावन ﴾55﴿ परावर ﴾ पर-अवर ﴿ ﴾49﴿ प्राकृत ﴾53﴿ प्रकृति ﴾54﴿
  प्रेरक ﴾53﴿ परम कारण ﴾53﴿ प्रचुर गरिमागार ﴾54﴿ प्राण ﴾54﴿ परम ब्रह्मन्य ﴾61﴿
- ब्रह्म ﴾49﴿ ﴾50﴿ ﴾53﴿﴾54﴿ ﴾56﴿ ब्रह विद ﴾56﴿ बलवान ﴾54﴿ अमित बल ﴾61﴿
  ब्योम ﴾54﴿ बुद्धि ﴾54﴿ बिनहिं कल्पान्त प्रभु प्रलयकारी ﴾60﴿ बोधरत ﴾60﴿
  ब्रह चारी ﴾60﴿
- भगवंत ﴾49﴿ ﴾54﴿ ﴾55﴿ ﴾56﴿ भुवन भव दंग ﴾54﴿ भुवन भूषण ﴾55﴿ भुवनेश ﴾55﴿56﴿
  भूनाथ ﴾55﴿ भानुमंत ﴾56﴿ भूरिभूषण ﴾56﴿ भूधरणधारी ﴾56﴿ भुवनभर्ता ﴾60﴿
- मंत्र-जापक-जाप्य ﴾53﴿ महतत्व ﴾54﴿ मरुत ﴾54﴿ मन ﴾54﴿मदातीत﴾56﴿
  माया रहित ﴾56﴿
- विभो﴾49﴿ ﴾53﴿ ﴾56﴿ व्यापकानंद ﴾43﴿ व्यापक ﴾49﴿ ﴾54﴿ विश्व विश्राम ﴾51﴿
  विश्वधृत ﴾61﴿ विश्व विख्यात ﴾54﴿ विश्वेश ﴾ 54﴿ विश्वायतन ﴾54﴿
  विश्व मरजाद ﴾54﴿ विश्व कारण करण ﴾55﴿ विश्व पालन हरण ﴾61﴿ विश्वकर्ता﴾61﴿
  वरदेश ﴾54﴿ ﴾55﴿ वागीश ﴾54﴿ ﴾55﴿ वाच्य वाचक रूप ﴾53﴿ विमल ﴾54﴿ ﴾55﴿
  विपुल ﴾54﴿ विष्णो ﴾54﴿ व्यक्त ﴾54﴿ विपुल गुण धाम ﴾60﴿ व्योम व्यापक ﴾53﴿56﴿
  विरज ﴾53﴿ ﴾55﴿ ﴾56﴿ वैकुण्ठ ﴾53﴿ वैकुण्ठ स्वामी ﴾55﴿ वैकुंठ मंदिर विहारी﴾56﴿
  वामन विमल ब्रह्मचारी ﴾53﴿ विश्राम पद ﴾53﴿ वेद विख्यात ﴾55﴿
  विश्व विश्रामकर ﴾55﴿ विधाता ﴾56﴿ विश्वात्मा ﴾56﴿ वंदारु ﴾56﴿
  विपुल महिमा अपार ﴾61﴿
- शान्त ﴾53﴿ शब्दादिगुन ﴾54﴿ शुद्ध बोधायतन ﴾55﴿ शुद्ध सर्वज्ञ ﴾56﴿
- सच्चिद ﴾43﴿ सच्चिदानंद ﴾51﴿ ﴾53﴿ ﴾55﴿ सर्वज्ञ ﴾51﴿ सर्वेश ﴾51﴿ सर्वगत ﴾54﴿
  सर्व वासी ﴾﴾55﴿ संयुतगुण ﴾55﴿ सर्वकृत ﴾56﴿ सर्वभूत ﴾56﴿ सर्वजित ﴾56﴿
  सर्व सुखधाम ﴾﴾53﴿ सुविशुद्ध ﴾53﴿ संसार हर ﴾53﴿ सर्व भूताध्यक्ष ﴾53﴿ सर्व गुण
  विज्ञान शाला ﴾55﴿ स्वच्छन्दचारी ﴾56﴿ सर्व सर्वेश ﴾53﴿ सिद्ध साधक-साध्य ﴾53﴿
  सृष्टि सृष्टा﴾53﴿ सकल दृश्यदृष्टा﴾53﴿ सकल ﴾49﴿ ﴾55﴿ सत्य कृत ﴾53﴿सत्यरत﴾53﴿
  सत्यव्रत ﴾53﴿ सत्य संकल्प ﴾51﴿ ﴾54﴿ सर्वदा पुष्ट ﴾53﴿ सगुण ﴾50﴿
  सुलभ ﴾53﴿ संतुष्ट ﴾53﴿ संकृष्टहारी ﴾53﴿ सर्वरक्षक ﴾53﴿
- हरि ﴾53﴿ ﴾61﴿

यशगान - जय भुवन दस चारि जसजगमगत §44§

अखिल मुनि-निकरसुर, सिद्ध, गंधर्व, वर नमत नर नाग अवनिप अनेकं §51§

शीलगत - --

अनुग्रह रूप §59§

अपहरन संमोह, अज्ञान §53§ अखिल संसार उपकार - कारण §50§

काम क्रोधादि मर्दन विवर्धन क्षमा शांतिविग्रह §55§

करुणा भवन §49§ §59§ कृपाला §49§ करुणानिकेत §53§ करुणायनं §60

करुणानिधान §54§ कल्याणराशि §56§

खलुसर्वतो भद्र दाता समाकं प्रणत जन खेद विच्छेद विधा निपुण §51§

गुन गहन §49§

चिंतापहारी §56§

तूल अघनाम पावक समानं §54§

दुर्गतिहर्ता §54§ दुर्व्यसनहर §54§ दया सिंधु, दंभापहन , दहन दुर्दोष,

दर्पापहर्ता §56§ दुःखौघहर , दुर्ग दुर्वासना नाशकर्ता §56§ दूषणारी §58§

दीन उद्धारण §59§

नमत नर्मद पाप ताप हर्ता §44§

नाम-सर्व संपदम् अति पुनीत §53§

परमहित §49§ §53§ प्रणतपालक §56§ प्रणतानुकूल §60§ परम करुणाधाम§56§

पापौघहारी §59§

भक्त प्रिय भक्त जन-कामधुक धेनु §49§ भक्तानुकूलं §53§ §54§

भवशूल निर्मूलकर §54§ भव-भंजनाभयद §56§ भवभक्तहित §56§

महिमा उदार §50§ मृदुभावगम्यं §53§ मानद §56§ महामंगल मूल§56§

-विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध संकोचवश विमल गुण नरदेह धारी §43§

वेद बोधित करम धरम धरनी धेनु विप्रसेवक साधु मोदकारी §43§ विश्वपोषण भरण §55§

विश्वोपकारी §44§ विषमता मतिशमन §55§

वरद § 56§

शमन सज्जन साल §43§समशाली §44§

सचिव सेवक सुखद सर्वदाता §44§

सकल सौभाग्यप्रद, सर्वतो भद्रनिधि , सर्वाभिरामं §53§

शरण भय हरण §54§ सुकर §54§

संत संताप हर §55§ सज्जनानंद-वर्धन §55§ शील समता भवन §55§

सत्य संधान §55§ सर्वहित §55§

सिद्ध कवि कोविदानंददायक पद द्वंद्व §55§

संतप्त कलि विकलता- भंजनानंदरासी §55§

सुमन, शुभसर्वदा §56§ सर्वहित §56§

शमन संतापहारी §58§ §59§

सदय हृदय §60§

-हरि हरण दुर्धट विकट विपति भारी §49§

× × × × × ×

शीलगत-ग्रन्थ

- कुशल कैवल्य फलचारुचारी §43§

-अधम आरतदीन पतितातपातक पीन

सकृत नतमात्र कहि पाहि पाता §44§

- गोविंद नंदादि-आनंद-दाता §49§

- घोर -संसार-पर, पार दाता §54§

- निर्वानि प्रद §55§ §56§

विनय-दास तुलसी मुदित अवधवासी सकल राम भे भूप वैदेहिरानी §43§ जयति §43§§44§

- दास तुलसी चरण सरण संशय-हरण देहि अवलंब वैदेहिभर्ता §44§
- सोई राम कामारि प्रिय अवधपति सर्वदा दास तुलसी त्रासनिधि -वहित्रं §50§
- नौमि श्रीराम सौमित्रिसाकं सदा दास तुलसी शरण शोकहारी §51§

- नौमिरामभूपं - दास तुलसी हरण विपत्तिभारं ।52।

- नौमि रामं - वचन मन कर्मगत शरण तुलसीदास त्रास-पाथोधि कुंभजातं ।53।

--------- पाहि मामीश संताप संकुल सदा दास तुलसी प्रणत रावणारी ।54।

--------- शरण तुलसीदास त्रासहंता ।55।

- दास तुलसी खेद खिन्न आपन्न इह, शोक संपन्न, अतिशयसभीतं
प्रणतपालक राम परम कल्याणधाम पाहि माम उर्विपति दुर्विनीतं ।56।

- यत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्मवश भ्रमत जगजोनि संकट अनेकं
तत्र त्वद्भक्ति, सज्जन, समागम, सदा भवतु मेराम विश्रामम् एकं ।57।

-------- देहि अवलंब करकमल, अनुज जानकी सहित हरि सर्वदा दास तुलसी
हृदय कमलवासी । 58।

-------- त्राहि रघुवंशभूषण कृपाकर, कठिन काल विकराल-कलि त्रासत्रस्तं ।59।

- त्राहि हरि, त्राहि हरि दास कष्टी, देहि अवलंब ।60।

- ग्रसित भवव्याल अतित्रास तुलसिदास त्राहि श्रीरामउरगारि भानं ।61।

- इहै परम फलु परम बड़ाई..... तुलसिदास मतिमंद द्वंदरत कहै कौन बिधि गाई ।62।

- तुलसिदास भव त्रास मिटै तब जब मतियेहि सरूप अटकै ।63।

श्री सीताराम स्तुति विवेचन -

1 ।अ।- श्री सीताराम स्तुति प्रकरण में पदों का संकलन अन्य प्रकरणों से भिन्न है, राम स्तुति के पदों के साथ, बीच में आरती के पद रखे गये हैं, अन्य कतिपय पदों की सामग्री भी रामस्तुति की नहीं है।

स्तुति- पद 43, 44, 49, 50, 51, 52, 53, 54,55, 56, 60, 61, 62, 63

आरती- पद 46, 57, 45, 47, 48

अन्य पद-46, 57,58, 59 । 46 नाम महिमा, 57 संत महिमा, 58 शरीर रूपी ब्रह्माण्ड रूपक, 59 संसार रूपी वनरूप का ।

फिर भी इस प्रकरण की सामग्री के सूक्ष्म विवेचन से यह नहीं कहा जा सकता कि 3 आरती के तथा 4 अन्य पद स्तुति प्रकरण के अनुकूल तथा स्तुति प्रकरण से संबद्ध नहीं हैं।

सामग्री की दृष्टि से स्तुति तथा आरती में सीमा रेखा नहीं खींची जा सकी है , इस विषय की चर्चा की जा चुकी है ।

- नाम महिमा तथा संत महिमा , राम महिमा के वैकल्पिक रूप हैं । अनुशीलन की सुविधा की दृष्टि से स्तुति विवेचन के अंतर्गत इनको न भी लें तो भी यह नहीं कह सकते कि यह स्तुति पद नहीं हैं ।

पद 58 तथा 59 में शरीर रूपी ब्रह्माण्ड तथा संसार रूपी वन के रूपकों के द्वारा जीव जो विभीषण तथा मृग की त्रस्त तथा दीन एवं आर्त स्थिति का द्योतक है , कल्याण की कामना एवं विनय की गई है । इन पदों में गोस्वामी जी जीव के उद्धार की मर्मस्पर्शी विनय करते हैं । स्तुति, आरती तथा विनय को भी अनुशीलन की सुविधा की दृष्टि से पृथक् किया गया है अन्यथा स्तुति और विनय अङ्गाङ्गी अन्योन्याश्रित साधना-उपक्रम हैं ।

(ब)- रामस्तुति की रचना योजना कुछ इस प्रकार की है -

शील एवं रूप - सीता शील रूप 41, 42 (अ)

राम रूप - 51, 60, 61, 62, 63 (आ)

विनय - 58, 59 (इ)

शक्ति रूप - लीला- 43, 49, 50, 52 (ई)

गुण - 53, 54, 55, 56 (उ)

शक्ति शील - प्रभावगत- 44, 57 (ऊ)

शक्ति रूप के अंतर्गत अवतार एवं लीली-उल्लेख का विवरण इस प्रकार है -

संदर्भ				
अवतार संख्या	1	2	1	10
लीला संख्या	11	3	5	11
पद संख्या	(43)	(49)	(50)	(52)

अवतार विवरण

राम - 43, 49, 50, 52

कृष्ण - 49- 52

वामन - 49- 52

मत्स्य, शूकर, कमठ, नृसिंह,
ःवामनः परशुराम ःरामः
ःकृष्णः बुद्ध , कल्कि -------- 52

लीला विवरण

धनुष भंग -	43,	49,	50
परशुराम दर्प दलन -	43,	49,	50
राज्य त्याग -	-	-	-
जयंत को दण्ड -	-	-	-
विराध वध -	-	-	-
शूर्पणखा विरूपण -	43,	-	-
खर त्रिशिर, दूषण, मारीच वध -	43,	-	50,
कुकबंधा वध -	43,	-	-
बालि वध -	43,	-	-
सुग्रीव को राज्य प्रदान -	43,	-	-
समुद्र बंधन -	43	-	50,
रावण वध -	43	-	-
कालीय दमन -	-	49	-
कंसवधा -	-	49	-

2- स्वरूपगत वपुस् सौन्दर्य का वर्णन मुख्य रूप से 50, 51, 61, 62, 63, पाँच पदों में किया गया है । अन्य पदों के संदर्भ अभिधान के रूप बने हैं । विवरण कुछ इस प्रकार है-

स्वरूप संबंधी पद प्रयोग की दृष्टि से - मुख्य संदर्भ- 50-12, 51-25, 61-14, 62-18
63-20

अन्य अभिधान संदर्भ - 44-7, 49-4, 53-5, 54-4, 55-6, 56-7, 60-7

स्वरूप दर्शनगत दृष्टिपात की दृष्टि से मुख्य तथा संदर्भगत सभी शब्दों का विवरण निम्नलिखित है -

वदन	5	कपोल	4
कच	3	चिबुक	2
भ्रू	3	दृष्टि	3
नेत्र	11	हास	3
नासिका	4	कर	2
ग्रीवा	3	त्रिबली	1
अधर	4	नाभि	4
दंत	3	पदनख	2
श्रवण	1	चरन	2

मुख्य पद संदर्भ का विवरण निम्नलिखित -

	50	51	61	62	63 - पद
वदन	x ------	x ------	✓	✓	✓
कच	x ------	x ------	✓	✓	✓
भ्रू	x ------	x ------	✓	✓	✓
नेत्र	✓ ------	✓ ------	✓	✓	✓
नासिका	x ------	✓	✓	✓	✓
ग्रीवा	x ------	x	✓	✓	✓
अधर	x ------	✓	✓	✓	✓
दंत	x ------	✓	✓	✓	✓
श्रवण	x	x	x	✓	✓
चिबुक	x	x	x	✓	✓
दृष्टि	x	✓	✓	x	✓
हास	x	✓	✓	x	✓
उर	x	✓	✓	✓	✓
कर	✓	✓	✓	✓	✓
कटि	x	✓	✓	✓	✓
त्रिबली	x	x	x	x	✓
नाभि	✓	x	x	x	✓
पदनख	x	✓	x	✓ ✓	✓ ✓

↓‖↑ दृष्टिपात की गति सूचक

पद नख	× --	✓ --	× --	✓ --	✓
चरन	× --	× ---	× ---	✓	✓
अंकगणना-	3	11	14	16	20

इस प्रकार दृष्टिपात की दृष्टि से पहिले 3 अंगों पर तथा आगे 10, 14, 16, 20 अंगों पर दृष्टि जाती है । कुल अंगों की संख्या 20 है । इस प्रकार एक पद 63 में संपूर्ण अंगों पर दृष्टिपात संभव हुआ है । दृष्टि-सीमा विस्तार अभ्यास से होता है । कदाचित् यह तथ्य दृष्टिगोचर रहा हो तथा एक के पश्चात् दूसरे पद में दृष्टिपात की सीमा बढ़ाई हो ।

दृष्टिपात की विधा -

अ - जहाँ संदर्भगत विवरण स्वरूप का है अन्यथा मूल विवरण शक्ति का है, वहाँ साधारणतया ऊपर से नीचे दृष्टिपात करते हैं, जैसे, पद संख्या 50 में नर भूप रूप के शक्ति - शौर्य का वर्णन है ।

इस प्रथम पद में प्रथम दृष्टि भुजदंड पर जाती है जिसमें प्रचंड कोदंड धारण किए हुए ।उसके पश्चात् शक्तिपूर्णलाल नेत्रों पर दृष्टिपात होता है । साथ में पाथोजनाभ अभिधान प्रयुक्त होता है जिसमें रूप वर्णन न होकर शक्ति संकेत है ।

इसी प्रकार पद संख्या 51 में सिंहासनासीन शक्ति स्वरूप हैं । पद संख्या 50 की तुलना में पद संख्या 51 के शक्ति स्वरूप में यों तो नेत्र लाल ही हैं , फिर भी नेत्रों की विशालता की ओर भी दृष्टि गई है जिसका संकेत शक्ति रूप की सौम्यता की ओर हुआ है तथा सौन्दर्य वर्णन संदर्भगत न रह कर उल्लेख्य भी बना है । इस पद में भी ऊपर से नीचे दृष्टिपात करके सौन्दर्य रूप के दर्शन किये गये हैं ।

इसी प्रकार पद संख्या 61 में शक्ति और सौन्दर्य का समन्वित विवरण है तथा शक्ति पक्ष वरीय है तथा दर्शन के लिये दृष्टिपात ऊपर से नीचे होता है ।

आ- अन्यत्र जहाँ मूल विवरण स्वरूप या छबि का है वहाँ साधारणतया दृष्टिपात गति नीचे से ऊपर की ओर होती है ।

पद संख्या 62 व 63 इसी प्रकार के हैं । इनमें प्रथम दृष्टि चरणों पर जाती है । तथा आगे ऊपर चढ़ती हुई मस्तक तक पहुँचती है । इस विवरण में वंदना का भाव पहिले आता है , दृष्टिपात करने के पूर्व नतमस्तक होते हैं और दृष्टि डालते हैं तो चरणों पर प्रथम दृष्टि चरणवंदन हेतु पड़ती है । शक्ति पदों में आह्लाद , विस्मय, संभ्रम के भावों से दृष्टिपात प्रारंभ होता है । फलस्वरूप नेत्र एवं भुजदंडों पर प्रथम दृष्टि पड़ती है तथा नीचे उतरते हुये वंदना नत हो जाती है ।

3- शक्ति एवं गुण संबंधी विशेषणों में अ-उपसर्गों तथा निः- उपसर्गों सभी शब्दों का आकलन किया गया है ।
श्रीराम को नेति नेति कही जाने वाली सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है । पद संख्या 56 इस संदर्भ के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

4- श्री राम को सभी अन्य अवतारों का रूप बताया गया है । पद संख्या 52 में मत्स, शूकर, कमठ, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध , कल्कि अवतारों की चर्चा की गई है । इस रूप में श्री राम की स्तुति विपुल विस्तार लीला के प्रति प्रस्तुत की गई है ।

5- श्री राम की स्तुति के साथ उनके ही संबद्ध रूप नर, नारायण, तथा बिंदुमाधव, की स्तुति की गई है तथा साथ में संत स्तुति एवं सत्संग महिमा " संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं " मान कर की गई है।[1.365] पद संख्या 57 इस संदर्भ में उल्लेखनीय है ।

6- राम स्तुति प्रकरण में भगवान्वाची विभिन्न नामों का प्रयोग हुआ है । इनमें राम नाम की आवृति अधिक है । राम नाम की आवृति मानस के प्रयुक्त नामों में भी अधिक है । 'राम सकल नामन्ह ते अधिका' के लिए नारद जी ने वरदान भी माँगा है।

1.365 - गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान ।।- 7.125
संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही । चितवहिं राम कृपा करि जेही।।-7.67.7
सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः
देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माऽहमेव च - भा. 11/26/34
§ जैसे सूर्य आकाश में उदय होकर लोगों को जगत तथा अपने को देखने के लिये नेत्रदान करता है, वैसे ही संत पुरुष अपने को तथा भगवान् को देखने के लिए अन्तर्दृष्टि देते हैं। संत अनुग्रहशील देवता है । संत अपने हितैषी सुहृद हैं। संत अपने प्रियतम आत्मा हैं और अधिक क्या कहूँ स्वयं मैं ही संत के रूप में विद्यमान हूँ ।

143------

7- सौन्दर्य सूचक शब्दों का श्रेणीकरण (gradation) मानस के प्रयोगों पर आवृत्ति के आधार पर किया जा सकता है । इस श्रेणीकरण के आधार पर मनोहर और सुंदर शब्दों की सबसे अधिक आवृत्ति आती है । राम स्तुति प्रकरण के पदों को क्रमशः वरीय स्थिति में रखा गया है, ऐसा पदक्रम योजना के संदर्भ में माना जा सकता है । इस दृष्टि से अंतिम पद संख्या 62 व 63 में भी सुंदर, मनोहर शब्दों का प्रयोग हुआ है । मानस के आवृत्तिगत निष्कर्ष से विनयपत्रिका के प्रयोग मेल खाते हैं ।

8- वपुस् सौन्दर्य वर्णन में गोस्वामी जी ने कान्ति, आभा, श्यामता, तेज शब्दों का प्रयोग कर इन शब्दों की सूक्ष्म अर्थ सता की ओर संकेत किया है ।

9- वेशभूषागत सौन्दर्य साधनों में गोस्वामीजी ने तिलक, मुकुट, कुंडल, वनमाल, पदिक, कंकण, केयूर, मेखला, नूपुर, आभूषणों एवं पीत दुकूल का वर्णन किया है । इनके साथ श्री वत्स तथा चरणों में "कुलिश केतु जव जलज रेखबर" का आभूषण के समकक्ष वर्णन किया है । शस्त्रास्त्र, चक्र, कोदंड, वाण, तूणीर, कौमोदकी, ढाल का उल्लेख किया है तथा चतुर्भुज के साथ दर और कंज का विवरण प्रस्तुत किया है ।

10-सौन्दर्य वर्णन की विधा - सौन्दर्य वर्णन दो प्रकार से किया गया है -

अ- विशेषण प्रयोग द्वारा

आ- अलंकार द्वारा विशेषकर उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक अलंकार द्वारा

अ-विशेषण प्रयोग - निम्नलिखित विशेषण प्रायः प्रयुक्त हुए हैं -

अमित (58) अतुल (44) अत्यंत (58) अति (59) अपार (58)

कुशल (43) कठिन (59)

प्रबल (50) परम (50)

विमल (43) विशाल (49) विपुल (60)

सुभग (51) सकल (53)

आ-अलंकार द्वारा -

प्रत्येक पद में उदाहरण हैं । कतिपय अवलोकनीय हैं -

उपमा- पीतरंग के लिये -

तप्त कांचन ‌॥50॥ तड़ित इव ॥61॥ कौशेय ॥51॥

श्याम रंग के लिये-

तामरस दाम दुति ॥60॥ नील जलदाभ॥53॥ वारिदाभं

लालरंग के लिये-

अरुण राजीवदल ॥50॥

उत्प्रेक्षा - सम्पूर्ण पद संख्या 62 तथा अन्यान्य प्रयोग ।

रूपक - पद संख्या 58 तथा 59 में क्रमशः शरीर रूपी ब्रह्माण्ड में प्रवृत्तिरूपी लंकादि तथा संसाररूपी वन में संतरूपी मृग तथा अन्यान्य प्रयोग ।

अनुप्रास शब्दालंकार का विशेष प्रयोग इस प्रकरण की विशेषता है । पद की पूरी पंक्तियाँ एक वर्ण की आवृत्ति से अलंकृत हैं और अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य साधना भी संभव हुई है । पद संख्या 56 इस प्रसंग हेतु अवलोकनीय है ।

॥ ॥आ॥-राम स्तुति के द्वारा गोस्वामी जी ने युग की आस्था को एक नई चेतना दी । विष्णु, शिव, शक्ति, की आराधना पृथक् पृथक् होने लगी थी तथा परस्पर एक-दूसरे के प्रति विरोध और विद्वेष भी उठ खड़ा होता था । इस स्थिति के निवारण के लिये गोस्वामी जी ने शिव और राम की आराधना एक दूसरे के लिये अपेक्षित तथा अनिवार्य प्रतिपादित की । विष्णु, शिव, शक्ति, अथवा अन्यान्य अवतारों के द्वारा एकमात्र एक सत्ता का स्वरूप प्रतिपादित, प्रस्तुत एवं आभासित भी नहीं होता था । इन नामों के साथ पृथक् सीमित सत्तायें आभासित होने लगीं थीं । इस प्रकार राष्ट्रधर्म [1.366] का स्वरूप सांप्रदायिक

1.366- आज भी कुछ इसी प्रकार की समस्या है। हिन्दू शब्द राष्ट्रधर्म का द्योतक न होकर मात्र सांप्रदायिक हो गया है । यही कारण है कि हिन्दू शब्द को लेकर समाज का उत्थान करने वाली संस्थायें अपने उच्च आदर्शों को प्रतिष्ठित नहीं कर पा रहीं, सांप्रदायिक संस्थायें गिनी जाती हैं तथा अन्य संप्रदायों की कोटि में रखी जाती हैं जिनके द्वारा विरोध भी होता है । आज इस बात की आवश्यकता है कि राष्ट्रधर्म का नाम और स्वरूप प्रस्तुत और प्रतिपादित किया जाय जिसमें सभी सम्प्रदायों का समाहार हो जाय तथा धर्म की व्यापकता संभव हो सके ।

145------

संकुचित रूप में प्रस्तुत एवं विकसित हो रहा था । ऐसे राष्ट्रीय संकट तथा आस्था की विघटनकारी स्थिति को देखते हुए गोस्वामी जी ने राम के स्वरूप को तत्कालीन प्रचलित सभी देवी देवताओं, तथा अवतारों से ऊँचा उठाया और एकमात्र अनन्य रूप में प्रतिष्ठा कर राष्ट्रधर्म को पुनः एकमात्र एक राम को आराध्य प्रस्तुत कर एक सूत्र में पिरोया । मान्यताओं और आस्था के सभी प्रेरणा स्त्रोतों का मूल रूप राम हैं अथवा यों कहें कि राम ही विभिन्न अवतारी रूपों में प्रकट होते रहे हैं । वह सभी से ऊपर हैं, उच्च हैं और एकमात्र सता हैं । इसी रूप की प्रतिष्ठा में राम की स्तुतियाँ प्रस्तुत की गई हैं । तथा अपने अभीष्ट में गोस्वामी जी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है ।

।। ॥आ॥- इसी विशेष संदर्भ में गोस्वामी जी राम स्तुतियों के अंतर्गत जो विनय करते हैं वह अपने आप में अन्य विनय संदर्भों से भिन्न है तथा धर्म संबलहीन [1.367] के लिए एक अवलंब (याचना) का संकेत करती है -

॥ i ॥ उस एकमात्र सता के स्वरूप पर आह्लादित और उल्लसित होना । उससे विनय की ही क्या जाय ।

अवधवासियों के साथ आस्थावान जन जन का मुदित होना -

- दास तुलसी मुदित अवधवासी सकल, राम भे भूप वैदेहि रानी ॥43॥
- नाम-मंत्रावली द्वंद्वदुख हरनि, आनंदखानी ॥49॥
- तुलसिदास मति मंद द्वंदरत कहै कौन बिधि गाई ॥62॥

॥ ii ॥ संशय का नाश हो तो एकमात्र आराध्य के रूप की अनुभूति हो सके । संशय नाश ही रामकथा का भी मूल अभीष्ट है ।

- दास तुलसी चरण शरण संशय-हरण, देहि अवलंब वैदेहि-भर्ता ॥44॥

यह संशय ही जीव का शोक त्रास एवं विपत्ति है जिससे मुक्ति की आकांक्षा है।

त्रास - दास तुलसी -त्रास-निधि वहित्रं ॥50॥ त्रासहंता ॥55॥

तुलसीदास त्रास-पाथोधि इव कुंभजातं ॥53॥

कठिन काल विकराल -कलि त्रास त्रस्तं ॥59॥

ग्रसित -भव-व्याल अति त्रास .... ॥61॥

शोक - सदा दास तुलसी -शरण शोकहारी ॥51॥

..... शोक संपन्न...पाहि माम..॥56॥

....भ्रमित अति खेद, मति मोह नाशी....॥60॥

1.367-दास तुलसी दीन धर्मसंबलहीन, भ्रमित अति खेद, मति मोह नाशी
देहि अवलंब न विलंब अंभोजकर .....॥60॥

146-----

विपत्ति - दास तुलसी हरण विपति भारं ॥52॥

.... संताप संकुल सदा .... ॥54॥

विश्व दुख-हरण ...... दास तुलसी हृदय कमलवासी ॥58॥

॥iii॥ अभीष्ट हेतु विनय -

कामना एवं एकमात्र उपाय - तुलसीदास भव त्रास मिटै तब, जब मति येहि सरूप अटकै ॥63॥

प्रणति - पाहि मामीश ..... ॥54॥

पाहि माम ॥ शोक संपन्न अतिशय सभीतं ॥ ॥56॥

त्राहि रघुवंश भूषण ... कलित्रास त्रस्तं ॥59॥ त्राहि श्रीराम .. ॥61॥

प्रार्थना- देहि अवलंब ..... ॥44॥

देहि अवलंब न विलंब अंभोजकर ॥60॥

अन्य स्तुतियाँ -

पंचायतन शेष स्तुतियाँ

लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न पंचायतन के शेष वंदनीय आराध्य हैं -

संबोधन संकेत -

लक्ष्मण	भरत	शत्रुघ्न
- लक्ष्मण, लाल लाड़िले लखन	-भरत	- शत्रुघ्न, शत्रुहन,
लक्ष्मणानंत भगवंत, भूधर,	भानुवंशभूषण	शत्रुतम-तुहिनहर किरणकेतु
भुजगराज, दाशरथि	भुवन भूषण	-भुवन विख्यात भरतानुगामी
-भ्राते भरतके, राम भरत बंधो चातक चतुर रामस्याम घनके	भूमिपालमणि	- सुमित्रा सुवन
- सुमित्रा सीता के दुलारे,		
सुमित्रा सुवन		

लक्ष्मण	भरत	शत्रुघ्न
वल्लभ उरमिला के ,	माण्डवी चित चातक	श्रुतिकीर्ति वल्लभ
उर्मिला रवन	नवांबुद -बदन	
रूप वर्णन -		
रूप के निधान,	॥ वरवीर भारी ॥	सर्वांग सुदर वर्म चर्मासि-
चारु चंपक बरन		धनु-बाण
भव्य		तूणीरधर
लावण्यसिंधो		
धनुबान पानि		
तून कटि		
वसन भूषन धरन		
दिव्यतर		
लीला वर्णन -		
- लीलावतारी	-बंधुहित चित्रकूटादिचारी	लवणम्बुनिधि-कुंभ-संभव
-प्रलयपावक	पादुका नृप सचिव	
महाज्वालमालावमन	- संजीवनी समय संकट	
-गाधेय गौतम जनक	हनुमान धनुवान महिमा	
सुख जनक	बखानी	
- वचनचय चातुरी	- रण-अजिर गंधर्वगण-गर्वहर	
परशुधर गरबहर	फिर किये राम गुण गाथ	
-जलदनाद मर्दन	गाता	
	- बिबुधेश-धनदादि दुर्लभ-	
	महाराज संभ्रमसुखप्रद विरागी	

शील वर्णन -

लक्ष्मण	भरत	शत्रुघ्न
- हित हौ जनके , सेवक सुखदायक सुलभ सनेहबस , सकल सुमंगलकारी, कल्याण मंगल भवन - सुमिरे संकटहारी पालक कृपालु अपने पन के	- पुहुमि- पालक परम - निरुपाधि-भक्ति भाव- यंत्रित- हृदय - अभय-दाता	- देव महिदेव महि धेनु सेवक सुजन सिद्ध मुनि सकल कल्याण हेतु - सुदर्लभ सुलभ - दीन आर्त संतापहाता नर्मद , भुक्ति मुक्ति दाता

पंचायतन शेष स्तुतियों का विवेचन -

इन तीन स्तुतियों का विवेचन निम्नलिखित है -

वर्णन व्यवस्था	पद संख्या	पंक्ति संख्या
- लक्ष्मण	2	15 + 20 = 35
भरत	1	20
शत्रुघ्न	1	16

- तीनों स्तुतियों में प्रत्येक देव के लिये 5 बार जयति शब्द का प्रयोग किया गया है । यह जयति प्रयोग सम्मानार्थ मानना चाहिये ।

- तीनों स्तुतियों में विपुल बलशाली शक्ति रूप की प्रस्तुति हुई है -

लक्ष्मण	भरत	शत्रुघ्न
महाबीर बिदित	वरवीर भारी	शत्रु -करि-केसरी
सबल, सबलायक	बाहुबल विपुल	महा दनुज दुर्जन दवन
शार्दूल विक्रम	परमिति पराक्रम अतुल	
महावीर भारी	खड्गधारावती प्रथमरेखी	
विपुल बलमूल		

तीनों भाई भगवान् राम के भक्त एवं अनुरागी हैं ।

लक्ष्मण	भरत	शत्रुघ्न
- गायक जानकीनाथ गुनगन के	-राम चन्द्रानुरागी	-भरत राम सीताचरणरेणु भूषित भाल तिलकधारी
- राम भद्रानुगंता, सीतेश - सेवासरस	-भूमिजारमण पदकंज मकरंद-रस रसिक मधुकर	
	-गूढ़गति जानकी जानिजानी	

- तीनों स्तुतियों के संबोधनों में पत्नी संबंध सूचक संबोधन विशेष रूप से प्रयुक्त है ।

विशेषता - शत्रुघ्न राम के साथ भरत तथा सीता जी के भी भक्त दिखाये गये हैं।

- भरत राम सीता चरण रेणु भूषित भाल तिलकधारी
- लक्ष्मण तथा भरत को धर्मधारी कहा गया है । शत्रुघ्न के लिये यह विशेषण प्रयुक्त नहीं हुए हैं -

लक्ष्मण	भरत
- निर्मल करम बचन अरु मन के	-निरुपाधि-भक्तिभाव-यंत्रित हृदय
- धरम धरमरत, धुरधर्मधारी	- परम धरम धुरधीर

यह दोनों भाई भूभारहारी एवं पालक भी हैं -

लक्ष्मण	भरत
-भूभारहारी , भंजन भुवनभारी	- भुवन भूषण , पुहुमि पालक

- भरत की अपेक्षा लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के शीलपक्ष का अधिक वर्णन किया गया है -
- लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न का रूप वर्णन किया गया है , भरत का केवल संकेतित है ।

शील वर्णन -

- लक्ष्मण को अवतारी भी कहा गया है -
- अवतार साहसी सहसफन के
- धरनीधरनहार
- भगवंत भूधर

इन विशेषताओं को तीनों भाईयों के लीला क्षेत्र के संदर्भ में देखा जा सकता है -

लक्ष्मण भगवान् के साथ लीलारत हैं तथा भरत के साथ शत्रुघ्न गृह विभाग एवं सुरक्षा आदि का भार वहन किये हुए हैं । अपेक्षातया लक्ष्मण अधिक प्रकाश में आये हैं । फलस्वरूप उनकी स्तुति में उनके सभी पक्षों को उजागर किया गया है ।

इन तीनों भाईयों से गोस्वामी जी निम्नलिखित विनय करते हैं -

लक्ष्मण	भरत	शत्रुघ्न
- धनीधन तुलसी से निरधन के - दास तुलसी -दोष दवन हेतु	- सरन तुलसीदास अभयदाता-	दास तुलसी चरण शरण सहित- विभो, पाहि दीनार्त- संताप हाता

पंचायतन की विनय की विशेषता अवलोकनीय है । गोस्वामी जी अन्य सभी देवी-देवताओं तथा तीर्थों से, राम के प्रेम की याचना करते हैं । 'बसहि रामसिय मानस मोरे' एक मात्र विनय है किन्तु पंचायतन के पाँचों विभवों को आराध्य मानते हुए जिस प्रकार भगवान् राम की शरणागति की कामना करते हैं, उसी प्रकार इन आराध्यों से भी शरणागति को याचना करते हैं । पंचायतन में गोस्वामी जी भगवान् राम की व्यापक सता की झांकी देखते हैं तथा पंचायतन के पाँचों विभवों की पृथक्- पृथक् स्तुति करते हुए भी समग्र रूप में राम छबि के ही दर्शन करते हैं ।

पंचतीर्थ स्तुति - गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट तथा कामदकूट [चित्रकूट के साथ वर्णित] पाँच तीर्थ हैं जिनकी स्तुतियाँ गोस्वामी जी ने की हैं । इन पाँच तीर्थों में गंगा का वर्णन सबसे अधिक किया गया है ।

गंगा स्तुति - [पद संख्या 17, 18, 19, 20]

संबोधन संकेत -

- भगीरथनन्दिनी , जह्नु बालिका , जह्नु कन्या ,
सुरसरी, सुरसरित, सुर-स्वामिनी ,
बहुनामिनी

नाम रूप - बिस्नु-पद-सरोज जासि, विष्णु-पद कंज -मकरंद-इव अम्बुवर बहसि

- ईस सीस पर बिभासि, त्रिपुरारि शिरधामिनी, ईस सीस बसति

- त्रिपथगासि, त्रैलोक पथगामिनी , त्रिपथ लसति, नभ पाताल धरनि

धारा प्रवाह - सोभित ससि धवल धार, सोहत ससि धवल धार, सहस सीसँवली स्त्रोत्र

- बिमल बिपुल बहसिबारि , भँवर बर बिभंगतर तरंग मालिका

मिलित जलपात्र अज युत -हरि चरण रज , विरज वर-वारि

हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीरवर मध्य धारा विशद

- बिलसति महि कल्पबेलि, बिमल तर तरंग लसत रघुवर के से चरित

- भूधर द्रोणि विद्दरणि

- जलनिधि जलभरनि

महिमा एवं फल

- अमित महिमा, महिमा की अवधिकरसि बहु बिधि हरि हरनि

- पुन्यरासि, स्वर्ग सोपान , पाप-छालिका , भंजन भवभार, शीतल त्रय ताप हारी

- पुरजन पूजोपहार, भूमावली मुकुट मनिबंध, भक्ति - थालिका

- पुण्यकृत सगरसुत, सगर सुवन सांसति समनि

-निज तट वासी विहंग जलथलचर, पसुपतंग , कीट, जटिल तापस सब सरिस पालिका

यक्ष गंधर्व मुनि किन्नरोरग, दनुज, मनुज, मज्जहिं, सुकृत पुंजयुत कामिनी

सुर नर- मुनि नाग सिद्ध सुजन मंगल करनि

- अघ वृन्द-विद्राविनी, मोह मद मदन पाथोज हिमयामिनी

जगदखिल पावनी -दुख दहसि

देखत दुखदोष दुरित दाह दारिददरनि

हरनि पाप त्रिबिध ताप सुमिरत

- सुधा सलिल भरित , मुद मनोरथ फरित ,

विश्व अभिरामिनी

- विज्ञान ज्ञान प्रदे

विनय - महिमागत - तो बिनु जगदंबगंग कलिजुग का करित

घोर भव अपार सिंधु तुलसी किमि तरित

याचना-मति देहि- तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंस-बीर

बिचरत मति देहि मोह महिष कालिका

पद प्रीति- देहि रघुबीर-पद-प्रीति निर्भर मातु दास तुलसी त्रास हरणि भवयामिनी

विमल वाणी-तुलसी करु बानि बिमल बिमल बारि बरनि

यमुना स्तुति - यमुना स्तुति के अंतर्गत केवल धारा प्रवाह तथा फल का वर्णन है । न इसमें नाम, एवं नामरूप है न विनय है ।

(पद संख्या 21)

धारा प्रवाह	फल
ज्यों ज्यों लागी बाढ़न	त्यों त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहु काढ़न
ज्यों ज्यों जल मलीन	त्यों त्यों जमगन मुखमलीन लहै आढ़न
अनघमेघ ज्यों	जगदघ ज्वास लगे डाढ़न

उपर्युक्त धारा प्रवाह तथा उसके फल के वर्णन से अप्रत्यक्ष रूप से पापनाश की विनय संकेतित है जिससे प्रभु कृपा एवं प्रभु पद प्रीति संभव हो सके ।

काशी स्तुति - काशी स्तुति काशीरूपी कामधेनु के रूपक के द्वारा की गई है । इस रूपक में काशी का निम्नलिखित विवरण प्रस्तुत हुआ है -

(पद संख्या 22)

भौगोलिक विवरण -

नदियाँ- वरुणा , असी तथा पचनदा

तीर्थ - लोलार्क कुण्ड ,

- त्रिलोचन तीर्थ , अगणित शिव लिंग , बिन्दुमाधव तीर्थ
- कर्मघण्टा,
- भैरव (दण्डधारी)
- पंचकोसी परिक्रमा
- मरजादा चहुँ ओर चरनबर

महिमा एवं प्रभाव - सेवत सुरपुर वासी

सिद्धि, सची, सारद पूजहिं मन जोगवति रहति रमासी

केसव निज कर- करतूति कला-सी

परम पद ....

जेहि चहत प्रपंच उदासी

- चरित करम कुकरम

फल - - समनि सोक-संताप -पाप-रुज सकल-सुमंगल-रासी

विनय - फल के अंतर्गत ही विनय है कि शोक संताप -पाप रुज का नाश हो तथा सभी प्रकार से मंगल हो । इसी संदर्भ में गोस्वामी जी अपेक्षा करते हैं कि यदि सुखी होना चाहते हो तो काशी में बसकर राम नाम का जप करो ।

तुलसी बसि हर पुरी राम जपु

जो भयो चहै सुपासी

चित्रकूट व कामदकूट स्तुति - यह स्तुतियाँ ‖कल्प‖ वृक्ष के रूपक में प्रस्तुत की गई हैं ।

‖ पद संख्या 23 व 24 ‖ इस रूपक में कूट वर्णन एवं विवरण निम्नलिखित रूप में दिया गया है -

भौगोलिक विवरण -

विवरण	महिमा
- सुचि अवनि	- भूमि राम-पद-अंकित
- कानन बिचित्र	- बन रघुबर-बिहार थलु
- सुसृंग , भूरुह	- सैलसृंग भवभंग हेतु
- मंदाकिनी, निर्झर मलय बात	- नाम नाम जप जाग करत नित मज्जत पय पावन पीवत जलु
	-जहँ जनमे जग जनक जगतपति बिधि-हरि-हर परिहरि प्रपंचछलु
	-सकृत प्रबेस करत जेहि आश्रम बिगत बिषाद भये पारथ-नलु
	- मंत्र सो जाइ जपहि जो जपि भे अजर अमर हर अचइ हलाहलु

रूप - रस एक, रहित गुन करम काल

फल एवं प्रभाव - थप्यो थिर प्रभाव जानकी नाह
सियराम लखन पालक कृपाल
- कलि हरन, दलन कपट-पाखंड दंभदलु
- भव घोरघाम -हर -सुखद छाँह
- सोच बिमोचन, कल्यान बूट
- साधक ..... पावत अनेक अभिमत
- साधन प्रसून फल चारि चारु
- सुख-साधन अनयास महाफलु

चित्रकूट के साथ कामदकूट का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार आया है -

रूप - जुग जुग जागत जगतीतलु

फल - कामदमनि कामता, कलपतरु

विनय-महिमागत - निरुपाधि नेम करके गिरि की सेवा करने से राम पद प्रेम होगा तथा 'करिहैं राम भावतो मन को'।

याचना-आकांक्षा - साधक को विशेष रूप से उसी (चित्रकूट एवं कामदकूट) के विश्वास प्रेम और बल पर निर्भर रहना चाहिये। ऐसा हो, यही याचना, आकांक्षा एवं विनय कामना है।

तुलसी तोहि बिसेषि बूझिये
एक प्रतीति-प्रीति एकै बलु

<u>पंचतीर्थ स्तुति विवेचन-</u>

- पंच तीर्थों की वर्णन व्यवस्था इस प्रकार है -

	पद संख्या	पंक्ति संख्या
गंगा	4	43
यमुना	1	4
काशी	1	18
चित्रकूट	2	20
(कामदकूट)	-	1

- जय, जयतिजय दो बार केवल गंगा जी के लिये स्तुति के प्रथम दो पदों में प्रयुक्त हुआ । गंगा स्तुति के शेष दो पदों तथा यमुना, काशी, चित्रकूट, कामदकूट के लिये जय शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है । गंगा तीर्थ की वरीयता एवं महिमा इससे प्रकट होती है ।

- तीर्थ स्तुतियों में वर्णित प्रकृति की उस शोभा की ओर गोस्वामी जी संकेत करते हैं जो मन को प्रफुल्लित मोदयुक्त एवं प्रसन्न करती है तथा अनायास सात्विक बुद्धि एवं निर्मल मन सुलभ कराती है । पर्यटक इसी शोभा से उद्दीपक एवं विलासी भाव ग्रहण करते हैं । इस परिप्रेक्ष्य में प्रकृति के मूल पुरुष प्रेम को प्रकट करने वाले भाव को जाग्रत करना तथा उसके संस्कार सुरक्षित बनाये रखना बहुत बड़ा काम है । तीर्थ वस्तुतः वह सोपान है जिनका अवलंब लेकर साधक प्रभु प्रेम के मार्ग पर अग्रसर होता है ।

- उपर्युक्त संदर्भ में ही गोस्वामी जी ने इन स्तुतियों में साधक तथा साधन शब्दों का प्रयोग किया है ।

- यमुना स्तुति में केवल बाढ़ का वर्णन है । गंगा जी आदि की स्तुति विनय के रूप में है किन्तु यमुना जी की स्तुति विनय न होकर मात्र वर्णन ही है । इस वर्णन से विद्वान् बढ़ी हुई यमुना में घटी किसी घटना का अनुमान लगाते हैं और यह वही घटना है जिसका उल्लेख बाबा बेनीमाधवदासजी कृत मूल गोसाईं चरित में है तथा राजापुर क्षेत्र में प्रचलित जनश्रुति भी है कि स्त्री वियोग में गोस्वामी तुलसीदास जी ने रातोंरात बढ़ी हुई यमुना पार की थी ।

- इन स्तुतियों को तीर्थ स्थलीय भूगोल की संज्ञा दी जा सकती है । इन स्तुतियों में विस्तार से तीर्थस्थल की रूपरेखा तथा उसके अंतर्गत स्थित विभिन्न दर्शनीय एवं वंदनीय तीर्थों का विवरण दिया गया है ।

- पंचतीर्थगत इन स्तुतियों में तीर्थ महिमा का विशेष वर्णन किया गया है जिससे तीर्थों के उनके अनुकूल श्रद्धा एवं भक्तिभाव से दर्शन हों ।

- पंचतीर्थ वंदनीय आराध्यजनों से संबद्ध हैं । इनके चयन में यह दृष्टि कार्यरत रही है ।

गंगा-	विष्णु तथा शिव से संबद्ध
काशी -	शिव से संबद्ध
यमुना -	सूर्य से संबद्ध
चित्रकट एवं कामदकूट	भगवान् राम से संबद्ध

- रूपक द्वारा प्रस्तुति - विधा इन स्तुतियों में भी अपनाई गई है ।

पंचदेव शेष स्तुतियाँ -

- गणेश, सूर्य, शिव, देवी तथा केशव पंचदेव हैं। इनमें केवल गणेश तथा सूर्य की स्तुतियाँ शेष रह गई हैं। अन्य देवों की स्तुतियाँ प्रकरणों के अंतर्गत ले ली गई हैं।

गणेश और सूर्य स्तुतियाँ - (पद संख्या । व 2)

	गणेश	सूर्य
नाम	- गनपति	- दिवाकर
	- संकर-सुवन	
	- भवानी नंदन	
	- बिनायक	
नामरूप	-गज-बदन	हरि-संकर-विधि-मूरति स्वामी
	-मोदक-प्रिय	हिम-तम-करि-केहरि करमाली
	-सुंदर	तेज प्रताप -रूप-रस-रासी
		सारथि - पंगु, दिब्य रथगामी
महिमा एवं प्रभाव	- जगबंदन	-बेद-पुरान प्रगटजस गावै
	- सिद्धि सदन	- कर मुनि, मनुज, सुरासुर सेवा
	- सब लायक	- दहन दोष -दुख-दुरित - रुजाली
	-बिधा-बारिधि, बुद्धि बिधाता	- लोक-कोकनद लोक-प्रकासी
शील -	- कृपा सिंधु	- दीन-दयालु
	- गुद-मंगलदाता	
विनय -	बसहिं रामसिय मानस मोरे	- तुलसी राम - भगति बर माँगै

1.368

पंचदेव स्तुतियों की विनय का विवेचन - गोस्वामी जी पंचदेवों को शास्त्रीय सूतिक्रम से न लेकर उनके लिये अपना भिन्न क्रम बनाते हैं ।

गणनाथ, आदित्य, शिव, देवी, केशव

- गणनाथ की सर्वप्रथम स्तुति की जानी चाहिये, यह शास्त्रीय विधान गोस्वामी जी के ध्यान में रहा है । इस क्रम से प्रस्तुत विनय के अंतर्गत उनकी याचना का विकास परिलक्षित है -

- याचना एवं विनय के क्रमिक विकास की ओर गोस्वामी जी की सूक्ष्म दृष्टि गई है ।

देवी-देहिमा, मोहि पनप्रेम.....राम घनश्याम तुलसी पपीहा

शिव - देहु काम रिपु रामचरनरति

सूर्य- तुलसी राम भगति बर माँगै

गणेश - बसहिं रामसिय मानस मोरे

प्रेमप्रण

चरनरति

भक्ति

मानसवास

वास, भक्ति, रति एवं प्रण उत्तरोत्तर प्रेम साधना की स्थितियाँ हैं । इनकी प्राप्ति कर लेने पर ही अंतिम प्रभु मिलन, प्रभु से निवेदन एवं विनय की स्थिति आ पाती है ।

- स्तुति के स्वरूप को प्रकट करने के लिये पंचदेव स्तुतियों को आदर्श रूप में लिया जा सकता है । नाम, रूप, महिमा एवं प्रभाव का वर्णन करते हुए वंदनीय देव के समग्र चित्र को प्रस्तुत करते हैं तथा शील के अंतर्गत उनके कृपालु एवं दयालु स्वभाव का बखान करते हैं । इस प्रकार इन संदर्भों में देव की शक्ति सामर्थ्य एवं दयालुता को उद्घोषित करते हुए मानों विनय के औचित्य को सिद्ध करते हैं तथा तब विनय करते हैं। विनय असाधारण है । साधारणतया विनयकर्ता भौतिक सुख समृद्धि की कामना करता है । गोस्वामी जी उस प्रकार की विनय से भिन्न एवं विपरीत प्रभु का हृदय में वास, प्रभु की भक्ति, प्रभुरति की माँग रखते हैं । यह विनय स्वीकार करना निश्चय ही सरल नहीं है । इसीलिए शक्ति सामर्थ्य की पूर्व दुहाई देते हैं ।

- 'मोदक प्रिय'; 'कर मुनि, मनुज, सुरासुर सेवा' संदर्भ इन प्रथम दो स्तुतियों में, पूजिबो पात 'आखत थोरे' शिव स्तुति में, तथा 'गुनकथन,' (दुर्गा सप्तशतीपाठ) देवी स्तुति में दिये गये हैं इन संदर्भों से स्पष्ट है कि इन देवी-देवताओं की स्तुति के लिये अपेक्षित उपयुक्त पूजा सामग्री को लेकर स्तुति की जा रही है तथा इसी रूप में स्तुति की जाने का संकेत एवं निर्देश किया जा रहा है । इनके प्रसाद (प्रसन्नता) के लिए अपेक्षित प्रसाद प्रस्तुत करना ही चाहिये । इस प्रकार गोस्वामी जी स्तुति के विधिवत् किये जाने की अपेक्षा करते हैं ।

1.368- आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम् ।
पंच देवभित्युक्तं सर्व कर्मसु पूजयेत ।।

158----

आरती-

मानस आरती प्रसंग -

मानस में आरती प्रसंग दो अवसरों पर आये हैं -

1- विवाह अवसर 2- अन्य मांगलिक अवसर

विवाह अवसर के आरती प्रसंग दो रूपों में प्रस्तुत होते हैं -

- परिछन आरती
- मंगल आरती

परिछन/परछन [परि-अर्चन] - विवाह की एक रीति है जिसमें बारात द्वार पर आने पर कन्या-पक्ष की स्त्रियाँ वर की आरती करतीं तथा उसके ऊपर से मूसल बट्टा आदि घुमाती हैं [1.369] गोस्वामी जी ने परिछन का प्रयोग वर पक्ष के यहाँ वरवधू के शुभागमन के अवसर के लिये भी किया है ।

परिछन आरती प्रसंग - शिव एवं राम विवाह के अवसरों पर बारात के आगमन के समय परिछन आरती के प्रसंग आते हैं -

शिव विवाह - मैनाँ सुभ आरती सँवारी । संग सुमंगल गावहिं नारी ।
कंचन थार सोह बर पानी । परिछन चली हरहि हरषानी ।।-1.370

राम विवाह - रानी सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मंगल साजहीं ।- 1.371

[बारात आगमन] - सजि आरती अनेक बिधि मंगल सकल सँवारि ।
चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बरनारि ।।- 1.372
- नयन नीरु हटि मंगल जानी । परिछनि करहिं मुदित मन रानी।।-1.373

[वरवधू का अयोध्या आगमन] - राम दरस हित अति अनुरागीं । परिछनि साजु सजन सब लागीं।।-374अ
- मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार ।। - 1.374[ब]

1.369- संक्षिप्त हिंदी -शब्द-सागर 2008 वि. पृ. 703
1.370- मानस-1.95.2,3 1.371-मानस-1.316 छं. 1.372-मानस-1.317
1.373-मानस-1.318.1 1.374अ- मानस-1.345.2, 1.374 ब-मानस 1.348

159----

- मंगल आरती - मानस-मंगल-आरती के निम्नलिखित अवसर उल्लेखनीय हैं -

- धनुष भंग के हर्षोल्लास के अवसर पर -

- महि पाताल नाक जसु ब्यापा । राम बरी सिय भंजिउ चापा ।।
  करहिं आरती पुर नर नारी । देहिं निछावर बित बिसारी ।।-1.375

- बारात के प्रस्थान के मांगलिक अवसर पर -

- चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात ।
- चढ़ीं अटारिन्ह देखहिं नारीं ।लिएँ आरती मंगल थारीं ।।- 1.376

- राम तथा भाईयों के विवाह मंडप में आगमन के अवसर पर -

- करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा । राम गमनु मंडप तब कीन्हा ।।-1.377
- रूप सिंधु सब बंधु लखि हरषि उठा रनिवासु ।
  करहिं निछावरि आरती महा मुदित मन सासु ।।- 1.378

वरवधू की पूजा एवं आरती -

- धूप दीप नैबेद बेद बिधि । पूजे बर दुलहिनि मंगलनिधि ।
  बारहिं बार आरती करहीं । ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं । -1.379

विवाह से इतर अन्य अवसर -

- भरत के ननिहाल से सकुशल वापिस आने पर कैकेयी द्वारा स्वागत आरती -

- सजि आरती मुदित उठि धाई । द्वारेहिं भेंट भवन लेइ आई ।।- 1.380

- वनवास से राम लक्ष्मण एवं सीता जी के सकुशल अयोध्या वापिस आने के शुभ अवसर पर स्वागत आरती -

- कनक थार आरती उतारहिं । बार बार प्रभु गात निहारहिं ।।- 1.383
- कंचन थार आरती नाना । जुबतीं सजें करहिं सुभ गाना ।।- 1.382
- करहिं आरती आरतिहर कें । रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें ।।- 1.383

- राज्याभिषेक के अवसर पर सम्मान आरती -

- प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा।पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा ।।-1.384
  सुत बिलोकि हरषी महतारी । बार बार आरती उतारी ।।- 1.385

1.375- मानस-1.264.5,6 1.376-मानस-1.300.4 1.377-मानस-1.318.4
1.378- मानस-1.33.5 1.379-मानस-1.349.3,4, 1.380-मानस-2.158.3
1.381= मानस-7.6.4 1.382-मानस-7.8.6, 1.383- मानस- 7.8.7
1.384- मानस- 7.11.5 1.385- मानस- 7.11.6

160------

मानस के उपर्युक्त आरती प्रसंगों में आरती क्रिया का ही उल्लेख हुआ है । स्तुति की भाँति आरती के अंतर्गत भी आराध्य की प्रशंसा एवं उसके विशेषणों का वर्णन अपेक्षित होता है । इन आरतियों में यह पक्ष नहीं लिया गया है । रामायण की आरती स्वयं मानस की आरती है । इस आरती में रामायण जीकी प्रशंसा एवं विशेषता प्रस्तुत की गई है ।

प्रशंसा गुणगान के रूप में है कि ब्रह्मादिक, मुनि नारद, बाल्मीकि, शुक , सनकादि, शेष , शारदा, पवनसुत , वेद, पुराण, शंभु ‡भवानी, अगस्त्य व्यास, काकभुशुंडि, जिसका गुणगान करते हैं , जिसकी कीर्ति का वर्णन करते हैं ।

विशेषता महिमा एवं प्रभाव के रूप में हैं कि जो कलियुग के पापों को हरनेवाली है, रोग का दलन करने वाली है , अमृत का मूल है तथा मुक्ति प्रदान कराने वाली है ।

विनयपत्रिका की आरती - विनय पत्रिका में आरती के 3 पद हैं । दो पदों में आरती शब्द का प्रयोग हुआ है । एक पद में आरती शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है किन्तु आरती के रूप में प्रयुक्त एवं लोक प्रचलित है ।

आरती की प्रक्रिया -आरती कैसे करनी चाहिए या आरती में क्या करना चाहिये , इन जिज्ञासाओं का भी गोस्वामी जी ने समाधान किया है ।

पहिले सुगन्ध ‡धूप‡ प्रस्तुत करे । धूप के पश्चात् दीप दिखलावे । तब नैवेद्य अर्पित करे और उसके पश्चात् पान प्रस्तुत करे । तदन्तर दस बतियाँ जलाकर आरती उतारे । आरती करने के पश्चात् शयन करावे । [1.385]

आरती के प्रकार - गोस्वामी ने तीनों आरतियों में तीन भिन्न प्रकार प्रस्तुत किये हैं।

एक आरती में आराध्य की स्तुति है ।

दूसरी आरती में आरती की प्रशंसा है ।

तीसरी आरती में आरती प्रक्रिया तथा मानस योग का विवरण दिया गया है ।

अ- आराध्य की स्तुति में रूप , शक्ति एवं शील तीनों पक्षों को लिया गया है । ‡पद संख्या 45 ‡

1.385- विनयपत्रिका पद 47

16।-----

नाम	रूप		शक्ति	शील
-श्रीरामचन्द्र	-नव कंज लोचन	-पटपीत	-दानव-दैत्यवंश-निकंदनं	- कृपालु
-जनक सुतावर	- कंज मुख	-		
			-आजानुभुज	- हरण भव भय दारुणं
-कोसलचन्द	- कर कंज	-सिरमुकुट		-दीनबंधु
				-आनंद कंद
-दशरथनंदन	-पद कंजारुणं	- कुंडल तिलक	शर-चाप-धर	
	-कंदर्प अगणित अमित छवि	-चारु उदार अंग विभूषणं	-संग्राम-जित-खरदूषणं	- शंकर-शेष मुनि-मन-रंजनं
				- कामादि खल-दल-गंजनं
	-नव नील नीरद सुंदरं			

विनय - मम हृदय कंज निवास कुरु

इस आरती की कई विशेषतायें हैं जिनकी ओर अध्येताओं का ध्यान गया है -

- इस आरती में श्री रामचन्द्र पद का प्रयोग किया गया है । अन्यत्र मानस में केवल रामचन्द्र पद प्रयुक्त हुआ है । इस विशेषता का अभीष्ट यह है कि श्री सहित रामचन्द्र अर्थात् श्रीसीताजी सहित श्रीराम की आरती की जा रही है । इसी संदर्भ में आगे इसी पद में जनकसुतावर पद का प्रयोग हुआ है ।

- इस आरती में पाँच बार कंज शब्द का प्रयोग हुआ है -

कंज लोचन, कंज मुख , कंज कर, कंज पद , कंज हृदय

मानस में कंज[1.386] का प्रयोग इस प्रकार हुआ है -

काण्ड -	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
कंज	5	×	1	1	2	7	7
कंजा	2	×	×	×	×	×-	1
कंजारुन	×	×	×	×	1	×	×
कंजु	1	×	×	×	×	×	×
	8	(×)	1	1	3	7	8

1.386- करकंज-1.147.8, लोचन कंज-1.220.5, 3.3 छं.,5.44.4, 7.76.5
पद कंज- 1.05,5.29, 5.47, 6.18, 6.35(क), 6.80(ख), 6.106,
6.112 छं., 7.12 छं., 7.38, 7.125.2 तथा 1.185 छं., 1.14(घ)

162----

मुख कंज - ×

कर कंज - 1

लोचन कंज- 4

पद कंज- 13

हृदय कंज - 1

मानस में मुख कंज प्रयोग नहीं हुआ है । इसके स्थान पर ससि मुख , चन्द्र मुख मुख सरोज आदि प्रयोग हुए हैं । कंज प्रयोग में सबसे अधिक प्रयोग पद कंज का हुआ है ।

इस पद में कंज के प्रयोग के संबंध विभिन्न प्रयोजन अनुमानित किये गये हैं । इस प्रयोग के प्रयोजन के संबंध में निश्चित कुछ कहना संभव प्रतीत नहीं होता । साधारणतया अनुप्रास प्रियता तो एक कारण है ही । कवि के समक्ष शब्दों ने अपनी आत्मा खोल दी थी तथा आत्म साक्षात्कार कराया था । अनुभूति की उस उचाँई की अपेक्षा प्रस्तुत प्रसंग में रहेगी ।

दूसरी आरती में आरती की प्रशंसा की गई है । ‖ पद संख्या 48 ‖

आरती का नाम - राम की आरती

आरती का रूप - सुरभ सौरभ धूप दीपबर मालिका

देह-दुति दामिनी

इंदु-कर-जालिका

बिमल विज्ञानमय तेज-

बिस्तारिनी

मुक्ति की दूतिका

रूपक रूप - मोह-मद-कोह-कलि-कंज-हिमजामिनी

प्रनत-जन-कुमुद-बन-इंदु-कर-जालिका

अभिमान महि षेष बहु कालिका

प्रभाव- हरति सब आरती

दहन दुःख-दोष,

निरमूलिनी कामकी

भक्त-हृदि-भवन, अज्ञान-तम-हारिनी

आरती के समय बजायी जाने वाली करताल का प्रभाव - उड़त अघ-बिहँग सुति ताल करतालिका

तीसरी आरती ॥ पद सं० 47॥

इस आरती में आरती की प्रक्रिया दी गई है जिसका विवरण दिया जा चुका है । साथ ही यह आरती मानसिक साधना की भी व्याख्या करती है तथा बाह्य आरती से कहीं अधिक कहीं आंतरिक साधना की प्रशंसा करती है । यह आरती मन को करनी है । आरती के बाह्य उपक्रम के स्थान पर आंतरिक मनोवृत्तिगत साधन इस प्रकार दिये गये हैं-

आरती के उपक्रम	आंतरिक साधन
सुगंध धूप -	वासना-किहरि अचरचर रूप है ,सर्वगत है सर्वदा वास है ।
दीप -	निज बोधगत ॥आत्मज्ञान दीप , जिससे क्रोध, मद, मोह,रूपी अंधकार का नाश हो, अभिमानभरी चित वृतियाँ क्षीण हो जाँय ।
नैवेद्य -	अतिशय विशद प्रवर भाव - जो भगवान् को संतोषकर है ।
तांबूल -	प्रेम - दुःख, संदेह और विपुल भव वासनाओं के बीज का नाश करने वाला है ।
दस बती -	दस इन्द्रिय -शुभाशुभ कर्मरूपी घृत में डूबी हुई तथा त्याग की अग्नि से प्रज्वलित एवं सत्वगुण रूपी प्रकाश की करने वाली ।
दीपावली -	भक्ति , वैराग्य और विज्ञान की दीपावली ।
शयन एवं विश्राम -	विमल हृदि -भवन , शुभ शांति-पर्यंक ,
परिचारिका -	क्षमा- करुणा

इस आरती की महिमा-सनकादि , श्रुति, शेष, शिव , देवर्षि , तथा तत्वदर्शी मुनि इस आरती को सदा करते हैं ।

प्रभाव - करै तोड़ तरै , परिहरै कामादि मल

आरती पुजा उपक्रम की अंतिम क्रिया है जिसमें अन्य उपक्रमों की गई भूलचूकों का निराकरण हो जाता है।[1.387] भूलचूकें मुख्यतया मन भटकने के कारण होती हैं ।इसलिये आरती में मन सावधान कर मनोवृतियों को लगा कर मनसा आरती करने का आग्रह करते हैं जिसको उपर्युक्त रूपक के द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।

1.387 -

स्तुति एवं आरती के माध्यम से भगवान् की जो प्रशंसा की जाती है तथा प्रशंसा हेतु जो विशेषण संकलित किये जाते हैं उनकी प्रेरणा स्तुति एवं आरती कर्ता की मनोभूमि से प्राप्त होती है । स्तुति एवं आरती कर्ता की अपनी जो आशा-अपेक्षाएँ होती हैं जो अभाव एवं दुर्बलतायें होती हैं उनका आदर्श सुलभ रूप ही तो हमारा भगवान् है । इस दृष्टि से स्तुति एवं आरती के स्त्रोतों का अनुशीलन अपेक्षित रहेगा ।

आरती के उपर्युक्त रूपक के अंतर्गत गोस्वामी जी भक्ति, वैराग्य, संयम , प्रभु की सर्व व्यापकता की अनुभूति तथा प्रेम की अपेक्षा करते हैं । भक्ति साधना की मूल अपेक्षा प्रेम है। भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम की साधना ही भक्ति है तथा इस प्रेम की प्राप्ति के लिये ही स्तुति, आरती, वंदना , विनय सम्पूर्ण उपक्रम हैं । इनका यही अभीष्ट है और यही इनका फल होना चाहिये ।

1.1.3.2 - गुणगान एवं कथा-कथन-श्रवण -

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामकथा के गान एवं उसके कथन श्रवण पर विस्तृत फलश्रुति प्रस्तुत की है । इस फलश्रुति के संदर्भ में अनेक प्रयोग हुए हैं तथा हो रहे हैं तथा अनुकूल परिणाम घोषित किये जा रहे हैं [1.388 (अ)] विवरण इस प्रकार है -

कथा के अधिकारी- [1.389 (ब)] सतसंग के प्रेमी ,
गुरुपद प्रेमी,
नीतिरत,
द्विज सेवक हैं ।

1.388 (अ)- मानस साधना मण्डल, के अखण्ड प्रेम, अखण्ड ज्ञान, अखण्ड स्वास्थ्य, अखण्ड शांति एवं अखण्ड आनन्द पर आधारित रामचरित मानस की साधन प्रणाली तथा उसके घोषित परिणाम: " रामायण द्वारा रोग-निवारण", "मानस के मौलिक सिद्धान्त तथा तदनुकूल साधन प्रणाली" आदि प्रकाशन । महात्मा गांधी की पुस्तकें राम नाम , हनुमान प्रसाद पोद्दारकी पुस्तक "डिवाइन नेम एण्ड इट्स प्रैक्टिस"- सत्यकथा :अप्रैल 198। में प्रकाशित सत्यकथा " कमला का उद्धार"

1.388 (ब)-राम कथा के तेइ अधिकारी । जिन्ह कें सत संगति अति प्यारी ।।
गुर पद प्रीति नीति रत जेई । द्विज सेवक अधिकारी तेई।
ता कहँ यह बिसेष सुखदाई । जाहि प्रानप्रिय श्री रघुराई ।।-7. 127:6, 7, 8

165-----

- विशेष रूप से सुखद उन महानुभावों को है, जिन्हें भगवान् राम प्राणप्रिय हैं ।

कथा के अनधिकारी - 1.389

- जो शठ हैं, हठी हैं, मन लगाकर हरि लीला नहीं सुनते ।
- लोभी हैं, क्रोधी हैं, कामी हैं जो भगवान् का भजन नहीं करते ।
- द्विज द्रोही हैं ।

फल 1.390 - (अ)- कलिमल शान्त होते हैं तथा मनोमल नष्ट होते हैं ।

- संसृति रोगों के लिए संजीवनी बूटी है ।
- मन कामना सिद्ध होती है जो इस कथा को कपट छोड़कर गाते हैं ।
- भवनिधि को गोपद रूप में पार कर पार कर जाते हैं जो जो इस कथा को कहते, सुनते अथवा अनुमोदन करते हैं ।
- इस कलिकाल में योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत, पूजा आदि कोई दूसरा साधन नहीं है । एक मात्र साधन यह कथा है तथा इसके द्वारा राम का स्मरण तथा गान एवं संतत राम गुणग्राम का श्रवण है ।

एहिं कलिकाल न साधन दूजा । जोग जग्य जप तप व्रत पूजा ।।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ।।

(आ)-संदेह दूर होता है । विषाद शान्त होता है ।

- नाथ कृपाँ मम गत संदेहा । राम चरन उपजेउ नव नेहा ।।
- यह सुभ संभु उमा संबादा । सुख संपादन समन बिषादा ।।

1.389 - यह न कहिअ सठ ही हठ सीलहि । जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि ।।
कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि । जो न भजइ सचराचर स्वामिहि ।।
द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ । सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ ।।-7.127:3,4,5

1.390- रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं ।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ।।- 7.129 छं.
कलिमल समनि मनोमल हरनी
संसृति रोग सजीवन मूरी 7.128.1,2
मन कामना सिद्धि नरपाला । जे यह कथा कपट तजि गावा ।।-7.128.5

166------

यह विषाद वही विषाद है जो गीता में अर्जुन को हुआ तथा जिसके अंतर्गत अर्जुन विषाद योग नाम से गीता का प्रथम अध्याय बना ।

यह विषाद परमात्मा से विमुक्त आत्मा की शाश्वत शोकानुभूति है तथा भगवान् के गुणगान , कथा कथन श्रवण से ही इसका शमन होता है । इसी दृष्टि से कथा-कथन-श्रवण तथा गुणगान भक्ति के आवश्यक एवं अपेक्षित अंग हैं ।

गोस्वामी जी इसीलिये रामचरण रति अथवा निर्वाण पद प्राप्त करने के लिये इस कथा के श्रवण की अपेक्षा करते हैं ।

रामचरन रति जो चह अथवा पद निर्बान ।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान ।। - 1.391

1.2.0 <u>विनय-</u> विनय की स्थिति प्राप्त करने के लिये आराध्य के प्रति प्रेम एवं उसकी निकटता आवश्यक है । स्मरण, भजन, जप, ध्यान, विनय के ऐसे साधन हैं जिनसे विनय स्थिति सुलभ होती है ।

स्मरण विनय की मानसिक क्रिया है जो भजन, जप, ध्यान, की विनय स्थितियों से संभव होती है । इसलिये भजन, जप, ध्यान, द्वारा आराध्य का स्मरण सुलभ कराया जाता है । तब विनय की जाती है ।

1.2.1. भजन, जप, ध्यान ,स्मरण विनय के अंग हैं जिनके संदर्भ में विनय का क्षेत्र आता है। इस दृष्टि से पहिले भजन, जप, ध्यान एवं स्मरण का विवेचन करना अपेक्षित है ।

भजन - व्यापक शब्द है । सत्संग कोष 1.392 में भजन की व्याख्या इस प्रकार की गई है -

1- वर्णात्मक भजन जो तीन अवस्थाओं के अंतर्गत नाम-रूप में अनुराग कर होता है

2- ध्वन्यात्मक भजन जो तीन अवस्थाएँ त्याग कर होता है , भक्ति , उपासना सेवा ।

1.391- सत्संग कोष 1973 पृ. 331

167-----

इस प्रकार भजन में जप, ध्यान, पूजा, पाठ सब कुछ आ जाता है + जिसके अंतर्गत भक्ति उपासना एवं सेवा की जाती है । गोस्वामी जी भजन को जाप के पर्याय के रूप में भी प्रस्तुत करते हैं ।

मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।- 1.393

नवधा भक्ति 1.393 के उपक्रम भजन के अंतर्गत आकलित किये जा सकते हैं । भजन की इसी कारण बड़ी महिमा है । इस व्यापक अर्थ में ही भजन भव-तरण का आधार है।

बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धान्त अपेल ।। - 1.395

बिनु हरि भजन न भव भय नासा ।।- 1.396

बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा ।।- 1.397

संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि ।।- 1.398

- जप तथा जप के फलस्वरूप ध्यान एवं ध्यान से स्मरण वह क्रम है जिसके अंतर्गत भक्ति का विकास होता है । जप को भक्ति का प्रथम चरण कह सकते हैं ।

जप की विधि - 1.399 ‡अ‡ गोस्वामी जी जप के लिये विभिन्न शब्दों का प्रयोग करते हैं तथा उनके द्वारा मानो जप की विधियों को प्रस्तुत करना चाहते हैं । तीन शब्द प्रमुख हैं -

- रटना, जपना, रमना

राम राम रमु, राम राम रटु , राम राम जपु जीहा । - 1.399 ‡ब‡

1.393- मानस-3.35. ।

1.394- प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान
चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान ।।
सठ दम सील बिरति बहु करमा ।निरत निरंतर सज्जन धरमा ।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ।।
आठवँ जथालाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ।।
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ।। मानस-3.34.8 से 3.35.5

1.395- मानस- 7.122 ‡क‡

1.396- मानस- 7.89.8

1.397- मानस- 7.88.5

1.398- मानस- 7.45

1.399 ‡अ‡- पय अहार फल खाइ जपु राम नाम षट मास ।
सकल सुमंगल सिद्धि सब कर तल तुलसीदास ।।- दोहावली-5

1.399 ‡ब‡-स्याम-घन, गुन-बारि, छबि-मनि, मुरलि-तानतरंग
लग्यो मन बहु भाँति तुलसी होइ क्यों रसभंग ।। - कृष्ण -गीतावली-54

रटना - उच्च स्वर से उच्चारण करना । इसको घोष भी कहा है -

संभु - सिखवन रसन हूँ नित राम-नामहिं घोसु ।- 1.400

जपना- धरे-धीरे उच्चारण करना । श्वास प्रश्वास पर लेना तथा उच्चारण सुनाई न देना

रमना- श्वास प्रश्वास से भी आगे आंतरिक जाप करना ।

इन जापों को साधकों की व्याख्या के अंतर्गत क्रमशः देह बुद्धिगत , जीव बुद्धिगत एवं आत्म बुद्धिगत कहा जाता है । रटना माला पर होता है । जपना श्वास-प्रश्वास पर होता है तथा रमना अंतःकरण से होता है तथा आराध्य से एकरसता हो जाती है । 1.401 (अ) मानस में भी इन जापों का संदर्भ कतिपय स्थानों पर आया है -

रटना- राम राम रट बिकल भुआलू । जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू । - 1.401 (ब)

रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु ।- 1.402

- जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम ।

सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम ।- 1.403

विनयपत्रिका में रटना दो पदों में आया है ।

राम राम रमु राम राम रटु राम राम जपु - 1.404

रुचिर रसना - तू राम राम क्यों न रटत - 1.405

जपना- मानस में जपना का ही अधिक प्रयोग है - 1.406 (अ)

राम नाम कर अमित प्रभावा । संत पुरान उपनिषद् गावा ।।

संतत जपत संभु अबिनासी । सिव भगवान ग्यान गुनरासी ।।-1.406 (ब)

विनयपत्रिका में भी जपत के अधिक प्रयोग हैं - 1.407 (अ)

1.400- वि. 159

1.401 (अ)-श्याम-घन, गुन-बारि, छबि-मनि, मुरलि-तानतरंग
लग्यो मन बहु भाँति तुलसी होइ क्यों रसभंग ।।- कृष्ण-गीतावली 54

1.401 (ब)- मानस-2.36.1   1.402- मानस-2.38   1.403-मानस-3.29 (ख)

1.404- वि. 65 ,   1.405- वि. 129

1.406 (अ)- मानस-1.9.2 , 1.18.3, 1.23.2 , 1.25.4, 1.27.1, 1.45.2,3
1.111.3, 1.137.5 , 2.193.8, 7.1 (ख)

1.406 (ब) - मानस- 1.45.2,3

1.407 (अ) - वि. 46, 65, 66,67, 68, 130, 184, 192, 247, 228,

169-------

राम राम, राम राम, राम राम, जपत

मंगलमुद उदित होत कलिमल छल छपत ।।- 1.407 [ब]

रमना- रम रमत का अपेक्षातया न्यून प्रयोग है -

मानस- जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम । - 1.408

विनयपत्रिका- राम राम रमु - 1.409

- इन तीन परंपरागत शब्दों के साथ गोस्वामी जी ने जाप के अभीष्ट को प्रकट करने के लिये कतिपय अन्य शब्दों का भी प्रयोग किया है -

सुमिरु - सुमिरु सनेह सों तूं नाम राम राय को - 1.410

अनुरागि है - मन राम-नाम सों सुभाय अनुरागि है - 1.411

जागु - जागु जागु जीव जड़ -1.412[अ]

जागिबो जो जीह जपै नीके राम नाम को - 1.412 [ब]

नाम लेत - नाम लेत दाहिनो होत मन बाम बिधाता बाम को - 1.413

भजन- गुरु कहयो राम-भजन नीको - 1.414

कहत- राम कहत चलु, राम कहत चलु - 1.415

घोष - नित-रामनाम घोसु । - 1.416

- विनयपत्रिका में नाम के 24 संदर्भ पद हैं । इन संदर्भों के अनुक्रम में जाप की विकासपरक स्थिति प्रकट होती है ।

46, 65, 66, 67, 68- जप
65- रट
65- रम
69- सुमिरु
70- अनुरागि
73- जागु
83- भज
99- नाम प्रभाव
129- रटु
130- जपत
156- नाम लेत
159- घोस

173- भजन
184- जप
189- कहत चलु
192- जप
226- भलो
227- अवलंब
228- रामो
247- जप
254- भरोसो
255- साहिब

1.407 [ब] वि. 130 , 1.408- मानस-1.80 , 1.409- वि.-65
1.410- वि.-69 1.411- वि. 70 1.412-[अ]-वि. 73
1.412 [ब] क0 7/83 1.413-वि.-1(6/5) 1.414- वि. 173
1.415- वि. 189 1.416- वि. 159

170---

इस विकास परक स्थिति के द्वारा निम्नलिखित निष्कर्ष निकल सकते हैं :-

- नाम जप अपेक्षातया अधिक आवश्यक है । नाम जप द्वारा प्राप्त आध्यात्मिक प्रगति में जप की बार-बार आवश्यकता होती है ।

- नाम जप की प्रारम्भिक स्थिति से लेकर अंतिम स्थिति तक गोस्वामी जी अपने अनुभव को प्रस्तुत करते हैं ।

- प्रारंम्भिक स्थिति में जप, रट, रम, का आग्रह करते हैं । यह आग्रह मानो अपने मन-मानस के लिये भी है । इस स्थिति से आगे नाम स्मरण, नाम से अनुराग, नाम के प्रति जाग्रति, नाम भजन की स्थितियाँ आती हैं तथा इन स्थितियों से आगे राम नाम के प्रति आस्था एवं विश्वास उत्पन्न होता है । भलाई, अवलंब रामो ‡ राम से भी अधिक नाम महिमा ‡ , भरोसो, शब्दों के द्वारा नाम का व्यक्तित्व मानवीकरण में स्थापित होता है तथा नाम सुधी, सुशील, साहिब, के रुप में अवधारित एवं अवतरित हो जाता है । यह अंतिम स्थिति कदाचित अन्य कोई स्थिति न होकर नाम से नामी की प्राप्ति की स्थिति है । गोस्वामी जी ने नाम से नामी विवा नाम एवं नामी दोनों को प्राप्त कर लिया है ।

<u>नाम जप की निरन्तरता-</u> गोस्वामी जी नाम जप की निरन्तरता का बड़ा आग्रह करते हैं । इसके लिये वह निम्नलिखित विशेषणों को जाप की अपेक्षा प्रतिपादित करते हैं - [1.417]

सदा, बारबार , सदा सानुराग, सनेह सों सुभाय, प्रतीति प्रीति, प्रीति सों प्रतीति मानि ,

<u>जाप प्रक्रिया-</u> जाप की कोई विशेष प्रक्रिया नहीं है । उल्टा सीधा कैसा ही नाम लिया जाय, प्रभावी होता है -

कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधे नाम को - 1.418

1.417- सदा राम जपु, राम जपु.... मूढ़ मन बारबारं ‡46‡ राम राम जप जिय सदा सानुराग रे ‡67‡, सुमिरु सनेह सों तू नाम राम राय को ‡69‡ मन राम-नाम सों सुभाय अनुरागि है ‡70‡ नाम सों प्रतीति -प्रीति हृदय सुथिर थपत ‡130‡ राम जपु जीह ! जानि ,प्रीति सों प्रतीति मानि ‡247‡

1.418- वि.- 156

जप का प्रभाव -

- जप से ब्रह्म की प्राप्ति होती है -

- बंदउँ बालरूप सोइ रामू । सब बिधि सुलभ जपत जिसु नामू ।।- 1.419
- उल्टा नामु जपत जगु जाना । बालमीकि भए ब्रह्म समाना ।।- 1.420

श्वपच ,खल, भिल्ल, यवनादि हरिलोकगत नाम बल - 1.421

राम नाम पेम परमारथ को सारु रे ।- 1.422

राम नाम को प्रभाउ पूजियत गनराउ ।-1.423

नाम प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामों ।-1.424

- नाम नामी के समान रूप, लीला, धाम के अंतर्गत प्रभावी है -

रूप - राम-सुंदर सुजान कृपा निधान ....

(विश्रामपद)- पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ । - 1.425

नाम- - विश्राम पद - 1.426

- विश्व-विश्राम, रामाभिरामं - 1.427

- कहतु तुलसीदास बिश्राम -धाम- 1.428

लीला- राम -जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ।।

5 हरिहउँ सकल भूमि गरुआई । निर्भय होहु देव समुदाई ।।- 1.429

नाम- कलि कलुष भंजन अनूपं - 1.430

तुलना - राम एक तापस तिय तारी । नाम कोटि खल कुमति सुधारी ।।

रिषि हित राम सुकेतु सुता की । सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी।।

सहित दोष दुख दास दुरासा । दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा ।।

भंजेउ राम आपु भव चापू । भव भय भंजन नाम प्रतापू ।।

दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन । जन मन अमित नाम किए पावन ।।

निसिचर निकर दले रघुनंदन । नामु सकल कलि कलुष निकंदन ।।-1.431

1.419- मानस-1.111.3, 1.420-मानस-2.193.8, 1.421-वि. 46
1.422-वि.67, राम ब्रह परमारथ रूपा 2.93.7 1.423-वि.247
1.424- वि.228, 1.425- मानस-7.129.छं.3, 1.426-वि. 46
1.427- वि.-51 , 1.428- वि.-64, 1.429- मानस- 1.186.1 व 7
1.130- वि. 46 1.431- मानस-1.23.3-8

धाम - राम - रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहिं ।

कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ।। - 1.432

नाम- हरि धाम पथ संबलं 1.433

- नाम, नामी से वरीय है ।

- कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार 1.434

- प्रिय राम नामतें जाहि न रामो ।

राम तें अधिक नाम-करतब, जेहि किये नगर-गत गामों ।- 1.435

- जप से कलिकाल का प्रभाव नष्ट होता है -

- राम-नाम को प्रभाउ जानि जूड़ी आगि हौ

सहित-सहाय कलिकाल भीरु भागि है ।

राम-नाम सों बिराग, जोग, जप जागि है ।

बाम बिधि भाल हू न करम दाग दागि है ।

राम-नाम कामतरु जोइ जोइ माँगि है ।

तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगि है ।। - 1.436

× × × × × × × ×

- सुमिरत सुख सुकृत बढ़त अघ अमंगल घटत ।

बिनु श्रम कलि कलुषजाल कटु कराल कटत ।।

जोग, जाग, जप, बिराग, तप, सुतीरथ अटत ।।- 1.437

- मंगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत ।।- 1.438

- नाम लेत दाहिनो होत मन बाम बिधाता बाम को ।- 1.439 (अ)

- नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं । करहु बिचारु सुजन मनमाहीं ।।-1.439 (ब)

संत पुरान उपनिषद् प्रभाव का गुणगान करते हैं -

- राम नाम कर अमित प्रभावा । संत पुरान उपनिषद गावा।।-1.440

- राम नाम कौ प्रताप हर कहै, जपैं आप

जुग जुग जानै जग, बेदहूँ बरनि - 1.441

1.432- मानस-7.129 छं. 2 | 1.433-वि. 46 | 1.434-मानस-1.23

1.435- वि- 228 | 1.436- वि.70 | 1.437- वि. 129

1.438- वि. 130 | 1.439 (अ) वि. 156 | 1.439 (ब)-मानस-1.24.4

1.440- मानस-1.45.2 | 1.441- वि०-184

- नाम प्रेम चारि फलहू को फरु है , बेदहू , पुरान हू, पुरारिहूपुकारि कहयो ।- 1.442

- जप से हृदय को शान्ति मिलती है -

- जपहु जाइ संकर सतनामा । होइहि हृदय तुरत बिश्रामा ।।-1.443

नामु सप्रेम जपत अनयासा । भगत होहिं मुदमंगल बासा ।।- 1.444

- राम नाम जपे जैहै जियकी जरनि -1.445

- राम राम राम जिय जौ लौं तू न जपिहै तो लौं जहां जै है तहांतिहूँ ताप-तपि है -1.446

- तुलसी जागेते जाय ताप तिहुँ ताय रे । - 1.447 ॥अ॥

-अनेक साधन नाम आधीन हैं -

- भक्ति-वैराग्य-विज्ञान -शम-दान-दम

नाम आधीन साधन अनेक - 1.447 ॥ब॥

एक राम नाम साधन से सब साध्य है -

- एक ही साधन सब रिद्धि सिद्धि

साधि रे ॥ग्रसे कलि रोग जोग -संजम समाधि रे ॥ - 1.447 ॥स॥

नाम महिमा-

- नाम जाप करने वालों के द्वारा प्रकट नाम महिमा -

- कहौं कहां लगि नाम बड़ाई । रामु न सकहिं नाम गुन गाई ।।-1.448 ॥अ॥

- मंगल भवन अमंगलहारी । उमा सहित जेहि जपत पुरारी ।।- 1.448 ॥ब॥

- महा मंत्र जोइ जपत महेसू । कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ।।- 1.449

- संतत जपत संभु अबिनासी । सिव भगवान ग्यान गुनरासी ।।- 1.450

- जपत सादर संभु सहित घरनि ,कासीहू सुगति हेतु । - 1.451

- नाम महिमा अपार सेष-सुक बार बार

मति अनुसार बुध बेदहू बरनि ।।- 1.452

1.442- वि. 255
1.443- मानस 1.137.5
1.444-मानस-1.23.2
1.445- वि. 247
1.446- वि. 68
1.447 ॥अ॥-वि. 73
1.447 ॥ब॥- वि. 46
1.447 ॥स॥- वि. 66
1.448 ॥अ॥-मानस-1.25.8
1.448 ॥ब॥-मानस-1.9.2
1.449-मानस-1.18.3
1.450-मानस-1.45.3
1.451- वि.-247
1.452- वि. 247

- महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ।।- 1.453

- फल प्राप्तिगत महिमा -
  - राम! रावरो नाम साध सुर तरु है - 1.454 [अ]
  - राम नाम काम तरु देत फल चारि रे
    कहत पुरान बेद पंडित पुरारि रे ।- 1.454[ब]
  - नाम काम तरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग जाला।।-1.455 [अ]
  - नाम प्रसाद लहत रसालफल अब हौं बबुर बहे रे ।। - 1.455 [ब]
  - घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे । - 1.456

- नाम की सभाव परक महिमामय स्थिति है 1.457
  - संबरु निसंबरी को, सखा असहाय को
    भागु है अभागेहू को , गुन गुन-हीन को
    गाहक गरीब को दानि दीन को
    कुल अकुलीन को पाँगुरे के हाथपाय,
    आँधरे के आँखि
    मायबाप भूखे को ,अधार निराधार को ,
    हेतु भवसागर , हेतु सुखसार को । - 1.458

- नाम आवृत्ति- नाम जप संबंधी पदों में राम पद की आवृत्तिगत भी विशेषता है ।

1.453- मानस- 1.18.4,
1.454 [अ]- वि. 255
1.454[ब]- वि. 67
1.455 [अ] - मानस- 1.26.5
1.455[ब]- वि. 227
1.456- वि. 66

1.457- नाम के अभाव में दुर्दशा होगी -
सुरसरि तीर बिनु नीर दुःख पाइ है
सुरतरु तर दारिदु
जागत बागत सपने न सुख सोइहै
जनमि जनमि जुगजुग जग रोइहै
छूटिबे के जतन बाँध्यो जाहिगो
है है विष भोजन जौं सुधासानि खाहिगो ।।- वि. 68

1.458- वि.- ~~68~~ 69

175-----

पद संख्या	आवृत पद एवं	संख्या
46	राम जपु	5 बार- राम पद
65	राम राम	3 बार -राम राम पद रमु, रटु, जपु केसाथ
66	राम जपु	3 बार- राम पद
67	राम राम जपु	1 बार- राम राम पद
68	राम राम राम ... जपि है	3 बार- राम पद
73	जागु जागु	2 बार- जागु
129	राम राम राम (क्यों न) रटते	3 बार- राम पद
130	राम राम जपत	3 बार- राम राम पद
189	राम कहत चलु ...	3 बार- राम पद

24 पदों में से उपर्युक्त 9 पदों में राम पद की आवृत्ति है -

राम पद की आवृत्ति - 46, 66, 189 में है ।

राम राम पद युग्म आवृत्ति- 65, 66, 130 में है ।

राम राम राम पद युग्म आवृत्ति - 68, 129 में है ।

जागु जागु पद युग्म 73 में है ।

टीकाकारों ने इन आवृत्तियों के संबंध में अपनी व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं । पाँच बार की आवृत्ति का संबंध पंच प्राण, पंच विषय, (रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श) पंच इन्द्रिय (श्रवण, नेत्र, त्वक्, रसना, नासिका,) से माना है । तीन बार की आवृत्ति का संबंध तीन विधियों, रम, रट एवं जप से जोड़ा गया है । तीन बार की आवृत्ति अन्यथा परंपरागत भी है । दो बार की आवृत्ति बल एवं महत्व प्रदान करने की विधा है । 9 पदों में आवृत्ति - प्रयोग भी 9 की संख्या के प्रति परंपरागत रुचि तथा आग्रह है । गोस्वामी जी ने इन मान्यताओं में अपनी आस्था व्यक्त की है ।

नाम जपगत विनय - नाम जपगत 24 विनय पदों में गोस्वामी जी की विनय निम्नलिखि[त] रूप में प्रस्तुत हुई है -

हरि नाम जाप का आग्रह -

- त्याग सब आस संत्रास, भवपास असि निसित हरिनामु जपु दास तुलसी (46)
- तुलसी जागे ते जाइ ताप तिंहु ताम रे, राम नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे (73)

- परहरि सुर-मनि सुनाम लखि लटत

  लालच लघु तेरो लखि तुलसी तोहिं हटत (129)

- राम नाम- बोहित , भवसागर चहै तरन तरोसो (173)

- राम नाम सों प्रतीति प्रीति राखे कबहुंक ,

  तुलसी ढरैगे राम आपनी ढरनि (184)

- नाना पथ निरबान के नाना बिधान बहुँभाँति ।

  तुलसी तू मेरे कहे जपु राम-राम दिनराति ।। (129)

- नाम से अनन्य प्रेम हो -

  - राम नाम गति , राम नाम मति

    राम नाम अनुरागी

    तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहै । (65)

  - राम नाम प्रेम परमारथ को सार रे

    राम नाम तुलसी को जीवन अधार रे । (67)

  - राम नाम ही की गति जैसे जल मीन को (68)

  - तुलसीदास भवत्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे । (189)

ध्यान - ध्यान एवं स्मरण जप की ही सूक्ष्म स्थितियाँ हैं । इनका उल्लेख मानस में आया है । जाप की वह तन्मय स्थिति जिसमें नाम अथवा नामी का हृदय में स्वरुप आभासित होने लगे , ध्यान कहलाता है ।-[1.459 (अ)] इसीलिये जाप से ध्यान को संबद्ध किया जाता है ।

जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुंदर स्याम सरीर । -[1.459 (ब)]

ध्यान की गहन स्थिति में बाह्य जगत से संबंध छूट जाता है । ध्यान की इसी स्थिति से लाभ होता है । यह स्थिति आंतरिक सुख का संपादन करती है तथा ध्यानरस का आस्वाद कराती है ।

1.459 (अ) - हृदयस्थस्य योगेन देवदेवस्य दर्शनम्
ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्षामि सर्वस्माद्योगतः शुभम् ।। शंख स्मृति : 15

1.459 (ब)- मानस- 1.34

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा । जाग न ध्यान जनित सुख पावा ।।-1.460

× × × × × × × × × ×

मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह ।- 1.461

ध्यान की स्थिति में मन स्थिर होना चाहिये तभी ध्यान लगेगा

मनु थिर करि तब संभु सुजाना । लगे करन रघुनायक ध्याना ।।- 1.462(अ)

ध्यान में भूत भविष्य वर्तमान की सारी घटनायें प्रकट एवं स्पष्ट हो जातीं हैं -

तब संकर देखेउ धरि ध्याना । सतीं जो कीन्ह चरित सब जाना ।।-1.462(ब)

जिस प्रकार जप, यदि गंभीरता पूर्वक नहीं किया जाता तो दिखावा हो जाता है, उसी प्रकार यदि ध्यान में मन थिर नहीं होता तो ध्यान दिखाबा बन जाता है । ध्यान के इस कपट एवं छल दम्भ की बक ध्यान से उपमा दी गई है -

इहाँ आइ बक ध्यान लगावा । -1.463

प्रथम, सतयुग में ध्यान से भवसागर से उद्धार हो जाता था अथवा यह कहा जाय कि सतयुग में मन स्थिर करने की सुलभता थी । आज कलयुगकी-सी मन की अशान्त एवं विभ्रमित स्थिति न थी । इसलिये सतयुग में ध्यान का विशेष प्रभाव एवं प्रसार था ।

ध्यानु प्रथमजुग मख बिधि दूजें । -1.464

कृत जुग सब जोगी बिग्यानी । करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी ।।-1.465

आंतरिक सूक्ष्म मनः स्थितियों के संदर्भ स्थूल कर्मकाण्ड की ओर अग्रसर हुए हैं तथा कालान्तर में वंदना का स्वरूप सूक्ष्म से स्थूल की ओर गतिशील हुआ है।-1.466

ध्यान
मख
पूजा
जाप (रट)

1.460- मानस-3.9.17 1.461- मानस-1.111 1.462(अ)-मानस-1.81.4
1.462(ब)-मानस-1.55.4 1.463- मानस-6.84.7 1.464- मानस-1.26.3
1.465- मानस-7.102.1
1.466- ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजे । द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ।-मानस-1.26.3
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू ।।-मानस-1:26.7
भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ राम जपत मंगल दिसि दसहूँ ।।- मानस-1.27.1

178----

जाप की रट, जप, रम स्थितियों के विकास क्रम में इस स्थूल स्थिति से पुनः सूक्ष्म की ओर अवरोहरण कर ध्यान की स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं ।

- ध्यान-योग का प्रतिपादन वेदान्त युग में गीता, उपनिषद् तथा योग वशिष्ठ आदि ग्रंथों में किया गया था । ध्यान बिन्दु नाम से एक पृथक् उपनिषद् ही है जिसमें ध्यान के द्वारा ही योग की संपूर्ण स्थूल क्रियाओं का सूक्ष्म ध्यान विकल्प प्रस्तुत किया है । इस उपनिषद् में ध्यानयोग की महिमा का इस प्रकार उल्लेख हुआ है -

यदि शैल समं पापं विस्तीर्ण बहुयोजनम् ।
भिधते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन ।।- 1.467

स्मरण - सुमिरन जप की रम स्थिति ही नहीं प्रत्युत रट स्थिति का भी द्योतक है तथा इस प्रकार जप का विकल्प कहा जा सकता है ।

राम नाम शिव सुमिरन लागे । जानेउ सती जगतिपति जागे ।।- 1.468
× × × × × × ×
राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा । हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा ।। - 1.469

स्मरण के हियधरि , उर धरि पर्याय से स्मरण ध्यान की समनार्थी कोटि में भी आ जाता है ।

चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा ।।-1.470
उर धरि उमा प्रानपति चरना । जाइ बिपिन लागीं तपु करना ।।-1.471
× × × × × × ×
धरि बड़ि धीर रामु उर आने । फिरी अपनपउ पितुबस जाने ।।- 1.472

स्मरण विषय - क्या सुमिरन किया जाय, इस जिज्ञासा का समाधान गोस्वामी जी ने किया है ।

1.467- ध्यान बिन्दु उपनिषद्-1 ; सूफी संतों, कबीर, दादू जैसे निर्गुणी संतों तथा राधास्वामी एवं महात्मा रामचन्द्र के सहज मार्ग जैसे संप्रदायों में ध्यान अथवा ख्याल पर ही साधना को आधारित किया है ।

1.468- मानस- 1.59.3 , 1.469- मानस-5.5.3 , 1.470-मानस- 5.04

1.471- मानस- 1.73.1 , 1.472- मानस-1.233.8

नाम स्मरण - नाम का स्मरण या जप करना चाहिये । बिना रूप के देखे भी नाम जप से विशेष स्नेह उत्पन्न हो जाता है ।

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें । आवत हृदयँ सनेह बिसेषें ।।- 1.473

स्वरूप स्मरण -भगवान् के रूप का स्मरण करना चाहिये ।

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहिं

*　　*　　*　　*　　*　　*

तृन धरि ओट कहति बैदेही । सुमरि अवधपति परम सनेही ।।

×　　×　　×　　×　　×　　×

तापर हरषि चढ़ी बैदेही । सुमिरि राम सुखधाम सनेही ।।- 1.474 (अ)

लीला स्मरण- भगवान् की लीला का स्मरण करना चाहिये ।

सुमिरि राम करि अद्भुत करनी ।- 1.474 (ब)

प्रताप स्मरण -भगवान् के प्रताप का स्मरण करना चाहिये । इससे बल, साहस, शौर्य संभव हो जाता है ।

सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा । सर संधान कीन्ह करि दापा ।।-1.475

प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा । बोले घन इव गिरा गँभीरा ।।-1.476

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई । करिहउँ बल अनुमान सहाई ।।- 1.477

गुण स्मरण - भगवान् के गुणों का स्मरण करना चाहिये । उनसे अपना कल्याण होता है । अपने व्यक्तित्व में गुणों का अवतरण होता है ।

सुमिरि राम के गुन गन नाना । पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना ।।-1.478

×　　×　　×　　×　　×　　×

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर ।

कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर ।।- 1.479

1.473- मानस- 1.20.6
1.474 (अ)- मानस- क्रमशः 7.129.6, 5.8.6, एवं 6.107.8
1.474(ब)- मानस-3.28.22
1.475- मानस- 6.75.15
1.476- मानस- 6.74.12
1.477- मानस-5.59.3
1.478- मानस- 7.123.1
1.479- मानस- 5.7

180-----

शील स्मरण - भगवान् के हृदय द्रवित करने वाले शील प्रसंगों का स्मरण करना चाहिये । इससे मन निर्मल होता है तथा प्रभु कृपा सुलभ हो जाती है ।

प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा । सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ।।- 1.480

कार्य प्रारंभ में स्मरण - प्रत्येक कार्य के प्रारंभ में भगवान् का स्मरण करना चाहिये । इससे निष्काम कर्म की साधना संभव होगी । कृतकार्य कल्याणी होगा ।

यात्रा प्रारंभ के अवसर पर -

सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना । मंगलमूल सगुन भए नाना ।।- 1.481

× × × × × × ×

तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ
बनु गवन कीन्ह रघुनाथ ।। - 1.482

सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाई ।।- 1.483

नगर प्रवेश के अवसर पर -

अति लघुरुप धरेउ हनुमाना । पैठा नगर सुमिरि भगवाना ।।- 1.484

प्रबिसि नगर कीजअ सब काजा । हृदय राखि कोसलपुर राजा ।।-1.485

आशीर्वाद देते समय -

अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहिं दीन्हिं असीसा ।।- 1.486

पतिव्रत धारण करते समय -

सुनु सीता तब नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं ।।- 1.487

- युद्ध की तैयारी के अवसर पर -

सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकश धनुष सनाहु ।।- 1.488

अंतिम समय के अवसर पर -

परेउ मुरछि महि लागत सायक । सुमिरत राम राम रघुनायक।।- 1.489

× × × × × × ×

प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा । सुमिरेसि रामु समेत सनेहा ।।- 1.490

1.480- मानस- 5.32.2 | 1.481- मानस-1.338.8 | 1.482- मानस-2.104
1.483- मानस-2.187 | 1.484- मानस-5.4.4 | 1.485- मानस-5.4.1
1.486- मानस- 1.70 | 1.487- मानस-3.5 (ख) | 1.488- मानस-2.190
1.489- मानस-6.58.1 | 1.490- मानस- 3.26.16

18|-----

स्मरण का सुफल एवं प्रभाव -

स्मरण से भवसागर से उद्धार हो जाता है -

सादर सुमिरन जे नर करहीं । भव बारिधि गोपद इव तरहीं ।।- 1.491

भगवान् भक्त के वशवर्ती हो जाते हैं -

सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखे रामू ।।- 1.492

- स्मरण से भगवान् की प्रसन्नता तथा तज्जन्य सुमति प्राप्त होती है -

अब सोइ कहउँ प्रसंग सब सुमिरि उमा वृषकेतु ।

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी रामचरित मानसकबि तुलसी ।।- 1.493

- भगवान् भक्त का स्मरण करते हैं । भक्त का यह परम सौभाग्य होता है -

निज दास ज्यों रघुबंस भूषन । कबहुँ मम सुमिरन करयो ।।- 1.494

- इस प्रकार ध्यान एवं स्मरण जप के अंगांगी भाव है तथा जप की अपेक्षाओं को पूरा करते हैं ।

- 0 -

मानस विनय प्रसंग - मानस विनय प्रसंगों में निम्नलिखित विनय शब्दों का प्रयोग हुआ है-

- विनय , विनती , विनवउँ , विनवत , विनवहिं , विनीत , विनीता, अविनय , सविनय

- उपर्युक्त शब्दों के प्रयोग, विनय भाव के अतिरिक्त अन्यान्य अर्थों में भी हुए हैं । इसी कारण शब्द प्रयोग की आवृत्ति अधिक होते हुए भी विनय भाव के लिये प्रयुक्त शब्दों की संख्या अपेक्षातया कम है ।

- विनय का स्तुति के अर्थ में प्रयोग -

स्वयंप्रभा स्तुति संदर्भ में -

- नाना भाँति विनय तेहि कीन्ही । अनपायनी भगत प्रभु दीन्ही ।।- 1.495

1.491- मानस- 1.118.4 1.492- मानस-1.25.6 1.493- मानस-1.35 तथा 1.35.1

1.494- मानस- 7.1 छं. 1.495- मानस- 4.24.8

182----

परशुराम-स्तुति संदर्भ में -

देखि राम बलु निज धनु दीन्हा । करि बहु बिनय गवनु बन कीन्हा ।।-1.496

मानस की स्तुतियों को पूर्व एवं पर टिप्पणियों में स्तुति के अर्थ में विनय शब्द का प्रयोग-

विधि- स्तुति के पश्चात् -बिनय कीन्हि चतुरानन प्रेम पुलक अतिगात ।- 1.497

शिव - स्तुति के पूर्व - पुलकित तन गद्गद् गिरा बिनय करत त्रिपुरारि ।।- 1.498

वेद - स्तुति के पश्चात्- सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार ।- 1.499

शंभु - स्तुति के पूर्व - बिनय करत गद्गद् गिरा पूरित पुलक सरीर ।- 1.500

विनय का निवेदन के अर्थ में प्रयोग -

बोले राउ कठिन करि छाती । बानी सबिनय तासु सोहाती ।।- 1.501

बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी । अवर एक बिनती प्रभु मोरी ।।- 1.502

राम सुनहु मुनि कह करि जोरी । कृपासिंधु बिनती कछु मोरी ।।- 1.503

बार-बार बिनवउँ मुनि तोही । जिमि यह कथा सुनायहु मोही ।।- 1.504

विनय का आग्रह-अनुरोध के अर्थ में प्रयोग -

एकु बिस देखौं पद जाई । करि बिनती आनौं दोउ भाई ।।- 1.505

तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए । करि बिनती रघुनाथ चढ़ाए ।।- 1.506

विशेषण के रूप में विनीत विनीता का प्रयोग -

परम बिनीत सकुच मुसुकाई । बोले गुरु अनुसासन पाई ।।- 1.507

कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि ।।- 1.508

राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बैन ।।- 1.509

उमा बचन सुनि परम बिनीता । राम कथा पर प्रीति पुनीता ।।-1.510

देखि परम बिरहाकुल सीता । बोला कपि मृदु बचन बिनीता ।।- 1.511

1.496- मानस-1.292.2 1.497-मानस-6.111 1.498- मानस-6.114 ख
1.499- मानस- 7.13 क 1.500- मानस- 7.13 ख 1.501- मानस-2.30.4
1.502- मानस-1.150.4 1.503- मानस-7.47.3 1.504- मानस- 1.126.7
1.505- मानस-1.205.7 1.506- मानस-2.82.1 1.507- मानस- 1.217.4
1.508- मानस-1.240 1.509- मानस- 1.357 1.510- मानस-1.119.8
1.511- मानस-5.13.8

183----

विनय का शिष्टाचार के संदर्भ में प्रयोग -

- लागि सासु पग कह कर जोरी । छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी ।।- 1.512
- स्वामिनी अबिनय छमबि हमारी । बिलगु न मानब जानि गँवारी ।।- 1.513अ
- पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी । जौं एहि मारग फिरहि बहोरी ।।
  दरसनु देब जानि निज दासी । लखीं सीयँ सब प्रेम पिआसी ।।- 1.513 ‡ब‡

विनय भाव के लिये प्रयुक्त विनय शब्दों में प्राय: विनय का संदर्भ मात्र प्रस्तुत हुआ है, विनय का विवरण नहीं दिया गया है । विनय का विस्तृत विवरण भरत विनय प्रकरण में प्रस्तुत हुआ है, जिसका पृथक् से अनुशीलन कर रहे हैं ।

एक संख्यक विनय संदर्भों से विनय कब, कैसे, क्यों जैसी जिज्ञासाओं का समाधान होता है। इसलिये इन संदर्भों का, विनय दर्शन खण्ड के अंतर्गत प्रयोग करेंगे ।

अन्य विनय संदर्भों की प्रार्थनाएँ निम्नलिखित हैं -

अभीष्ट की प्रार्थना -

राम की शिव से प्रार्थना -

अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु । - 1.514
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागे देहु ।।

सीता विनय चापगरुता के संबंध में -

बार बार बिनती सुनि मोरी । करहु चाप गरुता अति थोरी ।।- 1.515

दशरथ विनय राम आज्ञा न मानने के संबंध में -

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी । बिनती सुनहु सदासिव मोरी ।।
तुम्ह प्रेरक सब के हृदयँ सो मति रामहि देहु ।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सील सनेहु ।।- 1.516

राम विनय पिता की कुशलता के संबंध में -

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरे । बिनती करउँ तात कर जोरे ।
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारे । दुख न पाव पितु सोच हमारे ।।- 1.517

1.512- मानस- 2.63.5 1.513-अ- मानस-2.115.7 1.513‡ब‡-मानस-2.117.2,3
1.514- मानस- 1.76 1.515- मानस-1.256.8 1.516- मानस-2.43.7 2.44
1.517 - मानस- 2.95.1

सीता विनय अपनी चिन्ता न करने के संबंध में -

सासु ससुर सन मोरिहुँति बिनय करबि परि पाँय ।

मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ ।।- 1.518

शरण प्राप्ति हेतु विनय -

बालि की राम से विनय -

यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए

गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए ।।- 1.519

विनय के लिये देहु, देहू शब्दों का भी प्रयोग हुआ है । इन शब्दों के भी इतर क्रिया पद बंध रूप 'आय सुदेहु' आदि प्रयोग अपेक्षातया अधिक हुए हैं ।

देहु, देहू शब्दों के द्वारा निम्नलिखित रूपों में विनय की गई है -

- कवि द्वारा काव्य सम्मान याचना संदर्भ में -

होइ प्रसन्न देहु बरदानू । साधु समाज भनिति सनमानू ।।- 1.520

- क्षमा याचना संदर्भ में

- पूर्व जन्म के विशेष संदर्भ में क्षमा प्रार्थना -

नाथ उमा मम प्रानसम गृह किंकरी करेहु ।

छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु ।।- 1.521

- शिष्टाचार की भूल के लिये क्षमा प्रार्थना -

तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान ।

तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपा सिंधु भगवान ।।- 1.5.22

अभीष्ट याचना संदर्भ में -

आपन रूप देहु प्रभु मोही । आन भाँति नहिं पावौं ओही 1.523

जेहि बिधि होइ राम कल्यानू । देहु दया करि सो बरदानू ।।- 1.524

1.518- मानस- 2.98 1.519- मानस- 4.9.छं. 2 1.520- मानस-1.13.7

1.521- मानस- 1.101 1.522- मानस- 7.108 ग 1.523- मानस-1.131.6

1.524- मानस- 2.7.6

भक्ति याचना संदर्भ में

- गोस्वामी जी की याचना -

बाल बिनय सुनि करि कृपा रामचरन रति देहु - 1.524(अ)

- मनु सतरूपा याचना

- जे निज भगत नाथ तव अहहीं । जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ।।

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु

सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु ।- 1.524 (ब)

- जो सरूप बस सिव मनमाहीं..... देखहिं हम सो रूप भरि लोचन ... 1.524(स)

- भरद्वाज याचना-

अब करि कृपा देहु बर एहू । निज पद सरसिज सहज सनेहू ।- 1.525

- सुतीक्ष्ण याचना-

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम ।

मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम ।।- 1.526

- बालि याचना

जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागउँ - 1.527

हनुमान याचना -

नाथ भगति अति सुखदायनी । देहु कृपाकरि अनपायनी ।- 1.528

विभीषण याचना-

अब कृपाल निज भगति पावनी । देहु सदा सिव मन भावनी ।।- 1.529(अ)

- वेद याचना -

करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर माँगहीं ।

मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं ।।- 1.529(ब)

1.524(अ)-मानस- 1.3 , मानस 1.524 (ब) मानस-1.148.8 तथा 1.150

1.524(स) मानस-1.145.4,6 1.525- मानस-

1.526- मानस-3.11, 1.527- मानस- 4.9 छं. 2 , 1.528- मानस-5.33.1

1.529(अ)-मानस-5.48.7, 1.529(ब)- मानस-7.12 छं० 186---

- शंभु याचना -

बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग

पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ।।- 1.530

- सनकसनातन याचना-

प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम - 1.531

वशिष्ठ याचना-

जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु - 1.532

- काकभुशुण्डि याचना-

अबिरल भगति बिसुद्ध तब ....

सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम - 1.533

भक्ति याचना में ऐसा प्रतीत होता है कि भक्ति के प्रकार पर विचार किया गया है । इस संबंध में प्रस्तुत विभिन्न अभिव्यक्तियाँ अवलोकनीय हैं -

- राम चरन रति

-निज चरन सनेहू
-पद सरसिज सहज सनेहू
-राम पद अनुरागहीं
-प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु
-तव चरन हम अनुरागहीं

-भक्ति - अनपायनी ॥ स्थिर ॥
- पावनी
-प्रेम भगति अनपायनी
-अबिरल भगति बिशुद्ध

- मम हिय बसहु सदा निहकाम

गोस्वामी जी दास्यभक्ति के प्रतिपादक तथा प्रवर्तक हैं । रामचरनरति ही उनका अभीष्ट है । मानस कथा का यही लक्ष्य है । उपर्युक्त अभिव्यक्तियों की शाब्दिक भिन्नता के संदर्भ में भी मूल केन्द्रीय रामचरनरति भाव सुरक्षित है । इस भाव का विनयपत्रिका में विस्तार से विभिन्न अनुभावों के संदर्भ में प्रतिपादन किया गया है । विनयपत्रिका के विनय प्रसंग में इस पर विचार करेंगे ।

1.530-मानस- 7.14॥क॥ 1.531- मानस- 7.34
1.532- मानस 7.49 1.533-मानस -7 .84॥ख॥

भरत विनय प्रकरण - विनय के स्वरूप एवं विनय की अपेक्षा का उच्चतम आदर्श भरत की विनय में प्रकट हुआ है । विनय की भूमिका प्रस्तुत करते हुये भरत की विनय की चर्चा अपेक्षित ही नहीं प्रत्युत विनय की सर्वांगीणता के लिये आवश्यक भी है।

भरत की विनय और विनयपत्रिका की एक ही कामना है -

माँगत तुलसिदास कर जोरे
बसहिं रामसिय मानस मोरे - ॥ विनयपत्रिका ॥
- सीय राम पद सहज सनेहू - 1.533
- जन्म जन्म भरि रति राम पद - 1.534
- मोरे सरन रामहि की पनहीं - 1.535

कहना न होगा कि भरत की विनय विनय पत्रिका की प्रेरणा एवं आदर्श रही होगी । विनय पत्रिका का सारभूत प्राणतत्व भरत विनय में अवलोकनीय रहेगा । इस रूप में दोनों विनय प्रकरणों को एक-दूसरे का अंगांगी कहा जा सकता है । । भरत का व्यक्तित्व जिस प्रकार मद रहित और परम पावन राघवेन्द्र जी की साकार स्नेह मूर्ति रहा है, उस प्रकार का सौभाग्य तो अप्रतिम है एवं भरत जैसे दिव्य व्यक्तित्व के लिये ही संभव हो सका है ।

भरतहिं होइ न राजमद । बिधि हरिहर पद पाइ ।- 1.536
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू । धरें देह जनु राम सनेहू ।- 1.537

- भरत की विनय में जो ऊँचाई एवं उत्कृष्टता संभव हुई है, उस प्रकार की भावविभोरता एवं उत्कृष्टता अन्यत्र नहीं आ पाई है, न आ ही सकती थी । उससे कोई तुलना थोड़ी ही हो सकती है।

- विनयपत्रिका तो सही होकर एवं दरबार की सहानुभूति प्राप्त करके ही रह गई जबकि भरत सरकार की विनय ने प्रभुपादिका रूप में विनय का साकार प्रसाद प्राप्त कराने का परम सौभाग्य सुलभ करा दिया है ।

भरत के पावन चरित्र के चित्रण में ही विनय का प्रकरण प्रस्तुत किया गया है और इसका भाव यही है कि भरत का चरित्रचित्रण और कुछ नहीं मात्र विनय का चरित्रचित्रण है । विनय सतत एवं अविरल रूप से प्रवहमान भाव है । इसीलिये विनय काव्य समान्य

1.533- मानस- 2:196:8 1.534- मानस- 2:204 1.535-मानस-2.233.2
1.536- मानस- 2:231:8 1.537- मानस- 2:207

एवं पूर्ण नहीं कहा जा सकता । विनय काव्य जीवन काव्य बन जाता है । जीवन की श्वास-श्वास के साथ विनय काव्य की स्वर लहरी गूँजती रहती है और आजीवन यह क्रम चलता रहता है । भरत इसी विनय काव्य के महिमामय आदर्श चरित हैं ।

भरत के पावन चरित्र में विनय के अंतर्गत अपेक्षित अनन्यता एवं समर्पण भाव बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से व्यक्त हुआ है ।

भरत के विनय काव्य की पाँच अवस्थायें हैं -

1- आत्मग्लानि एवं विनय की पृष्ठभूमि- जिसमें मानमर्दता एवं आत्मभर्त्सना की भूमिका प्रस्तुत होती है तथा अहं शून्यता की स्थिति संभव हो गई है ।

2- आत्म प्रपीडन

3- अनन्य प्रेम

4- विनय निवेदन

5- आत्म तोष

विनय की आकुलता एवं समर्पण की विकलता का बीजारोपण भरत की आत्मग्लानि में होता है । राम वनवास के पीछे भरत का राजतिलक प्रमुख अभीष्ट था । इसलिये भरत का यह सोचना एवं आत्मग्लानि में विकल होना स्वाभाविक था कि यह सारा काण्ड उन्हीं के कारण हुआ है । उनका स्वार्थ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर था । इसलिये यह सोचा जाना ठीक ही था कि इस काण्ड के पीछे उनका हाथ था और उनकी सहमति एवं उनकी इच्छा से ही यह सब हुआ होगा । इधर महाराज दशरथ का स्वर्गवास हो चुका है । सारे राजमहल और नगर में कुहराम मचा हुआ है । बात समझने और सफाई देने वाला अब कोई दिखलाई नहीं देता है । उधर भरत को राजपद पर आसीन कराने के लिये माता कैकेई की उत्सुकता और व्यग्रता इस असह्य स्थिति में और दारुण दृश्य उपस्थित कर रही है । भरत का इन परिस्थितियों में यह सोचना कि " मै सठु सब अनरथ कर हेतु " बड़ा स्वाभाविक है ।

उपर्युक्त समस्त परिस्थिति के अंतर्गत माता की यह आकुलता कि भरत राजपद को स्वीकार करके राज्याभिषेक करायें , आग में घी का काम करती है । भरत सहसा प्रकट अप्रत्याशित परिस्थितियों को आत्मसात नहीं कर पा रहे हैं । ऐसे अवसर पर माता

कैकेयी की राज्याभिषेक की आतुरता ही भरत का संतुलन बिगाड़ देती है । उनका आक्रोश माता पर फूट पड़ता है -

माता के प्रति आक्रोश -

विनय की भूमिका- ∝ पापिनी सबहि भाँति कुल नासा ।। 2. 160. 6 (मानस)

1- जौं पै कुरुचि रही अति तोही । जनमत काहे न मारे मोही ।। 2. 160. 7 (मानस)

2- जब तैं कुमति कुमत जियँ ठयऊ ।
खंड खंड होइ हृदय न गयऊ ।।- 2. 161. 1, 2 (मानस)

3- बर मागत मन भइ नहिं पीरा ।
गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा ।।

भरत के प्रति आक्रोश से आत्मग्लानि तक

4- मै अति अहित रामु तेउ तोही ।
को तू अहसि सत्य कहु मोही ।।

5- जो हसि सो हसि मुहँ मसि लाई ।
आँखि ओट उठि बैठहि जाई ।।- 2. 161. 7, 8 (मानस)

∝ 6- हंसबंसु दसरथु जनक राम लखन से भाइ । - 2. 161 (मानस)

इस आक्रोश का प्रत्यावर्तन भरत की द्विगुणित आत्मग्लानि में हुआ और भरत अपनी आवेग एवं आवेशमय परिस्थिति में विकल हो उठे । सारा का सारा दोष और दायित्व उन्हें अपना ही दिखलाई दिया -

राम विरोधी हृदय ते प्रगट कीन्ह बिधि मोहि ।
मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि ।।- 1.538

- इस विषाद एवं विकलता में उन्हें माता कौशल्या की दीनमलीन स्थिति देखने को मिलती है और उनका हृदय आत्मग्लानि से फूट पड़ता है -

को तिभुवन मोहि सरिस अभागी । गति असि तोरि मातु जेहि लागी ।।-1.539

- इन असहाय एवं हृदय विदारक परिस्थितियों में ही भरत आत्म प्रपीड़न और आत्म प्रताड़ना के लिये विकल हो उठते हैं । उन्हें अपनी सच्चाई एवं निर्दोषता के प्रमाण का कोई आधार दिखलाई नहीं देता है । उधर उनके प्रति शंका स्पष्ट एवं सशक्त रूप धारण

मानस-2. 160. 6, मानस- 2. 160. 7 मानस- 2. 161. 1, 2 , मानस-2. 161. 7, 8
मानस- 2. 161
1.538- मानस- 2. 162
1.539- मानस-2 . 163. 6

कर लेती है । अतएव वह घोर पापों एवं दुष्कर्मों की गति की कामना करते हुये अपनी आत्मग्लानि प्रकट करते हैं -

जौ पै हौं मातु मते महँ है हौं ।

तौ जननी ! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वै हौं ?

क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि, कौन मानिहै साँची ? - गीतावली -- 62

गहि न जाति रसना काहू की, कहौ जाहि जोइ सूझै ।

दीनबंधु कारुण्य-सिंधु बिनु कौन हिये की बूझै ।।- गीतावली -- - 62

चित्रकूट जाकर भगवान् राम के समक्ष अपने आपको प्रस्तुत करने का आग्रह करते हैं ।

इस आत्मग्लानि के अंतर्गत आत्म प्रपीडन की यह स्थिति असह्य एवं मर्मस्पर्शी बन जाती है और भरत का आहत मानस अपने आपको कोसने लगता है और अपना उपहास एवं अपनी भर्त्सना करने में तोष प्राप्त करता है ।

मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू । कीन्ह कैकईं सब कर काजू ।।- 1.540

एहि तें मोर काह अब नीका । तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका ।।- 1.541

व्यंग्य
कैकेई सुअन कुटिलमति राम बिमुख गतलाज ।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम कें राज ।।- 2.178

मोहि समान को पाप निवासू । जेहि लगि सीय राम बनबासू ।।-2.178.3

मैं सठु सब अनरथ कर हेतू । बैठ बात सब सुनउँ सचेतू ।। - 2.178.5
1.542

मोर जनम रघुबर बन लागी । झूठ काह पछिताउँ अभागी ।।- 2.181.8

मन की यह स्वाभाविक वृत्ति है । अनेक भावों के घात-प्रतिघातों में भरत मन की मनस्थिति अनेक ऊहापोहों में भटकती चलती है ।

विनय के साथ मन की इस सहज स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण विनय की भूमिका का भाव गांभीर्य प्रकट करता है जिससे भरत के अदृश्य एवं अव्यक्त व्यक्तित्व के दृश्य एवं व्यक्त साक्षात् दर्शन होते हैं । विनय की यह विशेषता विशेष रूप से अवलोकनीय है एवं उल्लेखनीय है । विनय की भाव भूमि में सारा अंतस् खुल जाय । भीतर बाहर में अंतर न रहे तभी विनय बन पाती है । विनय के लिये यह प्रथम एवं प्रमुख अपेक्षा है । मुख में राम बगल में ईंटें की स्थिति संसार को धोखा दे सकती है किन्तु विनय के क्षेत्र में यह स्थिति

1.540- मानस- 2.179.5 1.541- मानस- 2.179.6

1.542- मानस- 2.178 , 3,5,8 , मानस- 2.181.8

अपने आप को ही धोखा दे जायगी । विनय करने के लिये आत्मारूपी गोपिकाओं को वस्त्रहीन होना ही होगा । अंतस के पाप एवं कलुष, दुराव छिपाव व कपट के अंतराल में अवगुण्ठित रहते हैं । अहं को पुण्य के दिखावे के आवरण की अपेक्षा होती है । इस आवरण से मुक्ति कठिन है तो सच्ची विनय कर पाना उससे कहीं अधिक कठिन है ।

भरत के मन की स्थिति ही दूसरी है । उनका अंतस स्फटिक शिला की भाँति निर्मल एवं निर्दोष है किन्तु परिस्थितिजन्य अनेक आशंकाओं एवं संभावनाओं ने उसे आवृत कर रखा है । यही कारण है कि जहाँ साधारण मानव अंतस को छिपाने का प्रयत्न करता है वहाँ भरत का व्यक्तित्व भीतर बाहर उजागर एवं फूट पड़ने के लिये आकुल व्याकुल है । इस उदात्त अंतर ने ही भरत की विनय को अलौकिकता एवं अप्रतिमता प्रदान की है ।

अहं शून्यता – भरतहि होइ न राजमदु । बिधि हरि हर पद पाइ ।।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ ।।- 1.543

- भरत की आत्मग्लानि एवं आत्म प्रपीड़न ने भरत के व्यक्तित्व को अहंशून्यता की स्थिति संभव कर दी है । जहाँ से विनय का प्रकरण आरंभ होता है, भरत की विनय जहाँ अपनी करनी से, अपने प्रति उत्पन्न आशंकाओं से, आत्मग्लानि का सृजन करती है वहाँ भगवान् के प्रति विश्वास एवं उनकी भक्तवत्सलता का उद्घाटन एवं उद्घोषण भी करती है । यहाँ आश्वासन, रक्षिष्यतीति विश्वासः तथा गोप्तृत्ववरण की भूमिकायें प्रकट होती हैं ।

अनन्य प्रेम की यह स्थिति विनय की आत्मा एवं विनय की प्राण है । इससे पूर्व विनय के लिये प्रेम की अपेक्षा की चर्चा कर चुके हैं । विनय और प्रेम एक सिक्के के दो पहलू हैं, श्वास प्रश्वास की भाँति अन्योन्याश्रित अनिवार्य इकाई है । प्रेम से रहित विनय की कल्पना संभव नहीं है ।

प्रेम, हृदय की वस्तु है । फिर भी ऐसा मानते हैं और अनुभव करते हैं कि बैर और प्रीति प्रकट हो जाते हैं, छिपाने से छिपते नहीं हैं ।

बैर प्रीति नहिं दुरैं दुरायें है ....

1.543- मानस- 2.231

भरत के प्रेम विह्वल व्यवहार में प्रेम के स्थल-स्थल पर दर्शन होते हैं । इस प्रेम का आधार भगवान् के प्रति उनका अटूट विश्वास है -

भगवान् के प्रति विश्वास

जदपि मैं अनभल अपराधी । भै मोहि कारन सकल उपाधी ।।
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी । छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी ।।- 1.544

- भगवान् की क्षमा एवं विशेष कृपा का विश्वास ही उन्हें वन जाने तथा प्रभु को मना कर वापिस लाने के स्वप्न को आग्रह एवं अनुरोध में क्रियान्वित करने के लिये विवश कर देता है । भरत का विवेक भगवान् राम के दृढ़ प्रतिज्ञ स्वभाव को समझ कर भलीभाँति निश्चय करा सकता था कि वह वन से वापिस नहीं आवेंगे किन्तु प्रेम ने बुद्धि और विवेक को धता बताया और स्वप्न को साकार करने के लिये आगे आ गया । प्रेम की यही भावना-मय स्थिति सुंदर कल्पना प्रस्तुत करती है -

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ । अपराधिहु पर कोह न काऊ ।।
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी । खेलत खुनिस न कबहूँ देखी ।।-
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू । कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू ।।
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही । हारेहुँ खेल जितावहिं मोही ।।- 1.545

उनके मन में आशंका भी जाग्रत होती है -

भरत भए ठाढ़े कर जोरि ।
ह्वै न सकत सामुहें सकुचबस समुझि मातुकृत खोरि ।।
फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं प्रभु कलपि कुटिलता मोरि ।।- 1.456

यह आशंका विश्वास को आहत नहीं कर पाती । विश्वास और आशंका की मनःस्थिति उनके पग उठाती है, पीछे हटाती है , आगे बढ़ाती है और आशंका पर विजय पाकर शिथिल पगों में वेग भर देती है । भरत मन की यह स्थिति उनके अनन्य प्रेम का सुंदर चित्र उपस्थित कर देती है ।-

---

1.544-मानस- 2.182 : 3,4

1.545- मानस- 2.259: 5,6, 7,8

1.546- गीतावली ~~२२~~ - 70

आशंका

समुझि मातु करतब सकुचाहीं । करत कुतरक कोटि मन माहीं ।।
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ।।
मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर ।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ।।
जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी । जौं सनमानहिं सेवकु मानी ।।
मोरें सरन रामहि की पनही । राम सुस्वामि दोसु सब जनही ।।
फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी । चलत भगति बल धीरज धोरी ।।
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ।।- 1.547

मग में भरत की प्रेमजन्य मनोदशा के दर्शन निम्नलिखित रूपों में होते हैं -

1। भगवान् राम और माता सीता के वन में पयादेहि गमन करने का विचार उनके मन को झकझोर देता है । वह स्वयं पयादेहि चलने लगते हैं ।

बन सिय रामु समुझि मन माहीं । सानुज भरत पयादेहिं जाहीं ।।
गवने भरत पयादेहिं पाए । कोतल संग जाहिं डोरिआए ।।
रामु पयादेहि पायँ सिधाए । हमकहँ रथ गज बाजि बनाए ।।- 1.548

2। भगवान् राम के संपर्क में जो लोग आये हैं, वे उन्हें लक्ष्मण के समान प्रिय लगते हैं ।

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ ।।
भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती । लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ।।
राम बास थल बिटप बिलोकें । उर अनुराग रहत नहिं रोकें ।।
करि प्रनामु पूँछहिं जेहि तेही । केहि बन लखनु रामु बैदेही ।।
जे जन कहहिं कुसल हम देखे । ते प्रिय राम लखन सम लेखे ।। - 1.549

1.547- मानस- 2.232.7,8 , मानस- 2.233, मानस- 2.233.1,2, मानस-2.233.5,6

1.548- मानस- 2:187:2 , मानस- 2:202:4 , मानस- 2:202:6

1.549- मानस- 2:193 , मानस- 2:193:1 , मानस- 2:215:7 , मानस-2:223:5 मानस- 2:223:7

194----

(iii) मार्ग के तीर्थ स्थानों से भगवान् राम और माता सीता के पावन चरणों में सहज स्नेह का वरदान माँगते हैं -

सुरसरि से - जोरि पानि बर मागउँ एहू । सीय राम पद सहज सनेहू ।।- 1.550

प्रयागराज से
अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ।।- 1.551

(4) - भगवान् राम और माता सीता के वन के कष्टों की कामना से विलख उठते हैं -

राम सुना दुखु कान न काऊ । जीवन तरु जिमि जोगवइ राऊ ।।
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती । जोगवहिं जननि सकल दिन राती ।।-
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं । करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं ।।

अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुसपात ।

बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात ।

एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती । भूख न बासर नीद न राती ।।-1.552

(5)- भरत के अनन्य प्रेम की स्थान- स्थान पर प्रशंसा होती है -

प्रमुदित तीरथराज निवासी । बैखानस बटु गृही उदासी ।।
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा । भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा ।।

भरद्वाज
सुनहु भरत रघुबर मन माहीं । पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं ।।
लखन राम सीतहि अति प्रीती । निसि सब तुम्हहि सराहत बीती ।।

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू । धरें देह जनु राम सनेहू ।।

भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम रामु जप जेही ।।

अगुन अलेप अमान एकरस । रामु सगुन भए भगत पेम बस ।।-(हम (भरत) कहें ।
1.553

1.550- मानस- 2:196:8
1.551- मानस- 2.204
1.552- मानस-2:200:1,2 ,5, मानस- 2:210:8, मानस- 2:211, मानस-2.211.
1.553- मानस- 2:205.1,2, मानस- 2:207.3,4 ,8, मानस- 2:217.7, मानस 2.218.6

195---

स्वयं गुरु वशिष्ठ तथा राम भी भरत की प्रशंसा करते हैं : 1.554

कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा । भरत सनेहँ विचारु न राखा ।।
तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी । भरत भगति बस भइ मति मोरी ।।
गुरु अनुरागु भरत पर देखी । राम हृदयँ आनंदु बिसेषी ।।
भरतहि धरम धुरंधर जानी । निज सेवक तन मानस बानी ।।
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयउ न भुअन भरत सम भाई ।।
तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि ।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि ।।
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोकु परलोकु नसाई ।।
मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार ।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ।।
कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ।।
तात कुतरक करहु जनि जाएँ । बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ ।।

विनय निवेदन - भरत की विनय के अंतर्गत विनय निवेदन में जिस संकोच, शालीनता, विनम्रता एवं धैर्य का उद्घाटन हुआ है, वह विनय निवेदन का उत्कृष्ट आदर्श है । विशेषता यही है कि इसमें कथ्य महत्वपूर्ण नहीं, हृदय की समर्पिता एवं भाव विभोरता ही प्रधान है । सच्ची विनय का यही मान एवं मूल्य है । वाग्विदग्धता, वाणी विलास, शब्दचातु र्य जैसी शैलीगत अपेक्षायें कोसों दूर हैं ।

- भरत विनय का अभीष्ट भगवान् राम का अभिषेक तथा उनका अवधिपूर्व अयोध्या पुनरागमन है । इस विनय के लिये उनका मन ऊहापोह करता है । मन में अनेक समाधान एवं उपाय सूझते हैं -

(1)- प्रथम प्रयास में तो वह स्वयं अपने आपको असमर्थ पाते हैं । उन्हें कोई उपाय नहीं सूझता -

कल्पना केहि विधि होइ राम अभिषेकू । मोहि अवकलत उपाउ न एकू ।- 1.555

1.554- मानस- 2.257.6,7 , मानस-2.258.1,2,4, माननस-2:262,-7, मानस- 2.263,1,2
1.555- मानस- मानस- 2.252.2

॥ii॥ - उनकी दृष्टि गुरु पर जाती है और सोचते हैं कि गुरु महाराज के आदेश को मानकर भगवान् राम अवश्य वापिस लौट आवेंगे किन्तु यह उपाय भी शिथिल दिखलाई देने लगता है जब वह सोचते हैं कि मुनि राम रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे -

अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी । मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी ।।- 1.556

॥iii॥- पुनः सोचते हैं कि माता कौशल्या के कहने से भगवान् राम वापिस आ जावेंगे किन्तु इस रूप में भी उनका मन आश्वस्त नहीं हो पाता । वह जानते हैं कि राम-माता हठ नहीं करेंगीं -

॥4॥- अंत में पुनः अपनी ओर दृष्टि फेरते हैं । वह स्वयं ही तो इस अभियान के नेता हैं और उनके प्रोत्साहन से ही सारा नगर एवं राजपरिवार वन को चल दिया है । आग्रह पूर्वक निवेदन की दृष्टि से अपने आपको तौलते हैं और इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि उनकी कोई सामर्थ्य नहीं है ।

साथ ही कुसमय और दुर्भाग्य साथ चल रहा है । फिर भी सोचते हैं कि हठ करूँ, आग्रह करूँ, और अपने अनुरोध से उन्हें वापिस चलने के लिये विवश कर दूँ किन्तु इसके लिये उनका विवेक साथ नहीं देता । यह तो निरा कुकर्म ही बन पड़ेगा । सेवक एवं विनयकर्ता के रूप में यह कैसे संभव हो सकता है । इस प्रकार अंततोगत्वा उनके मन में कोई भी उपाय ठीक नहीं बैठता है -

- मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ । राम जननि हठ करब कि काऊ ।।
- मोहि अनुचर कर केतिक बाता । तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता ।।
- जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू । हर गिरि तें गुरु सेवक धरमू ।।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी । सोचत भरतहि रैनि बिहानी ।।- 1.557

- भरत विनय निवेदन के लिये आयोजित सभा दो चरणों में विचार करती है - प्रथम चरण महाराज जनक के आगमन तक चलता है तथा पुनः सभा एकत्रित होती है और दूसरे चरण में विनय निवेदन पूरा होता है ।

प्रथम चरण - चित्रकूट में सभा एकत्र होती है । गुरु वशिष्ठ सभासद एवं भरत को संबोधित करते हुये विचार विमर्श हेतु प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं -

---

1.556- मानस- 2.252.3
1.557- मानस- 2.252.4,5,6,7

(अ) - भगवान् राम नीति, प्रीति, परमार्थ और स्वार्थ सभी दृष्टि से प्रत्येक तथ्य को भली प्रकार समझते हैं। उनके समान किसी वस्तु को यथार्थ रूप में और कोई नहीं जान सकता।

- बोले मुनि बरु समय सुजाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना।।- 1.558

(आ)- भगवान् राम की आज्ञा का पालन करने में ही हम सब का हित है

- राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।- 1.559

- नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु।।-1.560

(इ)- सब लोगों को राम का अभिषेक सुखद एवं प्रिय है तो

- सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू 1.561

(ई)- किस प्रकार भगवान् राम अवध चल सकते हैं, यह सोच समझ कर कहो और वही उपाय करो -

- केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ।
  कहहु समुझि सोई करिअ उपाऊ।।- 1.562

- सब सभासदों के मौन रहने पर भरत गुरु महाराज की शक्ति - सामर्थ्य का उल्लेख करते हुये उनकी व्यवस्था की अपेक्षा करते हैं। गुरु वशिष्ठ जी सर्वस्व नाश की स्थिति में अर्द्ध भाग की रक्षा से संतोष कर लेने की नीति का संदर्भ देते हुये भरत और शत्रुघ्न को वन जाने और भगवान् राम सीता और लक्ष्मण के वापिस अयोध्या चलने का प्रस्ताव करते हैं।

।-.अरध तजहिं बुध सरबस जाता।- 1.563
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लखन सीय रघुराई।।- 1.564

- यह प्रस्ताव भरत शत्रुघ्न दोनों भाईयों को अति रुचिकर लगता है। दोनों भाई इस व्यवस्था के लिये आग्रह करते हैं। गुरु एवं भरत तथा सभी सभासद भगवान् राम के पास पहुँच जाते हैं तथा उनके समक्ष सारी स्थिति प्रस्तुत करते हैं।

1.558- मानस-2.253.1 1.559- मानस-2.254 1.560- मानस:2:253:5
1.561- मानस-2.254.1 1.562- मानस-2.254.2 1.563- मानस-2:255:2
1.564- मानस-2.255.3

नीति - जिनकी सहज श्वास श्रुतिचारी। चार वेद ही नीति कारण जानई।
प्रीति - जानत प्रीति रीति रघुराई। जाने बिन न होय परतीती। बिन परतीति होय नहिं प्रीति।।
परमार्थ - राम ब्रह्म परमारथ रूपा। सखा धरम परमारथ ऐहू। मनक्रम बचन राम पद नेहू।
स्वार्थ - स्वारथ साधक कुटिल तुम सदा कपट व्यवहार। स्वारथ साचिं जीव कहँ ऐहा। मन कम वचन राम पद नेहा।।

- भगवान् राम के समक्ष पहुँच कर गुरु वशिष्ठ जी भगवान् राम से ही कोई उपाय पूछते हैं जिसमें पुरजन, माता कौशल्या तथा भरत का हित हो सके ।

सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ ।।- 2.257

- शील सौजन्य की साक्षात्मूर्ति भगवान् राम सारा दायित्व गुरु जी को ही सौंपते हुये कहते हैं - आपका रुख रखने और आपके आदेश पालन में ही सबका हित है । अतएव आप ही मुझे और अन्य सबों को आज्ञा दें तथा मैं तथा अन्य सब लोग उसका पालन करें ।

सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ । नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ।।- 1.565
सब कर हित रुख राउरि राखें । आयुस किएँ मुदित पुर भाषें ।।
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई ।। माथें मानि करौं सिख सोई ।।
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं । सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं ।।-1.566

- गुरु वशिष्ठ भरत की भक्ति, स्नेह एवं विनयशीलता से विशेष रूप से प्रभावित हैं । अतएव वह सारा दायित्व भरत को सौंप देते हैं -

कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा । भरत सनेहँ बिचारु न राखा ।।
तेहिं तें कहउँ बहारि बहोरी । भरत भगति बस भइ मति मोरी ।।
मोरें जान भरत रुचि राखी । जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ।। - 1.567

- भगवान् राम भरत के स्नेह, सौजन्य, भक्ति और भ्रातृत्व की प्रशंसा करते हुये भरत को इस दायित्व का सौंपा जाना सहर्ष स्वीकार करते हैं ।

भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई । अस कहि राम रहे अरगाई ।।- 1.568

- भगवान् राम की सहमति सुन कर गुरु वशिष्ठ जी भरत को अपने मन की बात कहने के लिये प्रोत्साहित करते हैं -

- तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात ।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात ।।

1.565- मानस- 2.257.2
1.566- मानस- 2.257.3,4,5
1.567- मानस- 2.257.6,7,8
1.568- मानस- 2.258.8

- भरत गुरु के वचन सुन कर , राम का रुख देखकर तथा अपने ऊपर सारा दायित्व आया हुआ समझ कर कुछ कह नहीं पा रहे हैं , विचार करते हैं, क्या कहें -

- सुनि मुनि बचन राम रुख पाई । गुरु साहिब अनुकूल अघाई ।

- लखि अपनें सिर सबु छरु भारु । कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारु ।।- 1.569

भरत विनय निवेदन हेतु तत्पर होते हैं :-

उनका विनयकर्ता का स्वरूप अवलोकनीय है -

- पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े । नीरज नयन नेह जल बाढ़े ।।- 1.570

- शरीर पुलकित

- नीरज [1.571] नेत्रों से स्नेह जल बह रहा है ।

- इस अवसर पर उनका मन विभिन्न मनोभावों की उर्मियों में भटकता आकुल व्याकुल तथा भाव विभोर हो जाता है ।

उनका ध्यान पहिले कुछ कहना है , इस बात पर जाता है और वह कुछ कहने से प्रारंभ करते हैं ।

यह कुछ कहना पूर्व प्रसंग का ही पुनः स्मरण है -

मेरा कहना तो मुनिनाथ ने प्रस्तुत कर दिया ।

अब इससे अधिक और क्या कहूँ ?

- कहब मोर मुनिनाथ निबाहा । एहि तें अधिक कहौं मैं काहा ।।-

- यह कहना यही था कि भरत शत्रुघ्न वन को चले जाँय तथा राम लक्ष्मण सीता अयोध्या वापिस आ जाँय -

- मेरो जीवन जानिय ऐसोइ, जियै जैसो अहि, जासु गई मनि फनकी ।
मेटहु कुल कलंक कोसलपति, आग्यादेहु नाथ मोहि बनकी ।।

- तुलसी जो फिरिबो न बनै, प्रभु ! तौ हौं आयसु पावौं ।
घर फेरिए, लखन लरिका हैं , नाथ साथ हौं आवौं ।- 1.572

1.569- मानस-2.259.1,2 1.570- मानस-2.259.3

1.571- नीरज विशेषण का प्रयोग नेत्रों की स्वाभाविक जलपूर्ण स्थिति को द्योतित करती है ।

1.572- गीतावली ~~२२~~ 71, 73

200-----

- भगवान् राम की उदारता एवं भक्तवत्सलता का स्मरण हो आया जिसके फलस्वरूप उन्होंने गुरु वशिष्ठ का प्रस्ताव स्वीकार करते हुये यह निश्चय कर लिया कि जो गुरु कहें वही किया जाय ।

- इसके साथ भगवान् राम की कृपा एवं उनके अनुग्रह के सारे पूर्व प्रसंग सहज ही स्मरण हो आते हैं और भरत की विनयं उसी भूमिका के अंतर्गत अपना हृदय खोल कर रख देती है । मा की करतूत और मा का क्या दोष, अपना ही सारा दोष है, भगवान् राम और माता सीता के वन के कष्टों की कल्पना में सारे प्रसंग एक के बाद एक आते जाते हैं और भरत के मन की अति विकलता को प्रस्तुत कर देते हैं ।

- भगवान् राम के स्वभाव का स्मरण - अपराधी पर भी क्रोध नहीं आता ।

- अपने ऊपर भगवान् को विशेष कृपा का स्मरण -
  - खेल में भी कभी रोष नहीं देखा ।
  - बचपन से ही मैं उनके साथ रहा और उन्होने कभी मेरा मन नहीं तोड़ा ।
  - कृपा की रीति- मेरे हारने पर भी मुझे खेल में जिताते रहे हैं ।
  - मैंने ही स्नेह संकोचवश सन्मुख बात नहीं की ।
  - प्रेम प्यासे नेत्र आज तक दर्शन से तृप्त नहीं हुये हैं ।

- माता कैकेयी के हृदय विदारक प्रकरण का स्मरण -
  - i- माता के माध्यम से मेरे और भगवान् राम के बीच अंतर पड़ गया ।
  - ii - यह कैसे होगा कि मा मंद हो और पुत्र साधु सदाचारी हो ।

आत्म ग्लानि -
  - iii- मैं ही सब अनर्थों की जड़ हूँ ।

-भगवान् राम सीता एवं लक्ष्मण के वन के कष्टों का स्मरण एवं दारुण वेदना ।
  - i- मुनि वेष धारण करके वन गमन किया ।
  - ii- बिना उपानह के पयादेहि गमन किया ।
  - iii - ऐसे राम मुझे अनहित कारक लगे ।

॥अ॥- जिन्ह के लिये निषाद जैसी असभ्य जातियों का अनुपम प्रेम देखा गया।

॥ब॥- मार्ग के दुष्ट जन्तु- साँप बिच्छू आदि भी जिनके दर्शन करके विषम विष तथा अपने तामस तीक्षण स्वाभाव त्याग दिये ।

- भगवान् राम की इस अति विकल वाणी को सुन कर उन्हें आश्वस्त करते हुये कहते हैं- हे भाई ।

1- हृदय में ग्लानि न करो । जीवगति ईश्वर के आधीन है ।

- तात जायँ जियँ करहु गलानी । ईस अधीन जीव गति जानी ।।-1.573॥अ॥

2- - मेरी समझ में तीनों कालों और तीनों लोकों के सब पुण्यात्मा तुमसे हेय हैं- 1.573॥ब॥

-तीनि काल तिभुअन मत मोरें । पुन्यसिलोक तात तर तोरें ।-

3- मन में भी तुम पर कुटिलता का आरोप लगाने पर यह लोक और परलोक नष्ट हो जायेगा - 1.573॥स॥

- उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोकु परलोकु नसाई ।।

4- हे भाई ।

कुतर्क न करो बैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपता ।-1.573॥द॥

-तात कुतरक करहु जनि जाएँ । बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ ।

5- मैं स्वाभाव से ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साक्षी हैं । यह पृथ्वी तुम्हारे ही द्वारा रह रही है । - 1.573॥इ॥

- कहहुँ [illegible] सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ।।

6- तुम संकोच छोड़ कर मन प्रसन्न करके जो कुछ कहो, मैं आज वही करूँगा ।- -1.573 ॥ई॥

- मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु ।
सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु ।।-

1.573 ॥अ॥- मानस- 2:262:5
1.573 ॥ब॥- मानस- 2:262:6
1.573 ॥स॥- मानस- 2:262:7
1.574 ॥द॥- मानस- 2:263:2
1.573 ॥इ॥- मानस- 2:263:1
1.573 ॥ई॥- मानस- 2:264

202-----

~~2.202~~---

इस अवसर पर विनय निवेदन की पृष्टभूमि आभासित होने लगती है । भरत के मन का कल्पित शूल उनको आहत कर रहा था । उनके मन का किसी प्रकार समाधान नहीं हो पा रहा था । उनकी सफाई देने पर भी उन्हें लोग निर्दोष समझ सकेगें । उनके मन के इस कल्पित शूल ने ही उन्हें नगर सहित वन गमन अभियान के लिये प्रेरित किया है । उनके मन में दो विरोधी विचार उठते थे - 1- भगवान् राम सत्यवादी एवं दृढ़ प्रतिज्ञ हैं, इसलिये यह संभव नही है कि वह अयोध्या वापिस आ जांय 2- भगवान् राम उन पर विशेष कृपा और स्नेह करते हैं, इसलिये हो सकता है कि वह वापिस आ जांय ।

- आत्मग्लानि, आशंका एवं अनन्य प्रेम की विपरीत परिस्थितियों में उनका मन किं कर्तव्यविमूढ़ -जैसा हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं । इसलिये उनके सामने केवल यही एक उपाय शेष रहा कि भगवान् राम की शरण में उपस्थित हों, अपना हृदय खोलकर रख दें, और वह जैसा उचित समझें, वैसा करें ।

- इसलिये गुरु तथा भगवान् राम की ओर से अपने व्यवहार के प्रति संतोष व्यक्त करने पर, अपनी निर्दोषता तथा अबोधता के संबंध में आश्वस्त होने पर भरत को विनय की अनुकूल भूमिका सुलभ हो जाती है । विनय-निवेदन से पूर्व विनय की यह अनुकूल परिस्थिति आवश्यक है । कहना यह चाहिये कि विनय प्रकरण के इस प्रथम चरण के लिये ही प्रमुख रूप से चिन्ता करनी चाहिये । इसके सम्हल जाने पर आगे सारे दायित्व का सहज ही निर्वाह हो जाता है ।

1.574

- भरत की निम्नलिखित अनुभूति इस प्रसंग में विशेष रूप से उल्लेखनीय एवं अनुकरणीय है-

- लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू । मिटेहु छोभु नहिं मन संदेहू ।।
- अब करुनाकर कीजिअ सोई । जनहित प्रभु चित छोभु न होई ।।

- भरत के विनय निवेदन प्रकरण में परिस्थितिजन्य कल्पित शूल की एक कथा है किन्तु जनसाधारण को मन का अपना शूल कल्पित नहीं प्रत्युत वास्तविक होता है । इसलिये विनय निवेदन के लिये जनमानस की विकलता एवं वेदना में कहीं अधिक तीव्रता एवं आवेग होना ही चाहिये । धार्मिक कर्मकाण्ड एवं पूजापाठ की गोस्वामी जी ने चर्चा नहीं की है। इसका कारण यही है कि ये कृत्य मानस प्रक्षालन एवं भगवान् की साधना के मार्ग के प्रभावी चरण नहीं बन पाते । विनय निवेदन के अंतर्गत सारा कर्मकाण्ड, सारा पूजा पाठ,

---

1.574- मानस-2:267:1,2

सारा मन और सारा भावक्षेत्र आ जाता है । विनय निवेदन की महत्ता सबसे अधिक है और विनय निवेदन ऐसा मानसिक साधन है जो मनसा साध्य होने के कारण सबके लिये सुलभ एवं सहज होता है , यह स्वतः स्फूर्त हो सकता है किन्तु इसके लिये भौतिक कष्टों की प्रेरणा अपेक्षित रहती है । जब सब ओर से मनुष्य निराश हो जाता हैऔर केवल भगवान् की ओर दृष्टि लग जाती है , उस समय विनय निवेदन का समुचित अवसर उपस्थित होता है । इसलिये भक्त अथवा आस्थावान् प्राणी कभी कष्टों से घबड़ाते नहीं प्रत्युत उनका सहर्ष स्वागत करते हैं ।

- भरत की विनय निवेदन में एक विशेष सावधानी बरती गई है । भरत का निष्कपट ~~एवं निष्कपट~~ एवं निष्कलंक कोमल हृदय अनावश्यक रूप से आहत एवं प्रपीड़ित होता आ रहा है । इसलिये विनय निवेदन के अवसर पर हृदय पर कहीं असह्य आघात न पड़ जाय, यह ध्यान रख कर विनय निवेदन के प्रसंग को दो भागों में विभाजित करना आवश्यक समझा गया है । प्रथम चरण में भरत जब अपनी बात कहने के लिये तत्पर होते हैं तथा सारी परिस्थितियों का अवलोकन कर विकल एवं व्यग्र हो जाते हैं , आत्म ग्लानि में आत्मदाह जैसी वेदना जाग्रत हो जाती है , उस अवसर पर एक ओर भगवान् राम के द्वारा उन्हें आश्वस्त एवं उनकी निर्दोषता को साक्षी बना कर स्थिति सम्हालने का प्रयत्न किया जाता है तो दूसरी ओर राम के निश्चय और निर्णय के उसी समय प्रकट किये जाने से कहीं विषम आघातक स्थिति न बन जाय, प्रसंग को टाल देने की योजना बना ली जाती है । श्री जनक के आगमन की सूचना से अनायास ही यह पटाक्षेप हो जाता है तथा प्रथम चरण विनय निवेदन की पावन पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर द्वितीय खण्ड के लिये मार्ग प्रशस्त कर देता है ।

द्वितीय चरण में - महाराज जनक के आ जाने से समागत समाज की दृष्टि का महाराज जनक पर लग जाना स्वाभाविक है । जब माता कौशल्या जी से जनक रानी भेंट करने जातीं हैं तो माता कौशल्या चाहतीं हैं कि जनकरानी महाराज जनक से गुरु वशिष्ठ जी का प्रस्ताव इस संशोधित रूप में रखने की कृपा करें कि लक्ष्मण वापिस आ जाँय तथा उनके स्थान में भरत राम के साथ वन चले जाँय। इस प्रस्ताव के पीछे राम के आगे भरत के गूढ़ प्रेम की बात ही प्रमुख रूप से माता कौशल्या जी के सामने है ।- 1.575 [अ]

कौशल्या ने चाहा जनकरानी जनक से कहें -	-रानि राय सन अवसरु पाई।अपनी भाँति कहब समुझाई ।। - रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन।जौं यह मत मानै महीप मन ।।

तौ भल जतनु करब सुबिचारी । मोरें सोचु भरत कर भारी ।।

गूढ़ सनेह भरत मन माहीं । रहें नीक मोहि लागत नाहीं ।।- 1.575 ।ब।

- इस संदर्भ के द्वारा भरत विनय निवेदन के प्रथम चरण की उपलब्धि का अप्रत्यक्ष प्रबोध हो गया तथा महाराज जनक तथा उनके साथ समागत विशाल समाज को अनावश्यक ऊहापोह से मुक्ति मिल गई । माता कौशल्या ही सबसे अधिक प्रभावित थीं । अतएवं उनके द्वारा ही राम के प्रति भरत के गूढ़ एवं अनन्य प्रेम की पुष्टि प्रथम चरण से पूर्व संभावित शंकाओं का निवारण कर सकी कि इस काण्ड में भरत का कोई हाथ अथवा उनकी सहमति आदि कुछ नहीं है । वह तो वस्तुतः इस सबसे पूर्णतया अनभिज्ञ हैं । भरत के संबंध में अतएव यह निष्कर्ष निश्चिन्त भाव से ग्राहय एवं स्वीकार हो गया -1.576

.... कही समय सिर भरत गति रानि सुबानि सयानि ।।

सुनि भूपाल भरत ब्यवहारु । सोन सुगंध सुधा ससि सारू ।।

मूदे सजल नयन पुलके तन । सुजसु सराहन लगे मुदित मन ।।

परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ।।

साधन सिद्धि राम पग नेहू । मोहि लखि परत भरत मत एहू ।।

- साधन सिद्धि राम पग नेहू । मोहि लखि परत भरत मत एहू ।।- 1.577

तृतीय चरण में भरत अपना निवेदन प्रस्तुत करने के लिये अग्रसर होते हैं । इस निवेदन की पृष्ठभूमि में अभिवादन, अभिनन्दन, क्षमा, ग्लानिएवं क्षोभ है जिनसे एक ओर निवेदन के संबंध में उनकी सावधानी एवं सतर्कता प्रकट होती है तो दूसरी ओर उनके मन की व्यग्रता एवं विकलता के भी दर्शन होते हैं ।

।अ।- भरत जी सबसे पहिले सबका अभिवादन करते हैं और श्रीरामचन्द्र जी ,श्रीजनकजी, श्री वशिष्ठजीतथा समागत संत-महात्माओं का अभिनन्दन करते हैं । विनय - निवेदन का प्रारंभ इस शालीनता के परिवेश में होता है । साथ ही अपने निवेदन करने की विवशता के लिये क्षमा माँगते हैं । भरत जी तो उन अनन्य सेवकों में से हैं जिन्हें निवेदन करने की कभी आवश्यकता ही नहीं हुई, जिन्होने आदेश और तदनुकूल आज्ञा पालन ही अपने जीवन में देखा और समझा है । निवेदन करना वह जानते ही नहीं : - 1.578

-करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे । रामु राउ गुर साधु निहोरे ।।

- छमब आजु अति अनुचित मोरा । कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा ।।

1.575 ।ब।- मानस-2.283.3,4 1.576-मानस-2.287,1,2, 288,7,8
1.577- मानस- मानस-2.288,7,8 1.578-मानस-2.296.5,6

(आ)- भरत को इस बात का क्षोभ है कि वह मोहवश भगवान् राम तथा पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर सारे समाज के साथ वन में भगवान राम के पास आ गये हैं - 1.579 (अ)

- प्रभु पितु बचन मोह बस पेली । आयउँ इहाँ समाजु सकेली ।।
- जग भल पोच ऊँच अरु नीचू । अमिअ अमरपद माहुरु मीचू ।।
- को रघुबीर सरिस संसारा । सील सनेह निबाहनिहारा ।।
- उदभव पालन विषहु अमीके । राम रजाइ सीस सबही के ।।
- प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किय आपु समान ।
- प्रभु सकुचेयहि कछु नहि दीन्हा ।।
- अण्डहि कमठ सोच जेहि भाँति ।।- 1.579 (ब)

(इ)- इस प्रसंग में भी भगवान् राम की आज्ञा का उल्लंघन तो अनहोनी बात हुई है । संसार में सब प्रकार के भले-बुरे, ऊँचे-नीचे मनुष्य हैं किन्तु ऐसा कहीं किसी ने न देखा न सुना कि किसी ने भगवान् राम की आज्ञा का उल्लंघन किया हो ।- 1.580

- जग भल पोच ऊँच अरु नीचू । अमिअ अमरपद माहुरु मीचू ।।
- राम रजाइ मेट मन माहीं । देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं ।।

(ई)- भरत जी ने यह सब किया और भगवान् राम ने इस सब अपराध को क्षमा ही नहीं किया प्रत्युत इसको स्नेह एवं सेवा समझ कर संतुष्ट हुये ।

उ- सेवक पर ऐसी कृपा करने वाला स्वामी कौन हो सकता है जो स्वयं अपने आप ही सेवक की सारी इच्छाओं की पूर्ति कर दे और कभी उसका बखान न करे बल्कि उल्टा सेवक के संकोच को ही अपने हृदय में रखे -

ऊ - स्वामी और समाज के संकोच को छोड़ कर अविनय अथवा विनय भरी यथा रुचि वाणी में निवेदन करके ढिठाई हुई है, एक अपराध बन पड़ा है । अपने आर्तभाव को प्रकट कर अतएव क्षमा-प्रार्थना करना ही अभीष्ट है ।

1.579 (अ)- मानस- 2.297.5,6 1.579 (ब)- मानस 1.29 मानस 2.101.2
1.580- मानस- 2.297.6,7

॥ए॥- अब निवेदन करते हैं :-

हे भगवान् ! आपके चरण कमलों की रज की जो सत्य, सुकृतऔर सुख की सीमा है , दोहाई ॥दुहाई॥ करके अपने हृदय की इच्छा व्यक्त करता हूँ। यह इच्छा सोते, जागते और स्वप्न सभी स्थितियों में बनी रहती है।-

॥आ॥- वनवास प्रसंग में भरत के मन की सबसे बड़ी परेशानी यही थी कि लोग कैसे विश्वास करेंगे कि इस प्रकरण में उनका हाथ नहीं रहा है जबकि सारी योजना से भरत को राज्याभिषेक -जैसा स्पृहणीय लाभ सुलभ हुआ है । इस मानसिक विकलता एवं विवशता की स्थिति में वह सारे समाज को साथ लेकर वन को चल देते हैं । भगवान् राम का सामीप्य प्राप्त कर उनके मन का क्लेश दूर होता है तथा उन्हें विश्वास हो जाता है कि माता कौशल्या, भगवान् राम, महाराज जनकतथा पुरजन प्रियजन किसी को भी ऐसी शंका नहीं है कि वनवास प्रसंग में भरत का हाथ रहा था । मन शान्त हुआ तो सारी परिस्थिति के सिंहावलोकन का अवसर आ गया । उन्होंने देखा कि यह तो उनके मन की ही शंका थी कि कहीं कोई ऐसा तो नहीं समझता और इस अपनी उहापोह में वह सारे समाज को साथ लेकर वन को चल दिये । उन्हें तो महाराज दशरथ तथा भगवान् राम की आज्ञा तथा इच्छा का पालन करना चाहिये था । राज्य व्यवस्था देखते तथा प्रजा पालन करते ।

॥उ॥- भगवान् राम के अपने सेवक पर ऐसे दया और कृपा के भाव को देख कर भरत आनन्दविभोर हो जाते हैं तथा कृपालु भगवान् के इस अति अप्रतिम स्वभाव का बखान कर गद्गद् होते हैं ।

॥ऊ॥- सेवक और भक्त का कार्य तो केवल सेवा करना, आज्ञा पालन करना है । उसे कुछ निवेदन करना पड़े , यह उसके लिये परेशानी की ही बात नहीं है प्रत्युत अपराध बन पड़ने की संभावना के कारण संकट की भी बात बन जाती है । उसने कभी निवेदन किया नहीं । इसलिये निवेदन के समय मर्यादा का ध्यान विनय-अविनय की सावधानी आदि कैसे बन पड़ेगी । उसका निवेदन करना ही स्वयं ढ़िठाई होती है अतएव

अब मात्र एक इच्छा है कि स्वार्थ, छल तथा धर्म , अर्थ, काम, मोक्ष, चारों फलों की कामना को छोड़ कर , सहज एवं स्वभाविक प्रेम से स्वामी की सेवा करना और सेवा है भगवान् की आज्ञा का पालन करना । अतएव भरत कहते हैं कि इस अवसर पर भी मुझसे निवेदन करने की अपेक्षा न रख कर आप आज्ञा दें तथा मैं उसका सर्वभावेन पालन करूँ । मैं तो बस इसी प्रसाद का प्रार्थी हूँ ।

- ऐसा कह कर भरत अत्यन्त प्रेम विवश हो गए । उनका शरीर पुलकित हो गया तथा नेत्रों से अश्रु प्रभावित होने लगे । उन्होने व्याकुल होकर भगवान् राम के चरण कमल पकड़ लिये ।- 1.58।

- प्रभु पद पदुम पराग दोहाई । सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई ।।
- सो करि कहउँ हिए अपने की । रुचि जागत सोवत सपने की ।।
- सहज सनेहँ स्वामि सेवकाई । स्वारथ छल फल चारि बिहाई ।।
- अग्या सम न सुसाहिब सेवा । सो प्रसादु जन पावै देवा ।।
- अस कहि प्रेम बिबस भए भारी । पुलक सरीर बिलोचन बारी ।।
- प्रभु पद कमल गहे अकुलाई । समउ सनेहु न सो कहि जाई ।।

- भरत की विनय का आदर्श अपनी अभिव्यक्ति में जहाँ समस्त मान-मर्यादा ,शालीनता एवं शिष्टता तथा स्नेह एवं समर्पण का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है वहाँ अपने मौन में विनय की समस्त शंकाओं का समाधान कर श्रद्धा और विश्वास की उस सीमा को छू रहा है जहाँ सेवक की इच्छा , सेवक का निवेदन स्वामी की इच्छा एवं उत्सुकता बन जाती है ।

- विनय का यह आदर्श विश्व साहित्य में दुलर्भ है । इससे पूर्व मौन विनय की चर्चा हुई है किन्तु भरत की तो मानों विनय ही मौन हो गई है । यह अंतर भारतीय साधना और धर्म की अपनी उपलब्धि है । मौन-विनय और विनय-मौन का यह अन्तर अनुभव की वस्तु है । मौन-विनय में हमारी इच्छायें सक्रिय बनी रहतीं हैं , हमारा अंतर मन उनको अग्रसर करता रहता है किन्तु विनय का मौन तो उसी समय संभव होता है जब अंतर मन भी निष्क्रिय बन जाय तथा इच्छा मात्र का नाम शेष न रहे । केवल यही प्रतीक्षा एवं उत्सुकता रहे कि स्वामी की आज्ञा मिले और उसका पालन किया जाय ।

1.58।- मानस- 2.300.1,2,3,4,5,6

भगवान् सर्व व्यापक हैं और घट-घट की जानने वाले हैं तो उनसे निवेदन करने अथवा विनय-निवेदन का प्रश्न ही कहाँ उठता है ।

भगवान् पर श्रद्धा-विश्वास का अर्थ ही यह है कि सर्वभावेन हमने अपनी सारी कामनायें उन्हें समर्पित कर दीं हैं । अब जो भगवान् की इच्छा है , वह हमारी ही तो इच्छा है । 'जौ इच्छाकारि हौ मन माँही, रामकृपा कछु दुर्लभ नाहीं', इसी अभिप्राय का द्योतक है ।

इस प्रकार भरत विनय का मूल संदेश यही है कि हम भगवान् को अनन्य भाव से प्रेम करें । उनकी सेवा के लिये उत्सुक एवं लालायित रहें । उनकी सेवा का अर्थ है उनकी आज्ञा का पालन करना । इस प्रकार सारा जीवन एवं जीवन का प्रत्येक कार्यकलाप भगवान् की आज्ञा पालन बन कर, पूजा बन जायगा । यही कर्म पूजा है, तथा यही अविरल एवं सतत विनय है ।

मनुष्य जीवन का एक उद्देश्य है । वह उद्देश्य ज्ञान से ज्ञात हो जाय तो भी अपनी सामर्थ्य से पूरा कर पाना कठिन एवं दुष्कर हो जाता है । उस उद्देश्य की खोज एवं पूर्ति हेतु अथक परिश्रम की प्रस्तुत प्रसंग में अपेक्षा ही नहीं रहती । समर्पण एवं विनय के द्वारा भगवान् की आज्ञा का भान होता रहता है और आज्ञा पालन में ही उस उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है ।

भरत के पावन चरित में विनय का जो उच्च आदर्श प्रस्तुत हुआ है , वह जीवमात्र के लिये अनुकरणीय है । भरत की विनय साधना ने ही उन्हें उस अलौकिक स्थिति में पहुँचा दिया है जहाँ वह स्वयं भगवान् राम के आराध्य बन गये हैं । राम की तदाकार वृत्ति सुलभ हो गई है तथा राम कथा की भाँति भरतकथा भवबंधन से मुक्ति दिलाने वाली बन गई है -

-" भरत सरिस को राम सनेही । जग जप राम राम जप जेही" ।।- 1.582 ।अ।

- भरत राम ही की अनुहारी । सहसा लखि न सकहिं नरनारी ।।- 1582 ।ब।

- सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि । भरत कथा भव बंध विमोचन ।।- 1.582 ।स।

1.582 ।अ।- मानस- 2.217.7 1.582 ।ब।-मानस-1.310.6

1.582 ।स।- मानस- 2.287.3

209------

भरत विनय के संपूर्ण प्रकरण पर दृष्टिपात करने के पश्चात् भरत के विनयी स्वरूप का चित्र हमारे मन मानस पर उभर कर आया है । इस चित्र का एक बार पुनः दर्शन कर लें तथा यह अर्द्धाली गुनगुना लें

भरत सरिस को राम सनेही , जग जपु राम रामु जपु जेही

चित्र का बिम्ब	प्रतिबिम्ब
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं । भूतल परे लकुट की नाईं ।।-1.583	उठे राम सुनि पेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनुतीरा ।।-1.584
अस कहि प्रेम बिबस भए भारी । पुलक सरीर बिलोचन बारी ।। प्रभु पद कमल गहे अकुलाई । समउ सनेहु न सो कहि जाई।।-1.585	तुलसिदास दसा देखि भरत की उठि धाए अतिहि अधीर । लिए उठाइ उर लाइ कृपानिधि बिरह-जनित हरि पीर।। 1.590
(वही)-परे भूमि नहिं उठत उठाए।	कृपा सिंधु सनमानि सुबानी, बैठाए समीप गहि पानी । भरत विनय सुनि देखि सुभाऊ । सिथिल सनेहँ सभा रघुराऊ ।।- 1.586
सादर भरत सीस धरि लीन्ही।।- 1.587	बरकरि कृपा सिंधु उर लाए ।।- 1.588
प्रभु सौं मैं ढीठो बहुत दई है । की बी क्षमा, नाथ ! आरतितैं कही कुजुगुति नई है । यों कहि, बार बार पाँयनि परि, पाँवरि पुलकि लई है । -1.589	प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही । तुलसिदास अनुजहि प्रबोधि प्रभु चरन पीठ निज दीन्हें।-1.592
तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ तौ प्रभु -चरन सरोज -सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ-1.591	ऐ हौं बेगि, धरहु धीरज उर कठिन कालगति जानी ।-1.593

1.583- मानस-2.239.2 1.584- मानस-2.239.8 1.585-मानस-2.300.5,6
1.586- मानस-2.300.7,8 1.587- मानस-2.315.4 1.588- मानस-7.4.7
1.589- गीतावली-2-78 1.590- गीतावली 2-69 1.591-गीतावली ~~--~~-76
1.592- गीतावली ~~--~~ - 75 1.593- गीतावली-~~--~~ -75

210-----

विनयपत्रिका की वंदना एवं विनय -

विनयपत्रिका की वंदना में गोस्वामी जी दर्शन एवं साधना का स्वरूप भी प्रस्तुत करते है । विनय दर्शन खण्ड के अंतर्गत विशेष रूप से इनका विवेचन करेंगे । विनयपत्रिका की साधना का मुख्य प्रतिपाद्य साधक की आंतरिक पवित्रता एवं निर्मलता प्राप्त करना है जिसके लिये मानसिक एवं मनोभावगत प्रयत्न अपेक्षित हैं । मौखिक एवं वाचिक विनय तो सभी करते हैं तथा करते आ रहे हैं और देख रहे हैं कि इसका कोई सुफल प्राप्त नहीं हो पा रहा । इसलिये गोस्वामी जी इस वाचिक विनय को अंतर की, मनमानस की विनय के रूप में प्रतिपादित कर विनय की मूल अपेक्षा का उद्घाटन करते हैं । यह पक्ष साधनापरक है । साधना का आशय है कि प्रयत्न साध्य है । वाचिक विनय में मन साथ रह भी सकता है और नहीं भी रह सकता तथा प्रायः साथ नहीं रहता किन्तु अन्तर की विनय में उसे साथ रहना ही पड़ेगा । उसे साथ रखने के लिए प्रयत्न करना ही होगा तब अंतर के विकार संशय, काम, क्रोध मद, मोह आदि दूर होगें तथा क्षमा, स्नेह, संतोष, ज्ञान प्राप्त होगें ।

बीर महा अवराधिये , साधे सिधि होय ।
सकल काम पूरन करै, जानै सब कोय।।
बेगि, बिलंब न कीजिये लीजै उपदेश ।
बीज मंत्र जापिये सोई, जो जपत महेस ।।
प्रेम-बारि-तरपन भलो, घृत सहज सनेहु ।
संसय-समिध, अगिनि-छमा , ममता-बलि देहु ।।
अघ-उजारि , मन बस करैमारै मद मार ।
आकरषै सुख-संपदा-संतोष विचार ।।
जिन्ह यहि भाँति भजन कियो , मिले रघुपति ताहि ।
तुलसिदास प्रभुपथ चढयौ, जौ लेहु निबाहि ।। - 1.609 [अ]

आगे पद संख्या 136 में किस प्रकार जीव हरि से विलग हुआ मायावश होकर अपने निज स्वरूप का विस्मरण हुआ तथा फलस्वरूप दारुण दुख प्राप्त हुआ । किस प्रकार जीवन

1.609 [अ] - विनयपत्रिका 108

धारण किया, आयु की अनेक अवस्थायें प्राप्त करते हुये वृद्ध हुआ तथा पुनः जीवनमरण के चक्र में पड़ कर दुःख उठाता रहा । इस विस्तृत विवरण में साधन पक्ष का पुनः निम्नलिखित रूप में प्रतिपादन करते हैं :

आनँद - सिंधु - मध्यतव बासा । बिनु जाने कस मरसि पियासा ।।
× × × × × ×
रघुपति-भगति सुलभ, सुखकारी । सो त्रय ताप -सोक- भय-हारी ।।
बिनु सत संग भगति नहिं होई । ते तब मिलैं द्रवै जब सोई ।।
जब द्रवै दीनदयालु राघव , साधु संगति पाइये ।
जेहि दरस-परस-समागमादिक पापरासि नसाइये ।।
जिनके मिले दुख-सुख समान, अमानतादिक गुन भये ।
मद-मोह लाभ विषाद-क्रोध सुबोधतें सहजहिं गये ।।
× × × × × × × × ×
सेवत साधु द्वैत-भय भागै । श्री रघुबीर -चरन भय लागै ।।
× × × × × × × × ×
यह जानि तुलसीदास त्रासहरन रमापति गाइये ।। - 1.609 ॥ब॥

- यहाँ साधन की सरलता प्रस्तुत की गई है । रमापति गान से , विनय से साधु संग प्राप्त होगा तथा साधुसंग से पापराशि नष्ट होगी , मन के विकार दूर होंगें । प्रभु भक्ति प्राप्त होगी । गीता का ज्ञानी ही यह साधु है जिससे सारे भेद खुलते हैं -

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।- 1.609 ॥स॥

-दर्शन पक्ष का विभिन्न पदों में 1.609 ॥द॥ विवेचन करते हुए इस कठिनाई का अनुभव करते हैं कि अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै ,"संशय संदेह न जाई " साधु सेवा में ही इनका समाधान प्राप्त होता है -

सेवत साधु द्वैत-भय भागै ।
श्री रघुबीर चरन लय लागै ।।

1.609 ॥ब॥- विनयपत्रिका 136 1.609 ॥स॥ गीता 4.34

1.609 ॥द॥- 111, 115, 116 120, 121, 122, 124, 136 , ॥1॥

1.609 (इ)

पद संख्या 203 में तिथिवार साधना क्रम का विवरण देते हुए अंत में पुनः साधु कृपा की ही अपेक्षा की है तथा उसको ही एकमात्र उपाय बताया है ।

संसय-समन, दमन दुख , सुखनिधान हरि एक ।
साधु कृपा बिनु मिलहिं न , करिय उपाय अनेक ।।
भव सागर कहँ नाव सुद्ध संतन के चरन ।
तुलसिदास प्रयास बिनु मिलहि राम दुखहरन ।। - (वि. 203)

1.609 (इ)-

प्रतिपदा- (प्रथम दिन) - प्रथम साधन - प्रेम
द्वितीया- द्वैत बुद्धि छोड़ना
तृतीया - त्रिगुणमयी प्रकृति का त्याग
चतुर्थी - बुद्धि , मन, चित, अहंकार, से विरत होकर मात्र द्रष्टा बने
पंचमी - स्पर्श, रस, शब्दगंध और रूप - पाँचों विषयों के अधीन न रहे
षष्ठी - काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मात्सर्य- छहों शत्रुओं कोजीत लेना चाहिये
सप्तमी- सात धातुओं, रस, रक्त , मास, मेद, अस्थि, मज्जा एवं शुक्र से बने इस शरीर पर विचार करे । इससे परोपकार करे ।
अष्टमी - अष्टधा जड़ प्रकृति, पृथ्वी, जल, अग्निवायु, आकाश, मन, बुद्धि , अहंकार से भगवान् परे हैं अतएव नाना प्रकार की कामनाओं से मुक्त होना चाहिए ।
नवमी- नव द्वार देही के कल्याण के लिये साधन करना चाहिये ।
दशमी- दसों इन्द्रियों का संयम करना चाहिये ।
एकादशी- मन को वश में करके भगवान् की साधना करना ।
द्वादशी- ऐसा दान करे जिससे भगवत्प्राप्ति हो जाये । परोपकार करे ।
त्रयोदशी- जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति- तीनों अवस्थाओं को त्याग कर भगवान् का भजन करे ।
चतुर्दशी- भेद बुद्धि दूर कर भगवान का भजन करे ।
पूर्णमासी- प्रेमभक्ति में सराबोर होकर भगवद्तत्व जानना चाहिये ।
दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापों की होलीजलाकर भगवान् के साथ फाग खेलना चाहिये ।

- चराचर को भगवद्रूप न देखना द्वैत है । ज्ञान होने पर भी क्रोध एवं अहंकार आ जाता है । शान्तिपद स्थितमें साधु सेवा से ही यह भाव एवं भय दूर होता है । वैराग्य संदीपनी में भी गोस्वामी जी ने इसी तथ्य का प्रतिपादन एवं पुष्टि की है -

महा सांतिजल परसि कै, सांत भए जन जोइ ।।
अहं अगिनि तें नहिं दहैं , कोटि करै जो कोइ ।। - । वै.सं. 54।

- विनय साधना का मानक भी गोस्वामी जी ने निर्धारित किया है । स्वभाव,प्रकृति एवं मन में परिवर्तन आये, प्रभु उन्मुखता हो तब समझना चाहिये कि साधना ठीक चल रही है ।

तुम अपनायो तब जानि हौं , जब मन फिरि परि है ।
जेहि सुभाव बिषयनि लग्यो, तेहि सहज नाथ सों नेह
छाड़ि छल करि है ।।
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की, नृप ज्यों उर डरि है ।
अपनो सो स्वारथ स्वामि सों चहुँ बिधि चातक ज्यों
एक टेक ते नहिं टरि है ।।

हरषि है न अति आदरे, निदरे न जरि मरि है ।
हानि-लाभ-दुख-सुख सबै समचित हित ,अनहित, कलिकुचालि
परिहरि है ।।

प्रभु-गुन सुनि मन हरषि है, नीर नयननि ढरिहै ।
तुलसिदास भयो राम को , बिस्वास,प्रेम लखि आनँद उमगि
उर भरि है ।।

- गीता के स्थित प्रज्ञ के आचरण के अनुकूल ही विनय सिद्ध पुरुष के आचरण गोस्वामी जी ने अवधारित किये हैं । गोस्वामी जी की साधना प्रेम-आधृतहै,जिसका सुफल एवं सबाब सदाचरण है । यह क्रान्तिकारी परिवर्तन गोस्वामी जी की युग को अभूतपूर्व देन है । जिससे मानव निर्माण होता है तथा समाज और राष्ट्र का कल्याण होता है ।

-------:0:-----

विनयपत्रिका इस प्रकार विनय की संहिता है , विनय का शास्त्र है तथा विनय की सम्पूर्ण अपेक्षाओं को पूरा करती है । प्रस्तुत अनुशीलन हेतु विनय का निम्नलिखित अंगों के संदर्भ में अध्ययनकर सकते हैं -

1- विनय भूमिका अंग

2- विनय अंग

विनय भूमिका विनय की पूर्व पीठिका, एवं विनय-योग्यता साधना है । विनय करने से पूर्व गोस्वामी जी विस्तृत भूमिका प्रस्तुत करते हैं तथा पूर्व पीठिका के रूप में विनय योग्यता प्राप्त करने का उपक्रम प्राप्त कराते हैं ।

- विनय भूमिका के अंतर्गत स्तुति, आरती, नामजाप का अनुशीलन कर चुके हैं जिनके संदर्भ में मन प्रभु की ओर उन्मुख हो तथा विनय करने की उत्सुकता जाग्रत हो । इसलिये नाम जाप के पश्चात् मन का उद्‌बोधन आता है । मन की स्थिति असाधारण होती है । तथा उसको अपने अनुकूल बनाने के लिये बड़ी सावधानी बरती जाती है एवं धैर्य पूर्वक प्रयत्न किया जाता है । " विनय में मन की भूमिका " इस प्रसंग पर विनय दर्शन खण्ड के अंतर्गत विस्तार से विचार करेंगें ।

- मन की अनुकूलता प्राप्त करने पर आत्म-अन्तर्वीक्षण प्रारंभ होता है । जो मन बाहर भागता था , अपने अंतर को देखना प्रारंभ करता है तथा इस प्रयास में भक्त को अपने पाप अपराध, दोष, अवगुण दिखलाई देने लगते हैं जिनसे विकल एवं बिक्षुब्ध होकर साधक विनय के लिये आतुर एवं उत्सुक होता है । उसको अपनी हीन दशा पर ग्लानि होती है , रोना आता है । ऐसी स्थिति में ही विनय का द्वारा खुलने लगता है । प्रभु की कृपा व दया का सहारा एकमात्र आधार एवं अबलंब दिखलाई देता है । गोस्वामी जी ने साधक की इस स्थिति का विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया है ।

- गोस्वामी जी ने बहुसंख्यक दोषों का उल्लेख किया है । जन-जन की अनुभूति एवं साधना को दृष्टिगत रखते हुए इन दोषों का उल्लेख आवश्यक एवं अपेक्षित है । यह मान मर्षता एवं भर्त्सना का अंग है । विनय साधना में इनकी ओर ध्यान जाना चाहिये और साधक को अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये । इन दोषों का विवरण संदर्भ सहित अधोलिखित है । सम्मुख दी हुई संख्या का विवरण विनयपत्रिका के पदों का है

अपत - 130	- पावन किये रावन-रिपु तुलसिहु से अपत
अनाथ - 79,223,242	- नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सो. वि. ‖79‖
अगुन - 272,274	- अगुन, अलायक,आलसी-जानि अधम अनेरो ‖वि. 272‖
अधम - 94,272,274	- ,, ,, ,, ,, ,, ,,
अलायक - 272	- ,, ,, ,, ,, ,, ,,
अनीति - 143	- मन अनीति रत मेरो
अपराध भवन 110	- जद्यपि मैं अपराध-भवन ‖ वि. 110‖
अपराध सिंधु 117	- मैं अपराध-सिंधु करुनाकर ! ‖ वि. 117‖
अभिमान 76, 117,125, 186, 142	- मदन मत्सर-अभिमान ग्यान रिपु , इन महँ रहनि अपारो । ‖वि. 117 ‖
अवगुण - 96, 159,238,272	- जौ पै जिय धरिहौ अवगुन जनके ‖वि. 96‖
अहंकार - 125	-तम, मोह, लोभ अहँकारा । .. अति करहिं उपद्रव नाथा।। ‖वि. 125‖
अघी अघाइ - 41	दीन, सब अँगहीन,छीन,मलीन, अघीअघाइ ‖ वि. 41‖
अघ अवगुन भर्यो	
अभागी- 140	- ते नर नरकरुप जीवत जग भव-भंजन-पद-बिमुख अभागी । ‖ वि. 140‖
अयान- 236	तुलसिदास तेहि सकल आस तजि भजहि न अजहुँ अयाने ।। ‖वि. 236 ‖
असत्य भाषण- 252	- लालची लबार की .. मिथ्याबाद बानी दई ‖वि.252‖
अंगहीन- 41,99,179,	- छली,मलीन,हीनसब ही अँग,तुलसी सो छीन छामको-वि.99
आरत- 79,223,242,	- आरत-दीन-अनाथनि केहित मानत लौकिक कानि हौ - ‖ वि. 223‖
आलसी- 272,274, 250,253	- अधम अगुन आलसिन को पालिबो फबि आयो रघुनायक नवीन को ।‖वि. 274‖
ईर्षा - 186, 234,	- राग-रोष-इरिषा-विमोह-बसरुचि न साधु-सभीति
करमविहीन- 109	यह जिय जानि द्रवौ नहीं, मैं करम बिहीन ‖वि. 109‖
कलि त्रास त्रस्त- 99-	

काम- 143, 125, 187, 205, 209, 234	- लोभ-मोह-मद-काम-कोह-रत, तिन्ह सों प्रेम घनेरो-वि. 143
किंकर- 149	जनम गँवायो तेरे ही द्वार किंकर तेरे ॥ वि. 149 ॥
कूरकु सेवक- 150, 230, 171	- कूरकु सेवक कहत हौं सेवक की नाईं। ॥ वि. 150॥
कूरता- 259	- तेरे मुँह फेरे मो से <u>कायर</u> कपूत कूर ॥वि. 259॥
कठोरता- 114, 171	- भिद्यो न कुलिसहुँ ते कठोर चित कबहुँ प्रेम सिय-पीके -वि. 171
कायरता- 179, 259	- मो से कूर कायर कुपूत कौड़ी आध के ॥ वि. 179॥
कंगाल- 249	- तो सो, नतपालन कृपाल, न कँगाल मो-सो ।।-॥वि. 249॥
कपट-83, 171, 215	- अति दुरलभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन-वचन-काय ॥ वि. 83 ॥
कलुष करम मन वचन 96	- कहिहै कौन कलुष मेरे कृत, करम बचन अरु मन के ॥वि. 96॥
कुटिल- 211, 212, 215, 224, 242,	97, 106, -तौ बहु कलप कुटिल तुलसी से, सपनेहुँ सुगति न लहते -वि. 97
कृपन- 113	- तैं उदार, मैं कृपन, पतित मैं, तैं पुनीत श्रुति गावै-॥वि. 113॥
कठिन - 114	- सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरिदृढ़ बिचार जिय मोरे-वि. 114
कुपूत- 177, 179, 259	- हौं कुपूत, तुम हितू पितु-माता ॥ ॥वि. 177॥
कूर कायर कपूत-179	- मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आध के ॥ वि0-179॥
कुजाचक- 177	- हौं तो कुजाचक, स्वामी सुदाता - ॥ वि. 177॥
कुपथ कुचाल चल्यो-261	- कुपथ कुचाल चल्यो, भयो न भूलिहू भलो ॥वि. 261॥
कुपथी- 224, 261	-कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपटकब त्यागि है-वि. 224
कुसंग- 159-	- रागरंग कुसंग ही सों, साधु-संगति रोसु ।- ॥वि. 159॥
खल- 135, 121, 176, 211, 241	- देखु खल, अहि-खेल परिहर, सो प्रभुहिपहिचानई। ॥वि. 135॥
खल तिलक- 106	- गंदमति, कुटिल, खलतिलक तुलसी सरिस ॥वि. 106॥
खरो- 256	- तुमसे सुसाहिब की ओट जन खोटो-खरो ।-॥वि. 256॥
खीन- 41	- दीन, सब अँगहीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ ॥वि. 41॥

खेदखिन्न- 56 - दास तुलसी खेदखिन्न, आपन्न इह, शोक संपन्न, अतिशय सभीतं- वि. 56

अति खेद - 60 - दास तुलसी दीन धर्म संकटहीन , भ्रमित अति खेद, मति मोह नाशी । - ॥वि. 60॥

खोटो- 72,75,256 - राम सो खरो है कौन, मो सों कौन खोटो ।- ॥वि.72॥

गरीब- 78,80,146 - तू गरीव को निवाज, हौं गरीब तेरा ॥वि.78॥
165,223,
279

गरीबी- 148,262 - नाथ गरीब निवाज हैं मैं गही न गरीबी ॥ वि. 148॥

गुलाम- 76,77 - राम को गुलाम, नाम रामबोला राख्यो राम ॥वि.76॥

॥राम॥गुलाम- 155 - तुलसिंहिं बहुत भले लागत जगजीवन राम गुलाम को ॥वि.155॥

ग्रसित भवजाल-61 - ग्रसित भवजाल अतित्रास तुलसीदास,...... ॥ वि. 61॥

चंचलचरन170 - चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार-द्वार जग बागे ॥ वि. 170॥

चेरो- 79 - ब्रह । तू हौं जीव तू ठाकुर हौं चेरो ॥ वि.79॥

छल/छली- 99,159, - छली, मलीन, हीन सबही अँग, तुलसी सो छीन छाम को ॥वि.99॥
171,208,
215,224,
232,

छीन/छीन छाम-41,99 - ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,

जीव जड़ जीव979,102,- तुलसिदासयेहि जीव मोह-रजु जेहि बाँध्यो सोइ ॥वि.102
103/171,
177,198,

जूठनि को लालची-260 - जूठनि को लालची चहौं न दूध-नहयो हौं ॥ वि. 260॥

त्रसित माया पास-60 - दीनारतदास,त्रसित मायापास,त्राहि,हरि,त्राहि हरि दास कष्टी ॥वि. 60॥

॥कलि॥ त्रास त्रस्तं-59- त्राहि रघुवंशभूषण कृपाकर,कठिन काल विकराल -कलि त्रास त्रस्तं ॥वि.59॥

द्वन्दरत-62 - तुलसिदासमतिमंद द्वंदरतकहै कौन बिधि गाई ॥वि.62॥

दारुन दुख-93 - तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भंजहु राम उदार ॥वि.93॥

दुसह दुख - 90 - तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख ,करहु लाज निज पनकी ॥वि.90॥

हीन सुख - 63 - नाहित दीन मलीन हीनसुख कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै ॥वि.63॥

दुखशोक विकल -114 - मैं दुख-सोक-विकल कृपालु ! केहि कारन दया न लागी- ॥वि. 114॥

दुसह दरिद्र सतायो244- व्यापत त्रिबिधि ताप तनु दारुन, तापर दुसह दरिद्र सतायो- ॥वि. 244॥

धर्म संबलहीन-60 - दास तुलसी दीन धर्म संबलहीन, श्रमित अति खेद, मति मोह नाशी ॥वि. 60॥

निलज- 153, 252 - निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ, जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ। ॥वि. 153॥

निरगुन- 153

निरधन- 153

नीच- 153, 176, 200, 219, 258

पतित- 113, 160 - मैं पतित तुम पतितपावन दोउ बानक बने ॥ वि. 160॥

परदारा रति -201 - परदारा, परद्रोह, मोहबस, किये मूढ़ मन भाये ॥ वि.201॥

परद्रोह- 117, -बस्य हित आपन मैं न बिचारो ॥ वि. 117॥

परनिन्दा- 142, 237, 252, - पर-अपबाद मिथ्यावादवानी दई ॥ वि. 252॥
- तेहि मुख पर अपबाद भेक ज्यों रटि रटि जनम नसावौं ॥वि. 142॥

पातकी-79, 275 - हौं प्रसिद्ध पातकी ॥ वि. 79॥

पातकरत-242 - हौं मन-वचन कर्म पातक-रत, तुम कृपाल पतितन-गति दई -वि. 242

पाप पीनता-262 - प्रभु की पुनीतता, आपनी पाप-पीनता- ॥वि. 262॥

पातक रुप- 214 - प्रगट पातक रुप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥वि. 214॥

पामर- 275 -

पराये बस भये 183 - तुलसी पराये बस भये रस अनरस ...... ॥ वि. 183॥

पसू - 275 - तोसे पसु-पाँवर पातकी परिहरे न सरन गये, रघुबर ओर निबाहू ॥ वि. 275॥

पराधीन- 149 - पराधीन देव दीन हौं, स्वाधीन गुसाईं ॥वि. 149॥

प्रपंची- 258 - दूरि कीजै द्वार तें लबार लालची प्रपंची ॥वि. 258॥

पोच, भलो- 154 - तुलसिदास भलो पोच रावरो, नेकु निरखि कीजिये निहालु॥वि. 154

बसमाया- 177 - तुम मायापति हौं बस माया ॥ वि. 177॥

बाम- 228 - भये बनाइ दाहिने जो जपि तुलसिदाससे बामो ।- ॥वि. 228॥

बिगरी- 182 - सब भाँति बिगरी है एक सुबनाउसो ॥वि. 182॥

218--

बितहीन- 210 - दीन बितहीन हौं, बिकल बिनु हेरे ।वि. 210।

सब बिधि हीन 114 - सब बिधि हीन, मलीन, दीन, अति लीन, बिषय कोउ नाहीं- वि. 114

बिपति- 86, 102, 143----- - बिषय बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक
ताते सहौं बिपति अति दारुन, जनमतजोनि अनेक ।वि. 102।

भवत्रास हरहु -189 - तुलसिदास भवत्रासहरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ।।वि. 189।

भव भय बिकल-91 - अब रघुनाथ सरन आयो जन, भव-भय बिकल डरयो । वि. 91।

मंद- 92, 109, 185, 211 106, 109/ 143/246 - इक कलिकाल-जनित मल, मतिमंद, मलिन-मन ।वि. 109।

मन अतिसै प्रबल अजै - हौं हारयोकरि जतन बिबिध बिधि अतिसै प्रबल अजै ।वि. 89।

मंदजन मौलमनि-211 - मंदजन-मौलिमनि सकल-साधन-हीन । वि. 211।

ममता- 209 - कोह-मद-मोह-ममतायतनजानि मन ।वि. 209।

मलीन- 41, 63, 99, 109, 114, 166, 185, 82, 143, 191, 211, 212, 261, 278 - कुटिल मन, मलिन जियजानि जो डरहुगे ।वि. 211।

मत्सर- 117 - मद-मत्सर-अभिमान ग्यान-रिपु, इन महँ रहनि अपारो ।वि. 117।

मूढ़- 158, 244 - देत सिख सिखयोन मानत, मूढ़ताअसि मोरि ।वि. 158।

मोह-92, 125, 142, 143, 186, 187, 188, 205, 209, 211, 234, 246, - तम मोहलोभ अहँकारा ।वि. 125।

मोहजनित मल-82 - मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई- वि. 82

रागरोष- 234 - राग-रोष-इरिषा-बिमोहबस रुची न साधु समीति। वि. 234।

लबार- 252 - लालची लबार की सुधारिये बारक, बलि । वि. 252।

लोभ- 89, 91, 125, 143, 158, 187, 222, 232, 252, 258, 276, - तम मोह लोभ अहँकारा । वि. 125।

वंचकता- 169, 171 - बंचक बिषय बिबिध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे ।वि. 169।

विषयलीनता-114,- तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यौं ,फिरत विषय अनुरागे ।वि. 117।
117,
132,
133,
146,
171,
187,
208,

शठ- 171,241, - राम ! तुम-से सुचि सुहृदसाहिबहिं,मैं सठ पीठि दई । वि.171।

हीन- 114,211, - सब बिधि हीन,मलीन,दीन,अति ,लीन विषय कोउ नाहीं-वि. 114
212

- ये अवगुण अगणनीय हैं । यहाँ तो कुछ का उल्लेख किया है । सब का गिनाना तो संभव ही नहीं है ।- 1.609 ।र।

-कहिहै कौन कलुष मेरे कृत,करम बचन अरु मन के

हारहिं अमित सेष सारद श्रुति,गिनत एक एक छन के ।- वि. 96

- मेरे अघ सारद अनेक जुग गनत,पार नहिं पावै ।- वि. 92

- तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं । जौ जमराज काज सब परिहरि इहै ख्याल उर अनिहै।।
।वि. 95।

आवृति की दृष्टि से यह देख सकते हैं कि किस दोष की गति अधिक कष्टकर है जिसके लिये अन्यथा विशेष प्रयत्न करना होगा एवं सावधान रहना होगा ।

अनाथ -	3	काम-	6	19	खल-	5	
अधम-	3	परदारसक्ति -	3		खोटो	3	
अभिमान-	5	विषयलीनता -	8		छली-	7	
					जड़ जीव	6	
अंगहीन-	3	कपट-	3		पर निन्दा	3	
आरत-	3	कुटिल-	7		मंद-	4	-8
आलसी-	4	कुपूत-	3		मंद मति-	4	
					मलीन-	14	
					मोह-	12	
					लोभ -	11	
					हीन-	3	

1.609 ।र।- मानस- जौं अपने अवगुन सब कहऊँ । बाढ़ै कथा पार नहिं लहऊँ।।-1:11:5

विनय के लिये दीनता अथवा गरीबी का भाव अपेक्षित एवं आवश्यक होता है । गोस्वामी जी ने इस भाव का विशेष रूप से उल्लेख किया है - 1.609 (ल)

- इन दोषों का संबंध आराध्य के स्वरूप चित्रण से भी है । आराध्य में इन दोषों के निराकरण की शक्ति एवं क्षमता है अथवा यह कहा जाय कि इन दोषों की निराकरण क्षमता में ही आराध्य का स्वरूप निर्माण एवं उजागर होता है । यदि आराधक दीन, भिखारी, पातकी, अनाथ, आर्त है तो आराध्य दयाल, दानि, पापपुंजहारी, अनाथों का नाथ, तथा आर्तहर है - 1.610

- दोषों की व्यापक एवं विस्तृत विवरणिका में आराधक की संभव सभी दुर्बलताओं का उल्लेख हो गया है । इनके निराकरण की पूर्ण क्षमता आराध्य में है । इसलिये किसी भी प्रकार के दोष-दूषण के संदर्भ में आराधक को निराश तथा हतोत्साहित होने की आवश्यकता नहीं है । आराध्य की इस निराकरण क्षमता के साथ आराध्य का शील स्वभाव , प्रकृति, प्रण एवं बानिगत विशेषता अधम उद्धार की है । प्रोत्साहित एवं प्रेरित करने तथा प्रभु शरणागति के लिये उत्सुक होने के लिये यह विशेषता विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

- गोस्वामी जी इसीलिये आराध्य के इस पक्ष का विशद विवरण प्रस्तुत करते हैं तथा भक्तों को सभी प्रकार प्रभु की दया व कृपा के लिये आश्वस्त करते हैं । इस पक्ष का अनुशीलन विनय दर्शन खण्ड में भी करेंगे ।

- आराध्य की दीनों को अपनाने की प्रकृति तो आकर्षक है ही, साथ ही उनका स्वरूप और भी आकर्षक एवं मोहक है । संसार की वस्तुओं की आकर्षक एवं मोहक शक्ति उनके सामने नगण्य एवं तुच्छ है । मानव की मनोवैज्ञानिक इस दुर्बलता के संदर्भ में आराध्य के स्वरूप की इस विशेषता का विशेष उल्लेख किया गया है । अन्यान्य साधनों की कठिनाई एवं दुरूहता को दृष्टिगत रख कर भगवान् की अहैतुकी कृपा की सरलता एवं सहजता की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया गया है ।

1.609 (ल)- विनयपत्रिका-6, 7, 41, 60, 63, 68, 72-2, 79-1, 94, 101, 102, 109, 110-1,
दीन- 113, 114-1, 143-7, 149, 162, 165-1, 166, 179, 180, 210, 212, 216, 217, 220, 221, 223, 242, 255, 257, 269, 274, 277
दीनता- 262, 275, 276, 235 = (4)

1.610- तू दयाल दीन हौं तू दानिहौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी ।।
अनाथ को है नाथ तू अनाथ कौन मो सो ।
मो सम आरत नहि आरतहर तो सो ।।- (वि. 79)

स्तुति एवं आरती के अंतर्गतभगवान् के शील शक्तिगत सौन्दर्य का विस्तार से विवरण दिया गया है किन्तु यह पक्ष पुनः पुनः कहने योग्य है। इसलिये स्तुति एवं आरती से इतर स्थान स्थान पर यह पक्ष प्रस्तुत हुआ है। यह आश्वासन तथा रक्षिष्यतीति विश्वास: का अंग है।

रूप सौन्दर्य - मन ! माधव को नेकु निहारहि।
सोभा-सील-ग्यान-गुन-मंदिर, सुंदर परम उदारहिं।।
रंजन संत, अखिल अघ गंजन, भंजन बिषय बिकारहि।- 1.611

- है नीको मेरो देवता कोसलपति राम।
सुभग सरोरुह लोचन, सुठि सुंदर स्याम।।
सिय-समेत सोहत सदा छबि अमित अनंग।
भुज बिसाल सर धनु धरे, कटि चारु निसंग।।- 1.612

शील सौन्दर्य- ठाकुर अतिहि बड़ो, सील, सरल, सुठि,
ध्यान अगत सिवहूँ, भेंट्यो केवट उठि
भरि अंक भेंट्यो सजल नयन, सनेह सिथिल सरीर सो।।- 1.613

साधन सरलता-ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं।। - 1.614

- एकै दानि-[illegible] सिरोमनि साँचो।
जोइ जाच्यो सोइ जाचकताबस, फिरि बहु नाच न नाचो।।-1.615

दीन वत्सलता-जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत, राम-सनेह-सगाई।।

× × × × × × ×

- रघुबर रावरि यहै बड़ाई।
निदरि गनी आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई।
येहि दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई।।- 1.616

कृपा का प्रभाव-जो पै कृपा रघुपति कृपालु की, बैर और के कहा सरै।
होइ न बाँको बार भगत को, जो कोउ कोटि उपाय करै।।-1.617

1.611-वि. 85 1.612- विनय 107 1.613- विनय 135
1.614-विनय-162 1.615- विनय-163 1.616- विनय-164 व 165
1.617- विनय- 137

222---

- विनय भूमिका में मनोविश्लेषण, विचारणा का अंग होता है। अन्तर्वीक्षण होना स्वाभाविक है ; जब साधना करते हुए पर्याप्त समय व्यतीत हो जाता है तथा प्रगति प्रतिलक्षित नहीं होती। यह स्थिति आत्मग्लानि में प्रकट होती है।

आत्मग्लानि-

- विनय करने के अयोग्य कर्म करने के कारण संकोच है -

-सकुचत हौं अतिराम कृपानिधि ! क्यों करि बिनय सुनावौं
सकल धरम बिपरीत करत केहि भाँति नाथ ! मन भावौं ।।- 1.618

- कौन जतन बिनती करिये ।
निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ।।- 1.619

- लाज न लागत दास कहावत ।
सो आचरन बिसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहँ भावत ।।-1.620

- रामचन्द्र ! रघुनायक तुम सौं हौं बिनती केहि भाँति करौं ।।
अघ अनेक अवलोकि आपने, अनघ नाम अनुमानि डरौं ।।- 1.621

- अपनी अधोगति के लिये भगवान् को कैसे दोष देवें, अपनी ही भर्त्सना करें -

- है हरि ! कवन दोष तोहिं दीजे ।
जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति, सोइ निसि-बासर कीजे ।।- 1.622

- कैसे देउँ नाथहिं खोरि ।
काम लोलुप भ्रमत मन हरिभगति परिहरि तोरि ।।-1.623

- यों मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यो ।
ज्यों छल छाँड़ि सुभाव निरंतर रहत बिषय अनुराग्यो ।।- 1.624

-:0:-

1.618- विनय-142 1.619- विनय- 1.186 1.620-विनय-185
1.621- विनय- 141 1.622- विनय -117 1.623- विनय- 158
1.624- विनय- 170

223----

विनय का अंग-

- विनय भूमिका के उपर्युक्त संदर्भों में विनय प्रारंभ होती है । इस विनय की मुख्य विशेषता यह है कि यह मर्म को स्पर्श करती है, हृदय कचोटती है और मन-मानस को झकझोर देती है । ऐसी करुणापूर्ण, हृदयग्राही एवं मन पर सीधी चोट करने वाली विनय अप्रतिम है । विनयपत्रिका की इसी कारण बड़ी प्रशंसा हुई है ।

विनय अंग के अंतर्गत निम्नलिखित प्रकरणों पर विचार करेंगे -

1- अघ-अवगुण का विचार न करने की विनय

2- अपनाने के हेतु

3- जिज्ञासा और समाधान

4- परिताप एवं निश्चय

5- आराध्य की कृपा

6- ऐसे राम से प्रेम न करने पर क्षोभ

7- मनोराज्य

8- विश्वास : राम का हूँ

9- अपना लेंगे , अपना लें, अपना लिया

10- बाप एवं विनय

11- आभार

1- अघ अवगुण का विचार न करने की विनय , विनय की श्रीगणेश कही जानी चाहिए; जिसके स्वीकार हो जाने पर आगे कुछ कहने का साहस होगा । गोस्वामी जी अवगुणों, दोषों तथा आचरण की दोषपूर्ण दुर्बलता पर दृष्टिपात न करने का आग्रह करते हैं - [1.625]

- जौ पै जिय धरि हौ अवगुन जन के ।
  तौ क्यों कटत सुकृत-नखते मो पै, बिपुल बृंदअघ-बनके ।।

- जौ पै हरि जनके औगुन गहते ।
  तौ बहु कलप कुटिल तुलसी-से , सपनेहुँ सुगति न लहते ।।- [1.626]

- जौ आचरन बिचारहु मेरो , कलप कोटि लगि औटि मरौं ।- [1.627]

1.625- विनय- 96 1.626- विनय-97 1.627- विनय-141

2- अपनाने के हेतु को लेकर गोस्वामी जी विनयकर्ता के अघ अवगुण पर विचार न करने के आग्रह पर मानो और बल देते हैं तथा विभिन्न युक्तियों के संदर्भ में अपना पक्ष प्रस्तुत करतेहैं।

- परिपूरक संबंध- विनयकर्ता तथा आराध्य में परिपूरक संबंध हैं । अतएव अपना लेने के लिए आग्रह का औचित्य है ।

- तू दयाल , दीन हौं , तू दानि हौं भिखारी ।
  हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी ॥- 1.628

- मैं पतितित तुम पतित - पावन दोउ बानक बने ।- 1.629

- तुम सम दीनबंधु , न दीन कोउ मो सम,
  मो सम कुटिल-मौलमनिनहिं जग, तुम सम हरि ! न हरन कुटिलाई।।-1.630

- तुम-सम ग्यान -निधान , मोहि सम मूढ़ न आन पुराननि गायो ।
  तुलसिदास प्रभु ! यह बिचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो ।।-1.636

- अपनी निराश्रयता है । इस विवशता को दृष्टिगत रखते हुए आराध्य को कृपा करनी चाहिए ।

- जाउँ कहाँ तजि चरन तिहारे ।
  काको नाम पतित-पावन जग, कैहि अति दीन पिआरे ।।- 1.632

- कहाँ जाउँ , का सौं कहौं , और ठौर न मेरें ।
  जनम गँवायौ तेरे ही द्वारा किंकर तेरे ।।- 1.633

- जाउँ कहाँ , ठौर है कहाँ देव ! दुखित-दीन को ?

× × × × × × × ×

अधम अगुन आलसिन को पालिबो फबि आयो रघुनायक नवीन को ।-1.634

- आराध्य को अपने अपयश की आशंका होनी चाहिए , तथा अपने नाम की लज्जा रखने के लिये अपना लेना चाहिये ।

- चिंता यह मोहिं अपारा । अपजस नहिं होइ तुम्हारा ।।- 1.635

1.628- विनय- 79   1.629- विनय-160   1.630- विनय- 242
1.631- विनय- 244   1.632- विनय- 101   1.633- विनय- 149
1.634- विनय- 274   1.635- विनय- 125

- सो धौं को जो नाम-लाज तें नहिं राख्यो रघुबीर ।
  कारुनीक बिनु कारन ही हरि हरी सकल भव-भीर ।।- 1.636
- बिगरे सेवक स्वान ज्यौं साहिब-सिर गारी ।।- 1.637
- नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिये कर चीठे ।।- 1.638
- राम: रावरी सौं, रही रावरी चहन ।- 1.639
- ढील किये नाम-महिमा की नाव बोरिहौं । -1.640

- अन्यान्य समान प्रकरणों में आराध्य की कृपा प्राप्त हुई है । अतएव विनयकर्ता के लिये प्रदर्शित उदासीनता उलाहनातथा आक्रोश का कारण बन गई है । इन संदर्भों से आराध्य सजग हो जावेंगें ।

- कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम
  जेहि करुना सुनि श्रवन दीन -दुख , धावत हौ तजि धाम ।- 1.641
- काहे ते हरि मोहि बिसारो
  जानत निज महिमा मेरे अघ तदपि न नाथ सँभारो ।- 1.642
- कस न करहु करुना हरे ! दुख हरनि मुरारि ।।- 1.643
- तौ कत बिप्र, ब्याध, गनिकहि तारेहु , कछु रही सगाई ;

× × × × × × × × ×

  तुलसिदास सीदत निसिदिन देखत तुम्हारि निठुराई ।- 1.644
- कृपासिंधु ! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे ।
  जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत, तहँ तिन्हके दुख दाहे ।- 1.645
- कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी ।
  कलिमल-ग्रसित दास तुलसी पर , काहे कृपा बिसारी ।।- 1.646
- अजहुँ अधिक आदर येहि द्वारे, पतित पुनीत होत नहिं केते ।

× × × × × × × × × ×

  अब तुलसी पूतरो बाँधि है, सहि न जात मो पै परिहास एते ।।- 1.647

1.636- विनय- 144 1.637- विनय-150 1.638- विनय-169
1.639- विनय- 256 1.640- विनय- 258 1.641- विनय- 93
1.642- विनय-94 1.643- विनय- 109 1.644- विनय -112
1.645- विनय-145 1.646- विनय- 166 1.647- विनय-241

226----

- आराध्य को रिझाने के लिये भी एक हेतु है । वह किस प्रकार, रीझखीझ कर अपना लेवें-

खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु

रीझिबे लायक तुलसी की निलजई है ।- 1.648

3- परिताप एवं निश्चय -आराध्य को कहने-सुनने के साथ अपने प्रमाद एवं अहंमन्यता के संदर्भ में परिताप जाग्रत होता है तथा अपनी ओर से भी अपने सुधार एवं उद्धार की कामना प्रकट होती है । भगवान् को दोष देने की व्यर्थता अनुभव होती है ।

परिताप - कछु है न आई गयो जनम जाय ।

अति दुरलभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम बचन काय ।

- जनम गयो बादिहिं बर बीति, - ऐसेहि जनम समूह सिराने ।।-1.649

- नाचत ही निसि-दिवस मर्‌यो

तब ही ते न भयो हरि थिथर जब तें जिव नाम धर्‌यो ।।- 1.650

- मैं जानी, हरिपद-रति नाहीं । सपनेहुँ नहिं बिराग मनमाहीं ।- 1.651

- कहौं कौन मुँह - लाइकै रघुबीर गुसाईं

सकुचत समुझत आपनी सब साइँ दुहाईं ।। - 1.652

- है प्रभु ! मेरोई सब दोसु ।- 1.653

- यौं मन कबहूँ तुमहि न लाग्यो ।

ज्यौं छल छाँड़ि सुभाव निरंतर रहत बिषय अनुराग्यो ।।-1.654

भर्त्सना- - कीजै मोको जमजातनामई ।

राम ! तुमसे सुचि सुहृदसाहिबहिं, मैं सठ पीठिदई । -1.655

- लाज न लागत दास कहावत ।

सो आचरन बिसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहँ भावत ।।- 1.656

दोषारोपण की व्यर्थता - हे हरि ! कवन दोष तोहिं दीजै ।

जेहि उपाय सपनेहुँ दुरलभ गति, सोइ निसि-बासर कीजै ।।-1.657

1.648- वि. 252 1.649- वि. 83 तथा 2340 235 1.650-वि. 91
1.651- वि. 127 1.652- वि. 148 1.653-वि. 159
1.654- वि. 170 1.655- विनय-171 1.656-वि. 185
1.657- वि. 117

227----

- कैसे देउँ नाथहिं खोरि ।

काम-लोलुप भ्रमत मन हरिभगति परिहरि तोरि ।।-1.658

निश्चय - अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।

रामकृपा भव -निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं ।।- 1.659

4- जिज्ञासा और समाधान -

- भगवान् किस प्रकार प्रसन्न होते हैं तथा किस यत्न से सुख मानते हैं, यह जिज्ञासा स्वाभाविक है और विनयकर्ता के लिए यह एक समस्या भी है । गोस्वामी जी इस प्रसंग की चर्चा करते हैं -

जिज्ञासा- - हे हरि ! कवन जतन सुख मानहु । - 1.660

- नाथ ! गुनगाथ सुनि होते चित चाउ-सो ।

राम री झिबे को जानौं भगति न भाउ सो ।।

× × × × × ×

तेरे ही सुभाये सूझै अबुझ बुझाउ सो ।।- 1.661

- कौन जतन बिनती करिये ।।- 1.662

- नाथ सों कौन बिनती कहि सुनावौं ।।- 1.663

जिज्ञासा एवं समाधान - केहि आचरन भलो मानैं प्रभु सो तौ न जानि परयो ।

तुलसिदास रघुनाथ- कृपा को जोवत पंथ खरयो ।।-1.664

- भगवान् की कृपा की प्रतीक्षा ही एकमात्र समाधान है वह अपनी करनि करते हैं । कृपालु एवं दयालु हैं । इसलिये कृपा व दया करते ही हैं ।

- जब कब निज करुना सुभावतें, द्रवहु तौ निस्तरिये ।

तुलसिदास बिस्वास आन नहिं कत पचि-पचि मरिये ।।-1.665

1.658- विनय- 158
1.659- विनय-105
1.660- विनय- 118
1.661- विनय- 182
1.662- विनय- 186
1.663- विनय-208
1.664- विनय- 239
1.665- विनय- 186

<u>आराध्य की कृपा</u> - भगवान् अहेतुक कृपा करते हैं । भक्त उनको प्रिय हैं । उनको अपनाना उनकी वृत्ति एवं बानि है ।

- ऐसे हरि करत दास पर प्रीति ।
  निज प्रभुता बिसारि जनके बस, होत सदा यह रीति ।।- 1.666
- मेरा भलो कियो राम आपनी भलाई ।
  हौं तो सांई द्रोही पै सेवक -हित सांई ।।- 1.667 ‡अ‡
- ऐसे राम दीन-हितकारी
  अति कोमल करुना निधान बिनु कारन पर-उपकारी ।।- 1.667‡ब‡

6- <u>ऐसे राम से प्रेम न करने पर क्षोभ</u> - गोस्वामी जी पद संख्या 100, 157, 164 आदि में भगवान् के कोमल शील स्वभाव का भावपूर्ण वर्णन करते हैं -

- भगवान् के अक्रोध, औदार्य, विनम्रता, क्षमाशीलता, कृतज्ञता, संकोचशीलताआदि गुणों का वर्णन करते हुए गद्गद् एवं प्रेमविह्वल हो जाना स्वाभाविक है । जो व्यक्ति इन अनुभावों का अनुभव नहीं करते हैं , उन पर क्षोभ आना ही चाहिए ।

- सुनि सीतापति -सील- सुभाउ ।
  मोद न मन, तन पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ ।।- 1.668
- तुलसी ऐसे प्रभुहिं भजै जो न ताहि बिधाता बाम सो ।- 1.669
- तुलसी राम-सनेह सील लखि, जो न भगति उर आई ।।
  तौ तोहिं जनमि जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गवाँई ।।- 1.670
- जाके प्रिय न राम-बैदेही ।
  तजिये ताहि कोटि बैरी सम , जद्यपि परम सनेही ।।- 1.671

7- <u>मनोराज्य</u> - भगवान् की कृपा, दया एवं उदारताके संदर्भ में अनेकानेक प्रकरणों के प्रसंग में विनयकर्ता के मन में कमनीय कल्पनायें एवं सुखद स्वप्न उठते हैं । जैसी अन्य भक्तों पर कृपा हुई है,प्रभु का प्रेम प्राप्त हुआ है , वैसी ही कृपा एवं प्रेम

1.666- विनय-98 1.667 ‡अ‡- विनय-72 1.667‡ब‡- विनय-166
1.668- विनय-100 1.669- विनय- 157 1.670- विनय- 164
1.671- विनय- 174

प्राप्त करने की कामना होना स्वाभाविक है । गोस्वामी जी इन सुखद स्वप्नों की भावभूमि को सुंदर रुप में प्रस्तुत करते हैं ।

भगवत्कृपा -

- कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक । धरिहौ नाथ सीस मेरे ।- I.672
- आपनों कबहुँ करि जानिहौ ।
  राम गरीब निवाज राजमनि, बिरद-लाज उर आनिहौ । - I.673
- कबहिं देखाइहौ हरिचरन
  समन सकल कलेस कलि-मल, सकल मंगल-करन ।।

स्वकृपा-

-कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ -कृपालु-कृपातें संतसुभाव गहौंगो ।- I.674
-रघुबरहि कबहुँ मन लागिहै ।
कुपथ , कुचाल, कुमति,कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागिहै ।।- I.675

8-विश्वास- राम का हूँ ।

- विनय साधना के अंतर्गत विनयकर्ता की निष्ठा और विश्वास की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है । यह आवश्यक होता है कि उसे विश्वास हो, उसका दृढ़ निश्चय हो कि वह आराध्य का है और वही विनय सुनेंगें और कल्याण करेंगें । गोस्वामी जी ने विनयकर्ता की इस अपेक्षा का प्रतिपादन किया है -

- खोटो खरो रावरो हौं, रावरी सौं,रावरे सौं झूठ क्यों कहौंगो ।
  जाने सबही के मन की ।- I.676

- तुलसी तिहारो, तुमही पै तुलसी के हित,
  राखि कहौं हौं तो जो पै है हों माखी घीय की ।। -I.678

9- अपना लेंगे , अपना लेवें, अपना लिया -

- उपर्युक्त विनय संदर्भों में अपना लेने का विश्वास हो जाना स्वाभाविक है । गोस्वामी जी का परम सौभाग्य है कि वह अपना लिया स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं तथा विनय

I.672- विनय-138 I.673-विनय-223 I.674-विनय-172 I.675-विनय 224
I.676- विनय-75 I.677-विनय-263

230---

साधना की सफलता का उद्घाटन करते हैं ।

अपना लैंगे - - तुलसिदास भरोस परम करुना-कोस,
प्रभु हरिहैं बिषम भवपीर । - 1.678
- तुलसिदास यहि आस, सरन राखिहि जेहि गीध उधारयो ।- 1.679
- भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो ।- 1.680

अपना लैवें - तू गरीब को निबाज, हौं गरीब तेरो
बारक कहिये कृपालु ! तुलसिदास मेरो ।।- 1.681
- रामचन्द्र चंद्र तू, चकोर, मोहि कीजे ।।- 1.682
- तुलसिदास निज भवन -द्वार प्रभु दीजे रहन पर्‌यो ।।-1.683
- ज्यौं त्यौं तुलसिदास कोसलपति अपनायेहि पर बनि है ।- 1.684
- बिरद की लाज करि दास तुलसिहिं देव !
लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावौं ।।- 1.685
- तुलसिदास अपनाइये, कीजे न ढ़ील, अब जिवन -अवधि अति नेरे- 1.686
- बारक बिलोकि बलि कीजे मोहिं आपनो ।- 1.687
- तुलसिदास भलो पोच रावरो , नेकु निरखि कीजिये निहालु ।-1.688
- बारक बलि अवलोकिये, कौतुक जन जीको ।।- 1.689
- कीजै दास दासतुलसी अब, कृपासिंधु बिनु मोल बिकाउँ ।।- 1.690
- दास तुलसिहिं बास देहु अब करि कृपा ,
बसत गज गीध ब्याधादि जेहि खेरे ।। -1.691

अपना लिया - मींजो गुरु पीठ , अपनाइ गहि बाँह , बोलि
सेवक-सुखद, सदा बिरद बहत हौं ।।- 1.692

1.678- विनय- 197
1.679- विनय- 202
1.680- विनय-226
1.681- विनय-78
1.682- विनय- 80
1.683- विनय- 91
1.684- विनय- 95
1.685- विनय- 208
1.686- विनय- 273
1.687- विनय- 180
1.688- विनय- 154
1.689- विनय-147
1.690- विनय- 153
1.691- विनय-
1.692- विनय- 76

231---

- मंदमति, कुटिल, खल-तिलक तुलसी सरिस, भो न तिहुँ लोक
  तिहुँ काल कोउ ।
- नाम की कानि पहिचानि पन आपनो, ग्रसित कलि-ब्याल
  राख्यो सरन सोऊ ।।-1.693
- तुलसी प्रभु आरत-आरतिहर, अभय बाँह केहि केहि न दई है । - 1.694
- को जानै को जै है जमपुर को सुरपुर पर-धाम को ।
  तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को ।।- 1.695
- बिनय सुनि बिहँसे अनुज सों बचन के कहि भाय ।
  भली कही कह्यो लषन हूँ हँसि, बने सकल बनाय ।।
  दई दीनहि दादि, सो सुनि सुजन-सदन बधाय ।
  मिटे संकट-सोच, पोच-प्रपंच, पाप-निकाय ।
  पेखि प्रीति-प्रतीति जन पर अगुन अनघ अमाय ।
  दास तुलसी कहत मुनिगन जयति जय उरुगाय ।।- 1.696
- तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति- प्रतीति बिनाहू ।
  नाम की महिमा सील नाथको, मेरो भलो बिलोकि अब तें सकुचाहुँ,
  सिहाहूँ सिहाहूँ ।।-1.697
- मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की,
  परी रघुनाथ हाथ सही है ।। -1.698

10- बाप और विनय

- गोस्वामी जी ने भगवान् से पिता का नाता माना है । पिता अपने कुपुत्र का भी भरण पोषण करता है । उसका हित चिन्तन ही करता है ।

  हौं कुपूत, तुम हितू पितु माता - 1.699

- बाप के 3 प्रयोग बलिजाउँ के साथ तथा एक प्रयोग एकाकी संबोधन में हुआ है ।
  - बाप ! बलि जाउँ आप करिये उपाउ सो ।
    तेरे ही निहारे परै हारेहू सुदाउ -सो ।।-1.700

1.693- विनय- 106 1.694- विनय- 139 1.695- विनय- 155
1.696- विनय- 220 1.697- विनय- 275 1.698- विनय-- 279
1.699- विनय- 177 1.700- विनय-182

232------

- जाउँ कहाँ ? बलि जाउँ, कहूँ न ठाउँ, मति अकुलाति
  आप सहित न आपनो कोउ, बाप ! कठिन कुभाँति ।।- ।.70।

- बाप ! आपने करत मेरी घनी घटि गई ।
  लालची लबार की सुधारिये बारक, बलि,
  रावरी भलाई सबही की भली भई ।।- ।.702

- विनयपत्रिका दीन की, बापु ! आपुही बाँचो ।- ।.703

'बापु! आप,' तथा 'मेरी मातु जानकी' में 'बापु' और 'मातु' विनय की एक पदीय अभिव्यक्तियाँ कही जा सकती हैं । रुग्णावस्था में राम, हे राम, अरी अम्मा, अम्मा जैसी अभिव्यक्तियाँ अनायास निकला करती हैं तथा कष्ट को सह्य बनाने में सहायक होती हैं । इन एक पदीय अभिव्यक्तियों के द्वारा मौन विनय चलती रहती है कि कष्ट दूर हो । इसी संदर्भ को लेकर 'बापु' और 'मातु' गोस्वामी जी की विनय की एक पदीय अभिव्यक्तियाँ कही गई हैं । इनकी भावविभोरता, अनन्यताएवं निकटता विशेष रुप से उल्लेखनीय है । यह वस्तुतः अनुभवगम्य विषय है ।

- जाउँ कहाँ, बलि जाउँ, , कहँ न ठाउँ .... बाप अभिव्यक्ति में बाप की एकमात्र आश्रयता का करुणापूर्ण उल्लेख है । पिता को छोड़ कर और कहाँ आश्रय मिल सकता है । इसी प्रकार 'बापु आपुही बाँचौ' में बाप के वात्सल्य की एकमात्र विश्वस्तता का भावपूर्ण चित्र है । बाप बाँचेंगे तो पुत्र प्रेम में त्रुटियाँ दिखलाई ही नहीं देंगीं और कोई बाँचेगा तो त्रुटियों को ही देखेगा और पुत्र के भाव को नहीं पकड़ पावेगा ।

- 'बापु' और 'मातु' अति निकटता के सूचक हैं । ये संबोधन अपनत्व एवं ममत्व के परिवेश में प्रस्तुत होते हैं । गोस्वामी जी 'अंब' एवं 'मातु' संबोधन से तो माश्री की स्तुति प्रारंभ ही करते हैं तथा माश्री की निकटता की सहज सुलभता को प्रकट करते हैं, किन्तु 'बाप' संबोधन में उन्हें पर्याप्त बिलंब लग गया है । प्रारंभ सच्चिदानंद, परब्रह्म, राज-राजेन्द्र, राम, रघुबीर, रघुनाथ कोशलाधीश, जगदीश आदि संबोधनों से करते हैं तथा ।77 वें पद पर आकर पुत्र का संबंध तथा ।82 वें पद में 'बाप' पद का प्रयोग कर पाते हैं । इस प्रकार पिता के प्रति पुत्र प्रेम की सहज संकोचशीलता को गोस्वामी जी इस उपक्रम में प्रकट करते हैं ।

।.70।- विनय-22।   ।.702- विनय- 252   ।.703- विनय- 277

विनय- गोस्वामी जी दास्यभाव के उपासक हैं । उनकी विनय का अभीष्ट इसीलिये राम चरन रति है । उनका प्रभु से पिता का संबंध दास्यभाव की सहज अभिव्यक्ति की समीचीनता प्रकट करता है ।

- मा से विनय करते हैं कि अवसर पाकर पिता से सिफारिश कर देवें और पिता से अपनी नितान्त निराश्रयता तथा पिता के प्रति आत्यन्तिक अनन्यता एवं आश्रयता का निवेदन करते हैं । यही मूल विनय है । एकमात्र प्रभु की आशा एवं आश्रयता ; आसरा एवं भरोसा ही विनय का अभीष्ट है । इसको निम्नलिखित रूप में विभिन्न अनुभावों के संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं ।

1- संकोच -अपनी पाप-पीनता के कारण अपने दोषों और बुराईयों के कारण संकोच होता है , कैसे सामने आवें। विपरीत आचरण कैसे सहन होगें, कैसे सुहावेंगे ।

- सकुचत हौं अति राम कृपानिधि ! क्यों करि बिनय सुनावौं
  सकल धरम बिपरीत करत ,केहि भाँति नाथ ! मन भावौं ।

× × × × × × × × × ×

तुलसीदास प्रभु सों गुन नहिं , जेहि सपनेहुँ तुमहिं रिझावौं ।।- 1.704

2- साधन विफलता - अपने सुधार के लिये , अपने उद्धार के लिये क्या-क्या साधन नहीं किया , कहाँ कहाँ नहीं गया, किस-किस की मान्यता नहीं की , किन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। तब सब ओर से हार कर प्रभु शरण में आया तथा अपनी निराश स्थिति के संबंध में विनय की ।

- कहा न कियो, कहाँ न गयो , सीस काहि न नायो ।
  राम रावरे बिन भये जनजनमि-जनमि जग दुख दसहू
  दिसि पायो ।।

आस-बिबस खास दास है नीच प्रभुनि जनायो
हा हा करि दीनता कही द्वार-द्वार बार-बार ,
परी न छार , मुह बायो ।।

असन-बसन बिनु बावरो जहँ-तहँ उठि धायो ।
महिमा मान प्रिय प्रानते तजि खोलि खलनि आगे,
खिनु खिनु पेट खलायो ।।

1.704- विनय-142

नाथ ! हाथ कछु नहिं लग्यो , लालच ललचायो ।

साँच कहौं , नाच कौन सो , जो न मोहि लोभ लघु हौं

निरलज्ज नचायो ।

श्रवन-नयन-मग मन लगे, सब थल पतितायो ।

मूड़ मारि, हिय हारिकै, हित हेरि हहरिअब चरन-सरन तकि आयो ।।-1.705

- द्वार द्वार दीनता कही ,काढ़ि रद परि पाहू ।

हैं दयालु दुनी दस दिसा ,दुख-दोष-दलन-छम,

कियो न सँभाषन काहूँ ।- 1.706

3- निराशा- सर्वत्र निराशा एवं किं कर्तव्य विमूढ़ता में केवल एक प्रभु की आशा है - अतएव उनकी ओर आशाभरी दृष्टि लगा कर विनय करते हैं -

जाउँ कहाँ , ठौर है कहाँ देव ! दुखित -दीन को?

को कृपालु स्वामी-सारिखो , राखै सरनागत सब अँग

बल बिहीन को ।।- 1.707

काको नाम पतित पावन जग, केहि अति दीन पिआरे ।।- 1.708

- कोई व्यक्ति नहीं -

तुम तजि हौं कासों कहौं, और को हितु मेरो ?

दीनबंधु ! सेवक, सखा, आरत, अनाथ पर सहज छोह केहि केरे ।।- 1.709

कहाँ जाउँ , कासों कहौं , कौन सुनै दीन की ।

त्रिभुवन तुही गति सब अँगहीन की ।।- 1.710

कहाँ जाउँ , कासों कहौं , और ठौर न मेरे ।

जनम गँवायो तेरे ही द्वार किंकर तेरे ।।- 1.711

4- आग्रह- अपनाने एवं न त्यागने के आग्रह तथा दीन पुकार के साथ करुण स्थिति प्रकट करते हैं तथा दीनतापूर्ण विनय करते हैं -

---

1.705- विनय- 276 1.706- विनय- 275 1.707- विनय-274
1.708- विनय-101 1.709- विनय- 273 1.710- विनय- 179
1.711- विनय- 149

- जैसो हौं तैसो राम रावरो जन, जनि परिहरिये ।

कृपासिंधु , कोसलधनी ! सरनागत -पालक, ढरनि आपनी ढरिये

× × × × × × ×

अपराधी तउ आपनो , तुलसी न बिसारिये ।

टूटियो बाँह गरै परै , फूटेहु बिलोचन पीर होत हितकरिये ।।-1.712

5- विवशता- दुष्ट प्रकृति , दोषपूर्णता एवं पापवृत्ति अपनी विवशता है । इससे क्षुब्ध होकर मन मैला करने एवं मुँह मोड़ने की स्थिति शरणागत के लिये कितनी व्यथाकर होती है । निराश एवं हताश होकर यह विचार आता है कि हमारे आराध्य क्यों कष्ट पावें इस अति करुणापूर्ण हृदय द्रावक विवशताजन्य स्थिति को विनय मर्म को आहत कर देती है-

- तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो ।

सुनहु राम ! बिनु रावरे लोकहु परलोकहु कोउ न कहूँ हितु मेरो ।।- 1.713

- दीनबंधु ! दूरि किये दीन को न दूसरी सरन ।

आपको भले हैं सब, आपने को कोऊ कहूँ ।।

सबको भलो है राम ! रावरो चरन ।।- 1.714

6- एकमात्र आश्रय - प्रभु का एकमात्र आश्रय है । इसलिये अपनी अनन्य स्थिति में प्रभु से ही आग्रह करने की परिस्थितियों को प्रस्तुत कर विनय करते हैं-

- और मोहि को है , काहि कहि हौं ?

रंक-राज ज्यों मनको मनोरथ , केहि सुनाइ सुख लाइहौं ।।- 1.715

- राम राय ! बिनु रावरे मेरे को हितू साँचो ?

स्वामी-सहित सबसों कहौं , सुनि-गुनि बिसेषि

कोउ रेख दूसरी खाँचो ।।

× × × × ×

विनयपत्रिका दीन की, बापु ! आपु ही बाँचो ।

हिये हेरि तुलसी लिखी , सो सुभाय सही करि

बहुरि पूँछिये पाँचो ।।- 1.716

1.712- विनय- 271 1.713- विनय-272 1.714-विनय-257

1.715- विनय- 231 1.716- विनय-277

7- अपनी असमर्थता - अपने बनाने से नहीं बनती है, अपनी असमर्थता है। इसलिये राम की कृपा का आग्रह है और विनय है।

मेरी न बनै बनाये मेरे कोटि कलप लौं
राम ! रावरे बनाये बनै पल पाउ मैं।

× × × × × × × ×

जग कहै राम की प्रतीति -प्रीति तुलसी हू,
झूठे - साँचे आसरो साहब रघुराउ मैं ।।- 1.717

8- अपनाने की स्वीकृति - प्रभु ने अपना लिया है। इसकी स्वीकृति, इसकी घोषणा प्रभु करें। तू मेरोकहैं। इस संदर्भ में ममत्व एवं आग्रहपूर्ण विनय प्रस्तुत करते हैं - तू मेरा है, यह घोषणा परम अभीष्ट है। प्रभु ने अपना बना लिया, फिर कुछ करने, कुछ कहने के लिए शेष रहा ही क्या जाता है -

- बारक कहिये कृपालु ! तुलसिदास मेरो ।- 1.718 (अ)
- जेहि कौतुक कहिये कृपालु ! तुलसी है मेरो ।।- 1.718 (ब)
- खीझि- रीझि, बिहँसि -अनख, क्यों हूँ एक बार
  तुलसी तू मेरो, बलि, कहियत किन ।। -1.719
- पन करि हौं हठि, आजुतें रामद्वार परयो हौं।
  तू मेरो यह बिन कहे उठि हौं न जनम भरि,
  प्रभु की सौं करि निबरयो हौं ।।- 1.720 (अ)
- कहे ही बनैगी कै कहाये, बलि जाउँ राम,
  तुलसी ! तू मेरो हारि हिये न हहरु ।।- 1.720 (ब)

9- प्रभु प्रेम की विनय - प्रभु के चरणों में अनन्य अनुराग उत्पन्न हो, यही प्रभु कृपा है, जिसकी विनय करते हैं तथा जो विनय की मुख्य अपेक्षा है -

- केहू भाँति मेरी ओर हेरिये
  मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरि ये ।।- 1.721

1.717-विनय-261 1.718 (अ)- विनय-78 1.718 (ब)- विनय- 146
1.719- विनय- 253 1.720 (अ)- विनय- 267 1.720 (ब)- विनय-250
1.721- विनय- 181

- राम राखिये सरन , राखि आये सब दिन ।
  बिदित त्रिलोक तिहुँ काल न दयाल दूजो ,
  आरत-प्रनत-पाल को है प्रभु बिन ।।- 1.722

- नाहिनै नाथ ! अवलंब मोहि आनकी ।
  करम-मन-बचन पन सत्य करुनानिधे
  एक गति राम ! भवदीय पदत्रान की ।।- 1.723

- यह बिनती रघुबीर गुसाँई ।

× × × × × × ×

  चहौं न सुगति , सुमति,संपति कछु, रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई
  हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ।।- 1.724

- पाहि, पाहि राम ! पाहि रामभद्र , रामचंद्र !
  सुजस स्त्रवन सुनि आयो हौं सरन ।।- 1.725

श्रीकृष्ण गीतावली एवं गीतावली की वंदना -

श्रीकृष्ण गीतावली वंदना- श्रीकृष्ण गीतावली का भगवान् कृष्ण की वंदना संबंधी एक पद ‡ पद संख्या 23 ‡ उल्लेखनीय है । इस पद को स्तुति तथा आरती दोनों रूपों में ग्रहण कर सकते हैं । भगवान् कृष्ण की रूप माधुरी का मनोहारी वर्णन इस पद में प्रस्तुत किया गया है तथा इस रूप माधुरी पर मुग्ध होकर चरणारविंद की वंदना की गई है । यह पद रामस्तुति के पदों में प्रस्तुत रूप माधुरी के समान ही भगवान् की छबि को प्रस्तुत करने में अनूठा है । गोस्वामी जी, ऐसा प्रतीत होता है कि वृन्दावन के बांके बिहारी जी की मंदिर की झाँकी कर रहे हैं । पट क्षण भर को खिंचता है और भगवान् की छबि की लघु झाँकी अवलोकित होती है । पुनः खिंचता है और दृष्टि अन्यान्य अंगों पर पड़ती है । प्रथम दर्शन वस्त्राभरण के होंगे, इस तथ्य को गोस्वामी जी ने मानो व्यक्तिगत रूप से परखा है । आगे समग्र वपुस् की छबितथा इसके आगे मुखश्री की छबि में शिर केकि पक्ष, विलोल कुण्डल, अरुण वनरुह लोचन, गुंजावतंस, कुटिल कच, सुंदर तिलक, तथा भ्रू की मनोहारी छबि मन को ऐसे मोह लेती है कि

1.722-वि. 253, 1.723-वि-209, 1.724- वि. 103, 1.725-वि. - 248

238----

गोस्वामी जी इससे आगे बाहु, कर, वक्षस्थल, कटि आदि कुछ भी नहीं देख पाते और बात भी कुछ ऐसी है उस मन भावन रूप की मुखश्री की छबि से आगे देखा ही किसने है । अर्जुन को विराट स्वरूप के दर्शन कराये थे । वह कितना भयावह था कि अर्जुन काँप गया और प्रार्थना करने लगा कि नहीं, नहीं प्रभो ! मुझे तो उसी रूप माधुरी के दर्शन कराइये " तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्त्रबाहो भव विश्वमूर्ते " । भगवान् की इस रूप माधुरी के दर्शन से भव त्रास नष्ट होते हैं । इस पर मुग्ध होकर चरणों में नतमस्तक हो जाने का जी करना ही चाहिये" चरणारविंदमहं भजे, भजनीय सुरमुनि दुर्लभं "

गोपाल गोकुल वल्लभी प्रिय गोप गोसुत वल्लभं
चरणारविंदमहं भजे भजनीय सुर मुनि दुर्ल्लभं
घनश्याम काम अनेक छबि लोकाभिराम मनोहरं
किंजल्क वसन किशोर मूरति भूरिगुण करुणाकरं
शिर केकि पक्ष विलोल कुण्डल अरुण वनरुह लोचनं
गुंजावतंस विचित्र सब अँग धातु भवभय मोचनं
कच कुटिल सुन्दर तिलक भ्रू राका मयंक समाननं
अपहरण तुलसीदास त्रास विहार वृन्दाकाननं ।। ‡ श्रीकृष्ण गीतावली - 23 ‡

गीतावली की वंदना - गीतावली का प्रारंभ, वंदना के स्थान पर बधाई से होता है । बधाए तथा सोहिले राम जन्म के अवसर पर गाये गये हैं । उनसे ही ग्रन्थ का प्रारंभ होता है । इनका विवेचन अभिनंदन ‡ हर्षाभिवादन ‡ के अंतर्गत ‡ पृ. 53 ‡ कर चुके हैं । गीतावली में भरत विनय के अंतर्गत कई पदों की रचना हुई है । ये पद बड़े मर्मस्पर्शी तथा करुण भावपूर्ण हैं । इन पदों का विवेचन भरत विनय प्रकरण में कर चुके हैं । भरत विनय प्रकरण का करुण पक्ष इन पदों से विशेष रूप से उजागर हुआ है।-

- गीतावली में सीताजी की विरह वेदना का बड़ा करुण चित्र प्रस्तुत किया गया है । सीता जी हनुमान् से अपनी व्यथा निवेदन करती हैं और अचेत हो जाती हैं -

नेम तौ पपीहा ही के, प्रेम प्यारो मीन ही के,
तुलसी कही है नीके हृदय आनि ।
इतनी कही सो कही सीय, ज्यों हीं त्योंही
रही, प्रीतिभरी सही, बिधि सों न बखानि ‡ 5:7 ‡

- लक्ष्मण मूर्च्छा के अवसर पर भगवान् राम के करुणापूर्ण हृदयोद्गार आत्म निवेदन के प्रसंग के रूप में अवलोकनीय हैं -

- मो पै तौ न कछू ह्वै आई ।
  ओर निबाहि भली बिधि भायप चल्यो लखन-सो भाई ।
  पुर, पितु-मातु, सकल सुख परिहरि जेहि बन- बिपति बँटाई ।

× × × × × × × ×

  तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहिं कालिमा लाई । ॥ 6:6 ॥

- मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
  बिपति बँटावन बंधु -बाहु बिनु करौं भरोसो काको । ॥6:7॥

- विभीषण शरणागति का प्रकरण गीतावली में विस्तार से दिया गया है । विभीषण शरणागति हेतु विनम्र निवेदन करते हैं -

- सुजस सुनि श्रवन हौं नाथ ! आयो सरन ।

× × × × × × × ×

पतित पावन ! प्रनतपाल ! करुना सिंधु !
राखिए मोहि सौमित्रि-सेवित चरन ।
दीनता-प्रीति -संकलित मृदु बचन सुनि
पुलकि तनप्रेम , जल नयन लागे भरन । - ॥5:43॥

- भगवान् राम की सुंदर छबि का वर्णन यद्यपि स्तुति आरती के रूप में तो नहीं हुआ है, तथापि एक-दो पदों का अवलोकन अप्रासांगिक न होगा ।

सीता जी द्वारा छबि वर्णन

कब देखौंगीनयन वह मधुर मूरति ?
राजिवदल-नयन, कोमल, कृपा अयन ,
मयननि बहु छबि, अंगनि दूरति
सिरसि जटा -कलाप , पानि सायक
चाप, उरसि रुचिर बनमाल लूरति ।
तुलसिदास रघुबीर की सोभा सुमिरि ,
भई हैं मगन नहिं तन की सूरति ।।- ॥ 5:47॥

उत्तरकाण्ड में 15 पदों में राम रूप वर्णन किया गया है । इन पदों में अनूप रूप का विशेष उल्लेख है । अनूप रूप का वर्णन राम स्तुतियों में हुआ है ॥ पृ. 82 ॥ यह भूप शिरोमणि रूप है । गीतावली का रूप वर्णन भी राज्याभिषेक के पश्चात् भूप शिरोमणि रूप के लिये ही हुआ है ।

- भोर जानकी जीवन जागे ।

× × × × × × ×

सहज सुहाई छबि , उपमा न लहै कबि , मुदित बिलोकन लागे ।
तुलसिदास निसिबासर अनूप रूप रहत प्रेम -अनुरागे ।। ॥7:2॥

- दसन-बसन लाल बिसद हास रसाल ....
अरून नैन बिसाल, ललितभृकुटि ,माल
तिलक, चारु कपोल, चिबुक-नासा सुहाई ।
बिथुरे कुटिल कच, मानहु मधु लालच अलि
नलिन -जुगल उपर रहे लुभाई ।
स्त्रवन सुंदर, सम कुंडल कल जुगम ,
तुलसिदास अनूप , उपमा कही न जाई ।।- ॥ 7:11॥

- रघुपतिराजीव नयन सोभातनु , कोटि मयन,
करूनारस-अयनचयनरूप भूप, माई ।
देखो सखि अतुलित छबि , संत-कंज-कानन रबि,
गावत कल कीरति कबि-कोबिद-समुदाई ।।- ॥7:3॥

- आजु रघुबीर-छबि जात नहि कछु कही ।
सुभग सिंघासनासीन, सीतारवन ,
भुवन-अभिराम, बहु काम सोभा सही ।। ॥7:6॥

- सकल अंग अनूप, नहिं कोउ सुकबि बरननिहारु ।
दास तुलसी निरखतहि सुख लहत निरख निहारु ।।- ॥7:8॥

- विनयपत्रिका की भाँति इस रूप वर्णन की ओर मन को भी आकर्षित किया गया है-

- रघुबर-रूप बिलोकु नेकु, मन ।
सकल लोक -लोचन -सुखदायक, नखसिख सुभग स्यामसुंदर तन ।।-॥7:16॥

241-----

- विनयपत्रिका की अंग छबि वर्णन के अंतर्गत दिये गये 20 अंगों का (पृ. 141) अवलोकन इस पद में भी किया गया है । विनयपत्रिका की दृष्टिपातगत विशेषता की भाँति इस पद में भी चरणों से सिर की ओर बढ़ते हैं तथा शीलस्वरूप का दर्शन करते हैं । इन विशेषताओं की दृष्टि से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी की मान्यतायें एवं मौलिकतायें सर्वत्र एक रस प्रतिपादित एवं सुरक्षित हैं ।

- : 0 : -

<u>अष्ट इतर कृतियों की वंदना</u> - दोहावली, कवितावली, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवैरामायण, वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्नतथा हनुमान् बाहुक अष्ट शेष कृतियों में वंदना स्थिति इस प्रकार है -

कृतियाँ जिनमें वंदना प्रयोग नहीं हैं - दोहावली, कवितावली, बरवैरामायण, वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न, हनुमान बाहुक

कृतियाँ जिनमें वंदना प्रयोग है - - पार्वती मंगल , जानकी मंगल

- जिन छः कृतियों में वंदना प्रयोग नहीं है उनकी स्थिति निम्नलिखित है -

दोहावली तथा वैराग्य संदीपनी में वंदना के स्थान पर ध्यान किया गया है । भगवान् के स्वरूप का वर्णन है जिसका उल्लेख किया गया है ।

दोहावली- प्रथम तीन दोहों में सीताराम लक्ष्मण त्रिमूर्ति का ध्यान किया गया है-

- राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर - 1
- सीता लखन समेत प्रभु सोहत तुलसीदास - 2
- पंचबटी बट बिटप तर सीता लखन समेत -3

- इस ध्यान का प्रभाव बताया गया है कि यह सकल कल्याणमय है , इसमें सुमंगल बास है और यह सकल सुमंगल देता है ।
- वैराग्य संदीपनी का प्रथम ध्यान सूचक दोहा वही है जो दोहावली का प्रथम दोहा है। इस प्रकार वैराग्य संदीपनी तथा दोहावली का एक ही ध्यान है । अंतर यह है कि वैराग्य संदीपनी में केवल एक(प्रथम)दोहे से ही ध्यान किया गया है ।

242-----

कवितावली में- प्रथम तीन छन्दों में भगवान् के बालरूप की झाँकी प्रस्तुत की है । एक सखी अनायास अवधेश के द्वारे प्रातः पहुँच गई और उसको स्वरूप झाँकी का सौभाग्य मिला । वह सखी दर्शन का प्रभाव प्रस्तुत करती है -

स्वरूप		
- रंजित- अंजन नैन	- मन रंजन	झाँकी का संपूर्ण प्रभाव - ठगी-सी रह गई
- पग नूपुरु , करकंजनि पहुँची, गले में मनोहर मणिमाला, श्याम शरीर, पीला झँगा, अरविंद सा मनमोहक मुख ,	मन में बस गया	
- शरीर की द्युति श्याम लोचन कंज के समान धूल भरी छबि अति सुंदर छोटे-छोटे दाँत बिजली से चमकते हैं किलक-किलक कर बाल लीलायें करते हैं	- मन में सदा विहार करते रहें	

- बरवैरामायण में बालकाण्ड प्रथम सर्ग है । इसके प्रारंभ में न तो वंदना है न ध्यान या झाँकी । बालकाण्ड की कथा का सार राम व सीता का सौन्दर्य वर्णन, धनुष भंग तथा विवाह है । इस कथा सार को ही प्रारंभ किया गया है । प्रथम राम सौन्दर्य वर्णन है , दूसरे सीता सौन्दर्य वर्णन है तथा तीसरे चरण में तीन बरवै में धनुष भंग तथा विवाह सूचित है । फिर भी प्रारंभ के रामरूप वर्णन को ध्यान कह सकते हैं ।

> - बड़े नयन कुटि भृकुटि भाल बिसाल ।
> तुलसी मोहत मनहिं मनोहर बाल ।।- ।.।

रामाज्ञा प्रश्न - प्रथम सर्ग प्रथम सप्तक से ही प्रश्न का उत्तर प्रारंभ किया गया है । इस उत्तर में स्मरण का विशेष उल्लेख है तथा स्मरण प्रायः प्रत्येक छंद की विशेषता या विधा है । इस प्रकार पृथक् से वंदना का कोई प्रयोग नहीं है । इस ग्रंथ के अभिप्रेत की दृष्टि से भी वंदना की अपेक्षा नहीं है । प्रथम सर्ग के प्रथम सप्तक का प्रथम छंद इस प्रकार है -

बानि बिनायकु अंब रबि गुरु हर रमा रमेस ।
सुमिरि करहु सब काज सुभ , मंगल देस बिदेस ।।

- इसको उत्तर के रूप में लेते हुए व्याख्या की है -
शुभ - कार्य संबंधी प्रश्न है तो सफलता मिलेगी ।

हनुमान बाहुक - प्रथम दो छप्पय छंदों में हनुमान जी के शक्ति-शील का वर्णन किया गया है जिसे स्तुति का रूप कहा जा सकता है । इस रूप वर्णन की फलश्रुति देकर स्तुति के रूप की प्रतिष्ठा भी की गई है ।

शील	रूप	लीला	प्रभाव
-सेवत सुलभ - सेवक हित संतत-निकट	- रवि-बाल-बरन-तनु - भुज बिसाल - मूरति कराल - बंक भुव	-सिंधु-तरन - सिय-सोच-हरन - गहन-दहन-निरदहन लंक निःसंक	- कालहुको काल जनु - जातुधान-बलवान-मान-मद-दवन
	-स्वर्न -सैल-संकास -कोटि-रबि-तरुन-तेज-घन -उर बिसाल, भुजदंड चंड नख बज्र बज्र तन -पिंग नयन, भृकुटी कराल-रसना दसनानन -कपिस केस, करकस लँगूर		- खल-दल-बल-भानन

फलश्रुति- गुनगनत, नमत, सुमिरत, जपत, समन सकल -संकट-बिकट
.... बस जासुउर मारुतसुत मूरति बिकट
संताप पाप तेहि पुरुष पहिं सपनेहुँ नहिं आवत निकट ।।

- उपर्युक्त दोनों छंदों में प्रथम छंद में शील, लीला, का भी उल्लेख है किन्तु द्वितीय छंद में केवल रूप तथा प्रभाव का वर्णन है , शील और लीला का नहीं है । विकट रूप की साधना की ही फलश्रुति दी गई है । विकट रूप से पाप-तापभयभीत हो जाते हैं तथा स्वप्न में भी निकट नहीं आते । बाहु पीड़ा को दूर करने के लिये रचित इस कृति की यह वंदना अभीष्ट के उपयुक्त है तथा प्रयोजन सिद्ध कर सिद्ध हुई है । विनयपत्रिका की स्तुतियों में रूप के लिये प्रयुक्त विशेषणों का ही प्रयोग यहाँ हुआ है तथा लीला, शील के विशेषण भी वहीं हैं । इस प्रकार प्रस्तुत स्तुति विनयपत्रिका के स्तुति प्रकरण की लघु दीपिका कही जा सकती है ।

<u>वंदना प्रयोग वाली दो कृतियाँ</u> - जानकीमंगल तथा पार्वतीमंगल हैं । ये दोनों खण्ड काव्य हैं । मानस प्रबंध काव्य है । जानकीमंगल मंगलाचरण से प्रारंभ करते हैं । यह मंगलाचरण वंदना का छंद है ।

- गुरु, गणेश, शिव, पार्वती, गिरापति, शारदा, शेष, सुकवि, वेद तथा सरल मति ~~संत~~ संत , दस गुरुजनों की वंदना करते हैं । अभीष्ट है श्री राम जानकी के विवाहोत्सव का गान ।

> हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं ।
> सिय रघुबीर , बिबाहु जथामति गावौं ।।

बरात के विदा के अवसर पर सासु की विनय, मानस की भाँति मर्मस्पर्शी है -

> - तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन - 168
> - जन जानि करब सनेह बलि, कहि दीन बचन सुनावहीं ।- छं. 21

पार्वतीमंगल - पार्वतीमंगल भी मंगलाचरण से प्रारंभ करते हैं । अभीष्ट यहाँ भी 'गावउँ गौरि गिरीस बिबाह सुहावन ' है । यहाँ निम्नलिखित रूप में वंदना करते हैं -

वंदना- गुरु , गुणीजन, गिरिहि (हिमालय की) गणेश जी-

ध्यान- सिय राम धरे धनु भाथहि

यहाँ गोस्वामी जी ने तीसरे छंद में मानस की भाँति कवि न होने की बात को भी कहा है ।

245-----

" कबित रीति नहिं जानउँ कबि न कहावउँ ।।

संकर चरित सुसरित मनहि अन्ह वावउँ ।।" 3

- इन दोनों कृतियों के अंत में मानस की भाँति फलश्रुति भी दी गई है ।

जानकीमंगल- उपबीत ब्याह उछांह जे सिय राम मंगल गावहीं ।

तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावहीं ।।24 छं.

पार्वतीमंगल- कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहै ।

तुलसी उमा संकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहै ।। 16 छं.

- यह आठ कृतियाँ सीमित अभीष्ट की साधना के लिये रचित एवं प्रयुक्त हुई हैं तथा उसको पूरा करने में पूर्ण सिद्ध भी रही हैं । इसलिये इनमें वंदना प्रकरणों को अपेक्षातया संकोच पूर्ण स्थान मिला है ।

8।- तुलसी की वंदना -

1- वंदना एक प्रगति है जो स्तुति, आरती, अर्चन, पूजन, वंदन के विभिन्न आयामों में होती हुई विनय में समायोजित होती है । इस प्रकार वंदना अपने व्यापक रूप में साधना के सम्पूर्ण क्षेत्र का आकलन करती है तथा धर्म-संप्रदाय की प्रक्रियागत व्यवस्था ही नहीं प्रत्युत भाव-भावनागत आस्था को भी प्रस्तुत करने का प्रयास करती है ।

2- वंदना मानव की सहज वृत्ति है । अभिवंदन जीवन के व्यवहार की आवश्यकता है तो वंदन अध्यात्म साधना की अपेक्षा है ।

3- वंदना के उपचार भक्त मन की ललक एवं कामनाओं के विकसित एवं प्रतिफलित रूप हैं । भक्त के मनोराज्य एवं सुखद स्वप्नों में उपचार जन्म लेते हैं । गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसी संदर्भ में परंपरागत षोडशोपचार से इतर अन्यान्य उपचारों का विवरण प्रस्तुत किया है । (पृ. 38)

4- वंदना की एक समन्वित इकाई होती है जिसमें स्तुति, वंदन, विनय सभी उपचार अपेक्षित होते हैं । अध्ययन की दृष्टि से ही उनका पृथक्-पृथक विवेचन किया जाता है ।

5- वंदना- प्रतिपादन के अंतर्गत गोस्वामी जी ने प्रभु भक्ति एवं प्रेम की ही प्रतिष्ठा की है । फिर भी प्रतिपादन हेतु अपनाई गई शब्दावली हेतु नई शब्दावली की(शब्द) रचना न करके योग के लिये प्रचलित शब्दावली का ही प्रयोग किया है ।

6- वंदना के व्यवहारिक पक्ष पर गोस्वामी ने विशेष बल दिया है । इसीलिये अभिवादन के अंतर्गत विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया है तथा पारिवारिक, सामाजिक सभा एवं राज दरबारगत, सभी क्षेत्रों के अभिवादन प्रसंगों का उल्लेख किया है ।

- गोस्वामी जी मानव देवता की प्रतिष्ठा में स्वर्ग के देवताओं की कल्पना करते हैं तथा मानव संबंधों संबंधी मान-मर्यादा एवं मर्यादा की सुरक्षा का आग्रह करते हैं । पारिवारिक सद्भावना, स्नेह एवं सम्मान गोस्वामी जी का प्रथम लक्ष्य एवं अभीष्ट है । यह बन गया तो प्रभु प्रेम और प्रभु कृपा तो स्वतः सुलभ हो जायगी । आज की पारिवारिक विघटनकारी परिस्थितियों में गोस्वामी जी की वंदना की कहीं अधिक उपादेयता एवं आवश्यकता है ।

7- गोस्वामी जी ने यद्यपि जन भाषा एवं जनप्रचलित शब्दावली का प्रयोग किया है । किन्तु स्तुतियों के लिये परंपरागत संस्कृत सामासिक शब्दावली का प्रयोग ही उपयुक्त समझा है । इस प्रकार की शब्दावली के कारण स्तुतियों का अंश दुरूह हो गया है किन्तु स्तुतियों की परंपरा की दृष्टि से फिर भी सुकर एवं सहज है ।

8- गोस्वामी जी ने वंदना के उपचारों में जाप को प्रमुख एवं प्रधान माना है । नाम जाप उनकी दृष्टि से प्रथम सीढ़ी है जो अनिवार्य है । नाम जाप से आगे अन्यान्य आध्यात्मिक चढ़ाइयाँ स्वतः सिद्ध हो जाती हैं । जाप की प्रमुखता को गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका के पदक्रम से भी कदाचित् प्रतिपादित किया है । रामस्तुति के अंतर्गत आरती के दो पदों के बीच एक पद नाम जप का रखा है । इस प्रकार स्तुति, आरती के समकक्ष ही जाप की गणना की है ।

9- नाम को गोस्वामी जी ने स्वयं राम से बड़ा माना है तथा नाम से नामी की प्राप्ति सुलभ बतलाई है । विनयपत्रिका में मानस की इस नाम प्रतिष्ठा को और आगे बढ़ा कर उन्होंने नाम में ही नामी के दर्शन किये हैं -

---

2 47----

नाम-सो न मातु-पितु, मीत-हित , बंधु-गुरु ,

साहिब सुधी सुसील सुधाकरु है ।- 1.726

गीता में भी भगवान् ने जप-यज्ञ को अपना स्वरूप ही बतलाया है -

यज्ञानां जपयज्ञो ऽस्मि -1.727

10- वंदना के अंतर्गत गोस्वामी जी ध्यान योग का प्रतिपादन एवं प्रतिष्ठा करते, प्रतीत होते हैं । आरती की पद्धति का विवरण प्रस्तुत करते हुए गोस्वामी जी आत्म ज्ञान रूपी स्वप्रकाशमय दीपक , निर्मल श्रेष्ठ भावके नैवेद्य, शुभाशुभ कर्मरूपी घृत, दस इन्द्रियों रूपी वर्तिकाओं आदि के द्वारा आधि भौतिक दीप, वर्तिकाघृत आदि के स्थान पर आध्यात्मिक मनोवृत्तियों का आग्रह करते हैं । इस विषय की चर्चा आगे विनय दर्शन के अंतर्गत की जायगी ।

11- वंदना का महात्म्य-

- वंदना के अंतर्गत गोस्वामी जी का अंग छवि वर्णन एवं दृष्टिपातगत मौलिकता उल्लेखनीय है । गोस्वामी जी वंदना के भजन , स्मरण, जाप, सत्संग, गुरुजन कृपा आदि के संदर्भ में उसका महात्म्य भी प्रतिपादन करते हैं ।

11.1. वंदना एकमात्र उपाय -

अन्य साधनों में जप, तप, तीर्थ, योगाभ्यास, समाधि आदि हैं किन्तु कलियुग में जीवों की बुद्धि स्थिर नहीं हैं , इस कारण इन साधनों में से कोई भी साधन विघ्नरहित नहीं रहा । इनका करना दुःसाध्य हो गया है । वंदना एकमात्र उपाय शेष है । रामचरणरति को छोड़ कर और कोई गति नहीं है । इसलिये प्रेम सहित भगवान् का स्मरण करना चाहिये ।

सुमिरु सनेह-सहित सीतापति । रामचरन तजि नहिं न आनि गति ।।

जप, तप, तीरथ, जोग समाधी । कलिमति-विकल, नकछु निरुपाधी ।।-1.728

1.726- विनय- 255 1.727- गीता- 10. 25

1.728- विनय- 128

.2. <u>वंदना-साधना-सुगमता</u>- वंदना के नाम जाप से जो भायँ कुभायँ अनख आलसहू कैसे ही हो, और सुगम साधन एवं मार्ग क्या हो सकता है। इसलिये वंदना के लिये आग्रह है। राम नाम लेने से ही सम्पूर्ण धर्म सुलभ हो जाते हैं।

- तो सों हौं फिरि फिरि हित, प्रिय पुनीत सत्य बचन कहत ।
  सुनि मन, गुनि समुझि, क्यों न सुगम सुभग गहत ।।- 1.729

- पावन प्रेम रामचरन कमल जनम लाहु परम ।
  राम नाम लेत होत, सुलभ सकल धरम ।।- 1.730

- कलि नाम कामतरु राम को ।
  दलनिहारदारिद दुकाल दुख, दोष घोर घन धाम को ।।- 1.731

.3. माया मोह से मुक्ति भगवान् की कृपा विना संभव नहीं है। भगवान् की कृपा विमल विवेक से प्राप्त होती है। विमल विवेक हरि-गुरु की करुणा के बिना नहीं होता। इसलिये वंदना के द्वारा हरि-गुरु कृपा एवं करुणा प्राप्त करनी चाहिये।

- बिनु तव कृपा दयालु ! दासहित ! मोह न छूटै माया ।।- 1.732
- .... मोह फाँस क्यों टूटै .... अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै ।

× × × × ×

  तुलसीदास हरि-गुरु - करुना बिनु बिमल बिबेक न होई ।
  बिनुबिबेक संसार -घोर - निधि पार न पावै कोई ।।- 1.733

.4. इन्द्रिय संभव दुख प्रभु कृपा से ही दूर होता है।

- इन्द्रिय-संभव दुख, हरे बनिहि प्रभु तोरे ।।- 1.734

.5. भ्रम दूर हो, इसके लिये प्रभु की ही वंदना करनी होगी।

हे हरि ! कस न हरहु भ्रमभारी ।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ।।- 1.735

.6- भवत्रास वंदनागत सत्संग तथा प्रभु भक्ति से ही नष्ट हो सकता है।

तुलसीदाससब बिधि प्रपंच जग, जदपि झूठ श्रुति गावै ।
रघुपति-भगति, संतसंगति बिनु, को भवत्रास नसावै ।।- 1.636

1.729- विनय- 133 1.730-विनय-131 1.731-विनय-156 1.732-वि. 123
1.733- विनय- 115 1.734- विनय-119 1.735-विनय-120 1.736-वि. 121

249-----

.7- द्वैत दर्शन में स्वप्न में भी सुख नहीं है । गुरुजन की वंदना से ही संसार से पार हो सकते हैं ।

सपनेहुँ नहीं सुख द्वैत -दरसन, बात कोटिक को कहै ।

द्विज, देव, गुरु , हरि, संत, बिनु संसार-पार न पाइये ।।- 1.737

.8- कामअग्नि विषयभोग रूपी घी से शान्त नहीं होती । इसलिये भगवान् का भजन करना चाहिये । भगवान् से प्रेम करना चाहिये । वंदना के द्वारा उनको प्रसन्न करना चाहिये ।

अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, त्याग दुरासा जीते ।

बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय भोग बहु घी ते ।।- 1.738

.9- सत्संग, भजन, रामकथा, हरि नाम जाप वंदना के ऐसे साधन हैं जिनसे मानवमात्र को कल्याण हो सकता है । भगवान् प्रसन्न होते हैं । भगवान् ही सच्चे हितू हैं । जिस पर भगवान् प्रसन्न हो जायँ वही सच्चा सुकृति है ।

- नहि सत्संग भजन नहिं हरि को , स्त्रवन न राम कथा अनुरागी ।

×　　×　　×　　×　　×

तुलसिदास हरि नाम सुधा तजि सठ हठि पियत बिषय बिष मांगी ।।-1.739

- तुलसी प्रभु साँचो हितू तू हिय की आँखिन हेरि ।।- 1.740

- सोइ सुकृति ,सुचि साँचो जाहि राम ! तुम रीझे ।।- 1.741

- इस प्रकार वंदना के द्वारा मायामोह, भ्रम, एवं भवत्रास का नाश होता है तथा भगवद् भक्ति प्राप्त कर मनुष्य का कल्याण होता है । भगवान् का कृपा पात्र होने के लिये वंदना सबसे सुगम साधन है । भगवान् का कृपा पात्र होकर फिर कोई चिन्ता रहती ही नहीं , आनन्द ही आनन्द अनुभव होता है ।

सेवक सुमरत नाम सप्रीती
बिन श्रम प्रबल मोह दल जीती
फिरत सनेह मगन सुख अपने
नाम प्रसाद सोच नहिं सपने

×　×　×　×　×　×　×　×　×

को करि सोचु मरै तुलसी
हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने ।।- 1.742 (क० 105)

1.737 वि. 136, 1.738 वि. 198, 1.739 वि. 140, 1.740 वि. 190, 1.741 वि. 240 // [illegible]

वंदनीय गुरुजन

वंदनीय गुरुजन

2.0

वंदनीय गुरुजन

प्रकरण पृष्ठ संख्या प्रबंध पृष्ठ सं०

2.0 वंदनीय गुरुजन- विभिन्न मान्यतायें :-

गुरु एवं गुरुजन के संबंध में अन्यान्य मान्यतायें हैं ।

- गीता में " गुरून हत्वा हि महानुभावान् " {2.5} के अन्तर्गत गुरु शब्द आया है । इसका अर्थ महात्मा तिलक ने इस प्रकार किया है -

  'गुरु लोगों को इस बहुवचनान्त शब्द से बड़े-बूढ़ों का भी अर्थ लेना चाहिये ।'
- संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर {2008 वि.} में गुरु का अर्थ निम्नलिखित दिया हुआ है -

  गुरु - देवताओं के आचार्य बृहस्पति

  आचार्य

  ब्रह्मा, विष्णु , शिव
- धर्म शास्त्रीय परंपरा में गुरु की पृथक् मान्यता है -
- ब्राह्मणों के लिये अग्नि,अन्य वर्णों के लिये ब्राह्मण, स्त्री के लिये पति तथा अतिथि सब के गुरु होते हैं ।- 2.1
- गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं,गुरु ही महेश्वर हैं।

  गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं । इसलिये गुरु की वंदना करनी चाहिये ।- 2.2
- उस परमेश्वर को कोई अग्नि, कोई मनु, कोई प्रजापति, कोई इन्द्र, कोई प्राण से पुकारते हैं और कोई उसे तीर्थ कहते हैं ।- 2.3

2.1 - गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ।।

2.2 - गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

3.3 - एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके वरे प्राणमपरे तीर्थं ब्रह्म शाश्वतम् - मनु० 12:123

- कबीर ने सात गुरुओं की गणना की है - 2.4

प्रथम - माता पिता

द्वितीय - गृह धाय

तृतीय- नामकरण करने वाले आचार्य

चतुर्थ - शिक्षा गुरु

पंचम - दीक्षा गुरु

षष्ठ - तत्व गुरु

सप्तम- शब्द गुरु

2.4 - प्रथम गुरु हैं पितु अरु माता । रज बीरज की जो हैं दाता ।।

दूसर गुरु है गृह की धाई । गर्भ बास को बंध कटाई ।।

तीसर गुरु जिन धरिया नामा । लै लै नाम पुकारै गामा ।।

चौथे गुरु जिन शिक्षा दीन्हा । जगत व्यौहार तबै सब चीन्हा ।।

पंचम गुरु जिन वैष्णव कीन्हा । राम नाम को मन्तर दीन्हा ।।

छठवें गुरु जिन भ्रम गढ़ तोड़ा ।
दुविधा मेटि एक से जोड़ा ।।

सप्तम गुरु जिन सब्द लखाया ।
जहाँ का तन सो तहाँ
समाया ।।

सात गुरु संसार में , चेला सब संसार ।
सत गुरु सोई जानिये, जो भौजल
उतरै पार ।।

सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द सरस्वतीनेवंदनीय पंचायतन का विवरण देकर निम्नलिखित को वंदनीय गुरुजन माना है ।- 2.5

माता, पिता, आचार्य, अतिथि, स्त्री के लिये पति और पति के लिये पत्नी पूजनीय है । ये पाँच मूर्तिमान् देव हैं जिनके संग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्य शिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है ।

पुराणों में भी माता पिता की पूजा का आग्रह किया गया है । 2.6

- सर्व तीर्थमयी माता है
- सर्व देवमय पिता हैं

] इसलिये माता पिता की यत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिये ।

स्मार्त पंचदेव उपासना के 5 देव निम्नलिखित हैं - 2.7

आदित्य, गणनाथ, देवी, रुद्र, केशव

2.5 सत्यार्थ प्रकाश : संवत् 2031 पृ0 209

मा नो वधीः पितरं मोत मातरम् ॥1॥ यजु. अ. 16/ मं0 15 ।।

आचार्यो ब्रह्म चर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ।।2।। अथर्व कां. ।।व.5 मं. 17

अतिथिर्गृहानागच्छेत् ।।3।। अथर्व कां. 15 सू. 13 मं. 6

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।।4।। ऋग्वेद मं.8सू. 69 मं. 8

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मा वदिष्यामि ।।5।। तैत्तिरीयोपनि. वल्ली ।अनु.।

कतम एको देव इति स ब्रह्मत्यादित्याचक्षते ।।6।। शतपथ कां. ।।4।प्रपाठक 6 ब्राह्म. 7 कंडिका 10

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्य देवो भव अतिथि देवो भव ।।7।। तैत्तिरीयो. व. । अनु. ।।

2.6 सर्व तीर्थमयी माता सर्वदेव मयः पिता ।
मातरं पितरं तस्मात् सर्वं यत्नेन पूजयेत ।। पद्म पु. सृष्टिखण्ड 47.11.12

2.7 आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम् ।
पञ्च देवभित्युतं सर्व कर्मसु पूजयेत ।।

- तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

- गोस्वामी तुलसीदास जी ने गुरुजन का भी प्रयोग माता पिता आचार्य आदि बड़े लोगों के लिये किया है ।

गुरजन लाज समाज बड़ देखि सीय सकुचानि ।
लागि बिलोकन सखिन्हि तन रघुबीरहि उर आनि ।।- 2.8

- इस प्रकार विभिन्न मान्यताओं एवं व्याख्याओं के आधार पर निम्नलिखित गुरुजन माने जाते हैं -

1- बड़े-बूढ़े, माता, पिता, विप्र, अतिथि, पति, पत्नी
2- आचार्य, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अग्नि, आदित्य, गणनाथ, देवी
3- शिक्षा गुरु, दीक्षा गुरु, तत्व गुरु[2.9], एवं शब्द गुरु

- गोस्वामी जी ने देव, संत, असंतजड़चेतन कवि, वेद, ग्रह, अवधपुरी, पुरनरनारि, कौशल्या, सब रानियों सहित दशरथ, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा सुग्रीव जामवंत, विभीषण अंगद की वंदना की है - 2.10

2.8- मानस- 1:248
2.9- उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ।। गीता:4:34
2.10 गोस्वामी जी के वंदनीयजन

	वंदनीयजन	संदर्भ विवरण मानस
देव	(1) सरस्वती	1.14.1
	(2) गणेश	
	(3) भवानी	1.14.3-8
	(4) शंकर	1.15
	(5) गंगा	1.14.1
	(6) ब्रह्मा	1.14(च)
	(7) हनुमान	1.16.1, 1.17
संत	(8) ब्राह्मण पंडित	1.14(छ.)
	(9) संत, प्रयाग	1.1.4-12
असंत	(10) खल	1.3.1-11
	(11) संत असंत	1.4.3 1.7 (क) (ख)
	(12) जड़ चेतन जीव देवदनुज, नरनाग खग प्रेत गंदर्भ किंनर रज निचर	1.7. (ग) (घ)
	आकर चारि लाख चौरासी जाति जीव जल थल नभ वासी	1.7.1
कवि	(13) वाल्मीकि, व्यास, कलि के कवि, प्राकृत कवि	1.13-2-7
वेद	(14) चारों वेद	1.14(ड)
	(15) ग्रह	1.14(छ)
	(16) अवधपुरी, सरयू	1.15.1
	(17) पुरनरनानारि	1.15.2
	(18) कौशल्या	1.15.4
	दशरथ सब रानियों सहित	1.15.6
	(19) दशरथ	1.16.1,2
	(20) जनक	1.16.1,2
	(21) भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न	1.16.3-9
	(22) सुग्रीव, जामवंत, विभीषण, अंगद	1.17.1

अन्य कृतियोंगत वंदनीय गुरुजन

- विनयपत्रिका गणेश, सूर्य, शिव, देवी, तथा विष्णु की वंदना से प्रारंभ करते हैं । साथ में गंगा, हनुमान, काशी, चित्रकूट, कामदकूट, भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न एवं सीता की वंदना करतेहैं ।

- विनयपत्रिका में स्मार्तोंकी मान्यता के अनुकूल प्रारभ पंचदेव स्तुति से है । किन्तु यह पद्धति केवल विनयपत्रिका के लिये ही अनुमन्य रही है । अन्य ग्रंथों में यह पद्धति नहीं अपनाई गई । मानस में पंचदेव के स्थान में त्रिदेव की वंदना से प्रारंभ है - गणेश, शिव तथा विष्णु । इनके साथ वन्दना की गई है सरस्वतीकी जो वाणी की मंगल कारिणी हैं । गणेश जी और सरस्वती जी ही वाणी के वर्ण, अर्थ, रस, छंद तथा मंगल के दाता हैं। मानस की काव्यशास्त्रीय सफलता अपेक्षित एवं अभीष्ट है । इस कारण यहाँ वाणी विनायकौ की वंदना वरीय रही है । गुरुदेव से ज्ञान तथा कथा प्राप्त हुई है । अतएव गुरुदेव की वंदना के लिये कवि आग्रह है । इसी वर्ग के अंतर्गत रखे हैं सुकवि ॥वाल्मीकि आदि॥ तथा संतजन । कार्पण्ययुत वंदना के अंतर्गत जड़चेतन सभी की वंदना की है । खण्डकाव्य हैं — पार्वतीमंगल तथा जानकी मंगल । इनके निम्नलिखित वंदनीय गुरुजन हैं -

पार्वती मंगल - गुरु , गुणीजन, हिमालय एवं गणेश -

बिनइ गुरुहि, गुनि गनहि, गिरिहि गननाथहिं

जानकी मंगल- गुर , गणेश, शिव, पार्वती, ब्रह्मा, सरस्वती, शेष, सुकवि वेद एवं संत

गुरु गनपति गिरजापति गौरि गिरापति
सारद, सेष, सुकवि, स्त्रुति सन्त सरल मति ।
हाथ जोरि करि विनय सबहिं सिर नावौं ।।

वंदनीयजन क्रम- गोस्वामी जी ने वंदनीय जनक्रम निम्नलिखित दृष्टियों से प्रस्तुत किये हैं-

॥अ॥ वर्णन क्रम ॥आ॥ उद्धार हेतुक क्रम

॥इ॥ राम के वंदनीय गुरुजनक्रम ॥ई॥ राम के प्रियजन क्रम

(अ) गोस्वामी जी ने वंदनीय जन का एक वर्णन क्रम भी रखा है -

(i) ----- बंदौ प्रथम महीसुर चरना

----- सुजन समाज

----- खलगन

----- संत असज्जन

--------- जड़ चेतन जग जीवजत, देव, दनुज, नर, नाग, खग, प्रेत, पितर गंधर्व किंनर रजनिचर

--------- व्यास आदि कवि पुंगव नाना, कलि के कवि, प्राकृत कवि, मुनि (वाल्मीकि)

-------- वेद, विधि, बिबुध, बिप्र, बुध, ग्रह

-------- शारदा, सुरसरिता

-------- (गुरु पितु मातु) महेश भवानी

-------- अवधपुरी, नरनारि, कौशिल्या, रानियों सहित अवधभुआल दशरथ

-------- जनक

(ii) प्रनवौं प्रथम भरत के चरना 1:17:3

-------- लक्ष्मण

-------- शत्रुघ्न

-------- हनुमान

-------- सुग्रीव

-------- जाम्बवान

-------- विभीषण अंगदादि

श्री राम ----------------] रघुपति चरन उपासक जेते 1:18:3, 4
श्री राम नाम ----------------]

{श्री राम नाम}----------- शुक सनकादि

----------- नारद

----------- जनकसुता जगजननि

§आ§ उद्धार हेतुक क्रम- इस वर्णन क्रम के साथ गोस्वामी जी ने उद्धार हेतुक वरीयताक्रम भी प्रस्तुत किया है । विनयपत्रिका में इस प्रकार का संदर्भ आया है ।

द्विज देव गुरु हरि संत बिनु

संसार - पार न पाइये । - 2.11

§इ§ श्री राम के वंदनीय गुरुजन क्रम - श्री राम निम्नलिखित की वंदना करते हैं । वंदना क्रम से उनके वंदनीय जनों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं । अतः यह वर्गीकरण क्रम कहा जायेगा । इसमें वरीयता का कोई क्रम निश्चित नहीं किया जा सकता ।

§i§ माता पिता तथा गुरु - 2.12

§ii§ विप्र 2.13

§iii§ ऋषिगण 2.18

§4§ गणेश, शिव, गंगा - 2.14, सुर -2.15

§5§ प्रयागराज - 2.16

यमुना जी 2.17

अयोध्या जी 2.19

2.11- विनयपत्रिका पद ।2।

2.12- प्रातकाल उठिकै रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहिं माथा ।।-मानस 2:204:7

2.13- कवच अभेद बिप्र गुर पूजा । एहि सम बिजय उपाय न दूजा ।।-मानस 6.79.10

2.14- तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ - मानस- 2.104 तथा
सुमिरि संभु गुर बिप्र पद किए नींद बस नैन ।।- मानस- 1.357 तथा
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।मानस 6.1.6

2.15- सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए । मानस- 1.220 छं.

2.16- करि प्रनामु देखत बन बागा । कहत महातम अति अनुरागा ।।-मानस-2.105.4

2.17- पुनि सियँ राम लखन कर जोरी । जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी ।।मानस2.111.1

2.18- रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनन्दन ।। मानस 2.274.7

2.19- सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम : मानस 6.120§क§

॥ई॥ श्री राम के प्रियजन क्रम- श्रीराम के प्रियजनों के क्रम का भी उल्लेख हुआ है तथा उनको वरीयता क्रम में प्रस्तुत किया गया है - 2.20

॥1॥ मनुष्यों में ---------------- - द्विज

द्विजों में ---------- - वेदज्ञ

वेदज्ञों में ---------- - वेद धर्म पर चलने वाले

वेद धर्म पर चलने वालों में --- - वैराग्यवान

वैराग्यवानों में --- - ज्ञानी

ज्ञानियों में ---- - विज्ञानी

विज्ञानियों में ---- - निज दास

॥2॥ शिव - सिव समान प्रिय मोहि न दूजा

॥3॥ श्री राम के वशिष्ठ कुल गुरु हैं तथा विश्वामित्र आचार्य हैं - 2.21

- इन पाँचों वंदनीयजन क्रम का पुनरावलोकन वंदनीयजन के विशेष वर्गों के अन्तर्गत किया जा सकता है । जिनमें वरीयता विवेचन भी सम्भव होगी ।

वंदनीयजन के विशेष वर्ग - गोस्वामी जी का वंदनीय वर्ग एक सामान्य तथा व्यापक वर्ग है । इस वर्ग में उन्होंने यथास्थान वंदनीय जनों के विशेष एवं प्रमुख वर्ग प्रस्तुत किये हैं । ये वर्ग निम्नलिखित हैं :-

---

2.20- सबतें अधिक मनुज मोहि भाए । तिन्ह महँ द्विज महँ श्रुतिधारी ।
तिन्ह महँ निगम धरम अनुसारी ॥7.85.5
तिन्ह महँ प्रियबिरत पुनि ग्यानी ।
ग्यानिहुते अति प्रिय बिग्यानी ॥- 7.85.6
तिन्हते पुनि मोहि प्रिय निज दासा ॥-7.85.7

2.21- कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही ।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही ॥- 1.319 छं.

- पूजनीय वर्ग
- नमनीय वर्ग
- वंदनीय वर्ग
-स्मरणीय वर्ग

यह वर्गीकरण पूजन, नमन वंदन , स्मरण संबंधी शब्द प्रयोगों के आधार पर संकेतित हुआ है अन्यथा वरीयता परक किसी वर्गीकरण की समीचीनता सिद्ध नहीं होती तथा गोस्वामी जी से इस प्रकार के वर्गीकरण की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी जो अन्यथा अवमानना की कोटि में आती है ।

पूजनीय वर्ग - पूजनीय वर्ग में हैं -

- ऋषि एवं मुनि
- वर एवं वरयात्री
- भगवान् राम

पूजनीय ऋषि एवं मुनि - ऋषि एवं मुनि पूजनीय वर्ग है । इस संदर्भ में सामान्य रूप से मुनि वर्ग के साथ वशिष्ठ विश्वामित्र तथा बामदेव का विशेष उल्लेख हुआ है ।

मुनि वर्ग - आए मुनिबर निकर तब ....पूजि सप्रेम बरासन दीन्हें।[2.22]

वशिष्ठ एवं विश्वामित्र जी - कुल इष्ट सरिस वसिष्ट पूजे .....
कौसिकहि पूजत परम प्रीति...... 2.23
- चरन पखारि कीन्हि अति पूजा ...2.24(अ)
- करि पूजा मुनि सुजसु बखानी ......2.24(ब)
- बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस .. 2.25

वर एवं वरयात्री- - करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा।
राम गमनु मंडप तब कीन्हा ।।- 2.26

2.22- मानस - 1.330.4 2.23 मानस- 1.319 छं.
2.24(अ)- मानस- 1.206.3 (महाराज दशरथ द्वारा विश्वामित्र की पूजा)
2.24(ब)- मानस- 1.44.6 (याज्ञवल्कि द्वारा भरद्वाज की पूजा)
2.25- मानस- 1.320 2.26- मानस- 1.318.4

- बहुरि कीन्हि कौसलपति पूजा .. 2.27
- पूजे भूपति सकल बराती 2.28

भगवान् राम-

- पूजहिं प्रभुहिं देव बहु बेषा ।- 2.29
- निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिविध प्रकार .. 2.30

नमनीय वर्ग में हैं - 2.31

सुजन समाज, खलजन, आकर चारि लाख चौरासी,

कलि के कवि, गुरु पितु मातु महेश भवानी ,

पुरनरनारि, दशरथ सब रानियों सहित, भरत पवन कुमार,

सुक सनकादिएवं नारद, आदि

- सती को भगवान् राम विधिवत प्रणाम करते हैं । इस प्रणम्य वर्ग में सती विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ।।- 2.32

2.27- मानस- 1.320
2.28- मानस- 1.320.3
2.29- मानस- ~~1.44.6~~ 1.54.3
2.30- मानस- 1.310
2.31- मानस- 1.54.3
- सुजन समाज सकल गुन खानी । करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी ** 1.1.4
- पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना । पर अघ सुनइ सहस दस काना- ।1.3.9।
- आकर चारि लाख चौरासी । जाति जीव जल थल नभ बासी ।
सीय राममय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।। ।1.7।
- कलि के कबिन्ह करउँ परनामा । ।1.13.4।
- गुरु पितु मातु महेस भवानी । प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी । 1.14.3।
- प्रनवउँ पुरनरनारि ।1.15.2।
- दसरथ राउ सहित सब रानी ... करउँ प्रनाम ... ।1.15.6,7।
- प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना । 1.16.1।
- प्रनवउँ पवनकुमार । 1.17।
- सुक सनकादि भगत मुनि नारद... प्रनवउँ सबहिं । 1.17.5,6।

2.32 मानस 1.527

वंदनीय वर्ग - वंदनीय वर्ग यों तो सामान्य रूप से सभी वर्गों को आकलित करता है, फिर भी वंदनीय वर्ग के अंतर्गत विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं- 2.33

- गुरु, वेद, देव, विप्र, बुध, शारदा, गंगा, महर्षि वाल्मीकि,
- भगवान् राम तथा राम नाम

स्मरणीय वर्ग - स्मरणीय वर्ग में हैं - 2.34

- गणेश, शिव पार्वती, गुरु, विप्र,
- भगवान् राम तथा राम नाम

वंदनीय गुरुजन की मूल भावना - वंदनीय गुरुजन की मूल भावना वस्तुत: स्मरणीय वर्ग में प्रस्तुत एवं प्रकट हुई है। वंदनीय गुरुजन वर्गों को दो श्रेणियों में रख कर विचार कर सकते हैं -

प्रथम श्रेणी - आचारिक एवं औपचारिक

द्वितीय श्रेणी- संस्कारिक एवं सांबलिक

2.33- बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि- मानस 1.0.5
बंदउँ चारिउ बेद - मानस- 1.14(ङ.)
बिबुध, बिप्र, बुध, ग्रहचरन बंदि कहउँ करजोरि - मानस- 1.14.(छ.)
पुनि बंदउ सारद सुरसरिता (मानस 1.14.1)
बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ (मानस 1.14 (घ))
पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदउँ सब लायक (मानस 1.17.9)
बंदउ नाम राम रघुबर को (मानस 1.18.1)

2.34- जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन (मानस 1.0.1)
गणेश — सुमिरे सिद्धि गनेस (मानस 1.338) सुमिरि गजानन (मानस 1.338.8)
सुमिरि संभु गिरिजा (मानस 1.346.8) सुमिरि संभु गिरिजा.. ( )

शिव पार्वती — सुमिरि सिवासिव पाइ पसाऊ (मानस 1.14.8)
मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी ।।-मानस 1.266.5
सुमिरि महेसहिं कहई निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी ।।-मानस 2.43.7

गुरु - गुरहिं प्रनामु मनहिं मन कीन्हा (मानस 1.260.5)
विप्र - मन महुँ बिप्र चरन सिरु नायो। उतर दिसिहि बिमान चलायो (मानस 6.118.2)

राम नाम सिव सुमिरन लागे (मानस 1.59.3)
रामतथा रामनाम — सुमिरि राम गुर आयसु पाई। चले महीपति संख बजाई।।मानस- 1.301.3
आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह देखा ।।मा.-3.29.18
चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा (मानस- 5.0.4)
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा (मानस - 5.5.3)
सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा ।।मा.-6.75.15

- 11

- आचारिक एवं औपचारिक श्रेणी में पूजनीय, नमनीय तथा वंदनीय वर्ग आते हैं । आचार एवं उपचार के रूप में इन वर्गों के अंतर्गत पूजन, नमन और वंदन होता है । गोस्वामी जी के काव्य की निष्ठागत विशेषता के अंतर्गत यह अवश्य है कि इस श्रेणी में भी सत्यनिष्ठा, भाव एवं भावना का आधार रहा है तथा औपचारिक स्थिति कहीं नहीं आ पाई है किन्तु अधुना यह मात्र औपचारिक ही रह गये हैं ।

- द्वितीय श्रेणी संस्कार एवं संबल से संबंधित है तथा इसके अंतर्गत चतुर्थ स्मरणीय वर्ग आता है । यह वर्ग ही मुख्य अभीष्ट को सिद्ध करता है तथा वंदनीय गुरुजन की मूल भावना को अभिव्यक्त करता है ।

- वंदनीय गुरुजन की मूल भावना यह है कि वंदनीय गुरुजन को हम अपनी प्रत्येक स्थिति में स्मरण करें तथा वह हमारे क्रिया कलापों, आशा, अपेक्षाओं तथा भाव एवं भावनाओं के लिये संबल बनें, प्रेरणा दें तथा प्रोत्साहित करें ।

- इसी दृष्टि से गोस्वामी जी के निम्नलिखित पाँच वंदनीय गुरुजन हैं -

1 गणेश
2 शिव पार्वती
3 गुरु
4 विप्र
5 भगवान् राम तथा राम नाम

- इन वंदनीय गुरुजनों को जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में स्मरण करते हैं तथा उनके संबल को लेकर पार होते हैं ।

- प्रसाद की परिस्थितियों में इसलिये स्मरण करते हैं कि कहीं अहंकार न हो जाय और अनावश्यक कठिनाइयाँ न आ जायँ, जैसी नारद जी के सामने काम विजय पर उत्पन्न अहंकार के कारण आ गई थीं । इनमें दो श्रेणी हैं एक संस्कार की, दूसरी संबल की ।

- संस्कार श्रेणी के अंतर्गत परंपरा से गुरुजन विशेष को स्मरण करते आ रहे होते हैं और यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि उनके स्मरण से मंगल होगा । इस श्रेणी के अंतर्गत गणेश जी हैं जो हिन्दू संस्कृति के मंगलकरण एवं विघ्नहरण देव के रूप में कार्य-प्रारंभ के अवसर पर स्मरण किये जाते हैं ।

- गोस्वामी जी ने यद्यपि ग्रंथारंभ में तो परंपरा का ही पालन किया है किन्तु अन्यत्र इस सांस्कृतिक व्यवस्था का विकल्प भी प्रस्तुत किया है -

- गणेश जी के स्थान पर भगवान् राम का स्मरण करने का विकल्प गोस्वामी जी अनन्य राम भक्ति के संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं ।

प्रबिसि नगर कीजअ सब काजा । हृदयँ राखि कोसलपति राजा ।।- 2.35

- वास्तुकारों की परंपरा में गणेश जी के स्थान पर विधि को स्मरण करते हैं , इस सांस्कृतिक सूक्ष्म तत्त्व का गोस्वामी जी ने अवलोकन किया है तथा इसका विशेष उल्लेख किया है -

पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना । जे बितान बिधि कुसल सुजाना ।।
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा । बिरचे कनक कदलि के खंभा ।।- 2.36

संबल श्रेणी के अंतर्गत - प्रसाद की सुखद परिस्थितियाँ निर्विघ्न संपन्न हो जाय, इस आशा एवं आकांक्षा से तथा कहीं रंग में भंग न हो जाय, इस आशंका के निवारणार्थ वंदनीय गुरुजन का स्मरण करते हैं ।

ग्रंथ रचना प्रारंभ करके आगे बढ़ते हुये स्मरण करते हैं -
सो उमेस मोहि पर अनुकूला। करिहिं कथा मुद मंगल मूला ।।
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ । बरनउँ राम चरित चित चाऊ।।-2.37

- पुरस्कार के अवसर पर भगवान् राम गुरु स्मरण करते हैं तथा अति सरलता से कार्य संपन्न होता है ।

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा । अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा ।।-2.38

- वरयात्रा के अवसर पर महाराज दशरथ राम का वंदनीय गुरुजन के रूप में स्मरण करते हैं जिससे विवाह सानन्द संपन्न हो ।

सुमिरि राम गुर आयसु पाई । चले महीपति संख बजाई ।।- 2.39

2.35- मानस- 5.4.1
2.36-मानस-1.286.7,8
2.37- मानस-1.14.7,8
2.38-मानस- 1.260.5
2.39- मानस- 1.301.3

- सीता खोज के अवसर पर हनुमान् राम का स्मरण करके प्रस्थान करते हैं जिससे अभीष्ट-सिद्धि हो तथा कार्य संपन्न करने की शक्तिसामर्थ्य सुलभ हो -

जब लगि आवौं सीतहि देखी । होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी ।।
यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा । चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा ।।- 2.40

- प्रातः काल उठने पर नाम स्मरण जिससे दिन सकुशल एवं सानन्द व्यतीत हो-

.... तेहीं समय बिभीषनु जागा ।
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा । - 2.41

- संजीवनी बूटी लेने के लिए प्रस्थान करते समय प्रभु स्मरण जिससे यह असाधारण पुरुष्कार सिद्ध हो -

राम चरन सरसिज उर राखी । चला प्रभंजनसुत बल भाषी ।।- 2.42

- मेघनाद वध के लिये कृतसंकल्प होकर जाते समय तथा सरसंधान करते समय भगवान् राम का स्मरण जिससे अभीष्ट सिद्ध हो -

रघुपति चरन नाइ सिरु चलेऊ तुरंत अनंत - 2.43
सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा । सर संधान कीन्ह करि दापा ।।- 2.44

- लंका विजय के पश्चात् अयोध्या वापस आने के अवसर पर भगवान् राम सकुशल यात्रा के लिये विप्र चरन स्मरण करते हैं -

मन महुँ बिप्र चरन सिरु नायो । उतर दिसिहि बिमान चलायो ।।-2.45

- विषाद की परिस्थितियों में वंदनीय गुरुजन के स्मरण से संकट को सहन करने की शक्ति मिलती है तथा साहस बना रहता है जिनके फलस्वरूप विषाद की परिस्थितियाँ शान्त होतीं हैं तथा संकट दूर हो जाता है ।

- सती मोह के प्रसंग में सती का आत्मग्लानिगत विषाद तथा उससे मुक्ति के लिये राम का स्मरण -

---

2.40- मानस- 5.0.3,4
2.41- मानस- 5.5.2,3
2.42- मानस- 6.55.1
2.43- मानस- 6.75
2.44- मानस- 6.75.15
2.45- मानस- 6.118.2

- कहि न जाइ कछु हृदय गलानी । मनमहिं रामहिं सुमिर सयानी ।।-2.46

- शिव जी का सती के छलकपट पूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध होकर भगवान् राम का स्मरण करना तथा विषम स्थिति को सुलझाने के लिये बोध प्राप्त करना

- तब संकर प्रभु पद सिरु नावा । सुमिरत राम हृदय अस आवा ।।-2.47 ॥अ॥

- शिव जी के "एहिं तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं" इस प्रकरण के हेतु अखण्ड अपार समाधि लेना तथा समाधि छोड़ कर जागने के अवसर पर परिस्थितिजन्य विषाद की भावभूमि में राम का स्मरण करना -

-राम नाम सिव सुमिरन लागे । जानेउ सतीं जगतपति जागे ।।- 2.47 ॥ब॥

- धनुष भंग के अवसर पर सीता जी की विकलता तथा चाप की गुरुता दूर करने के लिये पार्वती जी का स्मरण -

मनहीं मन मनाव अकुलानी । होहु प्रसन्न महेस भवानी ।।- 2.48

- महाराज दशरथ की वनवास प्रसंग में विषाद की असह्य स्थिति तथा शिव जी का स्मरण कि राम आज्ञा न मानकर वन न जावें; विषाद की विमूढ़ स्थिति में इस प्रकार की कल्पनायें हुआ करतीं हैं जिनसे मन तात्कालिक रूप में बहल जाता है -

- सुमिरि महेसहिं कहइ निहोरी । बिनती सुनहु सदासिव मोरी ।।- 2.49

- विपन्न स्थिति में राम का स्मरण करना जिससे चित्त को शांति एवं कष्ट सहन की शक्ति प्राप्त हो । गीधपति की आहत स्थिति इस प्रकार की है -

- आगें परा गीधपति देखा । सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ।।-2.50

- भरत को हनुमान् को आततायी समझ कर आहत करना तथा हनुमान् का राम राम स्मरण करते हुए मूर्च्छित होना -

- परेउ मुरुछि महि लागत सायक । सुमिरत राम राम रघुनायक ।।- 2.51

- भ्रांतिपूर्ण विपन्न स्थिति में एवं अन्यथा शपथ से सत्यता, निष्ठा एवं आन प्रमाणित करते हैं । इन अवसरों पर भी शिव और राम को ही लिया गया है । इस संदर्भ में शपथ

2.47 ॥अ॥- मानस- 1.56.1 2.47 ॥ब॥- मानस-1.59.3 2.48- मानस-1.256.5
2.49- मानस- 2.43.7 2.50- मानस-3.29.18 2.51-मानस -6.58.1

साखी तथा दोहाई तीन शब्दों का प्रयोग हुआ है -

राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ । राममातु कछु कहेऊ न काऊ ।।- {2.31.1}

राम सपथ दीन्हें हम त्यागे । - {5.53.4}

मोरें भरतु रामु दोई आँखी । सत्य कहउँ करि संकरु साखी ।। {1.30.6}

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ।।-2.263.।

देहिं लोग बहु मोल न लेहीं । फेरत राम दोहाई देहीं ।।-{ 2.249.4}

तब मोहि कहँ जसि देब रजाई । सोई करिहउँ रघुबीर दोहाई ।।-{2.103.6}

- इस प्रकार वंदनीय गुरुजन की स्मरण की विशेष स्थिति है, जिसके अंतर्गत वह मानसी एवं आत्मिक स्तर पर वंदनकर्ता से जुड़ जाते हैं । यह विशेष स्थिति ही वंदनीय गुरुजन के निर्धारण का मानक है । इस स्थिति से संबंद्ध ही स्मरण की जपनीय स्थिति है । जिसमें सतत स्मरण से मन को विश्राम मिलता है , प्रभु प्रसाद प्राप्त होता है ।

जपहु जाइ संकर सत नामा । होइहि हृदय तुरत बिश्रामा ।।- 2.52

नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ।।- 2.53

- इसी संदर्भ में नाम जप की महिमा गाई गई है -

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ।।- 2.54

- पूजा, वंदन, नमन और स्मरण में स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होने का एक क्रम है । पूजा स्थूल कर्म है । नमन उससे कम स्थूल है । वंदन और भी कम तथा स्मरण मात्र सूक्ष्म एवं ध्यानगत साधना ही है । कर्म में मन की स्थिति तन्मय हो भी सकती और नहीं भी, किन्तु ध्यान में तो मन की एकाग्रता एवं तन्मयता अनिवार्य है । इस परिवेश में ही स्मरण मन मानस एवं व्यक्तित्व का अङ्गागी भाव बन कर सिद्धि और सफलता का साधन बन जाता है । वंदनीय गुरुजन व्यक्तित्व प्रभावी छबि है जो अपनी इस प्रभु विष्णुता में क्रियाशील रहती है ।

- गोस्वामी जी ने स्थूल कर्मकाण्ड की भूमि पर ध्यान धारणा की सुवास को जीवन-साधना का, आचारिक अभीष्ट का और काव्यपरमार्थ का मूल तत्व माना है । संसार समर में विजय रथ की उनकी कल्पना इसी प्रकार की है - 2.55

2.52- मानस- 1.137.5 2.53-मानस-1.25.4 2.54-मानस- 1.27.1

2.55- मानस- 6.79.5-10

- सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ।।
  बल बिबेक दम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ।।
  ईस भजनु सारथी सुजाना । बिरति चर्म संतोष कृपाना ।।
  दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा ।।
  अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ।।
  कवच अभेद बिप्र गुर पूजा । एहि सम बिजय उपाय न दूजा ।।
  सखा धर्ममय अस रथ जाकें । जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ।।

- अध्यात्म के क्षेत्र में भी गोस्वामी जी योग, यज्ञजप, तप, व्रत तथा पूजा जैसी कर्म काण्डीय स्थूल मान्यताओं के स्थान पर सूक्ष्म स्मरण की प्रतिष्ठा करते हैं ।

- एहिं कलिकाल न साधन दूजा जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ।
  रामहिं सुमिरिअ गाइअ रामहिं, संतत सुनिअ रामगुन ग्रामहिं ।।- §2.56 §अ§

- स्मरण के भी स्थूल और सूक्ष्म रूप हैं । स्थूल रूप है गान तथा कथा श्रवण, सूक्ष्म रूप है- स्मरण जो ध्यान का अंग है - 2.56 §ब§

- गान तथा कथा श्रवण में स्मरण की अच्छी स्थिति भी बन जाती है । मन के लगाव एवं अटकाव के लिये तथा एकाग्र होने के लिये गान तथा गुणगान का बड़ा महत्व है । इनके साथ अन्तर में , जिसका गान हो रहा है , जिसके गुणग्रामों का वर्णन हो रहा है, उसका ध्यान एवं स्मरण स्वतः होने लगता है । यही नहीं गुणग्रामों के संदर्भ में आराध्य की अहेतुक कृपा व दया के प्रसंग स्मरण को भाव व प्रेमपूर्ण भी बना देते हैं और स्मरण का एक स्वरूप उभर कर मनमानस में उरेहित हो जाता है । इसीलिये गोस्वामी जी ने कथा कथन श्रवण , गुणगान तथा सत्संग की अपार महिमा गाई हैऔर इन्हें मानसी साधना का आवश्यक अंग माना है ।

- पूजा पाठ, कर्मकाण्ड तथा नये-नये संप्रदायों के आविर्भाव के युग एवं उसके प्रबल प्रभाव में मात्र मानसी पूजा का प्रचार करना वस्तुतः गोस्वामी जी की क्रान्तिकारी भूमिका रही है ।

2.256 §अ§- मानस- 7.129.56

2.256 §ब§- कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके । रामलखन सम प्रिय तुलसी के । मानस1.19.3 -17

वंदनीय गुरुजन का पारस्परिक तुलना एवं विकास परक अनुशीलन -

स्मार्त मान्यतागत- पाँच वंदनीय गुरुजनों में से गणनाथ , राम, राम नाम एवं शिव पार्वती संबंधी विस्तृत वर्णन स्तुतियों के अंतर्गत वंदना खण्ड में किया जा चुका है । यहाँ गुरु एवं विप्र संबंधी वर्णन भी प्रस्तुत करना अपेक्षित एवं शेष है । गुरु शब्द के अंतर्गत आचार्य, दीक्षा गुरु ,माता, पिता तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी का समावेश हो जाता है ।

स्वरुप - गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव हैं ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुसाक्षात् परब्रह्मतस्मै श्री गुरुवे नमः

- गुरु भगवान का नर रुप है ।- 2.57

कृपा सिंधु नर रुप हरि

- भगवान शिव गुरुरुप तथा त्रिभुवन के गुरु हैं - 2.58

बंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रुपिणम् ।।

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना । आन जीव पाँवर का जाना ।।

-महिमा एवं मर्यादा -

वचन - महामोह को नष्ट करने वाले - 2.59

पद नख ज्योति का स्मरण करने से हृदय में दिव्यदृष्टि होती है । - 2.60

मोह नष्ट होता है । हृदय नेत्र खुल जाते हैं तथा भवदोष दुख मिट जाते हैं ।

पद रज की बड़ी महिमा है । नेत्रों के लिये वह अमृत है तथा नेत्रों के दोषों को दूर करती है । - 2.61

गुरु विना ज्ञान नहीं हो सकता - बिनु गुर होइ कि ग्यान - 2.62

2.57- मानस- 1.0.5 2.58- मानस-1.0.3 तथा 1.110.5

2.59- महा मोह तम पुंज जासु बचन रबिकरनिकर ।।- मानस- 1.0.5

2.60- श्री गुर पद नख मनिगन जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ।।मानस1.0.5

2.61- गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन । नयन अमिय दृग दोष बिभंजन ।। मानस-1.1.1

2.62- जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं । ते जनु सकल बिभव बस करहीं ।। मानस- 2.2.5

<u>गुरु अवज्ञा अति अघ है</u> - अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस ।।- 2.63

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।।- 2.64

<u>गुरु का दायित्व</u> - शिष्य के शोक को नष्ट करना है जो ऐसा नहीं करते वह गुरु घोर नरक में पड़ते हैं।- 2.65 ‖अ‖

- इस प्रकार गुरु आध्यात्मिक क्षेत्र का पथ प्रदर्शक एवं सहायक है तथा आत्म साक्षात्कार करा देने के लिये उत्सुक एवं प्रयत्नशील रहता है । -2.65 ‖ब‖ कबीर ने भी गुरु के इसी रूप की वंदना की है -

> गुरु गोविन्द दोउ खड़े काके लागौं पांय ।
> बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियौ लखाय ।।

<u>विप्र- स्वरूप</u> -

गोस्वामी जी विप्र स्वरूप का सुंदर शब्द चित्र प्रस्तुत करते हैं -

- कर में वेद लिये हैं - कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना - 2.66
- वेद ध्वनि करते हैं - करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता -2.67
  जहँ तहँ बिप्र बेद धुनि करहीं - 2.68
- आशीष देती हुई मुद्रा है- बिप्र बृंद बंदे दुहुँ भाई । मन भावती असीसें पाईं ।।- 2.69
- बड़ा कृपालु स्वभाव है- चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी ।।- 2.70
- क्षमाशील, पर उपकारी एवं साधु वृति - 2.71

> तदपि तुम्हारि साधुता देखी
> छमासील जे पर उपकारी । ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी ।।-

2.63. मानस-2.106 2.64- मानस-7.106.5

2.65 ‖अ‖-हरइ सिष्य धन सोक न हरई । सो गुर घोर नरक महुँ परई ।।-मानस-2.17

2.65 ‖ब‖- दर्शनात्स्पर्शनाच्छब्दात्कृपया शिष्य देह के ।
जनयेध: समावेशं शाम्भवं सहि देशिकः ।।- योग वशिष्ट 128:57
अपने दर्शन, स्पर्श और वाक्य प्रयोग से जो कृपा करके शिष्य के शरीर में शिवस्वरूप परमात्मा का प्रवेश उत्पन्न कर दे वही गुरु है ।

2.66. मानस- 1.302.8 2.67. मानस-1.312.4 2.68. मानस-1.264.4

2.69. मानस-1.307.6 2.70. मानस-1.281.4 2.71-मानस- 7.108.4,5

विप्र महिमा -

- विप्र राजा के राज्याभिषेक के पुरस्कर्ता एवं साक्षी होते हैं -

लछिमन तुरत बोलाए । पुरजन बिप्र समाज ।
राज दीन्ह सुग्रीव कहँ, अंगद कहँ जुबराज ।।- 2.72

गुर बसिष्ठ द्विज लिए बुलाई । आजु सुघरी सुदिन समुदाई ।।
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन । रामचंद्र बैठहिं सिंघासन ।।- 2.73

× × × × × × × ×

बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे । नभ सुरमुनि जय जयति पुकारे ।।
प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा । पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा ।।-2.72

- विप्र , शुभशकुन हैं तथा उनके दर्शन से मंगल सूचना प्रतिध्वनित होती है ।

सनमुख आयउ दधि अरु मीना । कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना ।।-2.75

-कल्याणकामी कार्यों के लिये विप्र रूप धारण करना अपेक्षित रहा है - 2.76
विप्र रूप धारण करके भेद लेने का कार्य भी अनुचित किंवा अपराधजनक नहीं माना जाता था ।

बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ । माथ नाइ पूछत अस भयऊ ।।-2.77
बिप्र रूप धरि बचन सुनाए । सुनत बिभीषन उठि तहँ आए ।।- 2.78
कनक थार भरि मनिगन नाना । बिप्ररूप आयउ तजि माना ।।- 2.79
बिप्ररूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत ।।- 2.80
ब्रह्मादि सुरबर बिप्र बेष बनाइ कौतुक देखहीं ।।- 2.8। ॥अ॥

विप्र मान्यता- विप्र की सर्वोपरि स्थिति रही है । विप्र के प्रति किसी प्रकार का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता । विप्र की किसी प्रकार की आलोचना नहीं की जा सकती । विप्र अपमान घोर पाप एवं दण्डनीय अपराध माना गया है ।

2.72- मानस- 4.11 2.73-मानस-7.9.4,5 2.74- मानस-7.11.4,5
2.75- मानस- 1.302.8, 2.18
2.76- आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में इस प्रकार का कार्य अपराध माना जाने लगा है।
2.77- मानस- 4.0.6 2.78- मानस- 5.5.5 2.79-मानस- 5.57.8
2.80 ॥अ॥- मानस- 7.1॥क॥

- प्रत्येक सभ्यता का कोई न कोई मुख्य गुण पूज्य माना गया है जैसे- अमेरिका में डालर ‡द्रव्य‡ इंगलैण्ड में पारलियामेंट ‡ अर्थ है वक्तृता का स्थान‡ वाक्शक्ति , इसी प्रकार आर्य सभ्यता में ब्राह्मण शक्ति ‡ SPIRITUAL POWER ‡ ही पूज्य थी । क्षात्रशक्ति शासन करती थी पर ब्राह्मण शक्ति के आदेशों के अनुसार। ब्राह्मणशक्ति विधायका सत्ता थी और क्षात्रशक्ति प्रशासिका सत्ता थी । विधायका सत्ता सर्वोच्च सत्ता होने के कारण सर्व पूज्य रही है और उसकी अवमानना अपराध माना गया है ।- 2.8। ‡ब‡

पूजिअ बिप्र सीलगुन हीना । सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना ।।-2.82

अब जनि करहिं बिप्र अपमाना । जानेसु संत अनंत समाना ।।- 2.83‡अ‡

- विप्र गुरु ,संत, अनंत के समान हैं । इसीलिये उनके प्रति वंदन , पूजन एवं सम्मान-समादर ही एकमात्र अपेक्षित व्यवहार माना गया है ।

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मनक्रम बचन बिप्र पद पूजा ।।
2.83‡ब‡

- विप्र-अपेक्षा -

-विप्र से इन्हीं संदर्भों में अपेक्षा की जाती है कि वह वेदज्ञ हों, परोपकारी हों,क्षमाशील हों तथा जन-जन के कल्याणकामी हों ।

- सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना ।।- 2.84

-वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तम:
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तप: परमिहोच्यते ।।- 2.85

- विप्र को संत के समान कह कर संतों के लक्षणों[2.86] की अपेक्षा की गई है । संत लक्षणों में संतों के लिये विप्र पद प्रेम की अपेक्षा है । इस प्रकार विप्र संतों से भी कहीं उच्च श्रेणी में आते हैं ।

2.8।‡ब‡-मानसपीयूष की टिप्पणी‡।.208.4‡ के संदर्भ के आधार पर उल्लेखनीय है ।
2.82-मानस-3.33.2 , 2.83‡अ‡-मानस-7.108.12, 2.83‡ब‡- मानस-7.44.7
2.84.मानस-2.171.3 2.85- मनु. 2/166
2.86- षट बिकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ।। मानस 3.44.7
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी ।। .8
सावधान मानद मदहीना । धीर धर्म गति परम प्रबीना ।। .9
गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ।।- मानस- 3.45
निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ।।मानस-3.45-1-7

- प्रत्येक सभ्यता का कोई न कोई मुख्य गुण पूज्य माना गया है जैसे- अमेरिका में डालर ।द्रव्य। इंगलैण्ड में पारलियामेंट । अर्थ है वक्तृता का स्थान। वाक्शक्ति , इसी प्रकार आर्य सभ्यता में ब्राह्मण शक्ति । SPIRITUAL POWER । ही पूज्य थी । क्षात्रशक्ति शासन करती थी पर ब्राह्मण शक्ति के आदेशों के अनुसार।ब्राह्मणशक्ति विधायका सत्ता थी और क्षात्रशक्ति प्रशासिका सत्ता थी । विधायका सत्ता सर्वोच्च सत्ता होने के कारण सर्व पूज्य रही है और उसकी अवमानना अपराध माना गया है ।- 2.81 ।ब।

पूजिअ बिप्र सीलगुन हीना । सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना ।।-2.82

अब जनि करहिं बिप्र अपमाना । जानेसु संत अनंत समाना ।।- 2.83।अ।

- विप्र गुरु ,संत, अनंत के समान हैं । इसीलिये उनके प्रति वंदन , पूजन एवं सम्मान-समादर ही एकमात्र अपेक्षित व्यवहार माना गया है ।

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मनक्रम बचन बिप्र पद पूजा ।।
2.83।ब।

- विप्र-अपेक्षा -

-विप्र से इन्हीं संदर्भों में अपेक्षा की जाती है कि वह वेदज्ञ हों, परोपकारी हों,क्षमाशील हों तथा जन-जन के कल्याणकामी हों ।

- सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना ।।- 2.84

-वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः

वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ।।- 2.85

- विप्र को संत के समान कह कर संतों के लक्षणों[2.86] की अपेक्षा की गई है । संत लक्षणों में संतों के लिये विप्र पद प्रेम की अपेक्षा है । इस प्रकार विप्र संतों से भी कहीं उच्च श्रेणी में आते हैं ।

2.81।ब।-मानसपीयूष की टिप्पणी ।1.208.4। के संदर्भ के आधार पर उल्लेखनीय है ।
2.82-मानस-3.33.2 , 2.83।अ।-मानस-7.108.12, 2.83।ब।- मानस-7.44.7
2.84-मानस-2.171.3 2.85- मनु. 2/166.
2.86- षट बिकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ।। मानस 3.44.7
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी ।। .8
सावधान मानद मदहीना । धीर धर्म गति परम प्रबीना ।। .9
गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ।।- मानस- 3.45
निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ।।मानस-3.45-1-7

विप्रगण के अंतर्गत इसी श्रेणी के उदात्तमना ऋषि-मुनियों की गणना की गई है जो विप्र के स्वरूप को अपने महान व्यक्तित्व के द्वारा व्यक्त करते हैं । वे हैं - वामदेव, जाबालि, अगस्त्य, गौतम, कश्यप, मार्कण्डेय आदि - 2.87

- गुरु और विप्र व्यक्तिगत साधना और समाजगत व्यवस्था की दो शक्ति एवं सत्ता रहीं हैं जिनके निर्देशन, नैतिक नियंत्रण एवं परंपरागत अनुशासन में व्यक्ति और समाज की सत्ता क्रियाशील रही है ।

गुरु वस्तुतः परम दिव्य शक्ति का नर रूप माना गया है तथा इस दृष्टि से हमारे आदर्शों, मानमानकों एवं अभीप्साओं का साकार स्वरूप बना है ।

एक ओर गुरु हमारी सामाजिक व्यक्तिगत सत्ता का निर्देशक है तो दूसरी ओर हमारी आध्यात्मिक साधना का पथ प्रदर्शक । व्यक्ति की संपूर्ण मंगल कामनाओं, साधनाओं एवं सिद्धियों को सुलभ कराने की गुरु की अभीप्सा है । इसीलिये उनकी आज्ञा ,उनके आदेश एवं अनुमति सभी लौकिक पारलौकिक कार्यों के लिये अपेक्षित रही है ।

- गुरु राष्ट्र के प्रथम पुरुष हैं विप्र द्वितीय पुरुष अथवा आधुनिक भारतीय राजतंत्रीय शब्दावली में कहें तो गुरु राष्ट्रपति हैं , विप्र लोकसभा है और प्रशासक सत्ता राम प्रधान मंत्री हैं ।

विप्र- गुरु और संतों के समकक्ष शुभकामी निर्देशिका एवं विधायिका शक्ति है जो राजा से रंक तक सबका नैतिक नियंत्रण करती है । मंगल कार्यों के संपादन में पथ प्रदर्शन करती है , राजतंत्र पर अपना अंकुश रखती है ।

- इन्हीं महत्वपूर्ण दायित्वों के संदर्भ में गुरु तथा विप्र का व्यक्तित्व सर्वदा, सर्वत्र, तथा सर्व वर्गों, वर्णों एवं श्रेणियों से वंदनीय , पूजनीय, सम्मान-समादरणीय रहा है । इनका अपमान घोर पातक माना गया है और कठोर रूप में दण्डनीय रहा है ।

मानस में प्रायः स्थलों पर विप्र और गुरु का एक ही व्यक्तित्व भी प्रतिष्ठित हुआ है । उतर काण्ड में शिवशाप के अंतर्गत विप्र ही गुरु है । शिव तो गुरु रूप हैं ही-"वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणं "

2.87- मानस-पीयूष 2030 उतर काण्ड-पृ. 89, सब बिप्रन्ह की व्याख्या के अंतर्गत प्रस्तुत ।

मानस में राम,भरत और शिव तीन विशिष्ट व्यक्तित्व हैं जो वंदनीय श्रेणी के प्रमुख कीर्तिमान हैं किन्तु यह तीनों व्यक्तित्व एक राम के व्यक्तित्व में ही समाहित एवं तदरूप प्रस्तुत हुए हैं ।

भरत राम की परछाहीं हैं- मन थिर करहु देव अस नाहीं। भरतहिं जानि राम परछाहीं।।

राम और शिव में अभेद स्थापित करते हुए शिव को "जगदात्मामहेश पुरारी। जगत जनक सबके हितकारी " कहा है । नाभादास जी की उक्ति "भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर नाम बपु एक" के अनुकूल सीता जी भक्ति , भरत जी भक्त तथा शिव जी गुरु के साथ अभेद तथा तादात्म्य प्राप्त करते हैं ।-2.88

- उत्तर काण्ड में भगवान् राम भी यथास्थान गुरु की भूमिका का निर्वाह करते हैं । वह पुरजनों , प्रियजनों एवं ऋषिमुनियों को उपदेश देते हैं तथा आध्यात्म की गुत्थियों को खोलते हैं -2.89

अतिसिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ । मातु पिता स्वारथ रत ओऊ ।।-2.90

- एक दूसरे अवसर पर वशिष्ठ मुनि भी आकर भगवान राम की पद पंकज प्रीति की प्रतिष्ठा करते हैं और भगवान को ही एकमात्र आराध्य प्रतिपादित करते हैं

तब पद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुंदर ।।-2.91

इस प्रकार गोस्वामी जी वंदनीय गुरुजन के विकासक्रम में अन्यान्य वंदनीय गुरुजनों को एक मात्र भगवान् राम के तादात्म्यएवं रूप व नाम से भी प्रस्तुत करना चाहते हैं -

रामहिं सुमिरिअ गाइअ रामहिं । संतत सुनिअ रामगुन ग्रामहिं ।।-2.91।अ।
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू । लोक लाहु परलोक निबाहू ।।- 2.92।ब।

इसलिए एक राम के नाते ही सबको मानने का उनका आग्रह है -

पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते । सब मानिअहिं राम के नाते ।।- 2.93

2.88- तुलसीदर्शन :मिश्र: 1967 पृ. 119
2.89- संत असंतन के लक्षण भरत जी को सुनाना - । मानस 7.35.6 से 7.।40।
2.90- मानस- 7.46.4 2.91- मानस- 7.48.4
2.91।अ।- मानस-7.129.6 2.92- मानस- 1.19.2
2.93- मानस- 2.73.7

- गुरुजन के विकासक्रम में गणेश मांगलिक एवं औपचारिक गुरुजन हैं । शिवपार्वती भक्ति, साधन एवं साधना के सहायक एवं साधक गुरुजन हैं । गुरु विप्र सामाजिक व्यवस्था के प्रतिष्ठापक गुरुजन हैं । राम परम आराध्य हैं जिनके प्रति अनन्य भक्ति भाव जाग्रत होना चाहिये । राम नाम ब्रह्म राम का निराकार तत्व है तथा परम आराध्य एवं साध्य साधन है जिससे साकार ब्रह्म का साक्षात्कार संभव हो जाता है । इसीलिये आराध्य एवं साध्य साधन हैं जिससे साकार ब्रह्म का साक्षात्कार संभव हो जाता है । इसीलिये राम नाम में साकारत्व का भाव भी समायोजित किया गया है -

> नाम-सो न मातु-पितु मीत-हित, बंधु -गुरु, ,
> साहिब सुधी सुशील सुधाकरु है ।- । विनय 2.55 ।
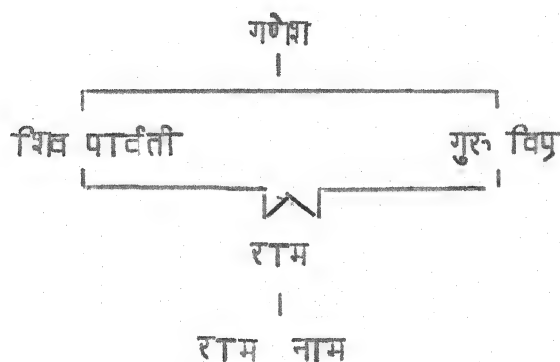
विनय दर्शन

विनयदर्शन

3.0- विनय दर्शन

3.0- विनय दर्शन - एक दर्शन के रूप में विनय की पृथक् से मान्यता नहीं रही है किन्तु योग की व्याख्या के अन्तर्गत इसकी यथास्थान चर्चा हुई है तथा दर्शन के रूप में संदर्भगत प्रतिपादन भी हुआ है । प्रस्तुत शोध संदर्भ में विनय को एक दर्शन के रूप में मान्यता देने अथवा नई स्थापना करने का कोई आग्रह नहीं है । अभीष्ट इतना ही है कि विनय का दर्शन के रूप में भी विवेचना किया जा सकता है एवं किया जाना चाहिये ।

3.3-विनय : एक दर्शन -

3.1.1- योग दृष्टि - दर्शन का अभीष्ट वस्तु का तात्त्विक स्वरूप जानना होता है । "दृश्यतेअनेन इति दर्शनम् " व्याख्या द्वारा यही अर्थ होता है कि " जिसके द्वारा देखा जाये " । योग का अर्थ है जोड़ना, अर्थात् आत्मा का परमात्मा से योग , जीव का ब्रह्म से योग - 3.1

दृश्य का प्रयोजन " तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा " 3.2 कह कर आत्म साक्षात्कार अथवा स्वरूपावस्थिति कहा गया है ।

दर्शन शब्द की शब्दकोशीय व्याख्या के अन्तर्गत भी इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है " तत्त्व ज्ञान संबंधी विद्या या शास्त्र जिसमें प्रकृति,आत्मा,परमात्मा, जगत के नियामक , धर्म और जीवन के अन्तिम लक्ष्य आदि का निरूपण होता है । " - 3.3

3.1-The word 'Yoga' is derived from the Sanskrit Word 'YUJ'. It means the process of joining. Then what does Yoga join ? It joins man to God , manhood to Godhood....
-YOGA : The Way of life : Dr Sivananda Adhv
Published in 'Self Realization :Winter72

3.2- पातञ्जलयोग प्रदीप- { गीता प्रेस } , पंचम संस्करण { पृ. 147

3.3- सं0 हि0 शब्दसागर संवत् 2008, पृ0 550

" दर्शन या जिसके द्वारा देखा जाय " साधन विशेष की ओर इंगित करता है जिसके माध्यम से स्वरूपावस्थिति, आत्मा , परमात्मा, प्रकृति आदि का तात्त्विक स्वरूप प्रकट होता है । यह साधन समाधि बतलाया गया है । समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता -

3.4

समाधि , सुषुप्ति और मोक्ष में ब्रह्मरूपता हो जाती है ।

समाधि से ब्रह्मरूपता किस प्रकार प्राप्त होती है , इस संबंध में पातञ्जल योग सूत्र 20 में व्याख्या प्रस्तुत करते हुये स्पष्ट किया गया है - 3.5

समाधिस्थ स्थिति में चित्त एकाग्र होने लगता है तथा समाधिस्थ एकाग्र चित्त में ऋतम्भरा प्रज्ञा (विवेक-ज्ञान) उत्पन्न होता है जिससे वस्तु का यथार्थ स्वरूप ज्ञात होता है ।

चित्त को एक विषय में लगातार इस प्रकार लगाये रखना कि दूसरा विचार न आने पावे ,- इसको एकाग्रता या सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं - इसके निम्न भेद हैं -

( ) वितर्क - किसी स्थूल विषय में चित्त वृत्ति की एकाग्रता

( ) विचार- " सूक्ष्म " विषय में चित्त वृत्ति की एकाग्रता

( ) आनंद - अहंकार विषय में चित्त वृत्ति की एकाग्रता

( ) अस्मिता- अहंकार रहित अस्मिता विषय में चित्त की वृत्ति की एकाग्रता

( ) विवेक ख्याति- इसमें चित्त का आत्माध्यास भी छूट जाता है और उसके द्वारा आत्मस्वरूप का उससे पृथक् रूप में साक्षात्कार होता है ।

3.4-(सा0 द0 5/116) [illegible]

3.5- पातञ्जलयोग प्रदीप (गीता प्रेस) पंचम संस्करण पृ0- 209

2-----

असम्प्रज्ञात समाधि -

विवेक ख्याति से आगे - चित्त में कोई भी वृत्ति न रहना या मन का किसी विषय की ओर न जाना, सर्ववृत्ति- निरोध असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है ।

वितर्कानुगत समाधि द्वारा- चित्रों का स्थूल स्वरूप तथा पाँच भूतों वाली चित्त की अवस्था का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है ।

विचारानुगत समाधि द्वारा- वृत्ति रूप चित्रों के सूक्ष्म स्वरूप तथा चित्त रूपी पर्दे का सूक्ष्म भूतों से तन्मात्रात्मक की अवस्था का ज्ञान प्राप्त होता है ।

आनन्दानुगत समाधि द्वारा- चित्त की अहंकार रूप अवस्था का साक्षात्कार होता है ।

अस्मितानुगत समाधि द्वारा- अस्मिता (आत्मा से प्रकाशित चित्त) के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है ।

विवेक ख्याति समाधि द्वारा - आत्मा रूपी विद्युत् और चित्त रूपी पर्दे में भेदज्ञान प्राप्त होता है । परन्तु वैराग्य द्वारा इससे भी परे होकर आत्मा रूपी विद्युत् की अपने वास्तविक परमात्म स्वरूप में अवस्थिति होती है ।

पातज्जल योग के समाधिपाद सूत्र 23 तथा साधनपाद सूत्र 45 में समाधि लाभ के लिये " ईश्वर प्रणिधान " को भी एक प्रभावशाली साधन माना गया है ।

" ईश्वर प्रणिधाना द्वा " - ।। 23 ।। समाधिपाद

" समाधि - सिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात् " ।। 45 ।। साधनपाद

3-----

" सत्य संकल्प ईश्वर में भक्ति विशेष। अर्थात् सभी कर्मों और उनके फलों का उसको समर्पण। और उसके गुणों तथा स्वरूप का चिन्तन करने से उसके, अनुग्रह से शीघ्र समाधि लाभ होता है। - 3.6

ईश्वर प्रणिधान के तीन अंग हैं - 3.7

स्तुति, उपासना, प्रार्थना

स्तुति - ईश्वर के पवित्र गुण और नामों का स्मरण और कीर्तन

उपासना - ध्यान, विचार, सत्संग और योगाभ्यास द्वारा ईश्वर की दया, पवित्रता, न्यायशीलता आदि गुणों को प्राप्त करके अपने अंदर लाना।

प्रार्थना - पापों से बचने, अन्त:करण को शुद्ध करने और अपनी निर्बलताओं को दूर करने के लिये ईश्वर से सहायता मांगना।

इस प्रकार विनय की दर्शन के रूप में मान्यता अति प्राचीन काल से रही है। दर्शन ज्ञान का क्षेत्र रहा है। इस कारण भक्ति के क्षेत्र की विनय की, प्रासंगिक चर्चा ही संभव हुई है तथा पृथक् रूप में " विनय दर्शन " की स्थापना की आवश्यकता नहीं समझी गई। ज्ञान मार्ग में उन्नति करते हुये साधक को आंतरिक भाव भूमि में कामना, याचना और विनय रही है किन्तु उसकी प्रधानता न होने के कारण उसकी भूमिका का पृथक् विवेचन आवश्यक नहीं समझा गया। साथ ही " अहं ब्रम्हाऽस्मि " जैसी स्थितियों में यह भूमिका भी नहीं रही। किन्तु भक्ति मार्ग के प्रधान विषय एवं प्रमुख विवेचन के अन्तर्गत विनय की दर्शनीय स्थापना अपेक्षित है।

3.6- श्रद्धा वीर्यस्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ।। 20 ।। पा० यो० सू० 20

3.7- संक्षिप्त हिन्दी शब्दकोश : ना. प्र. स. सवत् 2008

प्रणिधान का शब्दकोशीय अर्थ है - 1- रखा जाना 2- प्रयत्न 3- समाधि (योग) 4- अत्यन्त भक्ति 5- ध्यान, चित्त की एकाग्रता।

4-----

3.1.2- उपनिषद् - दृष्टि- कठोपनिषद् में यमराज परमात्मा से उन्हें जानने की शक्ति प्रदान करने के लिये प्रार्थना करते हैं और विनय दर्शन के स्वरूप एवं महत्त्व को प्रकट करते हैं -

य: सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत् परम् ।

अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेत ँ शकेमहि ।। - 3.8 ॥a॥

हे परमात्मन् ! आप हमें वह सामर्थ्य दीजिये कि जिससे हम निष्कामभाव से यज्ञादि शुभ कर्म करने की विधि को भली भाँति जान सकें और आपकी आज्ञा पालनार्थ उनका अनुष्ठान करके आपकी प्रसन्नता प्राप्त कर सकें तथा जो संसार-समुद्र से पार होने की इच्छा वाले विरक्त पुरूषों के लिये निर्भय पद है, उस परम अविनाशी आप परब्रह्म पुरूषोत्तम भगवान् को भी जानने और प्राप्त करने के योग्य बन जायँ ।

यहाँ यह भाव दिखलाया है कि परब्रह्म पुरूषोत्तम को जानने और प्राप्त करने का सबसे उत्तम और सरल साधन उनसे प्रार्थना करना ही है । - 3.8 ॥b॥

3.1.3- गीता- दृष्टि - गीता में भगवान् ने उस परम तत्त्व को जानने के लिये जिस प्रणति, एवं सेवा की अपेक्षा की है, वह " ईश्वर प्रणिधान " का ही रूप है । गीता भी इस प्रकार इसी तथ्य का प्रतिपादन करती है -

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्व दर्शिनः ।। - गीता : 4 : 34

3.8 ॥a॥- कठ : वल्ली 3 प्र0 । मंत्र 2 अ0 1

3.8 ॥b॥- ईशादि नौ उपनिषद् ॥ गीता प्रेस ॥ नवाँ संस्करण - पृ0 103

3.1.4- अन्य मत -

परमहंस जी का मत - श्री रामकृष्ण परमहंस ने इसी भाव को इस प्रकार प्रस्तुत किया है - 3.9

" वेदान्त में सभी संप्रदायों का समन्वय है । भारत में हमारी एक विचित्र धारणा रहती है । मान लीजिये, मेरी एक सन्तान है । मुझे उसे सिवाय चित्त की एकाग्रता के अभ्यास करने के लिये कहने के अतिरिक्त, किसी धर्म की शिक्षा नहीं देनी है और केवल एक पंक्ति की प्रार्थना- जैसी आप समझते हों वैसी प्रार्थना नहीं : किन्तु यह- " मैं उसका चिन्तन करता हूँ जो इस सृष्टि का कर्ता है , मेरे मन को वह प्रकाशित करे ।"

संत कृपाल सिंह ने भी विनय को चित्त की एकाग्रता का साधन बताते हुये कहा है -

" प्रार्थना " अति स्पष्ट धारणा में मन की शक्तियों की बहिर्गमना तथा भ्रमित बिखराव को मन के मूल में एकत्रित करने का दूसरा नाम है ।" सूर्य की किरणों के समान यह संसार में फैल जातीं हैं और उसी प्रकार अपने स्त्रोत की ओर प्रत्यावर्तित की जा सकती हैं । एक व्यक्ति जो किसी वस्तु के लिये पागल हो रहा है और जिसे वह प्राप्त नहीं कर सकता , या जो किसी ऐसी विपत्ति के कारण जिससे छुटकारा नहीं पा सकता , दुःख एवं विषाद में है, अपने प्रयत्नों की सफलता के लिये अथवा अपनी दुर्वस्था में राहत के लिये , जैसी भी स्थिति हो, ईश्वर की ओर उन्मुख होता है । यह एकाग्र चित्तता, जो प्रमुख सहायता की याचना के अवसर पर होती है, प्रार्थना कही जाती है । - 3.10

3.9- The vedanta includes all sects . We have a peculiar idea in India. Suppose I had a child ; I should not teach him any religion, but the practice of concentrating his mind and just one line of Prayer .Not prayer in your sense,but this-' I meditate on Him who is the creator of the universe; may He enlighten my mind: The Message of our Master 68,5

3.10- I - Prayer is in a strict sense, another name for collecting the outgoing and wandering faculties of mind , at the root of the mind .Like the rays of the sun , these spread out into the world , and likewise these can be withdrawn and collected at their source. A person in infatuation with a thing which he cannot get , or in distress and distraction over some calamity from which he cannot escape , sets his face towards God for success in his endeavors or comfort in his woebegone condition as the case may be .This concentration while begging for help is called PRAYER. - Prayer : Ruhani Satsang 71, 3

6--------

महात्मा गांधी ने भी प्रार्थना को चित्त की एकाग्रता का साधन बताया है । हम किसी एक आवश्यक वस्तु पर , मन को एकाग्र करने के लिये प्रार्थना करते हैं।- 3.11। विनय के द्वारा चित्त की एकाग्रता किस प्रकार संभव होती है , यह जिज्ञासा स्वाभाविक है ।

विनय के स्वरूप पर विचार करने से इस जिज्ञासा का समाधान हो सकता है ।

विनय जिससे की जाती है उसको अपने से बड़ा, समर्थ एवं शक्ति संपन्न मानते हैं और यह विश्वास लेकर विनय करते हैं कि हमारे कष्ट, हमारे संकट, हमारे योगाभ्यास के विघ्न दूर करने की उसमें क्षमता है और वह दूर कर देगा । इस आशा, आस्था एवं विश्वास के संदर्भ में मन अथवा चित्त का बिखराव, भटकाव एवं विभ्रम एक इष्ट के प्रति समाहित होकर एकाग्रता में परिणित हो जाता है । इष्ट के प्रति जितना अधिक विश्वास होगा, उतनी ही अधिक एकाग्रता संभव होगी । इस एकाग्रता में वस्तु या समस्या का तात्त्विक स्वरूप या स्थिति स्पष्ट हो जायेगी । उस परम दिव्य पुरुष के दर्शन अपने अंतर में होगें जो घट-घट वासी है । - 3.12

इस स्थिति को योग सूत्र समाधिपाद सूत्र 29 में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है -

" ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽपि अन्तरायाभावः च "

ईश्वर प्रणिधान बहुत बलवान एवं अत्यन्त सुलभ साधन माना गया है। केवल अभ्यास व वैराग्य द्वारा चित्त निरोध के पीछे पड़े हुये साधक को आत्म तत्त्व का ज्ञान जरूर

3.11-We offer prayers to concentrate our mind on the one thing needful : The Selected Works Of M.Gandhi Vol.V '69,372

3.12-...You know that God is every where ...We need no wings to go in search of Him but have only to find a place where we can be alone and look upon Him present within us ...It is called re-collection because the soul collects together all the faculties and enters within itself to be with God....

-What is Mysticism : D.Knowles 67,88

7-----

होगा तथा एक ही आत्म तत्त्व समस्त चेतनयोनि मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि में दिखाई देगा किन्तु इससे आगे जड़ सृष्टि में व्याप्त आत्म तत्त्व को देखने की दृष्टि ईश्वर प्रणिधान के बिना नहीं मिलेगी, यह निश्चय सिद्धान्त है । आत्मज्ञान से " मैं देह हूँ " यह भावना नष्ट होती है तथा जड़ सृष्टि में व्याप्त आत्म तत्त्व दर्शन से, पदार्थ मात्र हरिमय, दिखाई देता है जिससे विश्व का पदार्थ विषयक मोह नष्ट हो जाता है और साधक अपनी शून्यता का अनुभव करके उस एक अद्वितीय तत्त्व में लीन हो जाता है । यही समाधि है ।

ईश्वर प्रणिधान से प्रत्येक चेतन (जीवात्मा) का अधिगम (साक्षात्कार) होता है तथा अन्तराय (योग विघ्न) का अभाव हो जाता है जिससे समाधि संभव हो जाती है । अन्तराय (योग विघ्न) हैं- व्याधि, स्त्यान (मानसिक निरुत्साह) संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति, अलब्ध, भूमिका (प्रयत्नशील रहने पर भी योग भूमिका का प्राप्त न होना) अनवस्थितत्वानि (योग भूमिका प्राप्त होने पर उस पर टिक न पाना) तथा चित्त विक्षेप ।

यही स्थिति " अविरल भक्ति "[3.13(a)] की भी होती है जिसके द्वारा प्रत्यक चेतन के अधिगम तथा अन्तराय का अभाव हो जाता है ।

3.1.5- गोस्वामी तुलसीदास जी का मत -

3.1.5.1- आत्म साक्षात्कार योग एवं दार्शनिक साधना का परम अभीष्ट एवं काम्य उपलब्धि होती है । समाधि की स्थिति प्राप्त कर साधक आत्म साक्षात्कार प्राप्त करता है । योग की यह उच्च स्थिति विनय परक स्नेह व सुमिरन (स्मरण) से संभव हो जाती है ।

सभा सकल सुनि रघुबर बानी । प्रेम पयोधि अमिअँ जनुसानी ।
सिथिल समाज सनेह समाधी । देखि दसा चुप सारद साधी ।।- 3.13(b)

xxxx xx xx xx xx xx xx xx xx xx

3.13(b) मानस- 2.306.1,2

3.13(a) अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई - 3.9.13
अबिरल भगति माँगि बर, - 3:32

8-------

सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी । सहज बिमल मन लागि समाधी ।। - 3.14

गोस्वामी जी ने योग समाधि से भिन्नता प्रकट करने के लिये प्रस्तुत प्रकरण में " स्नेह समाधि " कह कर एक पृथक् समाधि कोटि की कल्पना की तथा विनय दर्शन की भूमिका का योग समाधि के समकक्ष प्रभाव प्रदर्शित कर अपने मत की पुष्टि की ।

स्मरण से समाधि की साधना का पक्ष पातञ्जल योग के समाधि पाद सूत्र 29 " ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च " के संदर्भ में प्रतिपादित होता है ।

स्मरण विनय के अनुरागी पक्ष का एक अंग है । सुमिरत हरिहि------ अर्थात् भगवान् का स्मरण करते ही उनके अनुराग में भाव विभोरता आई और मन एकाग्र होकर समाधिस्थ हो गया । उपर्युक्त सूत्र की भाषा में कहें तो इस प्रकार कहेंगे कि भगवान् के स्मरण तथा तज्जन्य अनुरागी भाव विभोरता में प्रत्यक् चेतन (जीवात्मा) अधिगम (साक्षात्कार) हुआ, अन्तरायों (विघ्नों) का अभाव हुआ और फलस्वरूप समाधि लग गई ।

यह विनय समाधि का अपना रूप है जिसमें स्नेह स्मरण प्रमुख उपादान एवं साधन है तथा योग समाधि की यमनियमादिगत कठोर साधना से भिन्नता है । यह सहज है । प्रेम की मूल मनोभावी दृष्टि से स्वाभाविक मनोभावगत है , विधि निषेध के बंधनों से मुक्त होने के कारण स्वतः साध्य है । योग समाधि हर एक की वश की बात नहीं है । इस तथ्य से गोस्वामी जी भलीभाँति परिचित थे ।

एक ब्याधिबस नर मरहि ए असाधि बहु ब्याधि ।

पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि ।। - 3.15

× × × × × × × × × × × × × × ×

इसीलिये गोस्वामी जी स्नेह समाधि की प्रतिष्ठा एवं प्रतिपादन करते हैं । जिस प्रकार योग समाधि में चित्त एकाग्र हो जाता है तथा समाधिस्थ एकाग्र चित्त में

3.14- मानस - 1.124.4

3.15- मानस- 7.121 (क)

9------

ऋतम्भरा प्रज्ञा (विवेक ज्ञान) उत्पन्न होती है जिससे साक्षात्कार संभव होता है, उसी प्रकार स्नेह समाधि में भगवान् की रूप माधुरी की मुग्धता में एकाग्र चित्तता आ जाती है और साक्षात्कार संभव हो जाता है। इस एकाग्रता का प्रतिपादन गोस्वामी जी ने इस संदर्भ में विशेष रूप से किया है। एकाग्रता का विश्लेषण करते हुये उन्होने एकाग्रता से पूर्व तन, मन, वाणी, बुद्धि की स्थिति का भी अवलोकन किया है। तन, मन, वाणी, बुद्धि एकाग्रता की स्थिति से पूर्व शिथिल हो जाते हैं तब चित्त की एकाग्रता संभव होती है। यह मनोभावी शिथिलता मूलतः मन के भगवद् - सौन्दर्य के प्रति आकर्षण से संभव होती है। सौन्दर्य के प्रति आकर्षण सहज मनोभाव है, मूल प्रकृति है। जब मन शिथिल हुआ और फलस्वरूप एकाग्र हुआ तो तन, वाणी तो अनुक्रम में स्वतः ही शिथिल हो जाते हैं। भगवान् राम के परम सौंदर्य का अप्रतिम आकर्षण है और गोस्वामी जी को दृढ़ विश्वास है कि उसका दर्शन, स्मरण कर जीव मात्र उसके आकर्षण से अप्रभावित नहीं रह सकता है। यही उनकी काव्य की सृजन शीलता है कि राम के सौन्दर्य की प्रतिष्ठा ऐसी की है कि वह आकर्षण का मूल केन्द्र बन गया है।

तन, मन, वाणी की शिथिलता - एक नयन मग छबि उरआनी।
होहिं सिथिल तन मन बरबानी।।- 3.16

मन की विह्वलता- राम लखन सिय रूप निहारी।
होहिं सनेह बिकल नरनारी ।। - 3.17

चित्त, मन, बुद्धि की एकाग्रता- राम लखन सिय सुंदरताई।
सब चितवहिं चित मन मति लाई ।।- 3.18

मन की मग्नता- (विपक्ष के कुंभकर्ण पर प्रभाव) राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।। - 3.19

3.16- मानस- 2.113.8, 3.17- मानस- 2.110-8

3.18- मानस- 2.115.2 3.19- मानस- 6.63

10------

स्मरण से एकाग्रता प्राप्त करने की प्रक्रिया पर भी गोस्वामी जी विचार करते हैं । जो प्रक्रिया योग साधना में योग की कठिन तपश्चर्या है , वह प्रेम , श्रद्धा , भक्ति, के संदर्भ में विनय की सरल एवं सहज वृत्ति मात्र है ।

श्री गुर पद नख मनि गन जोती
सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती ।।- 3.20

इस दिव्य दृष्टि से आत्म साक्षात्कार संभव हो जाता है । जगत् ब्रह्ममय दिखलाई देने लगता है ।

आकर चारि लाख चौरासी । जाति जीव जल थल नभ बासी ।
सीय राम मय सब जग जानी । करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।- 3.21

3.1.5.1.2- समाधि और एकाग्रता की स्थिति का एक अंग ध्यान है ।

कठिन योग साधना से ध्यान संभव होता है । यह ध्यान भक्ति एवं अनुरागी विनय से सहज ही संभव हो जाता है ।

स्मृति में ध्यान की व्याख्या करते हुये कहा है -

हृदयस्थस्य योगेन देवदेवस्य दर्शनम् ।
ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्षामि सर्वस्माद्योगत: शुभम् ।। - 3.22

योग विधि से सबलता प्राप्त कर हृदय में स्थित अन्तर्यामी प्रभु का दर्शन कर लेने ही को ध्यान कहते हैं । इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृत्ति को अन्तर्मुखी करने पर ध्यान होता है।

3.20- मानस- 1.5.5

3.21- मानस- 1.7.1,2

3.22- स्मृति 7.15-20 स्मृतियाँ संकलन - 1968 पृ0- 332 शाङ्ख स्मृति : 7.15

।।------

गोस्वामी जी योग के इस ध्यान की कठिनाई समझते थे । वह योग प्रक्रिया सहित प्रकाश डालते हुये व्याख्या करते हैं -

जिति पवन मन गो निरस करि

मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं ।।- 3.23

गोस्वामी जी ने प्रेमानुरागी विनय के संदर्भ में ध्यान की सहज स्थिति का प्रतिपादन किया है तथा उसकी सहजता को दृष्टिगत रखते हुये उसे ध्यान रस कहा है । रस कह कर ध्यान की मनोभावी स्वत: स्फूर्ति की ओर संकेत किया है -

श्री रघुनाथ रूप उर आवा । परमानंद अमित सुख पावा ।। - 3.24

मगन ध्यानरस दंडजुग पुनि मन बाहेर कीन्ह ।

रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ।।- 3.25

प्रस्तुत प्रकरण में गोस्वामी जी ने योग विधि की प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रतिपादित मन की अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी स्थिति का विवरण भी दिया है । यहाँ मन की अंतर्मुखी स्थिति स्वत: एवं बरबस बन जाती है । उसके लिये योग साधना की भाँति प्रयास नहीं करना पड़ता । प्रयास, प्रत्युत मन को बहिर्मुखी करने के लिये करना होता है - 3.26

3.23- मानस - 4.9 छं0 , 3.24- मानस- 1.110.8, 3.25-मानस-1.111

3.26- इस प्रेमानुरागी ध्यान का एक और सुंदर उदाहरण पुष्पवाटिका के विनय प्रसंग में आता है । सीता जी भाव ध्यान में अंतर्मुखी हो गई हैं । सखियाँ उन्हें बहिर्मुखी होने के लिये आग्रह करतीं हैं -

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू ।

भूपकिसोर देखि किन लेहू ।।- 1.233.2

यह रूपाकर्षण जन्य ध्यान ऐसा सहज और स्वाभाविक बनता है कि स्वत: होता है प्रत्युत विवश कर देता है , भुलाये भुलाया नहीं जाता, छुटाये छुटाया नहीं जाता, जिसके लिये योग की कठिन प्रक्रिया अपनाई जाती है , फिर भी निरन्तरता नहीं बनती, उसको सहज उपलब्धि विनय भक्ति की अपनी विशेषता है ।

गोस्वामी जी अंतर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों स्थितियों की सुखद संयोगी स्थिति की पृथक् प्रस्तावना करते हैं । ध्यान ऐसा जमता है कि अंतर में और बाहर वही आकर्षण खींचता है ।

देखन मिस मृग बिहग तरू फिरइ बहोरि बहोरि ।

निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि ।। - 1.234

।2------

3.1.5.1.3- एक आराध्य में अनन्य अनुरक्ति का यह विनय योग, योग की चित्तवृत्ति निरोध की प्रक्रिया सहज सुलभ करा देता है । यह वस्तुत: ऐसा चित्तवृत्ति निरोध होता है कि जो सहज और स्वाभाविक हो नहीं प्रत्युत बरबस आरोपित होता है और जिसके लिये किसी प्रयास की अपेक्षा नहीं होती । योग का चित्त वृत्ति निरोध तो चिकने खंभे पर चढ़ने-फिसलने की दुरूह कहानी है जो घुनाक्षर न्याय की भाँति कठिनाई से ही सुलभ होती है । इसीलिये गोस्वामी जी केवल प्रभु पद अनुराग की विनय करते हैं -

चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि- सिधि बिपुल बड़ाई ।
हेतु-रहित अनुराग राम पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ।।- 3.27

3.1.5.2- गोस्वामी जी ने विनय और प्रेम का अभेद अथवा अन्योन्याश्रयता का प्रतिपादन किया है तथा विनय को प्रणिधान का 3.28 ॥अ॥ भक्ति का प्रधान अंग माना है । इसी दृष्टि से विनय योग अथवा विनय दर्शन की प्रतिष्ठा होती है । भक्ति परम प्रेम रूपा 3.28 ॥आ॥ कही गई है तथा प्रेम 3.28 ॥इ॥ रहित विनय का कोई अर्थ नहीं होता ।

3.27- विनय पत्रिका - 103

3.28 ॥अ॥- प्रणिधान का एक अर्थ भक्ति भी है ।

3.28 ॥आ॥- सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा ॥2॥ अमृत स्वरूपा च ॥ भ0 सू0 2 : 3 ॥

3.28 ॥इ॥ - LOVE alone is the mainspring and essence of prayer
AMA ET FAC QUOD VIS - p.79
.. to pray is to love , and to talk of ways of prayer to one who does not love , is to teach painting to the blind - p98
...in what follows we mean by prayer the attempt of the soul ~~ot~~ to adore and to love God , approached either as the Deity or as one of the Divine persons known by revelation-p 79
- What is Mysticism : D. Knowles 67

जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करई सप्रीति ।- 3.29

× × × × × × × × × × × × ×

बिनय प्रेम बस भई भवानी , खसी माल मूरति मुसुकानी ।- 3.30

× × × × × × × × × × × × ×

सुनि अति बिकल भरत बरबानी, आरति, प्रीति, बिनय नयसानी ।।- 3.31

× × × × × × × × × × × × ×

बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती, आरति प्रीति न सो कहि जाती ।।-3.32

× × × × × × × × × × × × ×

बिस्वामित्र चलन नित कहहीं । राम सप्रेम बिनय बस रहहीं ।।- 3.33

गोस्वामी जी इस रूप में इस प्रकार इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं कि ईश्वर प्रणिधान प्रभु- साक्षात्कार का प्रमुख साधन है -

जप तप नियमजोग निज धर्मा ।

श्रुति संभव नाना शुभ कर्मा ।।- 3.34 (अ)

ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन ।

जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ।।- 3.34 (आ)

तव पद पंकज प्रीति निरन्तर।

सब साधन कर यह फल सुंदर ।।- 3.35

जप तप मख समदम ब्रत दाना ।

बिरति बिबेक जोग बिग्याना ।।-

सब कर फल रघुपति पद प्रेमा ।

तेहि- बिनु कोउ न पावइ छेमा ।।- 3.36

इस प्रकार तुलसी की विनय प्रणिधान के भक्तिपक्ष को प्रस्तुत करती ही है किन्तु दर्शन पक्ष का भी युक्तियुक्त प्रतिपादन करती है तथा इससे विनय दर्शन की मान्यता का पक्ष समर्थित होता है ।

3.29-मानस- 1.4, 3.30- मानस 1.235.5, 3.31- मानस-2.262.1
3.32- मानस- 2.96.1 , 3.33- मानस- 1.359.3, 3.34(अ)-मानस-7.48.1,
3.34(आ)- मानस- 7.48.2, 3.35- मानस- 7.48.4 ,
3.36- मानस- 7.94.5,6

14----

3.1.6.1- गीता एवं मानस का विषाद योग [3.37] विनय दर्शन की भूमिका - विषाद से मुक्ति के लिये जो साधन भगवान् कृष्ण ने बताया है वह विनय द्वारा सिद्ध होता है । भगवान् कृष्ण कहते हैं -

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।। - 3.38

भली प्रकार दण्डवत्, प्रणाम तथा सेवा और निष्कपट भाव से किए हुये प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को तत्वदर्शी ज्ञानी जनों से प्राप्त कर वे तत्त्व को जानने वाले ज्ञानीजन तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेगें ।

विनय के स्वरूप की व्याख्या के संदर्भ में कि किस प्रकार विनय की जायगी , विषाद मुक्त होने का साधन प्रस्तुत किया गया है ।

यह विषाद मोह जन्य होता है । इसलिये विषाद नष्ट होने का अर्थ होता है मोह का नष्ट होना । मोह नष्ट होने से स्मृति प्राप्त होती है , संदेह एवं संशय रहित स्थित संभव होती है जो विकल्प की द्वन्द्वात्मक भावभूमि का एक एवं एकाकी संकल्पात्मक भाव एवं अनुभूति में समाहार कर देती है ।-[3.39] चित्त की एकाग्रता की, वह उत्तम स्थिति

3.37- गीता प्रथम अध्याय : अर्जुन विषाद योग ।

3.38- गीता 4.34

3.39- प्रसाद जी ने काव्य की व्याख्या करते हुये इस अनुभूति का उल्लेख किया है - "काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है , जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है । वह एक श्रेय-मयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान-धारा है । आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल [चारुत्व] में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है ।xxxxxx वैदिक साहित्य के स्वरूप में उषा सूक्त और नारदीय सूक्त इत्यादि तथा उपनिषदों में अधिकांश संकल्पात्मक प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति है। इसीलिये कहा है - तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ।

[प्रसाद काव्य और कला]

होती है जिसमें विकल्प होते ही नहीं, केवल संकल्प ही होते हैं क्योंकि वस्तु का तात्त्विक स्वरूप ज्ञात हो जाता है और विकल्प का प्रश्न ही नहीं उठता ।
अर्जुन इसी स्थिति को प्राप्त करता है और प्राप्त करता है प्रणिपात से, विनय से, शरणागति से ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।

स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।- 3.40

रामचरित मानस भी इसी प्रकार विषाद शमन की कथा है । विषाद के विभिन्न कारण हैं और उनका शमन ही कथा का अभीष्ट है ।

यह सुभ संभु उमा संबादा । सुख संपादन समन बिषादा ।।- 3.41 (।)

यह विषाद शमन संभव होता है भगवान् के स्मरण से, विनय से, शरणागति से -

" अति आरति पूछउँ सुरराया । रघुपति कथा कहहु करि दाया ।। - 3.41 (।।)

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं । जनम अनेक रचित अघ दहहीं ।।

सादर सुमिरन जे नर करहीं । भव बारिधि गोपद इव तरहीं ।। - 3.42

विषाद शमन की स्थिति में मोह नष्ट हो जाता है, संशय दूर हो जाता है तथा स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी । मिटा मोह सरदातप भारी ।।

तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ । राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ ।।

नाथ कृपाँ अब गयउ बिषादा । सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा ।।- 3.43

3.40- गीता 18:73

3.41 (।) - मानस- 7.129.1

3.41 (।।)- मानस - 1.109.3

3.42- मानस - 1.118.3,4

3.43- मानस 1.119. 1-3

3.1.6.2- **विनय दर्शन तथा विषाद एवं प्रसाद -**

संशय, मोह, भ्रम, से शोक एवं विषाद उत्पन्न होता है । यह विषाद ही भक्त, साधक, अथवा जिज्ञासु को विकल एवं शोकयुक्त कर देता है और विषाद शमन के लिये उसे उत्सुक एवं व्यग्र बना देता है । विषाद शमन अपने आराध्य अथवा किसी तत्वदर्शी ज्ञानी द्वारा संभव होता है । अतएव उस आराध्य अथवा तत्वदर्शी ज्ञानी पुरूष के प्रति आकर्षित एवं उन्मुख होकर उसको प्रसन्न करने के लिये वह विनय एवं सेवा करता है तथा उसके प्रसाद की कामना एवं याचना करता है । इन संदर्भों में ही विनय का क्षेत्र उदय होता है । विनय से आराध्य प्रसन्न होता है तथा प्रसन्नता ही प्रसाद कहलाती है ।

'प्रसादस्तु प्रसन्नता' - 3.44

इस प्रकार 'प्रसाद'[3.45] का भावपरक अर्थ होता है प्रसन्नता, कृपा, दया, प्रभाव अथवा प्रताप ।

इसके साथ 'प्रसाद' 3.45 वह भी कहलाता है जो भगवान् पर चढ़ाया जाता है । यह प्रसाद अन्न, पान, पुष्प, माला आदि होता है । यह प्रसाद आराध्य की कृपा एवं

3.44 अमरे - 1.3.16

3.45- प्रसन्नता- तव प्रसाद प्रभु कृपा निधाना । मो कहुँ सबँ काल कल्याना ।। 1.164.8

कृपा- जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा । प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा ।-1.285.5

दया- मुनि प्रसाद बलितात तुम्हारी । ईस अनेक करवरें टारी ।।-1,356.1

प्रभाव- नाम प्रसाद संभु अबिनासी । साजु अमंगल मंगल रासी ।।- 1.25.1

प्रताप - सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी । नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी ।।- 1.25.2

प्रसाद - सादर सियँ प्रसाद सिर धरेऊ । बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ ।। 1.235.6

17------

प्रसन्नता का प्रतीक ही होता है । भगवद् प्रसाद भगवद् रूप ही होता है । इसको प्राप्त करके भी विषाद शमन होता है ।

प्रसादं जगदीशस्य ह्यन्नपानादिकं च यत् ।

ब्रह्मवन्निर्विकारं हि यथा विष्णुस्तथैव तत् ।।

गीता तथा रामचरित मानस, दौनों में 'प्रसाद' को ही विषाद के नष्ट होने का कारण प्रतिपादित किया गया है।

नष्टो मोह: स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादात् मयाच्युत - 3.46

नाथ कृपाँ अब गयउ बिषादा । सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा ।। - 3.47

" तव प्रसाद सब संसय गयऊ । " - 3.48

" तव प्रसाद संसय सब गयऊ "। - 3.49

प्रभु प्रसाद अथवा प्रसन्नता से प्रभु प्रभुता या प्रताप प्राप्त होता है -

प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना । बोला बचन बिगत अभिमाना। - 3.50

साखामृग कै बड़ि मनुसाई । साखा तें साखा पर जाई । - 3.51

नाघि सिंधु हाटकपुर जारा । निसिचर गन बधि बिपिन उजारा ।- 3.52

सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछू मोरि प्रभुताई । - 3.53

3.46- गीता - 18.73

3.47- मानस- 1.119.3

3.48- मानस - 7.68.8

3.49- मानस- 7.124.9

3.50- मानस- 5.32.6

3.51- मानस- 5.32.7

3.52- मानस- 5.32.8

3.53- मानस- 5.32.9

विषाद - भ्रम , संशय, मोह की स्थिति विषाद की स्थिति होती है -

भ्रम -[3.54] मिथ्याज्ञान , भ्रांति , संशय, संदेह

संशय-[3.54] अनिश्चयात्मक ज्ञान, संदेह , आशंका

मोह-[3.54] अज्ञान, भ्रम, भ्रान्ति, शरीर और सांसारिक पदार्थों को अपना या सत्य समझने की दुःखदायिनी बुद्धि भय, दुःख, चिन्ता, आदि से उत्पन्न चित्त की विकलता ।

एक प्रसंग में 'कलेश' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है -

उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस ।। - 3.55

प्रसाद स्थिति - प्रसाद की मनःस्थिति की विवेचना योग सूत्र समाधिपाद के 33वे सूत्र में की गई है -

" मैत्री- करूणा- मुदितो पेक्षाणाम् सुख-दुख-पुण्यापुण्य
विषयाणाम् भावनातः चित्त प्रसादनम् ।।" समाधिपाद- 33

सुख दुःख पुण्य व अपुण्य विषयों में मैत्री, करूणा, मुदिता तथा उपेक्षा (तटस्थता) इन चारों की भावना करने से चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होती है । यह निम्नलिखित प्रकार की मनःस्थिति से संभव होती है -

मैत्री - यदि सारे संसार से मैत्री भावना है और कोई हमारा अपमान या तिरस्कार करता है तो भी उस मित्र भाव के कारण हमारे मन में दुःख की वृत्ति जाग्रत न होगी ।

करूणा- यदि दया भाव सिद्ध कर लिया है तो किसी का अपराध देख कर क्रोध के स्थान पर क्षमा की वृत्ति जाग्रत होगी ।

3.54- संक्षिप्त शब्द सागर - रामचन्द्र वर्मा : वि0 2008 संस्करण

3.55- मानस - 7: 129

मुदिता- मुदिता का अभ्यास हो जाने पर दोष-दृष्टि के बजाय गुण दृष्टि हो जायेगी और पदार्थ मात्र के गुणों का चिन्तन करते-करते गुणों का अनुभव करने लगेगें और मुदित होगें।

उपेक्षा- उपेक्षा का भाव जाग्रत होने पर सृष्टि में चलने वाले पापाचरण को देख कर निराशा के स्थान में तटस्थभाव जाग्रत होगा तथा मानसिक प्रसाद स्थिति बनी रहेगी।

रामचरित मानस में इस स्थिति की ओर संकेत संत लक्षण के अंतर्गत किया गया है -

सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती। - 3.56

श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया।।- 3.57

× × × × × × × × × ×

कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया।।- 3.58

सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।। - 3.59

× × × × × × × × × ×

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई।। - 3.60

क्लेश 5 प्रकार के होते हैं - "अविद्या ऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशा पञ्च क्लेशा:"

अविद्या, (मोह, अज्ञान) अस्मिता, (मैं हूँ ऐसा अहंकार) राग, द्वेष, अभिनिवेश (मृत्यु भय) इस प्रकार की क्लेश की स्थिति भी मोह की स्थिति के समान है तथा क्लेश-प्रद स्थिति में भी समान रूप से विषाद उत्पन्न होता है।

मोह से संशय अथवा भ्रम उत्पन्न होता है। मोह कारण है, संशय या भ्रम कार्य है। मोह की स्थिति की स्थूल अभिव्यक्ति भ्रम अथवा संशय में होती है। कार्य और अकार्य का विवेक न होना मोह है।

3.56- मानस- 3.45.2, 3.57 - मानस- 3.45.4, 3.58- मानस- 7.37.3

3.59- मानस- 7.37.6, 3.60- मानस - 5.40.7

20------

कार्याकार्य विवेकाभावरूपो मोह:

इसीलिये 'मोहजनित संशय' कहा गया है -

'बंदौ प्रथम महीसुर चरना ।

मोह जनित संसय सब हरना ।।- 3.61

किसी पदार्थ के विपरीत ज्ञान को भ्रम कहते हैं ।

रज्जौ यथा हेर्भ्रम: - 3.62

रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि ।

जदपि मृषा तिहुँकाल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि ।। - 3.63

मन की द्विविधा वृत्ति संशय कहलाती है । संशयात्मा यह निश्चय नहीं कर सकता कि सत्य या वास्तविकता क्या है । संशय की स्थिति बड़ी दु:खद होती है -

अज्ञश्चाश्रद्धधानश्चसंशयात्मा विनश्यति ।

नायं लोकोऽस्ति न परो सुखं संशयात्मन: ।। - 3.64

भगवत् विषय को न जानने वाला तथा श्रद्धा रहित और संशययुक्त पुरूष परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है । इनमें भी संशययुक्त पुरूष के लिये तो न सुख है और न यह लोक है न परलोक अर्थात् लोक परलोक दोनों से ही भ्रष्ट हो जाता है ।

श्री राम कथा संदेह, मोह और भ्रम को दूर करने वाली है -

निज संदेह मोह भ्रम हरनी । करउँ कथा भव सरिता तरनी ।। - 3-65

एतद् ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहु: ।

भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ।। - 3.66

3.61- मानस- 1.1.3 , 3.62- मानस - 1.छ.6 , 3.63- मानस 1.117

3.64- गीता- 4.40 , 3.65- मानस- 1.30.4 , 3.66- भा0- 1.6.35

21-------

जिन लोगों का चित्त विषय भोगों की इच्छा से बारंबार व्याकुल होता है, उनके लिये भगवान् के चरित्रों की कथा ही संसार-सागर से पार उतारने वाला प्लव निश्चित किया गया है।

रामकथा संशय मोह और भ्रम को दूर करने वाली और इस प्रकार विषाद एवं शोक की स्थिति से उद्धार करने वाली इस दृष्टि से कही गई है कि इसके पात्र मोहग्रस्त होते हैं, कथा सुनते हैं और उनका मोह नष्ट हो जाता है। भक्ति भाव पूर्वक विनय और सेवा से प्रसन्न होकर इन मोहग्रस्त पात्रों के उद्धारक यह कार्य करते हैं। यही नहीं कथा का मूल संदेश भी यही है कि राम प्रिय लगें, राम प्रसन्न हों, राम का प्रसाद प्राप्त हो।

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।। - 3.67

मानस के वक्ता श्रोता इस प्रकार हैं :-

वक्ता	श्रोता	संवाद स्थान
श्री शिवजी	श्री पार्वती जी	कैलाश
श्री कागभुशुण्डि जी	श्री गरूड़ जी	नीलगिरि
श्री याज्ञवल्क्य जी	श्री भरद्वाज जी	प्रयाग

श्री पार्वती जी को संशय होता है -

सती सो दसा संभु के देखी।
उर उपजा संदेहु बिसेषी ।।- 3.68

और संदेह है राम के संबंध में -

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ।।-
बिष्नु जो सुरहित नर तनु धारी। सोउ सर्वग्य जथा त्रिपुरारी ।।
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी ।।
संभु गिरा पुनि मृषा न होई। शिव सर्बग्य जान सबु कोई ।। - 3-69

3.67- मानस - 7.130, 3.68- मानस- 1.49.5, 3.69- मानस- 1.50, 1.3

22--------

अस संसय मन भयउ अपारा । होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा ।।

भरद्वाज जी को भी यही संशय एवं भ्रम है । वह तत्वज्ञानी याज्ञवल्क्य जी से अपनी व्यथा निवेदन करते हैं -

नाथ एक संसउ बड़ मोरें । करगत बेदतत्व सबु तोरें ।।

कहत सो मोहि लागत भय लाजा । जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा ।।- 3.70

एक राम अवधेस कुमारा । तिन्ह कर चरित बिदित संसारा ।।

नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा । भयउ रोषु रन रावनु मारा ।।- 3.71

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि ।

सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेक बिचारि ।। - 3.72

जैसें मिटै मोर भ्रम भारी । कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी ।। - 3.73

इन्द्रजीत के द्वारा भगवान् राम को नागपाश में बाँधा जाना देख कर गरूड़ को संशय हो जाता है और वह अपने प्रचंड विषाद से विकल हो जाते हैं । वह काग भुशुण्डि जी के पास जाते हैं -

जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा । समुझत चरित होति मोहि ब्रीड़ा ।।

इन्द्रजीत कर आपु बँधायो । तब नारद मुनि गरूड़ पठायो ।। -

बंधन काटि गयो उरगादा । उपजा हृदयँ प्रचंड बिषादा ।। - - 3.74

प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती । करत बिचार उरग आराती ।।

ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा । माया मोह पार परमीसा ।। -

सो अवतार सुनेउँ जग माहीं । देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं ।। - 3.75

नाना भाँति मनहिं समुझावा । प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम छावा ।।

खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई । भयउ मोह बस तुम्हरिहिं नाईं ।। - 3-76

3.70- मानस 1.44 ,7.8 , 3.71- मानस- 1.45.7-8 , 3.72-मानस- 1.46

3.73-मानस-1.46.1, 3.74- मानस - 7.57.3.5, 3.75-मानस- 7.57.6-8

3.76- मानस- 7.58.1-2

23-------

यह शोक, विषाद , क्लेश उसी समय शान्त होते हैं जब मन निर्मल हो जाता है तथा वस्तु का तात्त्विक स्वरूप दिखलाई देने लगता है ।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।। - 3.77

यह निर्मल मन ईश्वर प्रणिधान अर्थात् आत्यान्तिक भक्ति से संभव होता है , जिसके अंतर्गत जाप, कथा श्रवण , तत्त्वदर्शी , ज्ञानियों का संपर्क एवं उनकी सेवा और उसके द्वारा उन्हें प्रसन्न करना आदि उपाय आते हैं ।

सती को ससोच एवं हृदय में दारूण दाह से तप्त देख कर शिवजी कथा कहते हैं - 3.78

निज अघ समुझि न कछु कहि जाई । तपइ अवाँ इव उर अधिकाई ।।

सतिहि ससोच जानि बृषकेतू । कहीं कथा सुंदर सुख हेतू ।।

बरनत पंथ बिबिध इतिहासा । बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा ।।- 3.79
लगे कहन हरिकथा रसाला :- 3.80
भरद्वाज जी भी याज्ञवल्क्य जी से अपने भारी भ्रम के निवारण के लिये विस्तार से कथा कहने का आग्रह करते हैं -

जैसे मिटै मोर भ्रम भारी । कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी ।।- 3.81

तात सुनहु सादर मनुलाई । कहउँ राम के कथा सुहाई ।। - 3-82

याज्ञवल्क्य जी राम कथा के इस भाव को दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित करते हैं कि रामकथा महा मोह रूपी महिष का नाश करने के लिये कराल कालिका के समान है -

महामोहु महिषेसु बिसाला । रामकथा कालिका कराला ।। - 3.83

3.77- मानस- 5.43.5 ,
3.78- विनय पत्रिका में इस भाव को जिय की जरनि कह कर स्पष्ट किया है तथा इसके

लिये राम नाम का जाप आवश्यक बतलाया है -

राम नाम के जपे जाई जियकी जरनि - 184
राम नाम जपे जैहे जिय की जरनि - 247

3.79- मानस- 1.57.4-6 , 3.80- मानस- 1.59.5 , 3.81-मानस- 1.46.1 ,

3.82- मानस- 1.46.5 , 3.83- मानस- 1.46.6

24--------

साथ ही संतजनों के लिये यह कथा परम आराध्य है । कथा श्रवण का कार्य , उनकी सहज वृत्ति है -

राम कथा ससि किरन समाना । संत चकोर करहिं जेहि पाना ।। - 3.84

गरूड़ अपने संशय निवारण के लिये नारद, ब्रह्मा तथा अंत में शिवजी के पास जाते हैं । शिवजी उन्हें निम्नलिखित यही उपाय बतलाते हैं -

तबहिं होई सब संसय भंगा । जब बहु काल करिअ सतसंगा ।।

सुनिअ तहाँ हरि कथा सुहाई । नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई ।।

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ।।

नित हरि कथा होत जहँ भाई । पठवउँ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई ।।

जाइहि सुनत सकल संदेहा । राम चरन होइहि अति नेहा ।। - 3.85

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग ।

मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ।। - 3.86

गोस्वामी जी भी इसी प्रसंग में ईश्वर प्रणिधान को भगवत्प्राप्ति के लिये सर्वोपरि साधन मानते हैं । योग , तप , ज्ञान , वैराग्य से भी ईश्वर प्रणिधान को वरीय एवं श्रेष्ठ प्रतिपादित करते हैं -

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा । किएँ जोग तप ग्यान बिरागा ।। - 3.87

3.84- मानस- 1.46.7

3.85- मानस - 7.60,4-8

3.86- मानस- 7.61

3.87- मानस- 7.61.1

25--------

यह विषाद , यह शोक , यह क्लेश भौतिक कारणों से नहीं है और इस प्रकार भौतिक भी नहीं है । 3.88 इसको अतएव आध्यात्मिक शोक से अभिहित करना उपयुक्त प्रतीत

3.88 रामकथा के पात्र, पार्वती , भारद्वाजतथा गरूड़ के विषाद एवं शोक का कारण है भगवान् राम का भगवद् अवतारी स्वरूप हृदयंगम न होना प्रत्युत संशय होना कि साधारण मानवों के से आचरण कर रहे हैं - नारी के विरह में विलाप कर रहे हैं , नाग पाश में बंध रहे हैं , तो कैसे अवतार हैं । भौतिक शोक , मोह एवं विषाद के उदाहरण यहाँ अवलोकनीय हैं जिनके कारण हैं भौतिक वियोग , अनुचित कृत्य , विधाता की विमुखता, या कालगति , परिताप , विफलता, आदि । इनमें आध्यात्मिक शोक की जैसी संशय अथवा भ्रम की स्थिति के स्थान में निश्चयात्मक बुद्धि होती है । जो अन्यथा माया है , मोह है, वह सत्य भासित होकर शोक एवं विषाद का कारण बनता है ।

वियोग - राम चलत अति भयउ बिषादू । सुनि न जाइ पुर आरत नादू।। 2.80.3

पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा । कहेसि राम लछिमन संबादा।। 7.64.2

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदयँ बड़ बिरह बिषादू ।। 2.320.1

सब प्रकार भूपति बड़भागी । बादि बिषादु करिअ तेहि लागी।। 2:173:1

अनुचित कृत्य- तेहि कारन करूनानिधि कहे कुछुक दुर्बाद।

सुनत जातुधानीं सब लागीं करै बिषाद ।। - 6.108

विधाता की विमुखता काल-गति

धरि धीरजु तब कहइ निषादू । अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू ।।

तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता । धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता ।।

2.142. 1,2

कौसल्या धरि धीरजु कहई । पूत पथ्य गुर आयसु अहई ।।

सो आदरिअ करिअ हित मानी । तजिअ बिषादु काल गति जानी ।।

2.175.1,2

परिताप- सुखस्वरूप रघुबंसमनि मंगल मोद निधान ।

ते सोवत कुस डासि महि बिधि गति अति बलवान ।।- 2.200

× × × × × × × × × ×

भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं ।।

निंदहिं आपु सराहि निषादहि। को कहि सकइ बिमोह बिषादहि ।।

2,201.4,5

26-------

3.1.7-

होता है । इस प्रकार के आध्यात्मिक शोक की अनुभूति भारतीय ही नहीं पाश्चात्य जिज्ञासुओं को भी हुई है ।

यहाँ इस संदर्भ में मानवीय जिज्ञासा के मूल प्रश्न को लें । जीवन का उद्देश्य क्या है, सृष्टि की संचालक वह अज्ञात सत्ता कौन है, ईश्वर प्रणिधान की क्या आवश्यकता है । इस प्रकार के प्रश्न भारतीय मनीषी के मन को तो उद्वेलित करते ही आये हैं, पाश्चात्य जिज्ञासुओं को भी इस विषय में चिन्ता हुई है ।

मनोविज्ञान के पाश्चात्य विश्व विश्रुत आचार्य जुंग ने बार-बार यह स्वीकार किया है कि अपने अथवा सामान्यतया जीवन के तात्पर्य के संबंध में उनके पास कोई उत्तर नहीं है । उन्हें विश्वास है कि प्राचीन प्राच्य ज्ञान के पास इसका उत्तर है और वह इसका उत्तर दे सकता है । - 3.89

3.88-

विपन्लता- कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा । जेहि बिध तबहिं ताहि लइ आवा ।

यह बृतांत दसानन सुनेऊ । अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ ।।

6.61.4,5

शोक - सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिषाद ।।- 5.20

क्लेश - भयउ बिषादु निषादहि भारी । राम सीय महि सयन निहारी ।।

2.91.2

सती कीन्ह सीता कर बेषा । सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा ।।

1.55.7

कुटिल प्रकृति- पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें । उजरें हरष बिषाद बसेरें ।।- 1.3.3

3.89- Jung confesses repeatedly that he himself has no answer to give to that most frequent of question, what is the meaning of my life or life in general... But he feels that ancient eastern wisdom has and can give the answer. ' - Complete Essays of Schopenhaur translated by T.Baily Saunders.
Suffering of the World V-5

साधारण अशिक्षित व्यक्तियों को भी इस प्रकार की जिज्ञासायें हुई हैं तथा वह शोक एवं विषादयुक्त हुये हैं ।

अफ्रीका की अशिक्षित आदि बासूटो जाति के एक गड़रिये के अनुभव इसी प्रकार के हैं-

" बारह वर्ष हुए मैं अपनी भेड़ों के झुण्ड को जंगल में चरा रहा था । आकाश में धुँधा थी । मैं एक चट्टान पर बैठा था । मेरे मन में शोकपूर्ण प्रश्न उठने लगे - हाँ, शोकपूर्ण क्योंकि मैं उनका उत्तर पाने में असमर्थ था । किसने अपने हाथों से इन तारों को छुआ है ? किन स्तम्भों पर यह टिके हुए हैं ? जल प्रवाह कभी थकता क्यों नहीं ? प्रवाह के अतिरिक्त किसी अन्य नियम को वह जानता नहीं । सवेरे से शाम और शाम से सवेरे तक बहता ही रहता है किन्तु वह रूकता कहाँ है ? उसको कौन गति देता है ? बादल भी आते हैं और चले जाते हैं तथा फट कर पृथ्वी पर पानी बरसा देते हैं । वह कहाँ से आते हैं ? और कौन उन्हें भेजता है ? मैं वायु को देख नहीं सकता, किन्तु यह है क्या ? कौन इसको लाता है और कौन इसको चलाता है ? (शोकाकुल होकर) मैंने अपने दोनों हाथों में अपना मुँह ढँक लिया और मैं सोचता ही रह गया । " - 3.90

3.90 - " Twelve years ago (the man himself speaking) I went to feed my flocks. The weather was hazy. I set down upon a rock and asked myself Sorrowful questions, yes, sorrowful , because I was unable to answer them . Who has touched the stars with his hands ? On what pillars do rest? The waters are never weary , they know no other law than to flowwithout ceasing from morning till night , and from night till morning but where do they stop , and who makes them flow thus? who sends them ? I cannot see the wind but what is it ? who brings it? makes it flow? Then I burried my face in both my hands: The Basuto:

- The Psychology of Emotions : by Ribet Ist ed.239

भारतीय मनीषी की जिज्ञासा," अमीय ऋक्षानिहितास उच्चा: नक्तं ददृशे कुहि चद् दिवा ईयु: - 3.91 ऊँचे पर रखे हुए यह तारे रात में दिखाई दिए किन्तु ये दिन में कहाँ चले गये ; " मानों मानव मात्र की जिज्ञासा बन गई है । ऋषियों ने समाधिस्थ होकर इन कुतूहलों का समाधान किया तथा मानव जीवन की उच्चतम उपलब्धियाँ ऋचाओं में प्रस्तुत कीं ।

तत्वदर्शी डा० भगवानदास ने मानव जीवन की सार्थकता पर विचार करते हुये कहा है - " मानवजीवन की सार्थकता किसमें है - यह प्रश्न अनेक बार पूछा जा चुका है किन्तु इसका संतोषजनक उत्तर कभी नहीं दिया जा सका है । केवल धर्म ही इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है । घोर अंधकार के बीच जीवन की जो कुछ भी ज्योति दिखलाई देती है वह केवल आध्यात्मिक एवं धार्मिक जीवन का प्रकाश है । "- 3.92

नारद अपने विशद अध्ययन से सन्तुष्ट नहीं हैं । अनेक विद्याओं के अध्ययन अनुशीलन के पश्चात् भी वह आत्मज्ञाता नहीं हो पाये हैं और अपने इस अभाव के कारण शोक विकल हैं । महात्मा नारद भगवान् सनत्कुमार के पास पहुँच कर ब्रह्म विद्या के इस आत्म ज्ञान के लिये प्रार्थना करते हैं । सनत्कुमार कहते हैं कि जो कुछ तुम जानते हो उस को मुझे बताओ, तो उससे आगे की बात बताई जाय - नारद कहते हैं कि - भगवन् मैं

3.91- ऋक- सं० म० । सू 22

3.92- The question , what is the purpose of human life , has been asked times without number ; it never received a satisfactory answer ...only religion is able to answer the question ...The only gleam of life which he sees in the deep gloom is again , a gleam of the metaphysical and religious light .

- Ancient Psyco- synthesis versus Modern psy- coanalysis : Dr. Bhagwan Dass

ऋग्वेद, यजुर्वेद , सामवेद , अथर्ववेद , इतिहास , पुराण , व्याकरण , पितृकर्म , गणित, भाग्य विज्ञान , तर्क शास्त्र , नीति शास्त्र , देवज्ञान , ब्रह्म विद्या , पंचतत्व विद्या , धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्पज्ञान , गन्धर्व विद्या , आदि को जानता हूँ । सब का मैंने अध्ययन किया है और मुझे ये विद्याएँ आती हैं । हे भगवन् ! मैं सर्व विद्या संपन्न हूँ किन्तु आत्मा का ज्ञाता नहीं । मैंने सुना है कि आत्मज्ञाता जन्म मरण की चिन्ता से मुक्त हो जाता है । भगवन् ! मैं शोक में हूँ । मुझ चिन्तातुर को आप शोकमुक्त करें । मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैंने केवल बहुत से शब्दों को ही पढ़ा है ।- 3.93

सनत्कुमार ने नारद से कहा- तूने जो कुछ यह अध्ययनकिया , वह यह नाम ही हैं ; शब्द मात्र हैं ।

इस प्रकार आध्यात्मिक शोक के अंतर्गत एक और प्रमुख विषय आता है उस परमसत्ता के जानने में असमर्थ एवं विवश अपनी अपूर्ण ज्ञानशक्ति एवं उसकी परिमिति । ज्ञान पिपासा

3.93- अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदः । तं होवाच- यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति ।। छान्दोग्योपनिषद- प्र0 7 :। : ।

स होवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि, यजुर्वेदम् सामवेद-

माथर्वणं, चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदनां वेदं पित्र्यम् राशिं

दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां

क्षत्रविद्यां नक्षविद्यां सर्पदेवजन विद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ।।- प्र. 7:।:2

सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नाऽत्मविच्छुत ꣳ ह्येव मे

भगवद्दृशेभ्यस्त रति शोकमात्म विदिति सोऽहं भगवः

शोचामि तं मा भगवांछोकस्य पारं तारयत्विति त ꣳ होवाच

यद्वै किं चै तदध्यगीष्ठा नामैवैतत् ।। प्र 7:।:3

मानव मात्र की सहज वृत्ति है । पार्थिव जगत की नई नई खोजों की सफलता एवं पार्थिव ज्ञान के "इदं इत्थं" के साथ एक बिन्दु ऐसा आता ही है जहाँ ज्ञान की अपूर्णता ही शेष रह जाती है और एक अज्ञात संचालन शक्ति की सत्ता के अस्तित्व एवं प्रभुत्व को विवश ही मानना पड़ता है तथा उसके संबंध में उठी हुई जिज्ञासाओं का समाधान नहीं मिलता । यह विवशता निराशा, आध्यात्मिक शोक का कारण बनती है ।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस आध्यात्मिक शोक का अन्यथा प्रतिपादन किया है " यह और भी अधिक आवश्यक है कि कला द्वारा प्रत्येक प्रकार की शोकानुभूति आचार संबंधी प्रत्येक तथ्य जो क्रियात्मक तथा अति आवश्यक रूचि के हैं मानव हृदयों को सौंप दिए जायँ " - 3-94

" ...... अब इस आवश्यकता के लिए अपेक्षित शोक अपनी अभिव्यंजना के लिए अभिव्यंजना की शक्ति के प्रकाशन का ही नहीं प्रत्युत पूर्ण विस्तार का भी अपेक्षी है । संक्षिप्ततः [आत्मा की] अपनी अभिव्यक्ति को बाह्याकार देने तथा उसकी सर्वांग पूर्णता तक उठने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए ।"- 3.95

" आत्मा जो शोक का प्रकाशन करती है वह आत्मा होनी चाहिए जो अमित प्रवाह के लिए पूर्ण हो तथा जो अपने आपको असीम रूप में विस्तृत करने तथा अपने गुणों की अभिव्यंजना के योग्य हो । "- 3.96

3.94 It is all the more necessary that we should through art entrust every type of pathos to the human heart , every motive of ethical significance , which are of practical and vital interst .-p 312

3.95 Now a pathos of this need requires for its display not merely the power of exposition , but also that perfect eleboration.And what is more , the soul whivh entrusts to it pathos the spiritual wealth it possesses must be one with real wealth to dispose of , and not one that can rest in a condition of purely intensive self concentration . It must in short be ready to give an outward semblan to its self expression and rise to the finished perfectioh of that . - p 312

3.96 The sprit which is to reveal to us pathos must be a spirit which is full to running over , which is able to spread itself abroad and give expression to its virtues. - p 312

-Hegel: Philosophy of Fine Arts.

31------

" मानवशोक में देवताओं की सृष्टि होती है तथा शोक अपने अधिक ठोस एवं क्रियात्मक रूप में मानव चरित्र है । - 3.97

उपाध्याय जी ने वैदेही वनवास के वक्तव्य में इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं - " करूण रस द्रवीभूत हृदय का वह सरस प्रवाह है जिससे सहृदयता क्यारी सिंचित, मानवता फुलवारी विकसित और लोकहित का हरा-भरा उद्यान सुसज्जित होता है ।" (वैदेहीवनवास शुक्लजी की भी यही मान्यता है -" मनुष्य के अंत:करण में सात्त्विकता की ज्योति जगाने वाली यही करूणा है ।" - 3.98

भगवान् सनत्कुमार नारद को नाम, वाणी , मन, संकल्प , चित्तवृत्ति , चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल , अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मृति, आशा, प्राण, सत्य, मति, श्रद्धा , निष्ठा, कृति, महान, का उत्तरोत्तर उच्चतर ज्ञान कराते हुए अंत में आत्मा का ज्ञान, और आत्मज्ञान में सभी का समाहार प्रतिपादित करते हैं ।

भगवान् सनत्कुमार ने कहा - ऐसे देखते हुए , ऐसे मनन करते हुए , ऐसे जानते हुए उस इस आत्मज्ञाता का आत्मा से प्राण है । आत्मा से आशा है , आत्मा से स्मृति, आत्मा से आकाश, आत्मा से तेज , आत्मा से जल , आत्मा से प्रकट होना और नाश होना , आत्मा से अन्न , आत्मा से बल, आत्मा से विज्ञान , आत्मा से ध्यान, आत्मा से चित्त, आत्मा से संकल्प, आत्मा से मन, आत्मा से वाणी, आत्मा से श्रुतियां, आत्मा से कर्म और आत्मा से ही यह सब है । आत्म-ज्ञानी-मुक्तात्मा आत्मा से ही सर्व सिद्धि सम्पन्न होता है । उसके आत्मभाव से होने योग्य स्वयं हो जाता है । वह विमल आत्मभाव से सर्वज्ञ और सर्वसम्पन्न समझा जाता है ।

3.97- The Gods are born in the pathos of man , and pathos in its more concrete form of activity is human character.
- p 314
--- Hegel: Philosophy of Fine Arts

3.98- चिन्तामणि : करूणा : संस्क0 56 पृ. 48

32------

इन्द्रियों से जो विषय ग्रहण किये जाते हैं उनका यहाँ नाम आहार है । उपासना से आहार शुद्धि होने पर अन्तःकरण की शुद्धि होने पर ध्रुव स्मृति हो जाती है । स्मृति ज्ञान के लाभ होने पर अज्ञान, पाप आदि की सारी ग्रंथियों का सर्वनाश हो जाता है । क्रोधादि दोषों को कषाय कहते हैं । भगवान् सनत्कुमार ने उस नष्ट कषाय नारद को अज्ञानान्धकार से पार को आत्म-परमात्म स्वरूप को दर्शाया, उसको आत्मदर्शी बनाया । - 3.99

यही तथ्य गीता में इस प्रकार प्रस्तुत हुआ है -

" नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा...." - 3.100

3.99- तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत
आत्मतः प्राणं आत्मत आशाऽऽत्मतः स्मर आत्मत आकाश
आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भाव तिरोभावात्मता-
ऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्म-
श्चित्तमात्मतः संकल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो
नामात्मतो मंत्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदं सर्वमिति ।

छां - 7.26.1

...... आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः,
स्मृति लम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः । तस्मै मृदितकषायाय
तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारस्तं स्कन्द इत्याचक्षते ....छां 7.26.2

3.100- गीता - 18.73

यह स्मृति कर्तव्य धर्म की है । गीता के अध्याय 2:7 में धर्मसंमूढचेता: कह कर अपने धर्म या कर्तव्य की विस्मृति होना बताया गया है जो मोह नष्ट होने पर स्मृति प्राप्त कर सुलभ हुई । यह स्मृति ही समाधिस्थ ऋतम्भरा प्रज्ञा ॥ विवेक ज्ञान ॥ है जिससे वस्तु का तात्त्विक स्वरूप ज्ञात हुआ है । इस स्मृति का अभाव ही विषाद या शोक ॥ आध्यात्मिक शोक ॥ का कारण है ।

इस स्मृति का एक संदर्भ और अवलोकनीय है । " उस दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल संबंध जोड़ने " की लालसा से आत्मा की एक विशेष भूमिका विरहिणी की बन जाती है । परमात्मा बना पुरूष और आत्मा बनी विरहिणी स्त्री । इस विरह विकला आत्मा को परमात्मा की स्मृति व्यथित करें और यह आत्मा परमात्मा से मिलने के लिये विकल हो, यह भावना अध्यात्म क्षेत्र की प्रमुख साधना रही है। निर्गुण भक्ति मार्गी भी 'मोरे घर आये राजाराम भरतार' की कल्पना कर इस प्रवाह में बहे सगुण भक्ति मार्गियों की हरिकथायें तो विरह केन्द्रित थी हीं । कृष्ण के विरह में राधा , परमात्मा के विरह में आत्मा का ही स्वरूप है ।

आत्मा की परमात्मा की ओर उन्मुखता उसके चिरन्तन एवं शाश्वत संयोग की सहज वृत्ति है । यही प्रभुप्रेम की भूमिका है ।

पाश्चात्य साधकों ने तो "इश्क मज़ाज़ी" और "इश्क हक़ीक़ी " प्रेम को दो वर्गों में विभाजित कर दिया । यह अवश्य है कि इसके साथ इस संभावना से इन्कार नहीं किया कि " इश्क मज़ाज़ी " अगर सच्चा हुआ तो " इश्क हक़ीक़ी " में परिणित हो जाता है ।

34----

3.1.8 विनय: मूल मनोभाव - विनय में दास्यभाव की अभिव्यक्ति होती है और दास्य भाव मूल मनोभाव है । इस प्रकार विनय इस दास भावना का प्रङ्गागी भाव होकर मूल मनोभाव के अंतर्गत आती है । मनोविज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् विलियम मैक्डूगल ने अपनी पुस्तक 'एन आउटलाइन ऑफ साइकोलोजी' में दास भावना का विवरण दिया है। - 3.101

मानव की मानस संरचना कुछ इस प्रकार की है कि जहाँ उसकी विभिन्न प्रकार की कामनायें एवं भावनायें उसके दैनिक जीवन के उतार-चढ़ाव में उसके मन को उद्वेलित एवं आलोड़ित करती रहती है, कहीं क्रोध और रोष आता है तो कहीं वात्सल्य और रति के भाव जाग्रत होते हैं तो कहीं अन्य अवसर पर वीर और वीभत्स, उसी प्रकार दैन्य एवं दासता का भी एक भाव 3.102 प्रबल होता है । मन के एक कोने

3.101	Name of instinct	Name of emotional qualities accompanying the instinctive activities
	8 submission (Self -Abasement)	Feeling of subjection (of inferiority, of devotion , of humility, of attachment, of submission, negative self feeling

An out line of psychology:49:324

3.102- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी इस तथ्य का प्रतिपादन किया है :-

" दास्य प्रेम का पूर्ण और परिपक्व उरेहण- दास्यभाव जीवन का सर्वाधिक प्रबल और विशुद्ध मनोवैज्ञानिक भाव है ।" तुलसीदास

पृ. 427

" विपन्न सेवक के हृदय के एक-एक मनोवेगऔर भाव का जैसा निश्छल, सकरुण और ब्यौरेवार वर्णन इस पत्रिका में हुआ है वैसा कदाचित ही कहीं हो ।" पृ. 117

में एक ऐसी ललक, एक ऐसी कामना बनी रहती है कि किसी के हो जायँ, किसी के समक्ष आत्म समर्पण कर दें , किसी के चरणों में लोटपोट हो जायँ , किसी के दास बन जायँ। इस प्रकार की भावना के अंतर्गत ही विनय मुखरित होती है तथा हीन भावना , भक्ति, दैन्य, प्रेम , दास्य तथा निषेधात्मक आत्म भाव जागृत होते हैं । गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को भलीभाँति प्रतिपादित किया है -

को जानै को जैहै जमपुर , को सुरपुर , परधाम को ।
तुलसिहि बहुत भलो लागत, जग-जीवन राम-गुलाम को ।। - 3.103

भगवानु सकल उरबासी । करिहिं मोहि रघुबर की दासी ।।- 3.104

को करि सोचु मरै तुलसी हम जानकी नाथ के हाथ बिकाने । - 3.105

मेरे अघ सारद अनेक जुग गनत पार नहिं पावै । - 3.106

हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी । - 3.107

3.1.9-

विनय प्रपेक्षा - इन प्रसंगों एवं सदर्भों में ही विनय का क्षेत्र उद्घाटित होता है । विनय साधन है प्रेम एवं प्रेमास्पद साध्य है। यह विनय आत्मा को परमात्मा में लीन करने का मात्र साधन ही नहीं प्रत्युत एकमात्र साधन है ।

" प्रार्थना मेरे जीवन का ध्रुवतारा है । एक बार मैं भोजन करना छोड़ सकता हूँ ; किन्तु प्रार्थना करना नहीं । आत्मा को परमात्मा में लीन करने का एकमात्र साधन प्रार्थना ही है ।" महात्मा गांधी

महात्मा गांधी ने प्रार्थना को अपनी साधना का आधार बनाया था । राजनैतिक तथा अध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में प्रार्थना उनका संबल थी । उन्होने अपना व्यक्तिगत अनुभव प्रस्तुत करते हुए कहा है -

---

3.103- वि. 155, 3.104- मानस , 3.105 कवि० 105 ;

3.106- वि. 92 , 3.107- वि. 79

36--------

बुद्धि से भी कहीं बहुत आगे कोई ऐसी वस्तु है जो हमें तथा ईश्वर संबंधी हमारे संशयों को भी निर्देशित करती है । जीवन की विपन्न परिस्थितियों में किसी ऐसी सत्ता के अस्तित्व में संशय तथा (इसी प्रकार के अविश्वासी) दर्शन से किसी की कोई सहायता नहीं होती प्रत्युत इससे किसी श्रेष्ठतर, किसी अन्य इतर वस्तु की अपेक्षा की जाती है जो (संकट में) जीवनाधार बन सके । इसलिये यदि कोई मेरे सामने इस प्रकार की पहेली लेकर आता है तो मैं उससे कहता हूँ कि जब तक आप अपने आप को शून्य तक लघु न कर लें तब तक आप ईश्वर या प्रार्थना का अर्थ नहीं समझ सकते । आपको इतना विनम्र होना होगा कि आप यह अनुभव कर सकें कि अपनी महानता तथा विशद बुद्धि संपन्नता के बाबजूद इस सृष्टि में आपकी स्थिति एक अकिंचन धूल कण से अधिक नहीं है । जीवन की ~~जीवन की~~ वस्तुओं की मात्र बौद्धिक अवधारणायें संतोषप्रद नहीं होती हैं । आध्यात्मिक अवधारणा के समक्ष बौद्धिक अवधारणायें किनारा कर जाती हैं और केवल यह आध्यात्मिक अवधारणा ही ऐसी है जो (वास्तविक) संतोष प्रदान करती है । धनी मनुष्यों के जीवन में भी विपन्न परिस्थितियाँ आती हैं हालांकि वे उन सब वस्तुओं से घिरे रहते हैं जो धन और प्रेम से क्रय या प्राप्त की जा सकतीं हैं , फिर भी अपने जीवन के किन्हीं क्षणों में वे असहाय एवं विवश अनुभव करते हैं । ऐसे ही क्षणों में हमें ईश्वर की झलक मिलती है , उसका आभास होता है , जो हमारे जीवन के प्रत्येक पग को निर्देशित कर रहे हैं । यही विनय है ।

राजनैतिक क्षेत्र में मुझे निराशा घेरे होने के बाबजूद मैंने कभी अपनी शान्ति भंग न होने दी । वस्तुतः मुझे ऐसे व्यक्ति मिले हैं जो मेरी शान्ति को देख कर ईर्ष्या करते हैं मैं आपको बताता हूँ कि यह शान्ति प्रार्थना से प्राप्त होती है । मैं विद्यावान व्यक्ति तो नहीं हूँ किन्तु मैं विनम्रता पूर्वक प्रार्थनावान व्यक्ति होना अवश्य स्वीकार करता हूँ ।

37-------

मैं अपना अनुभूत प्रमाण प्रस्तुत कर रहा हूँ। जो व्यक्ति चाहे इसको आजमावे और देखे कि दैनिक प्रार्थना के फलस्वरूप उसे अपने जीवन में कोई ऐसी अभिनव वस्तु उपलब्ध होती है जिसकी किसी भी अन्य वस्तु से तुलना नहीं की जा सकती। - 3.108

3.108 There is something infinitely higher than intellect that rules usand even the sceptics. Their scepticism and philosophy donot help them in critical periods of their lives . They need something better, something outside than that can sustain them. And so , if some one puts a conundrum before me , I say to him: You are not going to know the meaning of God or Prayer, unless you reduce yourself to a cipher. you must be humble enough to see that inspite of your greatness and gigantic intellect you are but a speck in the universe. A merely intellectual conception of the things of life is not enough. It is the spritual conception of the things which eludes the intellect and which alone can give one satisfaction. Even monied men have critical periods in their lives , though they are surrounded by every thing that money can buy and affection can give , they find at certain moments in their lives utterly distracted. It is in these moments that we have a glimpse of God, a vision of Him who is guiding every one of our steps in life . It is Prayer. - Harijan: Eng. Weekly 19.8.39

Inspite of despair staring me in the face on the political horizon, I have never lost my peace . In fact , I have found people who envy my peace . That peace , I tell you , comes from Prayer. I am not a man of learning , but I humbly claim to be a man of Prayer. I have given my practical testimony . Let every one try and find , that as a result of daily prayer , he adds something new to his life , something withwhich nothingcan be compared.

- Young India : Eng. Weekly : 24.9.1931.

दैनिक जीवन के लिये प्रार्थना की अपेक्षा एवं अनिवार्यता प्रतिपादित करते हुए महात्मा गांधी कहते हैं -

मेरा विश्वास है कि प्रार्थना धर्म की मूल आत्मा एवं सार है । इसलिये प्रार्थना, मानव जीवन-सारतत्व होना चाहिये क्योंकि धर्म के विना कोई व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता ।

प्रार्थनावान मनुष्य स्वयं शान्त होगा और संपूर्ण संसार से शान्त होगा । वह मनुष्य जो प्रार्थना हीन हृदय सहित संसारी कार्यकलापों के लिए अग्रसर होता है, स्वयं दुःखी होगा, और दुनियाँ को भी दुःखी बनावेगा .... प्रार्थना ही एकमात्र साधन है जिससे हमारे जीवन के **दैनिक कार्यों** में, व्यवस्था, शान्ति और सुख प्राप्त हो सकता है।

इसलिये अपने दिन का शुभारम्भ प्रार्थना से कीजिये और इसको ऐसा आत्मसात कीजिये कि ~~वह~~ सायं तक इसका प्रभाव बना रहे, फिर दिन का समापन प्रार्थना से कीजिये जिससे कि आपकी रात्रि शान्ति पूर्वक व्यतीत हो, स्वप्न एवं दुःस्वप्नों से मुक्त हों ।

3.109

इस प्रकार महात्मा गांधी ने विनय के धार्मिक पक्ष को व्यावहारिक रूप देकर शान्ति पूर्वक जीवन यापन के लिये विनय को अपेक्षित एवं उपयोगी सिद्ध किया । आज की समस्या भी कुछ ऐसी ही है । आस्थावान् व्यक्तित्व के अभाव में आज विद्रोह, विद्वेष, संघर्ष और हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा है, बिखराव और विघटन की परिस्थितियाँ उभर कर ऊपर आ गई हैं । ऐसा लगता है कि मानव जीवन अशान्त, विकल

3.109 - I believe that prayer is the very soul and essence of religion, and , therefore, prayer must be the very core of the life of man ,for no man can live without prayer/religion.
The man of prayer will be at peace with himself and with the whole world; the man who goes about the affairs of the world without a prayerful heart will be miserable and will make the world also miserable ...Prayer is the only means of bringing about orderliness and peace and repose in our daily acts..
Young India: 23.1.1930

Begin , therefore , your day with prayer , and make it so soulful that it may remain with you until the evening . Close the day with prayer so that you may have a peaceful night free from dreamsand night mares.

- young India : 23.1.1930

और उच्छृंखल हो चला है । अधुना विनय प्रार्थना ही एक मात्र साधन शेष है । इसको अपनाना चाहिए तथा मानव जीवन को शान्त, व्यवस्थित एवं सुखी बनाना चाहिए ।

भगवान् महावीर ने विनय सूत्र में विनय को धर्म का मूल बताया है और मोक्ष को उसका अंतिम रस कहा है । उनका कहना था कि विनय से मनुष्य बहुत शीघ्र श्लाघायुक्त संपूर्ण शास्त्रज्ञान तथा कीर्ति का संपादन करता है ।

आध्यात्मिक क्षेत्र में विनय समाधिस्थ एकाग्रता की साधन प्रतिपादित की गई है किन्तु स्वयं विनय की दृष्टि से विनय का अपना अलग महत्व है ।

3.1.9.1

विनय की अपेक्षा इसलिये है कि साधक को अपने बुद्धि बल का भरोसा नहीं है । यदि अपनी बुद्धि, अपने ज्ञान का विश्वास होता तो फिर वह ज्ञान मार्ग अपनाता विनय क्यों करता -

निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं
तातें बिनय करउँ सब पाहीं ।। - 3.110

3.1.9.2

विनय करने से प्रभु संकट दूर कर देते हैं । इसलिये विनय की अपेक्षा होती है तथा संकट पड़ने पर हर एक व्यक्ति संकट मोचन के लिये विनय करता है -

ताते हौं बार बार देव ! द्वार परि पुकार करत
आरति, नति, दीनता कहें प्रभु संकट हरत ।। - 3.111

3.1.9.3

भजन पूजन के आचरण से भगवान् प्रसन्न होते हैं किन्तु जब ऐसे आचरण न हो तो केवल विनय एक मात्र साधन शेष रह जाता है ।

नहिं एको आचरन भजन को, बिनय करत हौं ताते । - वि. पृ. 168

3.110- मानस- 1.7.4
3.111- विनय - 134

3.1.9.4

अपने अवगुणों, पापों, क्षुद्रता आदि से आशंकित होकर विनय करने की अपेक्षा होती है। भगवान परम हितैषी हैं तथा पाप नाश कर देंगे, यह बात समझ में आते हुए भी अपने मन में आशंका होती है कि कहीं ऐसा न हुआ तो क्या होगा। इसलिये इस प्रकार के संदर्भ में विनय करना आवश्यक हो जाता है -

बिनय करौं अपभयहु 3.113 तें, तुम्ह परम हितै हो।-3.112

3.1.9.5

लोक और वेदों में भी यह रीति सु परिचित है कि अच्छे स्वामी विनय सुनते हैं और प्रीति पहचान लेते हैं। इसलिये विनय की अपेक्षा रहती है -

लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती। बिनय सुनत पहिचानत प्रीती ।।- 3.114

इसी भाव को विनय पत्रिका में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं -

भलो मानिहैं रघुनाथ

जो हाथ जोरि माथ नाइ है ।। - 3.115

3.112- विनय 270

3.113- कुछ ऐसे ही भाव पाश्चात्य रहस्यवादी परंपरा के अंतर्गत प्रकट हुऐ हैं :-

Prayer oneth the soul to God...When our courteous Lord of His grace sheweth Himself to our soul, we have that we desire And then we are not, for the time, what we should more pray, but all our intent with all our might is set wholly to be beholding of Him. and this is an high unperceivable prayer, as to my sight; for all the cause wherefore we pray, it is oned into the sight and beholding of Him to whom we pray; marvellously enjoying with reverent dread, and with so great sweatness and delight in Him, that we can pray right nought but as He stirreth us, for the time.
- The English Mystical Tradition: D.Knowle
p.133

3.114- मानस- 1.27.5

3.115- विनय 135

3.1.9.6

खल शत्रु मित्र उदासीन सबका भला सुन कर जलते हैं, यह उनका स्वभाव है। वह दूसरों को कष्टव दुःख ही पहुँचाते हैं। उनकी विनय भी कर लेनी चाहिए। वह अपने स्वभाववश मानेगें तो नहीं पर जब वह अपने स्वभाव से विवश हैं तो संतजनों को भी अपने स्वभाव के अनुसार विनय कर लेनी चाहिए।

उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति।

जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति।। - 3.116

3.1.9.7

विनय स्वर्ग के भाण्डार को खोलने के लिए धर्म के हाथ में प्रदत्त कुंजी है। इसलिए विनय अपेक्षित है उनके लिए जो स्वर्ग के भाण्डार के इच्छुक हैं। - 3.117

इस प्रकार दीन और दुनियाँ दोनों के लिये विनय की अपेक्षा है तथा विनय से दुनियाँ और भगवान् दोनों प्रसन्न होते हैं तथा अपना कल्याण होता है।

3.2.

तुलसी विनय पत्रिका दर्शन -

विनय पत्रिका में 3.118 गो० तुलसीदास जी ने कई पदों में दार्शनिक सिद्धान्तों का संदर्भ प्रस्तुत किया है। ये संदर्भ आध्यात्मिक शोक एवं विषाद के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत हुए हैं तथा इन परिस्थितियों में ही विनय, दर्शन के रूप में अवधारित हुई है। यथास्थान गोस्वामी जी ने दैहिक तापों तथा तज्जनित कष्टों और भौतिक

3.116- मानस- 1.4

3,117- Prayer is the key in the hand of faith to unlock Heaven's store house...Bible

3.118- विनय- 110,111,115,116, 120, 121, 122, 124, 136, 139

विषाद एवं शोक की ओर भी संकेत किया है किन्तु इसके मूल में भी अभीष्ट इनसे उत्पन्न मोह और भ्रम का उल्लेख करना ही रहा है जो वस्तुतः आध्यात्मिक विषाद एवं शोक के कारण हैं । - 3.119

वस्तुस्थिति यह है कि दार्शनिक सिद्धान्त और साधन विफल रहते हैं और मोह माया एवं भ्रम और संशय जन्य शोक और विषाद का निराकरण नहीं हो पाता । सब साधनों की विफलता देख कर क्लेश होना स्वाभाविक है । केवल प्रभुकृपा से ही कल्याण होता है । प्रभु कृपा कैसे करें, यह प्रश्न स्वयं उलझा हुआ रह जाता है और शोक और विषाद की स्थिति बनी रहती है ।

विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का उलझाव तथा वाक्यज्ञान से भवपार न हो सकने की स्थिति भी आध्यात्मिक क्षेत्र साधकों के लिए विषाद एवं शोक का कारण रही है । जन्म मरण का भवदुःख तो भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विषाद एवं शोक का कारण है ही । इन परिस्थितियों में केवल विनय करना ही शेष कृतित्व रह जाता है ।

3.119 ‡ ‡ - मानस में इन प्रसंगों को जिज्ञासा समाधान के रूप में प्रस्तुत किया गया है फिर भी आध्यात्मिक शोक एवं विषाद को जिज्ञासा का मूल कारण बताया गया है । इस प्रकार आध्यात्मिक शोक यहाँ भी मुख्य परिप्रेक्ष्य रहा है ।

> ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ ।
> जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ।।- 3:14
> कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा । सेवक सुखद कृपा संदोहा ।।- 7:82:5
> जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि ।। 7:85

3.119‡ ‡ - " सोक मोह भ्रम जाइ " - 3-14, 15, 16 रामगीता -
श्रीराम गीता भुशुण्डि प्रति - 7-85-

43------

भवजनित विपत्ति - भवजनित बिपति अति,

बिषय बारि मनमीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।

ताते सहिय बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक ।।

3.120 ( )

जिव जबतें हरितें बिलगान्यो। तबतें देह गेह निज जान्यो ।

मायाबस स्वरूप बिसरायो । तेहि भ्रमतें दारुन दुख पायो ।।

भवसूल अनेक ,

बहु जोनि जन्म, जरा, बिपति, मतिमंद ! हरि जान्यो नहीं ।

बालदसा जेते दुख पाये

छुधा ब्याधि बाधा भइ भारी बेदन नहिं जानै महतारी ।

जोवन जुवति संग रंग रात्यो

परदार परछत द्रोह पर संसार बाढ़ै नित नयो

देखत ही आई बिरूधाई

सो प्रकट तनु जर जर जराबस ब्याधि सूल सताबई

सिर कंप , इन्द्रिय-सकित प्रतिहत, बचन काहु न भाबई ।।

3.120 ( )

दार्शनिक चिन्तनगत विषाद एवं शोक -

- दार्शनिक सिद्धान्तों की भ्रमगत स्थिति

- हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी ।

जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ।।

तुलसिदास मैं मोर गये बिनु जिउ सुख कबहुँ न पावै ।। - 3.121

3.120 ( ) - विनय - ~~110~~ 102

3.120 ( )- विनय 136

3.121- विनय- 120

44--------

- हे हरि ! यह भ्रम की अधिकाई ।

देखत , सुनत, कहत, समुझत संशय- संदेह न जाई ।।

जो जग मृषा तापत्रय अनुभव होइ कहहु केहि लेखे ।

कहि न जाय मृग बारि सत्य भ्रम ते दुख होइ बिसेखे ।। - 3.122

- वाक्यज्ञान विफलतागत -

बिनु तव कृपा दयालु ! दास हित ! मोह न छूटै माया ।

वाक्यज्ञान अत्यंत निपुन भव पार न पावै कोई ।। - 3.123

- साधन विफलतागत -

- ग्यान भगति साधन अनेक सब सत्य झूँठ कछु नाहीं ।

तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम , यह भरोस मन माहीं ।। - 3.124

- हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी

जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ।। - 3.125

- माधव मोह पास क्यों टूटै । बाहेर कोटि उपाय

करिय अभिअंतर ग्रंथि न छूटै ।।- 3.126

दार्शनिक सिद्धान्तों की भ्रान्ति तथा विनय प्रश्रय -

गोस्वामी तुलसीदास जी ने प्रत्येक दार्शनिक सिद्धान्त का विवेचन किया है तथा सबको भ्रान्तिपूर्ण ही माना है । केवल विनय प्रश्रय ही एक मात्र साधन है जिससे भगवान् प्रसन्न होगें तथा भगवान् की प्रसन्नता से जीव का कल्याण होगा । उनका दार्शनिक

3.122- विनय- 121 , 3.123- विनय- 123 , 3.124- विनय- 116

3.125- विनय- 120 , 3.126- विनय- 115

45--------

चिन्तन अद्वैत, एवं विशिष्टा द्वैत के अनुकूल [3.128] होते हुए भी इनको स्वीकार नहीं करता। वह तीनो सिद्धान्तों को भ्रम ही बतलाते हैं।

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।

तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम जो आपन पहिचानै ।।- 3.127

3.127- विनय- 111

3.128- अद्वैतवाद- ब्रह्म वास्तविक एवं शुद्ध स्वरूप में ब्रह्म केवल निर्गुण है जो अज, अनादि निर्विशेष, निरंजन, नेति आदि नामों से अभिहित है।

ब्रह्म व्यापक अकल सकल पर, परम हित, ज्ञान गोतीत गुन वृत्ति हर्ता।- विनय- 49

नित्य, निर्मोह, निर्गुण, निरंजन, निजानन्द, निर्वान, निर्वानदाता।

निर्भरानन्द, निःकम्प, निसीम, निर्मुक्त, निरूपाधि, निर्मम विधाता ।।

अनघ, अद्वैत, अनवद्य-अव्यक्त, अज, अमित, अविकार, आनन्द सिन्धो ।-विनय-56

जीव- ब्रह्म और जीव का अभेद अद्वैतवादी मान्यता है। इस मान्यता का भी प्रतिपादन गोस्वामी जी करते हैं।

- सो ऽहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। -----------
- मृषा भेद जदपि कृत माया। -------------
- निज सहज अनुभव रूप तब खल भूलि अब आयो तहाँ।

  निरमल निरंजन निरबिकार, उदार सुख तैं परिहर्यो ।--------
- देहजनित विकार सब त्यागै। तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै।

जगत एवं माया - अद्वैतवादी जगत् को मिथ्या मानते हैं। मिथ्या होते हुए भी सत्य भासता है, यह माया का प्रभाव है। यह माया या भ्रम ही जीव को बाँधे हुए है। इस माया का नाश केवल ज्ञान से संभव है। गोस्वामी जी ने इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है तथा मृगवारि, रज्जु सर्प, स्वप्न जैसे अद्वैत वादी उदाहरण एवं शब्द भी अपनाये हैं।

द्वैत मत के तो स्पष्टतः वह विरोधी हैं ।

- हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी ।

जदपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ।।- विनय- 120

- जो जग मृषा ताप त्रय अनुभव होइ कहहु केहि लेखे ।

कहि न जाय मृग बारि सत्य भ्रमतें दुख होइ बिसेखे ।।- विनय- 121

- बूढ्यो मृग बारि खायो जेबरी को साँप रे - विनय- 73

- यथा पटतंतु , घट मृत्तिका, सर्प-स्रग , दारु करि , कनक कटकांगदादी *- विनय-54

- दोष दुख सपने के जागे ही पै जाहिं रे ।

तुलसी जागें तें जाइ ताप तिहुँ ताय रे ।। - विनय- 73

विशिष्टा द्वैत -

ब्रह्म - विशिष्टा द्वैत वादी ब्रह्म को सगुण मानते हैं । गोस्वामी जी ने सगुण ब्रह्म के रूप में ही राम की प्रतिष्ठा की है । उनकी सभी कृतियों में राम सगुण ब्रह्म के रूप में प्रस्तुत एवं प्रतिपादित हैं -

तब मैं निर्गुन मत करि दूरी । सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी ।

जीव- विशिष्टाद्वैत वादी जीव और ब्रह्म में अंग- अंगांगी भेद मानते हैं । अभेद होते हुए भी पृथकता प्रतिपादित करते हैं ।

" ईस्वर अंस जीब अविनासी "

" ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर हौं चेरौ " - विनय- 79

" हौं जड़ जीव ईस रघुराया । तुम मायापति, हौं बस माया" - विनय-177

जगत्- ईश्वर जगत् का निमित्त और उपादान कारण है । सृष्टि माया नहीं, प्रत्युत वास्तविक है । जैसे मकड़ी अपने अंदर से जाला पैदा करती है , उसी प्रकार ईश्वर जगत् की सृष्टि करता है । संसार से पार उतरने के लिए भक्ति , शरणागति तथा भगवत्कृपा को साधन मानते हैं -

- रघुपति भगति सुलभ सुख कारी । सो त्रय ताप सोक भयहारी ।- ~~मानस~~-वि.136

- दास तुलसी चरन सरन संसय हरन - विनय- 44

- तुलसीदास हरि कृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं ।- ~~मानस~~-वि.116

- सपनेहुँ नहीं सुख द्वैत- दरसन, बात कोटिक को कहै - विनय- 136

- जो निज मन परिहरै बिकारा

तौ कत द्वैत जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा । - विनय- 124

47-----------

अधिकांश विद्वान् गोस्वामी जी को विशिष्टाद्वैत वादी मानते हैं । इस मान्यता का कारण यह है कि गोस्वामी जी का अनन्य आग्रह भक्ति , शरणागति तथा प्रभु कृपा के प्रति है तथा यह साधन विशिष्टा द्वैत के अंतर्गत अनुस्यूत एवं मान्य हैं । गोस्वामी जी की मूल धारणा प्रपत्ति (ईश्वर की शरण में जाना) की ओर रही है जो भक्ति की पराकाष्ठा है तथा विशिष्टा द्वैत वादियों का अभीष्ट है । भगवान् की अहैतुकी कृपा का दृढ़ विश्वास तथा सर्वभावेन भगवत् शरणागति गोस्वामी जी का भी अभीष्ट है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने " नानापुराणनिगमागम " से सामग्री ली है किन्तु स्वान्त: सुखाय उसे प्रस्तुत किया है । इसीलिये किसी मत या संप्रदाय के प्रतिपादन का प्रश्न कभी उनके सामने नहीं आया ।

जीव की स्थिति वह अपनी ओर से किञ्चित् पृथक् रूप में प्रस्तुत करते हैं । इसीलिये वह किसी दर्शन के चौखटे में नहीं बांधी जा सकती ।

आनंद सिंधु मध्य तव बासा । बिनु जाने कस मरसि पियासा ।।
मृग-भ्रम बारि सत्य जिय जानी । तहँ तू मगन भयो सुख मानी ।।
तैं निज करम डोरि दृढ़ कीन्ही । अपने करनि गाँठि गहि दीन्ही ।।
ताते परबस परयो अभागे । ता फल गरभ-बास-दुख आगे ।।
बहु जोनि जनम, जरा, बिपति, मतिमंद ! हरि जान्यो नहीं ।
श्री राम बिनु बिश्राम मूढ़ , बिचारू लखि पायो कहीं ।। - 3.129

अब इस प्रतिपादन को चाहे जिस दार्शनिक दृष्टि से देखें,

3.129- विनय - 136

अपने आप में अलग पावेगें किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यदि दार्शनिक वाद की किसी सीमा में नहीं बंधता तो दार्शनिक नहीं है । वस्तुतः दार्शनिक वादों की सीमाओं से कहीं आगे स्वान्तः सुखाय भाव भूमि यहाँ भी परिलक्षित होती है और इस दृष्टि से गोस्वामी जी के दर्शन का अपना पृथक् अस्तित्व एवं महत्व है । उन्हें यह स्वीकार नहीं था कि उनका कोई संप्रदाय या उनका कोई दार्शनिक वाद चले किन्तु इस दृष्टि से ही यदि विचार करें तो गोस्वामी जी का प्रेम संप्रदाय है, रामाद्वैत या रामविशिष्टा द्वैत वाद है और विनय दर्शन है । उनका संप्रदाय प्रभु प्रेम है [3.130] प्रभु की अनन्य शरणागति है।राम उनके एक एवं अनन्य आराध्य हैं यही उनका अद्वैत है और उनकी विनय दर्शन संपृक्त है, दर्शन पोषित है । यह विनय भौतिक कामनाओं एवं वासनाओं से पूर्णतया मुक्त एवं विरत है । यह वस्तुतः प्रभु प्रेम एवं प्रभु शरणागति के भाव के पोषक दर्शन की अन्विति है जिसका अभीष्ट राम कृपा है । अज्ञान, मोह,लोभ, अहंकार, मद, क्रोध और काम ये सात साधन शत्रु हैं [3.131] इन पर विजय प्राप्त करने की कामना ही साधक एवं भक्त की आराधना है और इसीलिये विनय है । इन्हीं शत्रुओं के कारण प्रभु शरणागति

3.130- सब साधन को एक फल जेहिं जान्यो सो जान ।

ज्यों त्यों मन मंदिर बसहिं राम धरें धनु बान ।। - कवितावली - 17/104

॥ दो0 90 ॥

3.131- मैं केहि कहौं बिपति अति भारी । श्री रघुबीर धीर हितकारी ।।

मम हृदय भवन प्रभु तोरा । तहँ बसे आइ बहु चोरा ।।

तम ,मोह,लोभ, अहँकारा । मद, क्रोध, बोध- रिपु भारा ।।

मैं एक अमित बटपारा । कोउ सुनै न मोर पुकारा ।।

भागेहु नहि नाथ उबारा । रघुनायक , करहु सँभारा ।। - वि0 प0 पद 125

संभव नहीं हो पाती । प्रभु ही इनसे मुक्ति दिलावेंगें और प्रभु ही शरणागति प्राप्त करावेंगें । साधक की विवशता, असहायवस्था एवं असमर्थता विनय को मर्मस्पर्शी बना देते हैं । दार्शनिक शुष्क पृष्ठभूमि भाव एवं प्रेम के परिवेश में अभिनव हृदयग्राही रूप धारण कर नये उत्स एवं आयाम प्रस्तुत करती है । वह किसी वाद की सीमा में बंध पावे, यह न तो महत्वपूर्ण है न कवि का अभीष्ट ही है । दर्शन तुलसी के काव्य और साधना का संदर्भ है , प्रतिपाद्य नहीं । इसी परिप्रेक्ष्य में एक पृथक् विनय दर्शन की कल्पना साधार बनी है । जिसकी 'स्नेह समाधि' 'ध्यान रस' जैसी अपनी तकनीकी शब्दावली है ।

3.3

तुलसी तथा ईसाई मरमी संतों की विनय - डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने डा0 ग्रियर्सन की इस धारणा की कि तुलसी , सूर , मीरा आदि भक्त कवियों पर मध्य युग के ईसाई मरमी संतों [3.132] का प्रभाव है , विवेचना की है और इसको निराधार सिद्ध किया है । वास्तविकता यह है कि भक्ति की इन दोनों धाराओं में बड़ा अंतर है तथा मध्ययुगीन भारतीय संत परंपरा एवं भक्ति ईसाई मरमी संतों की परंपरा से किसी भी रूप में प्रभावित नहीं है ।

ईसाई भक्ति की त्रैत भावना होती है - ईश्वर, ईश्वर पुत्र और जीव । ईश्वर पुत्र ईश्वर और जीव के बीच मध्यस्थ होता है । सेमेटिक विश्वास के अनुसार खुदा के हाथ से खिसक कर यंत्र गिर कर पापमय हुआ, वही संसार हुआ । पाप भूमि पर मनुष्य वास करता है , इसीलिये वह स्वयं भी पापमय हो गया । स्वर्ग और पापभूमि का अंतर मिटाने के लिये प्रभु ईसा ने अवतार लिया , वही मध्यस्थ बना । उसको स्वर्ग से उतरना पड़ा और पापभूमि पर आना पड़ा । इसलिये उसे भी क्रूशविद्ध होना पड़ा । यह क्रूश ही दुख का वरण है , पाप बोध है और निरंतर दु:ख को जाग्रत करना साधना है ।

3.132-Bernard of Clairvaux, Thomas & Kampis, Ekhert, St. Tehrisa

मध्ययुगीन कवि नितांत प्रत्यक्ष ठोस रूप का उपासक है । श्री कृष्ण परब्रह्म , अनादि अनन्त , अखण्ड हैं वह निरपेक्ष हैं । राधिका उनकी आह्लादिनी, चिन्मयी शक्ति है और आश्रित एवं सापेक्ष है । इसी निरपेक्ष एवं सापेक्ष के द्वन्द्व को कवि अपनी कला से अभिव्यक्त करता है और भूल जाता है कि किस पूर्व स्वीकृति पर उसका प्रासाद खड़ा था । ईसाई साधक भक्त के सिंहासन पर आकर रूक जाता है जबकि वैष्णव भक्त और भी ऊपर उठ कर कवि के आसन पर बैठ जाता है ।

दोनों भावनानाओं का तुलनात्मक रूप इस प्रकार है -

	ईसाई मरमी संत	मध्ययुगीन कवि
भावना -	दुःख, पाप, अपूर्णता	उपनिषदों का आनन्द, अमृत, पूर्णता, आनन्दरूपममृतं यद् विभाति
मार्ग -	दुःख	लीला
प्रेम का - कारण	पाप बोध	आनंद केलि
लक्ष्य-	स्वर्गमर्त्य के व्यवधान को भरना ।	ब्रह्माण्ड में व्याप्त , अव्यवहित , पूर्ण , एक-रस ब्रह्म को उसकी लीला की संकीर्णता में उपलब्ध करना ।

दैन्य की- स्थिति	दैन्य या पाप बोध नहीं की ओर । मनुष्य स्वभावत: पापात्मा है। ईश्वर की ओर इसलिए झुका है कि वह पापमय है और ख्रीष्ट का क्रूश उसे पाप मुक्त करा देगा ।	स्वभावत: पापात्मा नहीं मानता । पत्ति से दास्य की गंध निकलती है जो 'तृणादपि सुनीचेन' होकर रहने की भावना का फल है ।
पाप-	आन्तर एवं स्वाभाविक है ।	पाप बाह्य एवं आगन्तुक है ।
पाप - भावना	वैयक्तिक नहीं प्रत्युत समाज एवं साधनागत है ।	वैयक्तिक है ।

यों ईसाई संतों की साधना के अंग एवं चरणों[3.133] का अंतिम लक्ष्य आत्मा परमात्मा

3.133- ईसाई साधना के अंग -1- Self Surrender आत्म समर्पण

2-Feeling of Lor'dslife within us
अपने में प्रभु के जीवन की अनुभूति ।

3- तीन दिशाएँ - अ- पवित्रीकरण आ- उज्जवलीकरण इ- योग या एकात्मभाव

4- प्रतीक भावना 5- अन्तर्दृष्टि और पाप बोध

साधना के चरण -1- Conversion stage चैतन्य का अकस्मात् उदय और धर्म जीवन के लिये व्याकुलता

2-Pergative stage वैराग्य , पाप बोध , दैन्य

3- Illuminative stage प्रत्येक वस्तु भगवान की प्राप्ति के लिये उद्वेलित करती है । साधक अंतर्दृष्टि का अधिकारी

4- Unitive stage आत्मा-परमात्मा की अविच्छेद्य एकता ।

52-------

की अविच्छेद्य एकता है किन्तु प्रमुख भाव दैन्य में ज़मीन आसमान का अंतर है । मूल भेद दृष्टिकोण का है । ईसाई मरमी संतों की भावना दुःख, पाप आधृत है तथा मध्ययुगीन कवियों की आनन्द एवं लीला आधृत है । फल यह है कि ईसाई भक्त भौतिक सुखदुःख में भागवत् कृपा व दया का प्रसाद प्राप्त करना चाहता है जबकि मध्ययुगीन कवि भौतिक सुखदुःख की मखौल उड़ता है तथा इसकी रति को भक्ति की श्रेणी में नहीं गिनता ।

एक उदाहरण ईसा-भागवद्[3.134] कथा से लें -

ईसा के शिष्य ईसा के दर्शन करते हैं और उस अवसर पर भौतिक सुखदुःख का प्रसाद प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं ।

शिष्यों के जाल में कोई मछली नहीं फँसती । ईसा बताते हैं कि जाल को सीधी हाथ की ओर फेंको, वहाँ मछलियाँ मिलेगीं । शिष्य ऐसा ही करते हैं और इतनी मछलियाँ फँस जाती हैं कि जाल को किनारे लाना कठिन होता है ....

3.134- Morning came and there stood Jesus on the beach, but the disciples did not know that it was Jesus. He called out to them, Friends, have you caught anything? They answered NO. He said ' Shoot the net to starboard and you will make a catch. They did so, and found they could not haul the net aboard, there were so many fish in it..

- The Gospel According to JOHN
1961p 59-60

तुलसी भौतिक सुखदुख के मनोकामी मनुष्यों की भक्त कहलाने की इच्छा रखन की मखौल उड़ाते हुये कहते हैं -

बेष सुबनाइ सुचि बचन कहैं चुवाइ , जाइ तौ न जरनि धरनि-धन-धामकी ।
कोटिक उपाय करि लालि पालि अत देह , मुख कहिअत गति राम ही के नाम की ।।
प्रगटैं उपासना, दुरावैं दुरबासनाहि, मानस निवास भूमि लोभ-मोह-कामकी ।
राग-रोष-ईरिषा-कपट कुटिलाई भरें, तुलसी-से भगत भगति चहैं राम की ।।- 3.135

महात्मा गांधी ने ईसाई धर्म का अध्ययनकरते हुए ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं -
" मेरे गले यह बात उतरती न थी कि एक ईशु ख्रिस्त ही ईश्वर के पुत्र हैं । उन्हें जो मानेगा , वही तरेगा .... ख्रिस्तियों के पवित्र जीवन में से मुझे ऐसी कोई चीज न मिली , जो दूसरे धर्मानुयायियों के जीवन से न मिलती हो । सिद्धान्त की दृष्टि से ख्रिस्ती सिद्धान्त में मुझे कोई अलौकिकता नहीं दिखाई दी । त्याग की दृष्टि से हिन्दूधर्मानुयायियों को त्याग मुझे श्रेष्ठतर मालूम हुआ । " आगे रामचन्द्र भाई के परामर्श का अंश उद्धृत करते हुये उन्होने लिखा निष्पक्षता से विचार करते हुए मुझे यह प्रतीति हुई है कि हिन्दू धर्म में जो सूक्ष्म और गूढ़ विचार हैं , आत्मा का निरीक्षण है , दया है, वह दूसरे धर्म में नहीं है ।- 3.136

गोस्वामी जी ने दैन्य भाव की 3.137 प्रमुखता एवं प्रधानता की अपेक्षा करते हुए भी

3.135- कवितावली- 7.119

3.136- संक्षिप्त आत्मकथा - सप्तमावृत्ति- पृ० 50-51

3.137- अत: चातक के प्रेम के भीतर महत्त्व की आनंदमयी स्वीकृति छिपी हुई है । इस महत्त्व के सम्मुख वह जो दीनता प्रकट करता है , वह सच्ची दीनता है । हृदय के भीतर अनुभव की हुई दीनता है, प्रेम की दीनता है - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: तुलसीदास: 2003 वि. पृ. 76

उस दैन्य भाव की भर्त्सना भी की है जो भगवान् की उन्मुखता न प्राप्त करा सके । इससे स्पष्ट है कि तुलसी का दैन्य दुनिया का दैन्य नहीं है, दीन का दैन्य है -

तुलसिदास भव-त्रास मिटै तब जब मति येहि सरूप अटकै ।
नाहिंत दीन मलीन हीन सुख, कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै ।।- 3.138

3.4- विनय का स्वरूप

3.4.1- विनयकर्ता - विनयकर्ता से अनेक अपेक्षायें की गई हैं । विनयकर्ता अपने अंतर का मनोविश्लेषक एवं अंतर्वीक्षी होना चाहिये । उसे अपने दोष, अपने अवगुण भलीभाँति दिखलाई देने चाहिये । इनको उसे अपने आराध्य के समक्ष रखना चाहिये तभी आराध्य कृपा कर मन निर्मल करेगें । निर्मल मन से ही आत्म साक्षात्कार संभव होता है -

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।।

ईसाई मरमी संतों ने इसी को पाप बोध की अपेक्षा कहा है तथा साधक के लिये इसकी आवश्यकता पर बल दिया है । भारतीय मनीषा तथा मध्ययुगीन संतों की यह पाप बोध जैसी प्रतीत होती हुई अभिव्यक्ति मात्र अति दैन्य की 3.139 अपेक्षित मनोवृत्ति का उद्घाटन है जिसके द्वारा अहं शून्यता संभव होगी तथा प्रभु साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त होगा । 'मैं गही न गरीबी' 3.140 का यह साधन है ।

3.138- विनय- 63

3.139- देखिये पूर्व विवेचित मूल मनोभाव : विनय

3.140- विनय- 148

साधना के क्षेत्र में काम क्रोध मोह लोभ आदि की घातक भूमिका साधकों को भलीभाँति ज्ञात है। इन साधना शत्रुओं को, भगवान् के मनमंदिर के चोरों [3.141] को बड़ी सावधानी और धैर्य पूर्वक अनवरत अभ्यास के द्वारा शान्त किया जाता है। दमन और नियंत्रण इस दिशा में विफल रहे हैं। मन की इन कलुषित भावनाओं को भक्ति और प्रभु प्रेम के पोषण में उदात्त बना कर शान्त किया जाना ही एक मात्र उपाय है। इसलिये इनका प्रकाशन एवं प्रकटीकरण ही नहीं उद्घोषा आवश्यक है। अपने आराध्य के समक्ष अपने गुण दोष कहने से दीनता कम होती है और संतोष परम दृढ़ होता है।

तुलसी राम कृपालु सों कहि सुनाउ गुन दोष ।
होय दूबरी दीनता परम पीन संतोष ।।- 3.142

गोस्वामी जी ने अपने राम के समक्ष जीव के सारे गुण दोष खोल कर रख दिये हैं। विनयकर्ता की स्थिति इन्हीं गुण दोषों में उजागर होती है।

विनयकर्ता के गुण -

अनन्य शरणागति - विनयकर्ता की एक मात्र अपने आराध्य में प्रीति-प्रतीति होनी आवश्यक है। तभी वह अपने आराध्य से विनय करेगा। सब ओर से निराश होकर जब मात्र एक आधार शेष रह जाता है, तभी विनय संभव होती है।

तुलसीदास जी ने इस भाव को विभिन्न अनुभावों सहित विस्तार से प्रस्तुत किया है -

---

3.141- विनय पत्रिका पद 125

3.142- दो0- 96

अनन्यता - अन्य का विश्वास नहीं है

जब कब निज करुना सुभावतें, द्रवहु तौ निस्तरिये ।

तुलसिदास बिस्वास आन नहिं, कत पचि-पचि मरिये ।।- 3.143

- मन कर्म वचन से स्वप्न में भी किसी दूसरे का भरोसा नहीं है

बानि बिसारन सील है मानद अमान की ।

तुलसीदास न बिसारिये, मन करम बचन जाके,

सपनेहुँ गति न आनकी ।। - 3.144

- नाहिन और ठौर मो कहँ ॥ वि. 185 ॥

प्रेम पीनता - आराध्य ही एक मात्र शुभेच्छु एवं हितैषी है ।

'प्रभु गुरु मातु पिता' हितैषी एवं शुभचिन्तक कहे गये हैं किन्तु तुलसी के तो एक मात्र राम ही सब कुछ हैं -

- पिआस प्रेम पान की - 315

- दर्शनारत - 3.146

- दरस आस पिआस तुलसीदास चाहत मरन - 3.147

- प्रीति की प्रतीति - 3.148

3.143- विनय- 186, 3.144- विनय- 42 , 3.145- विनय- 42 ,

3.146- विनय - 60, 3.147- विनय- 218, 3.148- विनय-76

- बिनय करौं अपभ्यहु तें, तुम्ह परम हितै हो ।

तुलसिदास कासौं कहै, तुमही सब मेरे,

प्रभु गुरू मातु पितै हो । - 3.149

साधत साधु लोक-परलोकहि, सुनि गुनि जतन घनेरे ।

तुलसी के अवलंब नाम को, एक गाँठि कइ फेरे ।।- 3.150

आशावादिता एवं आराध्य की कृपा का दृढ़ विश्वास -

आराध्य के प्रेम की प्रतीति होनी चाहिये । उन्होने अपना लिया है और आश्वस्त किया है और मैं उनका गुलाम बन गया हूँ, यह विश्वास होना चाहिये । लोग चाहे जो कहे उसकी कुछ चिन्ता नहीं होनी चाहिये । भक्त को तो अपने आराध्य की चिन्ता होनी चाहिये । तुलसी का बनना बिगड़ना श्री राम जी के रीझने खीझने पर है । उनके प्रेम का उन्हें दृढ़ विश्वास है । इसलिये सदा आनन्दित रहते हैं ।

बूझयो ज्यौं ही, कहयो, मैं हूँ चेरो ह्वै हो रावरो जू

मेरो कोऊ कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं ।

भींजो गुरू पीठ, अपनाइ गहि बाँह, बोलि

सेवक - सुखद, सदा बिरद बहत हौं ।।

लोग कहैं पोच, सो न सोच न सँकोच मेरे

ब्याह न बरेखी, जाति पाँति न चहत हौं ।

तुलसी अकाज-काज राम ही के रीझे- खीजे

प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ।।- 3.151

3.149 - वि. 270

3.150- विनय- 227

3.151- विनय- 76

58--------

एक ही विनय अभीष्ट है कि भगवान हृदय कमल में सदा विराजमान [3.152] रहें जिससे प्रभु सामीप्य, एवं प्रभु साक्षात्कार का परम अभीष्ट सिद्ध हो और जीव का कल्याण हो सके -

मम हृदयकंज निवास कुरु, कामादि खल-दल गंजनं ।- 3.153
माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं रामसिय मानस मोरे ।- 3.154
तुलसी राम भगति बर माँगै । - 3.155
देहु काम-रिपु राम-चरन रति, तुलसिदास कहँ कृपा निधान।-3.156
तुलसिदास हरि-चरन-कमल--बर, देहु भगति अविनासी ।- 3.157
देहि कामारि ! श्रीराम पद - पंकजे भक्ति
अनवरत गत-भेद माया - 3.158

दैन्य - विनयकर्ता का सबसे बड़ा गुण दैन्य है जिसकी उसके लिये अपेक्षा है तथा जिसके विना विनय का कोई अर्थ ही नहीं होता ।

यह दैन्य तुलसीदास जी के काव्य में गुलाम राम गुलाम , चेरो, दास , गरीब , गरीबी, दीन, दीनता और मिसकीनता आदि शब्दों के माध्यम से प्रकट एवं अभिव्यक्त है ।

3.152- दिल में है तस्वीर-यार
जब जरा गरदन झुकाई देख ली ।

3.153- विनय - 45

3.154- विनय-1

3.155- विनय-2

3.156- विनय-3

3.157- विनय- 9

3.158- विनय-10

दीन [3.159] शब्द की सबसे अधिक आवृत्ति है। विनय पत्रिका की आवृत्ति इस प्रकार है -

गुलाम - 2

गरीब- 6

गरीबी- 2

दीन- 36

दीनता- 4

मानस में दीन और दीनता शब्द प्रयोग की आवृत्ति अपेक्षातया अधिक है -

गुलाम- x

गरीब- 6

गरीबी- x

दीन- 43

दीनता- 5

दीन भगवान को प्रिय हैं तथा दीनों के प्रति उनका सहज स्नेह है - [3.160] इसीलिये विनय

3.159- दीन व दीनता आवृत्ति-

दीन- 6,7,41,60,63,68,79-1, 94, 101, 102, 109, 110-1 , 113 , 114-1 143,-7, 149, 162, 165,-1, 166, 179, 180, 210, 212, 216, 217,220, 221, ,223,242, 255, 257, 269, 274,277, 278 =ǁ36 ǁ

दीनता- 262 , 275, 276 , 235 , = ǁ4ǁ

3.160- जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे - 1.185, छं0

जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन - 1.04

दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ।- 1.208.6

60------

इस दीनता, इस गरीबी को प्राप्त करने के लिये ही आत्मालोचन एवं आत्मवीक्षा की अपेक्षा है जिसके द्वारा अपने दोष ही दोष दिखलाई देते हैं । दैन्य भाव से की गई एक बार की विनय ही अलम् होती है किन्तु कठिनाई इस दैन्य भाव को प्राप्त करने की है ।

कवितावली में भी दैन्य के लिये कवि का विशेष आग्रह रहा है । एक दो उदाहरण अवलोकनीय हैं -

जो करता, भरता, हरता, सुर-साहेबु दीन-दुनी को - 3.165

विनती करत दीन दूबरी दयावनो सो - 3.166

विनयकर्ता की दोषानुभूति - गोस्वामी जी ने दीनता की साधना के लिये अपने अनेक दोषों का उल्लेख किया है । उनका विश्वास है कि इन दोषों के दूर होने के साथ अहं शून्यता प्राप्त होगी तथा अहंशून्यता ही दूसरे शब्दों में दीनता होगी । यह दोष बहु संख्यक हैं और सद् आचार विचार एवं भावना की अभीप्सा के संदर्भ में प्रस्तुत होकर लोभ, मोह, काम, क्रोध, आदि सभी कलुषित वासनाओं एवं विषयों का समाहार करते हैं । इन दोषों से मुक्ति प्राप्ति का अभीष्ट सदाचरण एवं सदाशयता की प्राप्ति से ही संभव है जो साधना की प्रमुख अपेक्षा होती है ।

विनयकर्ता के अनुभाव -

विनयकर्ता बड़े भाव व प्रेम से विनय करे, यह विनय की प्रमुख अपेक्षा है । भाव व प्रेम रहित विनय मात्र आडम्बर होती है और किसी भी रूप में फलदा नहीं होती ।

3.165- कवि०- 146

3.166- कवि०- 136

62------

कर्ता का अभीष्ट दीनता प्राप्त करना होता है तभी उसकी विनय स्वीकार हो सकेगी। विनयकर्ता की मूल समस्या एवं सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि वह दीनता, गरीबी नहीं प्राप्त कर पाता और इसके अभाव में निवेदित विनय आत्म प्रवञ्चना ही होती है। भगवान् तो दीनदयाल हैं, गरीब निवाज हैं, विनयकर्ता दीन और गरीब बन कर उनके सामने आवे तो सही -

नाथ गरीब निवाज हैं,

मैं गही न गरीबी ।- 3.161

"गरीबी, दीनता, मिसकीनता, पर्याय हैं - दीनता यह होनी चाहिये कि मुझसे नीच कोई नहीं है, तृण (घास) वत् हो जाय, पैर से कुचल जाने पर जो उफ भी नहीं करती । जिस दशा में फिर दूसरा भाव हीनसमा सके, सदा उसी रंग में रंगा रहे," केवल एक आश्रय, एक भरोसा अपने आराध्य का रहे ।-

जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव ! दुखित दीन को ! - 3.162 ॥ ॥

दीन का स्वरूप परिचय निम्नलिखित उदाहरणों में अवलोकनीय है -

मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू - 3.163

मीनु दीन जनु जलतें काढ़े 3.164

3.161- विनय- 148

3.162 ॥ ॥ - विनय- 274

3.162 ॥ ॥ - दीन से भी एक पग आगे दुखित दीन की स्थिति है । दीन हो और वह भी दुखित दीन तो उसकी पात्रता का क्या कहना । मानस में इस प्रकार के संदर्भ प्रस्तुत हुए हैं -

पुछहिं दीन दुखित सब माता । कहब काह मैं तिन्हहि विधाता । 2.145.1

सकल मलिन मन दीन दुखारी । देखीं सासु आन अनुहारी। 2.225.5

सकल जीव जग दीन दुखारी - 1.22.7

3.163-मानस-2.39.1 3.164- मानस- 2.69.3

61------

इसीलिये विनयकर्ता के दैन्य आदि भावों के साथ पुलक , रोमांच, अश्रुमोचन आदि अनुभावों की अपेक्षा की गई है -

- जयति रामायण श्रवण - संजात रोमांच, लोचन, सजल, शिथिल वाणी - 3.168

श्री राम चरित्र सुनते हुये शरीर पुलकित हो जाता है नेत्रों में प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगते हैं , वाणी गद्गद हो जाती है ,

- सुनि सीतापति - सील सुभाउ ।

मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ - 3.169

मन प्रमुदित हो , तन पुलकित हो, नेत्र प्रेमाश्रु से सजल हों, यह अपेक्षायें विनयकर्ता से हैं। यदि ऐसा न हो तो वह विनयकर्ता त्याज्य है । यह अनुभाव तो विनयकर्ता के स्वतः स्फूर्त होने ही चाहिये ।

- जनि डरपहि तोसे अनेक खल,

अपनाये जानकी नाथ - 3.170

विनयकर्ता 3.171 के मन में श्रद्धा समन्वित संभ्रम एवं भय भी होना चाहिये । भय के दो पक्ष हैं - 1- इतने बड़े साहब के सामने उपस्थित होने जाना है । संसार के छोटे मोटे साहबों के समक्ष जाते हुये संभ्रम एवं भय का भाव बना रहता है कि कहीं कोई अशिष्टता न हो जाय, कोई अशोभन व्यवहार न बन जाय, किसी प्रकार किसी बात से अप्रसन्न न

3.168- विनय- 29

3.169- विनय-100

3.170- विनय- 84

3.171- श्री मद्भगवत् गीता में अर्जुन का विनयकर्ता का स्वरूप प्रस्तुत किया है -

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य, कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।

नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य: 11 - 11 : 35

हाथ जोड़े हुए, कांपता हुआ , गद्गद् वाणी , प्रणाम करते हुए

63-----

हो जायँ । फिर वह तो साहबों का साहब है । उसके सामने जाते समय तो इस प्रकार की आशंकाओं के कारण संभ्रम एवं भय का भाव होना ही चाहिये । 2- अपने दोष अपने पापों के कारण भय लगता है । उनके समक्ष उपस्थित होते ही वह सब कुछ जान जावेंगे तथा अपनी ऐसी दशा देख कर डाट फटकार कर निकाल न दें, कह दें कि ऐसे पापियों का उद्धार नहीं हो सकता ।

इन अनुभावों के पीछे आराध्य के प्रति प्रीति- प्रतीति का भाव प्रमुख अपेक्षा है जिसके फलस्वरूप यह अनुभाव संभव होते हैं तथा जिनकी अपेक्षा स्वयं आराध्य को है ।

इस भाव के लिये गोस्वामी जी ने बार बार आग्रह किया है -

- समुझि समुझि गुनग्राम राम के, उर अनुराग बढ़ाउ ।
  तुलसिदास अनयास राम पद पाइहै प्रेम-पसाउ ।। 3 : 172

- बलि पूजा चाहत नहीं, चाहत एक प्रीति ।
  सुमिरत ही मानै भलो, पावन सब रीति ।। - 3.173

गोस्वामी जीनेंआराध्य के प्रति प्रीति- प्रतीति के भाव की पहचान भी बतलाई है । आराध्य के प्रति प्रीति- प्रतीति होगी तो मन में बैराग्य उत्पन्न होगा, सांसारिक भोगों में मन नहीं लगेगा ।

मैं जानी, हरिपद-रति नाहीं । सपनेहुँ नहिं बिराग मन माहीं ।
जे रघुबीर चरन अनुरागे । तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे ।। - 3.174

आराध्य के प्रति ऐसा अनन्य भाव हो जैसे गुलाम का होता है और यह हो सहज प्रीति- प्रतीति के कारण -

---

3.172- विनय- 100

3.173- विनय- 107

3.174- विनय- 127

64------

को जानैं को जैहै जमपुर को सुरपुर पर-धाम को ।

तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को ।। 3.175

इसी लिए गोस्वामी जी कामना करते हैं कि राम प्रिय लगें फिर सब बात बन जायगी । 'भाव कुभाव अनख आलसहू' चाहे जैसे विनय की जायगी , सब स्वीकार होगी । विनय के लिये प्रेम भाव आवश्यक है फिर विनयकर्ता की सब अपेक्षायें अपने आप पूरी हो जाती हैं - राम कबहुँ प्रिय लागिहो जैसे नीर मीन को ;

सुख जीवन ज्यों जीव को, मनि ज्यों फनि को हित , ज्यों धन लोभ-लीन को ।।

ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को ।

त्यों मेरे मन लालसा करिये करुनाकर ! पावन प्रेम पीन को ।। - 3.176

विनयकर्ता के लिये अश्रु तो मानों भक्ति का वरदान है । प्रेमातुर एवं भावविभोर होकर जब विनय की जाती है तो विनयकर्ता के सजल नयन, पुलकित शरीर , गद्गद्वाणी, में सहज दर्शन होते हैं । ये अश्रु शोकजन्य न होकर आनन्द विह्वलताजन्य होते हैं । विनयकर्ता की यह स्थिति धन्य कही जानी चाहिये । उसकी भक्ति की यह चरम उपलब्धि होती है । यह उसके लिये वस्तुत: प्रभु की अमूल्य भेंट है जो बड़े सौभाग्यशाली ही प्राप्त कर पाते हैं [3.177] भरत की विनय का दर्शन प्रस्तुत संदर्भ में अवलोकनीय है तथा अन्यतम

3.175- विनय- 155

3.176- विनय- 269

3.177- To soften the soul hardened by sin the monk needs first of all the gift of tears . This gift must on no account be equated with sadness - instead 'sadness' like wrath , is the worst enemy of prayer ..These tears should co-exist with joy , for prayer is the fruit of joy and gratitude being built on the solid basis of all the virtues . This is the practical life and the mode of Prayer..
- The story of Mysticism :Hilda Graef : Peter Davies 66; 91

उदाहरण है -

नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई । स्वामि समाज सकोच बिहाई । - 3.178

अबिनय बिनय जथा रुचि बानी । छमिहि देउ अति आरति जानी ।- 3.179

× × × × × × × × ×

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी । पुलक सरीर बिलोचन बारी ।।- 3.180

प्रभु पद कमल गहे अकुलाई । समउ सनेहु न सो कहि जाई ।। - 3.181

शिव विनय में भी विनयकर्ता के इस स्वरूप के दर्शन होते हैं -

परम प्रीति कर जोरि-जुग , नलिन नयन भरि बारि ।

पुलकित तन गदगद गिरा , बिनय करत त्रिपुरारि ।। - 3.182

विनयकर्ता की मनोभूमि - गोस्वामी तुलसीदास जी ने विनयकर्ता की मनोभूमि का विवरण चौदह निकेत के संदर्भ में प्रस्तुत किया है । इन निकेतों में विनयकर्ता की इन्द्रियों की प्रभुरति , मनोभावगत सदाचारिता , एवं अनन्यता आदि की अपेक्षा की गई है -

इन्द्रियों की प्रभुरति -

1- श्रवण- प्रभु कथा के अनन्य अनुरागी हों -

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ।।

भरहिं निरंतर होहि न पूरे । तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ।।

2.127.4,5

नेत्र - प्रभु दर्शन के अभिलाषी हों -

लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ।

निदरहिं सरित सिंधु सर भारी । रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ।।

तिन्ह के हृदय सदन सुख दायक । बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ।।

2.127.6,8

3.178- मानस - 2.299.7 , 3.179- मानस - 2.229.8, 3.180- मानस-2.300.5, 3.181-मानस - 2.300.6 , 3.182- मानस- 6.114क

जिह्वा - प्रभु यशगान की अनुरागी हो -

जस तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु ।

मुकुताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु ।।- 2.128

नासिका- प्रभु प्रसाद की सुभग सुगंधि को प्राप्त करने वाली हो -

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा । सादर जासु लहइ नित नासा।। - 2.128.1

मुख - प्रभु निवेदित भोजन करें, वस्त्राभूषण धारण करें -

तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं । प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ।।- 2.128.2

शीश - सुर, गुरु तथा द्विज के प्रति सम्मान समादर हेतु झुकें -

सीस नवहिं सुरगुरु द्विज देखी । प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी ।।

2.128.3

कर - प्रभु पद पूजा करें -

कर नित करहिं राम पद पूजा । राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा ।।-2.128.4

चरण - तीर्थाटन के लिये जाँय -

चरन राम तीरथ चलि जाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।।-2.128.5

मन - मेंअनन्यता तथा भजन पूजन में अनुरक्ति -

मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा ।पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ।।

तरपन होम करहिं बिधि नाना । बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ।।

तुम्हें ते अधिक गुरहि जियँ जानी । सकल भाँय सेवहिं सनमानी ।।

2.128.6,8

सबु करि मागहि एक फलु राम चरन रति होउ ।

तिन्ह के मनमंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ।।- 2.129

सदाचार -
एवं
अनन्यता

(अ) काम क्रोध मद मान आदि से रहित हों -

काम क्रोध मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ।।
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया । तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ।।

2.129.1,2

(आ) सब का भला चाहने वाले, सुख दुःख में समभाव रखने वाले, प्रभु की अनन्य शरणागति चाहने वाले हों -

सब के प्रिय सब के हितकारी । दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ।।
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ।।
तुम्हहिं छाड़ि गति दूसरि नाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।।

2.129.3,5

(इ) सदाचार के साथ जिनको प्रभु प्राणप्रिय हों -

जननी सम जानहिं पर नारी । धनु पराव बिष तें बिष भारी ।
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान पिआरे । तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ।।

2.129.6,8

(ई) सभी नेह नाते प्रभु से मान कर प्रभु अनन्यता प्राप्त करते हों -

स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात ।
मन मंदिर तिन्ह के बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ।- 2.130

(उ) अवगुण छोड़कर गुण ग्रहण करें, नीति निपुण हों -

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं । बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ।।
नीति निपुन जिन्ह कर जग लीका । घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ।।

2.130.1,2

68-------

(ऊ)- राम भक्ति जिनको प्रिय हो -

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ।।
राम भगति प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ।।-

2.130.3,4

(ए)- सब संसारी मोहों को छोड़ कर प्रभु शरणागत हों -

जाँति पाँति धनु धरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उरलाई । तेहि के हृदय रहहु रघुराई ।।

2.130.5,6

3.4.2- विनय आराध्य-

विनय किससे - महात्मा गांधी ने 'विनय किससे' प्रश्न पर विचार करते हुए लिखा है कि परमात्मा के हजारों नाम हैं या यों कहें कि वह नामातीत है। हम चाहे जिस नाम से जो हमें अच्छा लगे , उपासना कर सकते हैं । होता भी यह है कि प्रत्येक विनयकर्ता अपने संस्कारों के अनुकूल नाम पसंद करता है किन्तु वह परम सत्ता , अंतर्वासी , सर्व शक्तिमान एवं सर्वज्ञ होने के कारण हमारी अंतर्हित भावनाओं को जानती है और हमारी कामनाओं के अनुकूल प्रस्तुत होती है [3.183] उसी सत्ता से विनय की जाय । विनय - आराध्य में गोस्वामी ने ऐसे गुणों का समावेश किया है कि विनय-कर्ता का साहस होता है कि उन तक पहुँचे और विनय करे । इन गुणों के परिप्रेक्ष्य में ही आराध्य का प्रिय,सद्भावी हितैषी और अहेतुक कृपा कर्ता का बिम्ब बनता है । विनय दर्शन का यह पक्ष भारतीय मनीषियों की उस ऊँचाई का आभास कराता है जहाँ निर्गुण, निर्विकार,

3.183- God has a thousand names or rather , He is nameless.We may worship or pray to Him by whichever name that pleases us ...Each chooses the name according to his association and He , being In- dweller , all powerful and omniscient knows our innermost feelings and responds to us according to our desires.

- M.K.Gandhi: Young India : Sept.24,1925

का भी साक्षात्कार संभव होता है और उसकी कृपा व दया का अनुभव सुलभ प्रतीत होता है । विनयकर्ता के लिये यह आशावादिता, यह सुखान्तताअनिवार्य ,प्रपेक्षा है अन्यथा वह विनय क्यों करेगा । उसे विश्वास है कि उसकी विनय सुनी जायगी और उस पर कृपा की जायगी ।

सेवक प्रिय -

आराध्य को विनयकर्ता प्रिय हैं - आराध्य को याचक अच्छे लगते हैं । वह दानी हैं, देना- उनको अच्छा लगता है । इसलिये याचक भी अच्छे लगते हैं । वह हाथ जोड़े याचना करते हुये विनयकर्ताओं को देख नहीं सकते । तुरन्त दया करते हैं ।

- दीन दयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं ।- 3.184

सकत न देखि दीन कर जोरे - 3.185

- देव बड़े, दाता बड़े संकर बड़े भोरे ।

किये दूर दुख सबनि के, जिन्ह जिन्ह कर जोरे ।।- 3.186

- आरति, नति, दीनता कहे प्रभु संकट हरत - 3.187

- हरि तजि और भजिये काहि,

नाहिनै कोउ राम सो ममता प्रनत पर जाहि - 3.188

- उदार कलप तरू - 3.189

धनी और दरिद्र में आराध्य दरिद्र को वरीयता देते हैं । इसलिये दरिद्रता उनकी कृपा में प्राप्त करने में अपेक्षा तया बाधक नहीं है -

रघुवर रावरि यहै बड़ाई ।

निदरि गनी आदर गरीब पर

करत कृपा अधिकाई ।। - 3.190

3.184- विनय-4, 3.185-विनय-6, 3.186- विनय-8, 3.187-विनय-134
3.188-विनय- 216, 3.189- विनय - 3, 3.190-विनय-165

70------

आशुतोष - आराध्य शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं - थोड़ी सी ही या बिना सेवा के ही प्रसन्न हो जाते हैं -

- सेवत सुलभ - 3.191

- काय न कलेस- लेस लेत मान मन की

सुमिरे सकुचि रूचि जोगवत जनकी - 3.192

- औढ़र- दानि, द्रवत पुनि थोरे - 3.193

- ऐसो को उदार जग माहीं

बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर , राम सरिस कोउ नाहीं ।- 3.194

अहेतुक कृपाकर्ता - आराध्य बिना कारण ही परोपकार करते हैं -

- अकारन को हितू और को है । - 3.195

- ऐसे राम दीन हितकारी

अति कोमल करूना निधान बिनु कारन पर-उपकारी - 3.196

- मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई ।

हौं तो साईं - द्रोही पै सेवक -हित साईं - 3.197

- ऐसी हरि करत दास पर प्रीति

निज प्रभुता बिसारि जन के बस , होत सदा यह रीति ।। - 3.198

पतितपावन- आराध्य ने अनेक खलों का उद्धार किया है । इसलिये यदि विनयकर्ता खल भी है तो भी उसे डरना नहीं चाहिये वह उसका भी उद्धार कर देंगे -

- जनि डरपहि तो से अनेक खल,

अपनाये जानकीनाथ । - 3.199

3.191-विनय-3, 3.192-विनय- 71, 3.193- विनय-6 , 3.194-विनय-162, 3.195-विनय-230 , 3.196- विनय-166, 3.197-विनय-72, 3.198-विनय- 98 3.199- विनय-84

- मेरे अघ सारद अनेक जुग, गनत पार नहिं पावै

  तुलसिदास पतित पावन प्रभु यह भरोस जिय आवै ।- 3.200

- मैं हरि पतित पावन सुने - 3.201।

- तुलसिदास कहँ आस यहै बहु पतित उधारे - 3.202

समर्थ - आराध्य बड़े समर्थ हैं । वह दुर्भाग्य को भी सौभाग्य में बदल लेंगे -

- जिनके भाल लिखी लिपि मेरी , सुख की नहीं निसानी

  तिन रंकन को नरक सँवारत , हौं आयो नकवानी ।- 3.203

उन समर्थ आराध्य की शरण प्राप्त करके किसी का भय नहीं रहेगा । कहना यह चाहिये कि किसी का साहस ही न होगा कि भक्त की ओर आँख भी तिरछी कर सके । कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा ।

- हरि-सम आपदा-हरन

  नहि कोउ सहन कृपालु दुसह दुख सागर -तरन । - 3.204

- जो पै कृपा रघुपति कृपाल की , बैर और के कहा सरै

  होइ न बाँको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै । - 3.205

- है काके द्वै सीस ईस के जो हरि जन की सींव चरै ।

  तुलसिदास रघुबीर -बाँह बल सदा अभय काहू न डरै ।। - 3.206

- ताकि है तमकि ताकी ओर को ।

  जाको है सब भाँति भरोसो

  कपि केसरी किसोर को ।।- 3.207

- जाके गति है हनुमान की ।

  ताकी पैज पूजि आई, यह रेखा कुलिस पषान की । - 3.208

3.200- विनय- 92 , 3.201- विनय-160, 3.202- विनय- 110,

3.203- विनय-5 , 3.204- विनय-213, 3.205- विनय- 137,

3.206- 137, 3.207- विनय-31, 3.208- विनय-30

72--------

सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू

बड़ रखवार रमापति जासू । - 3.209

गीता में भी भगवान् ने भक्त के योगक्षेम वहन करने का संकल्प ~~प्रस्तुति~~ किया है -

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।। - 9.22

नाम प्रभाव - आराध्य का नाम और भी प्रभावी होता है । आराध्य के समान नाम सक्षम एवं समर्थ होता है । वह आराध्य के समान पतित पावन होता है , और आराध्य के समान कामतरु होता है । उससे स्वार्थ परमार्थ सब की सिद्धि होती है -

- भाव कुभाव अनख आलसहू । राम जपत मंगल दिसि दसहू ।

- काको नाम अनख आलस कहें अघ अवगुननि बिछो है । - 3.210

- पतित पावन राम-नाम सो न दूसरो ।

  सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो उसरो ।।- 3.211

- राम नाम काम तरु जोइ जोइ माँगि है ।

  तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगि है । - 3.212

आराध्य की रीझ खीझ दोनों कल्याणकारी - आराध्य प्रसन्न हों तो भक्त के वश में हो जाते हैं और अप्रसन्न हों तो अपना धाम देते हैं । इसलिये उनसे स्नेह संपर्क करना ही चाहिये । किसी भी भाव से उन्हें भजें अपना कल्याण ही होता है । यहाँ तक कि वैर भाव से भजने वाले रावणादि भी सुगति को प्राप्त हुए हैं।

3.209- मानस- 1.125.8 , 3.210- विनय- 230

3.211- विनय- 69 3.212- विनय- 70

- रीझे बस होत, खीझे देत निज धाम रे ।

फलत सकल फल कामतरू नाम रे ।।- 3.212

भक्त के अवगुण नहीं देखते - आराध्य अपने भक्त के अवगुण नहीं देखते हैं, केवल उसके गुणों पर ही उनकी दृष्टि एवं कृपा रहती है । इसलिये प्रार्थना कर्ता को अपने अवगुणों की भूमिका में भी आराध्य से प्रार्थना करने से पीछे नहीं हटना चाहिये ।

- जौ पै हरि जन के औगुन गहते ।

तौ सुरपति, कुरूराज, बालि सौं ,कत हठि बैर बिहसते । - 3.214

- जन अवगुन प्रभु मान न काऊ । दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ ।। - 7.0.4

आराध्य विनय से स्वयं भी द्रवित हो जाते हैं - बिभीषण की विनय को सुन कर प्रभु गद्-गद् और द्रवित हो जाते हैं । आराध्य का यह शीलस्वरूप भक्त के विश्वास का सबल संबल है -

- सुनत बचन मृदु दीन दयाला । सजल भए द्वौ नयन बिसाला ।।- 3.215

3.4.3 विनय किस प्रकार की जाय , यह जिज्ञासा विनय के फलदा होने की दृष्टि से स्वाभाविक है।[3.216] पाश्चात्य रहस्यवादियों ने इस संबंध में विचार करते हुये निम्नलिखित प्रकार

~~3.212- विनय- 70~~ , 3.213- विनय- 71 , 3.214- विनय - 77

3.215- मानस- 7.115.8

3.216- मनुस्मृति में मुखर, उपांशु तथा मानस तीन प्रकार के जापों का उल्लेख हुआ है जो तीन प्रकार की विनय की श्रेणी में आते हैं ।

- विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।

उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्त्रो मानसः स्मृतः ।।- 2:85

विधियज्ञ (अमावस्या , पूर्णमादि) से जप यज्ञ दस गुना बढ़ कर है और उपांशु (मौन) जप, विधियज्ञ से सौ गुना और मानस जप हजार गुना बढ़ कर कहा गया है ।

74------

प्रस्तुत किये हैं -

मौखिक विनय, मानसिक विनय, मौन विषय , अति प्राकृतिक विनय , मिलन विनय, आध्यात्मिक विवाह

मौखिक विनय को सच्ची प्रार्थना बताते हुये कहा है - 3.217

मौखिक विनय केवल सच्ची विनय होती है जब हृदय और मन प्रार्थना करते हैं और शब्द । नाम । प्रार्थना के लिये प्रेरक सिद्ध होते हैं । भारतीय पद्धति का मुखर जाप ही पाश्चात्य रहस्यवादियों की मौखिक विनय है । इस मौखिक विनय में भगवन्नाम के जाप के स्थान में मुखर धार्मिक ग्रंथ पाठ अथवा मुखर प्रार्थना भी हो सकती है । इस प्रकार की विनय में हृदय,मन और श्रवण इन्द्रियों का एकीकरण अभीष्ट रहता है । प्रायः ऐसा होता है कि मन बहक जाता है और उसके साथ हृदय भी जाप विमुख हो जाता है , मात्र मुखर प्रार्थना शेष रह जाती है जो अभ्यास के कारण रटी हुई होने के कारण मुखर चलती रहती है । इस प्रकार की मौखिक विनय की कोई फलदा भूमिका नहीं होती । ऐसी स्थितगत मौखिक विनय की इसीलिये भर्त्सना की जाती है । गोस्वामी जी इसीलिये जाप के साथ ध्यान का समावेश आवश्यक समझते हैं -

- जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर । - 3.218

मानसिक विनय- मौखिक विनय से आगे की स्थिति मानसिक विनय की है । इसको अजपा जाप की संज्ञा दी जा सकती है । इस विनय में आंतरिक रूप से नाम जाप चलता रहता है या प्रार्थना या मंत्र का जाप चलता रहता है । पाश्चात्य रहस्यवादी इस विनय की स्थिति का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं -

---

3.217- Vocal prayer is only true prayer when the heart and mind are praying , and the words may act as impulsesto prayer...
- What is Mysticism : D:Knowles ;67;79

3.218- मानस- 1.34

..... मेरे विचार से मानसिक विनय इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि परमात्मा से मित्रता का संबंध स्थापित हो जाय 3.219

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस प्रकार की विनय का उल्लेख किया है -

" सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ।।-1.248.2

" मोहि सुमिरेहु मन माँहि " - 3.220

मौन विनय- मौन विनय को ही अति प्राकृतिक विनय कहा गया है जिसमें अपना कोई प्रयास नहीं होता क्योंकि आत्मा इस स्थिति में शान्ति में विश्राम करती है या यों कहें कि हमारे आराध्य अपनी उपस्थिति से आत्मा को शान्ति प्रदान करते हैं ।-3.221

मानसिक विनय एवं मौन विनय को कदाचित् सूफी संतों के जिक्र कल्ब और जिक्र रूह से समझा जा सकता है । " जिक्र (जाप) कल्ब (हृदय) या मानसिक जाप में शब्द की सूरत को बार बार याद करना या उस नाम के नामी को दिल में अपने हाजिर और सामने रखना इस तरह पर कि हरफ के आगे और पीछे का कुछ खयाल न किया जाए बल्कि एक मर्तबा उस नाम के हरफों और हरकतों और ठहराव को दिल में हाजिर कर लेना है । जिक्र रूह (आत्म जाप) में यह होता है कि उस नाम को भूल जाना होता है जिसको कि जपता है और उस नाम के नामी को दिल में हाजिर व कायम कर लेना होता है मसलन लफ्ज के हरूफ वगैरह जिनसे कि वह नाम बना है याद

3.219- ..for mental prayer is nothing else , in my opinion, but being on terms of friendship with God..
-Ibidem p 79

3.220- मानस- 6.116(घ)

3.221- Prayer of quiet ..(St Teresa) This prayer is something Supernatural to which no effort of our own can raise us, because here the soul rests in peace or rather our Lord gives it peace by His presence.
-Ibidem p 88

नहीं रहते हैं बजाय उसके ईश्वर की याद बाकी रह जाती है । - 3.222

मिलन विनय - परमात्मा घट घट व्यापी है । उसको अपने अंतर में प्रकट अनुभव करना है । आत्मा अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं के साथ अपने आपको एकत्र करती है और अपने परमात्मा से भेंट के लिये अपने अंतर में प्रवेश करती है । अंग्रेजी के शब्द रि-कलेक्ट (re-collect) की शाब्दिक व्याख्या द्वारा इस विनय को स्पष्ट किया गया है । - 3.223

मिलन विनय के प्रसंग में ही आध्यात्मिक विवाह की चर्चा हुई है । यह मनो-भौतिकी स्थिति है जिसे भारतीय योग शब्दावली में समाधि कहा जा सकता है। इससे आगे आत्मा और परमात्मा प्रेम मिलन में जिसे प्रेमानुराग एवं आध्यात्मिक विवाह कहा गया है [3.224] एक तथा अविच्छन्न हो जाते हैं ।

3.222- कमाल इन्सानी : पृ0 17, संस्करण 73 : (सुप्रसिद्ध सूफी संत महात्मा रामचन्द्र जी)

3.223 - ..The prayer of recollection...you know that God is every where ..We need no wings to go in search of Him ..It is called recollection because the soul collects together all the faculties and enters within itself to be with God....

- Ibidem p 83

3224- With care and patience , however , it is possible to follow her through the first prayer of union to the fuller union which in her case was accompanied by the psycho-physical condition which she calls ecstasy and thence to the spiritual betrothal and spiritual marriage..

- Ibidem p 92

77------

भारतीय रहस्यवादी कवियों,कबीर, जायसी आदि की रचनाओं में इस प्रकार की विनय के उदाहरण मिलते हैं ।

'मोरे घर आये राजाराम भरतार', 'राम की बहुरिया' जैसी अभिव्यक्तियाँ इसी प्रकार की विनय के संदर्भ में प्रस्तुत की जा सकती हैं । महात्मा गांधी ने महान पुरुषों तथा उनके सामान्य प्रशंसकों का संबंध भी इसी रूप में प्रतिपादित किया है ।- 3.225

साधारणतया विनय के तीन रूपों की प्रायः चर्चा हुई है -

1- मौखिक या मुखर 2- मौन

3- अति मौन - आध्यात्मिक या भावगत अथवा रहस्यात्मक 3.226 ‡a‡ या उपर्युक्त

मिलन विनय के प्रकार की ।

गोस्वामी जी ने केवल मुखर एवं मौन विनय की चर्चा की है । रहस्यात्मक स्थिति का प्रश्न भक्त साधकों की साधना में कभी नहीं उठता । इनकी तो अपने आराध्य से साकार रूप में खुल कर बातें होती हैं 3.226 ‡b‡ इसीलिये परेशान होकर यह भक्त साधक अपने आराध्य को डाटने डपटने से भी नहीं चूकते -

" अब तुलसी पूतरो बाँधि है, सहि न जात मो पै परिहास ऐते "‡ वि.241 ‡

3.225- The relation between greatman and ourselves is somewhat relation between husband and wife. -M.K.Gandhi

3.226 ‡a ‡- Spiritual or mystical prayer ; In this type of prayer an aspirant has nothing to do . It is all wrought by the Master ..In its naked pristine glory it cries out - ' I am the soul ..I am Brahm . :
- St Krpal singh : Prayer 71;31

3.226 ‡ b‡ After all prayer or mystical theology is simply a loving talk between the soul and God ..prayer is an interview or conversation between the soul and God.
- St. Gregory of Nyssa : Love of God p. 218,and 219

छल विनय - गोस्वामी ने एक संदर्भ में छल विनय का उल्लेख किया है -

तू छल बिनय करसि कर जोरे - 3.227

विनय के निश्छल एवं छल प्रकार का आशय विनय के लिये अपेक्षित सत्यनिष्ठा की ओर संकेत करना रहा है । मन मानस और वाणी का सत्यनिष्ठ समन्वय विनय के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करता है अन्यथा विनय का स्थान चाटुकारिता ले लेती है जिसके अंतर्गत मन मानस की सत्यनिष्ठा के स्थान पर छल कपट कार्यशील रहता है । विनय वस्तुत: भाव जगत की वस्तु है । इसलिये इसके लिये सच्चाई और ईमानदारी आवश्यक है । महात्मा गांधी ने इसी संदर्भ में विनय प्रकार जैसे किसी विवेचन की अपेक्षा नहीं की, प्रत्युत उपेक्षा ही की -

विनय के प्रकार की चिन्ता न करो । विनय का कोई-सा भी प्रकार हो किन्तु यह ऐसी हो जिससे विनयकर्ता अपने आराध्य की निकटता या योग अनुभव करे, कोई भी विनय प्रकार हो किन्तु ऐसा न हो कि एक ओर तो विनय की वाणी मुखरित हो और दूसरी ओर मन-मानस कहीं भटक रहे हों ।- 3.228

विनय किस प्रकार की जाय - इस जिज्ञासा का समाधान अन्यथा विनयकर्ता की विनीत मुद्रा द्वारा भी प्रस्तुत किया गया है

" अञ्जली परमामुद्रा क्षिप्रं देव प्रसादिनी " सूक्ति से हाथ जोड़ कर विनय करने के लिये कहा गया है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस मुद्रा को भलीभाँति अपनाया है । उनके विनयकर्ता इस मुद्रा के क्षिप्रं देव प्रसादिनी रहस्य को अच्छी तरह जानते

3.227- मानस- 1.280.1

3.228- Do not worry about the form of prayer . Let it be any form , it should be such as can put us into communion with the divine only, whatever be the form , let not the spirit wonder while the words of prayer run out of your mouth .

- M.K.Gandhi;Young India: 23.1.1930

हैं। दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक नवाकर विनय करनी चाहिये -

- करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी - 3.229

- बंदउ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि - 3.230

- बार बार कौसल्या बिनय करइ कर जोरि - 3.231

- बंदउँ पद धरि धरनि सिरू बिनय करउँ कर जोरि - 3.232

- जानि पानि जुग जोरि जन, बिनती करइ सप्रीति - 3.233

- कर जोरि जनकु बहोरि, बंधु समेत कोसलराय सो - 3.234

- कर जोरे सुर दिसिप बिनीता, भृकुटि बिलोकत सकल सभीता - 3.235

- सकत न देखि दीन कर जोरे - 3.236

- नाइ सीस......... करि बिनय बहूता - 3.237

यही नहीं विनयकर्ता की यह मुद्रा भगवान् को अच्छी भी लगती है और वह प्रसन्न होते हैं -

भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाईहै - 228 3.238

इसकी दूसरी मुद्रा है पैर पड़ कर विनय करना। यह विनय कर जोरे मुद्रा से कहीं अधिक प्रभावशाली और फलदा होती है। इस प्रकार की मुद्रा का भी गोस्वामीजीने यथास्थान उल्लेख किया है -

- सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पायँ - 3.239

3.229- मानस- 1.7.2, 3.230- मानस- 1.7 ग।

3.231- मानस-1.202, 3.232- मानस- 1.109, 3.233-मानस- 1.4

3.234- मानस- 1.325 छं. 3,235- मानस- 5.19.7, 3.236- विनय-6,

3.237- मानस- 5.23.7, 3.238- विनय- 135, 3.239- मानस- 2.98

80------

- सुनि सुबचन भूपति हरषाना । गहि पद बिनय कीन्ह बिधि नाना -
3.240 ॥ ॥

- गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी । जनि दिनकर कुल होसि कुठारी-
3.240 ॥ ॥

- करबि पायँ परि बिनय बहोरी । तात करिअ जनि चिन्ता मोरी -3.241

- धरि धीरजु पद बंदि बहोरी, बिनय सप्रेम करत कर जोरी - 3.242

- तब सुग्रीव चरन गहि नाना भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना - 3.243 (०)

शरणागत विनय- शरणागत होने के लिये विनय का एक पृथक् प्रारूप प्रस्तुत किया गया है । अंगद भगवान् राम के शरणागत होने के लिये इस विनय के प्रारूप को रावण के समक्ष प्रस्तुत करते हैं ।

अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा । सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा ।।
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी । परिजन सहित संग निज नारी ।।
सादर जनकसुता करि आगें । एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें ।।
प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि ।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि ।।-3.243 ॥ख॥

विरोध और विग्रह की नीति को त्याग कर सर्वभावेन शरणागत होने के लिये उपर्युक्त प्रारूप कदाचित् प्राचीन कालीन समर्पण का रूप रहा है जिसको आज की श्वेत ध्वज एवं हाथ उठाये हुये मुद्रा में प्रस्तुत होने का पूर्व प्रारूप कह सकते हैं । यह राजनीति के क्षेत्र का प्रकरण है तथा इसकी एक निश्चित प्रतीकात्मक प्रस्तुति होती है ।

3.240 ॥ ॥ मानस - 1.163.6 , 3.240 ॥ ॥ मानस- 2.33.6

3.241- मानस- 2.150.7 , 3.242 - मानस-2.194.6, 3.243(ख)-मानस-6.19.6-8 व 6.20

3.243 ॥०॥ - मानस-7.18.7

यह भाव "रिपवोऽपि विमुच्यते दन्ताग्रे तृण धारणात्" जे तृण दंतहि धरहि तिनहि मारहि न सबल कोई के अनुकूल प्रस्तुत हुआ है ।

81-----
83-----

दाँत में तृण दबा कर शरण में जाने का भाव है कि पशु के (गाय के) समान हम दीन हैं । कंठ कुठारी का भाव है कि हम अपराधी हैं, यह कुठार हमारी गर्दन पर है, इससे चाहे हमारी गर्दन काट डालिये या रखिये । हम सर्व भाव से शरणागत हैं, अब आप जैसा चाहें वैसा करें ।

गीतावली तथा कवितावली में भी इस प्रसंग का गोस्वामीजी ने उल्लेख किया है तथा मंदोदरी के मुख से इस प्रारूप की ओर संकेत कराया है - 3.243 ( )

चलु मिलि बेगि कुसल सादर सिय सहित अग्र करि मोहि ।

तुलसीदास प्रभु सरन शब्द सुनि अभय करहिंगे तोहि ।।

कवितावली में दाँत तले तृन दबा कर शरणागत होने के लिये कहा गया है ।

कंत ! तृन दंत गहि सरन श्रीराम कहि, अजहुँ यहि भाँति लै सौंपु सीता

3.4.4- विनय : कब -

विनय के लिये उपयुक्त अवसर की अपेक्षा की गई है । बात यह है कि जिससे विनय की जानी है, वह विनय सुनने के लिये तत्पर तो हो । इसलिये विनय आराध्य का रूख देख कर की जानी चाहिये । गोस्वामीजी ने इस विषय में बड़ी सावधानी बरती है । उन्होंने इस ओर भी ध्यान दिया है कि आराध्य से संबंधित प्रियजन, परिजन सभी की उन पर कृपा हो तभी कार्य बन सकता है ।

प्रभु से विनय उनका रूख देख कर की जानी चाहिये -

प्रभु रूख देखि बिनय बहु भाषी,

चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी - 3.264.1

3.243 ( ) गीतावली, लंका काण्ड ।, कवितावली लंका काण्ड-17

3.264.1- मानस- 7.18.5

82---------

विनय पत्रिका के प्रस्तुतिकरण के लिये गोस्वामी जी भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान सभी से विनय करते हैं कि अपनी-अपनी बारी से उपयुक्त अवसर देख कर भगवान् राम से विनय करते रहें कि विनय पत्रिका स्वीकार कर ली जाय ।

पवन-सुवन! रिपु दवन ! भरत लाल ! लखन ! दीन की ।

निज निज अवसर सुधि किये, बलि जाउँ,

दास-आस पूजि है खास खीन की ।- 3.264.2

श्री मा सीता जी से भी यही प्रार्थना करते हैं कि उपयुक्त अवसर पाकर भगवान् को मेरा स्मरण करा दीजिये -

कबहुँक अंब अवसरु पाइ

मेरियो सुधि द्याइबी कछु करून कथा चलाइ ।- 3.264.3

× × × × × × × × × × × × × ×

कबहुँ समय सुधि द्याइबी, मेरी मातु जानकी ।- 3.264.4

विनय के लिये उपयुक्त अवसर के संदर्भ में ही पूजा पाठ के समय निश्चित किये गये हैं। गोस्वामी जी ने इन संदर्भों को यथा स्थान प्रस्तुत किया है -

प्रातः काल प्रात क्रिया (प्रात क्रिया में प्रातः संध्या भी सम्मिलित है) मज्जन, वेद पुराण पाठ, यज्ञ हवन, विप्र माता, पिता, गुरू की वंदना आदि के करने के लिये उपयुक्त समय होता है - 3.264.5

3.264.2- विनय- 278 , 3.264.3-विनय-41, 3.264.4-विनय-42

3.264.5- प्रातः व सायं संध्या के संबंध में शास्त्रीय निर्देश-(नारायण विट्ठल वैद्य कृत आह्निक सूत्रावली षष्ठ संस्करण)

प्रातः संध्या काल-

अहो रात्रस्य यः सन्धिः सूर्यनक्षत्रवर्जितः। सा तु संध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः

संध्या प्रकार-

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका । अधमासूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधामता ।

संध्या फल-

निशायां वा दिवा वापि यदज्ञानकृतं भवेत्। त्रिकाल संध्याकरणात् तत्सर्वं हि प्रणश्यति ।

सायं संध्या-

उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा । अधमा तारकोपेतासायं संध्या त्रिधा मता ।

83--------

- उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरून सिखा धुनि कान -3.264.6
- नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए -3.264.7
- प्रात क्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ - 3.264.8
- प्रात काल सरऊ करि मज्जन । बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन ।।

  बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं । सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ।।-3.264.9
- प्रात पुनीत काल प्रभु जागे 3.264.10

  बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता । पाइ असीस मुदित सब भ्राता ।।- 3.264.11
- प्रात कहा मुनि सन रघुराई । निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई ।।

  होम करन लागे मुनि झारी । आपु रहे मख की रखवारी ।।- 3.264.12

विनय के पदों के लिये प्रयुक्त विभिन्न रागों के गायन के समय निश्चित हैं । इन रागों को उनके निश्चित समय पर गाने से पद की मूल भाव भूमि अनुभवगम्य होती है । इसीलिये राग-रागनियों को निश्चित समय पर गाने का आग्रह रहता है । यह प्रकरण भी विनय: कब जिज्ञासा का समाधान करता है ।

मानस पीयूष टीका में टीकाकार ने मानस की 28 स्तुतियों को 28 नक्षत्रों से सम्बद्ध किया है तथा स्तुतिगत भाव एवं नक्षत्रगत विशेषताओं के साम्य का अध्ययन किया है । यह संदर्भ भी प्रस्तुत प्रसंग में द्रष्टव्य है ।

- कार्य व्यापार की दृष्टि से प्रत्येक कार्य के प्रारंभ में कार्य की सफलता/ सिद्धि हेतु विनय की अपेक्षा की गई है चाहे वह कार्य अनुकूल या प्रतिकूल किसी भी प्रकृति का क्यों न हो -

---

3.264.6- मानस-1.226 , 3.264.7- मानस- 1.226.1

3.264.8- मानस- 1.358 , 3.264.9- मानस-7.25.1,2

3.264.10- मानस-1.357.5 3.264.11- मानस-1.357.7

3.264.12- मानस- 1.209.1,2

84-----

- शिव धनुष भंग के लिये प्रस्थान के समय - सुनि गुरू बचन चरन सिरू नावा ।।-
3.264.13

- गुर पद बंदि सहित अनुरागा । राम मुनिन्ह सन आयसु मागा ।।-3.264.14

- विवाह के अवसर पर जनक द्वारा -

- कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही ।- 3.264.15

- सीता के मंडप में प्रवेश के अवसर पर -

- एहि बिधि सीय मंडपहिं आई । प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई ।।
3.264.16

- विवाह के अवसर पर वर वधू द्वारा विनय -

- बर कुअँरि करतल जोरि साखोचारू दोउ कुल गुर करैं ।।- 3.264.17

विदा के अवसर पर - कुँअरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्ध गनेस- 3.264.18

वारात की वापिसी के अवसर पर - सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना - 3.264.19

वनवास के लिये प्रस्थान के अवसर पर - बंदि विप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहिं अचेत-
3.264.20

- गनपति गौरि गिरीसु मनाई चले असीस पाइ रघुराई -3.264.21

वनवास से अयोध्या वापिसी के अवसर पर -

मन महुँ बिप्र चरन सिरू नायो

उत्तर दिसिहि बिमान चलायो ।- 3.264.22

राज्याभिषेक के अवसर पर - बैठे राम द्विजन्ह सिरू नाई - 3.264.23

- यथावसर अनुकूल विनय की जानी चाहिये । विनय के लिये यह सतर्कता एवं सावधानी अपेक्षित है ।

3.264.13- मानस-1.253.7 , 3.264.14- मानस- 1.254.4
3.264.15- मानस-1.319 छं., 3.264.16- मानस- 1.322.7
3.264.17-मानस-1.323.छ.3, 3.264.18- मानस-1.1.338
3.264.19-मानस-1.338.8, 3.264.20-मानस-2.79, 3.264.21-मानस-2.80.2 ,
3.264.22- मानस-6.118.2 , 3.264.23- मानस-7.11.2

सुमंत्र महाराज दशरथ से इसी प्रकार की विनय करते हैं -

सचिव राम आगमन कहि । बिनय समय सम कीन्ह ।।- 3.264.24

'विनय कब', जिज्ञासा की भी सीमायें हैं । वस्तुत: विनय का कोई समय निर्धारित नहीं किया जा सकता । अपने आराध्य की निकटता इसकी अपेक्षा भी नहीं करती-[3.264.25] विनय वस्तुत: आत्मा की अनवरत पुकार है जो प्रतिक्षण, प्रतिपल अविरल रूप से चलती रहनी चाहिये । समय का निर्धारण तथा तदनुकूल विनय का कार्यक्रम तो इस अविरल अभ्यास-[3.264.26] की भूमिका का है । विनय के लिये प्रभु रूख की अपेक्षा भक्त की अपने आराध्य के प्रति संभ्रम एवं प्रीतिगत श्रद्धा सद्भाव एवं भय की ओर संकेत करती है जो इन संदर्भों में विनय को और भावपूर्ण एवं प्रभावी बना देते हैं ।

- जपहिं सदा रघुनायक नामा । जहँ तहँ सुनहि राम गुन ग्रामा ।।- 3.264.27

- राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे ।- 3.264.28

3.4.5- विनय प्रकार भेद -

विनय के प्रकार भेद का कोई वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है । विभिन्न संदर्भों में प्रयुक्त विनय विशेषणों के संदर्भ में प्रकार भेद का अवान्तर उल्लेख हुआ है - विनय के साथ बहु बिधि, नाना बिधि , बार-बार, बहोरी, अति,आदि विशेषण प्रयुक्त हुए हैं तथा इन विशेषणों के साथ विनय प्रकार का अवलोकन किया जा सकता है।

3.264.24- मानस-2.43

3.264.25- As for ourselves , we can call on Him at all times in prayer , at our pleasure ; for it is in Him that we live and move , and have our being.
- Love of God : p 108

3.264.26- - दिल में है तस्वीर यार । जब जरा गरदन झुकाई देख ली ।
- कुछ ऐसा चाहता हूँ सिलसिला हुस्ने मुहब्बत का
जब चाहूँ जहाँ चाहूँ तेरा दीदार हो जाये ।।

3.264.27- मानस-~~185.8~~ 1.74.8

3.264.28- विनय- 67

बिधि- बहु बिधि -

- बहु बिधि बिनय कीन्हि तेहि काला । प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ।।
3.265

- करत बिनय बहु बिधि नरनाहू । लहेउँ आज जग जीवन लाहू ।।-
3.266

- सजल नयन पुलकित कर जोरी । कीन्हिउँ बहु बिधि बिनय बहोरी ।।
3.267

- बिधि नाना -

- सुनि सुबचन भूपति हरषाना । गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना ।।-
3.268

- नाना बिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियँ जानि - 3.269

- नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्हीं । अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही ।।
3.270

- तब सुग्रीव चरन गहि नाना । भाँति बिनय कीन्ह हनुमाना ।।- 3.271

बिबिध बिधि -

-समुझि बिबिध बिधि बिनती मोरी । कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी ।।-
3.272

-हरष बिषाद सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाखि ।- 3.273

बहु -

- आप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि ।- 3.274

3.265- मानस-1.131.3 , 3.266- मानस-1.330-4, 3.267-मानस-7.82.8

3.268- मानस-1.163.6, 3.269- मानस-3.41, 3.270-मानस-4.24.8

3.271-मानस-7.18.7, 3.272-मानस-1.11.7, 3.273-मानस-6.118।क।

3.274-मानस-1.137

87-------

- देखि राम बलु निज धनु दीन्हा । करि बहु बिनय गवनु बन कीन्हा ।।
3.275

- सानुज राम नृपहि सिर नाई । कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई ।।-
3.276

- नाइ सीस करि बिनय बहूता । नीति बिरोध न मारिअ दूता ।।-
3.277

विशाल -

- गुर गृह गयउ तुरत महिपाला । चरन लागि करि बिनय बिसाला ।।-
3.278

बार-बार -

- बार-बार बिनती सुनि मोरी । करहु चाप गरूता अति थोरी ।
3.279

- करहिं बिनय अति बारहिं बारा । हनुमान हियँ हरषि अपारा ।।-
3.280

- पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी । जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी ।।
3.281

बहोरी-

- धरि धीरजु पद बंदि बहोरी । बिनय सप्रेम करत कर जोरी ।।- 3.282

- सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं । बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं ।।-
3.283

- सजल नयन पुलकित कर जोरी । कीन्हिउँ बहु बिधि बिनय बहोरी ।।-
3.284

3.275- मानस-1.292.2, 3.276- मानस-2.318.1, 3.277- मानस-5.23.7,
3.278- मानस- 1.188.2, 3.279- मानस- 1.256.8, 3.280-मानस- 7.41.2,
3.281- मानस-2.117.2 , 3.282- मानस- 2.194.6, 3.283-मानस- मानस-7.25,6,
3.284- मानस- 7.82.8

88-------

उदार-

- सब के देखत बैदन्ह बिनती कीन्हि उदार ।- 3.285

- उदार का आशय श्रेष्ठ या महान् विनय से है जो भगवान् के औदार्य को भी प्रस्तुत करती है ।

वर-

- करि बर बिनय ससुर सनमाने । पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने ।-3.286

प्रेममय -

-पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई । कहति सचिव सन गिरा सुहाई ।- 3.287

-धरि धीरजु पद बंदि बहोरी । बिनय सप्रेम करत कर जोरी ।।-3.288

उपर्युक्त इतने प्रकार की विनय प्रस्तुत करते हुये भी मन को यह संतोष नहीं होता कि जिस प्रकार की विनय होनी चाहिये थी, वैसी हो पाई या नहीं; इस किंकर्तव्य विमूढ़ स्थिति में किस प्रकार विनय की जाय, यह समस्या उलझी ही बनी रहती है-

- तब बिदेह बोले कर जोरी । बचन सनेह सुधाँ जनु बोरी ।।
  करौं कवन बिधि बिनय बनाई । महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई ।।-3.289

जिस प्रकार की विनय अपेक्षित हो और वैसी किसी प्रकार बन जाय तो उसकी व्याख्या करना संभव नहीं होता -

- बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँति । आरति प्रीति न सो कहि जाती ।।-3.290

3.285- मानस- 7.13 (क), 3.286- मानस-1.341.7

3.287- मानस-2.96.7 3.288- मानस-2.194.6

3.289- मानस- ~~289.~~ 1.339.7,8 3.290- मानस- 2.96.1

किस प्रकार की विनय की जाय इस समस्या को विनय पत्रिका में भी उठाया गया है-

" कौन जतन बिनती करिये ।

निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ।।

....

जब कब निज करूना सुभावतें, द्रवहु तौ निस्तरिये ।

तुलसिदास बिस्वास आन नहिं, कत पचि-पचि मरिये ।।- 3.291

प्रत्यक्ष एवं गुप्त - मानस में वेदों की स्तुति के संदर्भ में 'सब के देखत' शब्दावली का प्रयोग हुआ है - " सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार " - 3.292

मानसकार का स्पष्ट संकेत है कि विनय प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष या गुप्त रूप में की जाती है । अन्य विनय प्रसंगों के संबंध में इस प्रकार का उल्लेख नहीं है । इस कारण यह निष्कर्ष निकालना कि अन्य **विनय** प्रत्यक्ष नहीं की गईं, असमीचीन नहीं कहा जा सकता ।

प्रत्यक्ष विनय के विभिन्न रूप भी विवेचित हुए हैं -

अ- समारोही प्रार्थनायें - जिनके अंतर्गत कीर्तन, भजन, कव्वाली, उर्स आदि के समारोहों के अवसरों पर प्रस्तुत धार्मिक कार्यक्रम आते हैं । इन कार्यक्रमों में भाग लेने वाले कलाकारों का ध्यान अपने प्रदर्शन पर रहता है, भक्ति का भाव साधारणतया गौण हो जाता है ।

आ- सामूहिक प्रार्थनायें जिनके अंतर्गत मंदिर, मस्जिदव गिरजाघरों आदि में समागत एवं एकत्र भक्त समूह द्वारा प्रार्थना की जाती है । इसमें मुखर एवं मौन अभ्यास दोनों प्रकार की प्रार्थनायें होती हैं । मानस में समारोही प्रार्थनाओं के आधुनिक जैसे प्रसंग प्रस्तुत नहीं हुए हैं । यद्यपि एहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान [3.293] जैसे प्रसंगों के संकेत हैं । सामूहिक प्रार्थनाओं के अन्तर्गत सर्व देवकृत स्तुति [3.294], सुग्रीव विभीषण, जामवान कृत स्तुति [3.295], सनकादि कृत स्तुति [3.296]

3.291-विनय-186, 3.292-मानस-7.13(क), 3.293-मानस-7.30

3.294-मानस-6.108 से 6.109, 3.295-मानस- 7/16-1 से 8

3.296- मानस- 7.33 से 7.35

90------

तथा पुरजन कृत स्तुतियाँ[3.297] के प्रसंग प्रस्तुत हुये हैं । [3.298]

इ- कथा प्रसंग - ऐसे प्रयोजन कथा प्रसंगों के अंतर्गत आते हैं जिनमें कथावाचक कथा का वाचन करते हैं और भक्त श्रोता भाव व प्रेम सहित उसका श्रवण करते हैं । यह नवधा भक्ति में से एक प्रमुख भक्ति का प्रकार है । मानस की रचना इसी कथा प्रसंग के परिवेश में हुई है तथा वक्ता-श्रोता प्रसंग में राम कथा अग्रसर होती है ।

" दूसरि रति मम कथा प्रसंगा " - 3.299

ई- गुप्त या मन की प्रार्थना में मन ही मन प्रार्थना चलती रहती है । यह साधना के अंतर्गत भी होती है तथा अन्यथा सामान्य जीवन में किसी उत्कट कामना की पूर्ति के संदर्भ में भी होती है । मानस में इस प्रकार की प्रार्थना के स्पष्ट उल्लेख हैं । घट घट वासी भगवान् से प्रार्थना करने का यह स्तुत्य प्रयास कहा जायगा ।

सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं ।

बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ।।- 3.300

× × × × × × × × × × × × ×

मनहीं मन मनाव अकुलानी ।

होहु प्रसन्न महेस भवानी ।।- 3.301

3.297- मानस- 7.29.1 से 10 तथा 7:46.1 से 7

3.298- नवधा भक्ति के अंतर्गत गुनगन गान को चतुर्थ प्रकार की भक्ति कहा है और ऐसे प्रसंगों की आशंसा की है - " चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान " । 3.35 ।
इस प्रकार के गुन गन गान को आधुनिक कीर्तन का प्रारंभिक रूप कह सकते हैं । विनय एवं प्रार्थनाओं की मूल वैदिक भावना व्यक्तिगत न होकर जाति या समूहगत रही है । इसी कारण वैदिक प्रार्थनाओं में सर्वत्र बहुवचन का प्रयोग हुआ है - गायत्री प्रार्थना के " धियो यो नः प्रचोदयात् " में गायत्री प्रार्थना का बहु वचनीय रूप तथा एक समूह द्वारा प्रार्थना का किया जाना स्पष्ट लक्षित है तथा उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है । वस्तुतः भारतीय दृष्टिकोण ही लोक कल्याण का रहा है और लोक कल्याण में ही व्यक्ति कल्याण की कल्पना का समाहार रहा है ।

3.299-मानस-3.34.8, 3.300-मानस-1.248.2, 3.301-मानस- 1.256.5

8|----

तन मन बचन मोर पनु साचा । रघुपति पद सरोज चितु राचा ।।

तौ भगवानु सकल उर बासी । करिहि मोहि रघुबर कै दासी ।।- 3.302

उ- सहकारी प्रार्थना या सत्संग - जिस प्रकार सहकारिता की उपयोगिता अर्थ या राजनीतिशास्त्र में मान्य एवं अपेक्षित है उसी प्रकार सहकारिता की उपादेयता महात्मा गांधी ने नैतिक क्षेत्र में प्रतिपादित करते हुए अपनी प्रार्थना सभाओं के संबंध में स्पष्ट किया है कि इस प्रकार की प्रार्थना सभा में शुद्ध विचारों का संक्रमण होता है । यह भी मान लें कि सभा में समागत सभी व्यक्तियों के विचार अशुद्ध हैं तो भी दिन प्रति दिन सामूहिक प्रयत्नों से सुधार की प्रगति द्रुतगामी होगी । प्रार्थना सभा में आँख बंद करके मौन बैठने का उनका आग्रह है जिससे बाह्य विचारों से कम से कम कुछ क्षणों के लिये विरत रह सकें । इस सहकारी प्रार्थना के लिए किसी उपवास, किसी विज्ञापन की आवश्यकता नहीं है । यह दिखावे से दूर रहनी चाहिये ।- 3.303

3.302- मानस-1.258.4,5

3.303- As for ourselves , we can call on Him at all times in prayer , at our pleasure ; for it is in Him that we live , and move , and have our being .

- Love of God : p 108

3.303-The object of our attending prayers is to commune with God and turn the search light inwards so that , with God's help we can overcome ourweaknesses.
I believe tht one imbibes pure thought in the company of thepure Even if there is only one pure man , the rest would be affected by that one man's purity . The condition is that we attend the prayers with that intention , otherwise our coming to the prayers is meaningless.
I go further and maintain that even if we all had our weaknesses but came to the prayer meeting with the intention of removing them , our collective effort made from day to day would quicken the progress of reform . .. I therefore appeal to you to sit absolutely quiet with your eyes closed , so as to shut yourselves off from outside thoughts for a few minutes at least . This co-operative prayer needs no fasts , no advertisement . It must be free from hypocrsy . M.K.Gandhi: Prayer Speech June 27, 1945

मानसगत गोस्वामी जी के सत्संग की महिमा ही महात्मा गांधी के शब्दों में प्रकट हुई है । सत्संग को गोस्वामी जी ने शठ तक के सुधर जाने का अमोघ साधन बताया है -

सो जानब सत्संग प्रभाऊ । लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ।।- 3.304

बिनु सत्संग बिबेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।।- 3.305

सतसंगत मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ।।- 3.306

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधात सुहाई ।।- 3.307

इस प्रकार विनय की अभिव्यक्ति के चार रूप होते हैं -

I- प्रकट- वाचिक एवं मौखिक तथा श्रव्य जैसे समारोही , सामूहिक प्रार्थनायें एवं कथा प्रसंग

II- प्रतिभासित - जो मन की प्रार्थना के रूप में अभिव्यक्त होते हैं , प्रकट नहीं होते यथा गुप्त या मानसी प्रार्थनायें ,मौन सत्संगों की प्रार्थनायें ।

III- प्रच्छन- जहाँ प्रकट एवं प्रतिभासित नहीं होती प्रत्युत प्रच्छन्न रूप में प्रस्तुत और स्वीकृत होती है । मानसी प्रार्थनाओं से किंचित् सूक्ष्म स्थिति होती है, जिसमें विनय का भाव प्रधान होता है -

मोर मनोरथ जानहु नीकें । बसहु सदा उरपुर सबही कें ।।

। 1.235.3 ।

I - प्रलुप्त - जहाँ हेतु रहित अनुराग का प्रसंग आता है । कोई इच्छा, याचना शेष नहीं रहती , केवल प्रभु प्रेम , प्रभु दर्शन मात्र अभीष्ट रह जाता है वहाँ विनय प्रलुप्त हो जाती है । प्रभु प्रेम का अंग बन जाती है ।

" जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु " । 2: 131 ।

3.304- मानस- 1.2.6 , 3.305- मानस- 1.2.7

3.306- मानस- 1.2.8 , 3.307- मानस- 1.2.9

3.4.6- विनय स्थान-

वंदना के अंग , ध्यान, जाप, पूजा तथा कथा के लिये गोस्वामी तुलसीदास ने स्थान विशेष की अपेक्षा की है । यह संदर्भ प्रस्तुत अनुशीलन में अवलोकनीय हैं ।

ध्यान- पीपल वृक्ष के नीचे बैठ कर करना चाहिये ।

" पीपर तरू तर ध्यान सो धरई " - 3.308

जप- पाकर वृक्ष के नीचे बैठ कर करना चाहिये ।

" जाप जग्य पाकरि तर करई " - 3.309

मानस पूजा- आम वृक्ष की छाया में बैठ कर करनी चाहिये ।

" आँब छाँह कर मानस पूजा " - 3.310

कथा प्रसंग- बट वृक्ष के नीचे बैठ कर कहने चाहिये ।

" बर तर कह हरि कथा प्रसंगा " - 3.311

भक्ति की चरम उपलब्धि के रूप में धाम प्राप्ति का उल्लेख हुआ है । मनुस्मृति में आचार्य तथा माता पिता की भक्ति का फलागम निश्चित करते हुये कहा गया है कि -

माता की भक्ति से इस लोक को, पिता की भक्ति से मध्य लोक को और गुरू की भक्ति से ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है ।-[3.312]

गोस्वामी तुलसीदास जी ने निम्नलिखित संदर्भों में स्मृति की इस नीति का प्रतिपादन किया है -

चारि पदारथ करतल जाकें । प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें ।।-[3.313]

जे गुरचरन रेनु सिर धरहीं । ते जनु सकल बिभव बस करहीं ।।-[3.314]

3.308-मानस-7.56.5, 3.309-मानस-7.56.5, 3.310- मानस- 7.56.5,
3.311- मानस- 7.56.7
3.312- इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ।
गुरु शुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ।। - मनु0 2/233
3.313-मानस-2.45.2, 3.314-मानस- 2.2.5 ,

94-----

शरभंग मुनि के प्रसंग में ब्रह्म धाम का उल्लेख हुआ है -

" जात रहेउँ बिरंचि के धामा " - 3.315

अन्यान्य प्रसंगों में " रामधाम " या " निजधाम " का उल्लेख है जो ईश्वर प्रणिधान की चरम उपलब्धि है -

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ । बसहुँ लखन सिय राम बटाऊ ।।

राम धाम पथ पाइहि सोई । जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई ।।- 3.316

× × × × × × × × × × × × ×

मिला असुर बिराध मग जाता । आवतहीं रघुबीर निपाता ।।

तुरतहिं रूचिर रूप तेहिं पावा । देखि दुखी निज धाम पठावा ।।
3.317

× × × × × × × × × × × ×

" राम बालि निज धाम पठावा " - 3.318

× × × × × × × × × × ×

करेहु कल्पभरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं ।

पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं ।।- 3.319

× × × × × × × × × × ×

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं ।

कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ।।- 3.320

यह रामधाम " नाम रूप लीला धाम का धाम हो सकता है जो रामावतार के सर्वाङ्ग निरूपण के अंतर्गत अपेक्षित है । साथ ही विनय के संदर्भ में यह वह स्थिति होगी जहाँ मन विश्राम पाता है तथा आराध्य का साक्षात्कार होता है , जिसकी ओर संदर्भगत संकेत किया गया है -

---

3.315- मानस-3.7.2, 3.316- मानस- 2.123, 1,2, 3.317-मानस-3.6.6,7 , 3.318-मानस- 4.10.1 , 3.319-मानस- 6.116(क), 3.320-मानस-7.129.

95----

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।

तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ।। - 3.321

3.4.7- विनय विषय एवं अभीष्ट -

विनय का विषय [3.322] प्रमुखतः प्रभु गुण गान तथा आत्म अवगुण गान है । प्रभु के अपार, अनन्त वैभव के साक्षात्कार के समय प्रभु की ओर से प्रदर्शित प्रेम, शरणागति को देख कर अपनी निम्न, हीन दशा ध्यान में आती है कि कहाँ हम और कहाँ इतने महान व्यक्तित्व से संपर्क । आराध्य के महत्त्व की अव्यवहित स्वीकृति अपने लघुत्त्व की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है और हमारी विनय का कथ्य बन जाती है । गणित की भाषा में व्यक्त करें तो इस संबंध में शून्य और शत का संबंध कहेंगे । आरंभ में हम अपने अहं में शत की स्थिति में होते हैं और हमारा आराध्य शून्य की स्थिति में । विभिन्न विपन्न परिस्थितियों में अथवा अन्यथा जब अपनी सीमाओं में अपनी विवशता तथा अपना लघुत्त्व आभासित होता है तब आराध्य का अस्तित्व स्थापित होता है । धीरे धीरे हम अपने लघुत्त्व में बढ़ते जाते हैं और आराध्य को उसके अपने स्वरूप में अवस्थित करते जाते हैं । एक स्थिति आती है जब हमारा अहं शून्य हो जाता है और आराध्य की अवस्थिति 100 हो जाती है । इसी स्थिति में भक्त की भगवान् के प्रति विनय, प्रीति, नति और दीनता प्रकट होती है ।- [3.323]

3.321- मानस-3.16

3.322- सारी विनयपत्रिका का विषय यही है-राम की बड़ाई और तुलसी की छोटाई
राम सों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो ।
राम सों खरो है कौन, मोसों कौन खोटो ।।
आचार्य शुक्लः तुलसीदासः2003 वि. पृ. 45

3.323- अस कहि प्रेम बिबस भये भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी।।-2.300.5
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई । समउ सनेह न सो कहि जाई।। 6
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ ।सिथिल सनेहँ सभा रघुराऊ ।। 8
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई । सुनत सुखद बरनत कठिनाई।।-2.302.4
-इस महत्त्व के सम्मुख वह जो दीनता प्रकट करता है, वह सच्ची दीनता है, हृदय के भीतर अनुभव की हुई दीनता है, प्रेम की दीनता है ।
आचार्य शुक्लः तुलसीदास : पृ0-76

विनय वस्तुतः भक्त और भगवान् के बीच का प्रेम वार्ता प्रसंग है जिसमें भगवान् की अच्छाई का आकर्षण और उसे किस प्रकार प्राप्त किया जाय, चर्चा का विषय होता है-[3.324] पाश्चात्य मनीषियों की यह अभिव्यक्ति वस्तुतः विनय की मूल भावना एवं साधना की ओर इंगित करती है । विनय का रूप चाहे जो हो किन्तु अन्तर्मन में एक निहित कामना, एवं लालसामूल रूप में रहती है , कि भगवान् के गुण हम में भी आवें । विनय की यह मूल भावना ही विनयकर्ता के कल्याण और उद्धार का साधन बनती है तथा इसी रूप की विनय की अपेक्षा है -

" हौं अपनायौ तब जानिहौं जब मन फिरि परि है "

विनय के लिये विनय - विनय का एक प्रारंभिक विषय विनय के लिये विनय होता है । किस प्रकार विनय की जाय कि वह फलदा हो, प्रभु के प्रति प्रेम प्रतीति जाग्रत हो, प्रभु पर श्रद्धा विश्वास आवे, इसके लिये प्रारंभिक विनय यही होगी कि हे परमपिता हमें ऐसी विनय करना , ऐसी पूजा करना बता कि जिससे हम तेरे प्रेम को प्राप्त कर सकें तुझ पर श्रद्धा और विश्वास कर सकें[3.325] । हमारे आचरण तो ऐसे हैं कि संसार में फँसते ही जाते हैं ।

कौन जतन बिनती करिये ।

निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ।। ॥वि. 186 ॥

इस समस्या का समाधान भी प्रस्तुत करते हैं । विनय कैसे की जाय, यदि नहीं आता तो जैसे बने वैसे की जाय, उसमें भाव कुभाव कुछ भी हो, कुछ भी उसका विषय

3.324- Prayer ...is simply a lovigg talk between the soul and God ; where the topic of conversation is the attraction of God's goodness and how to achieve union with them .
Love of God : St. Francis : 62; 219

3.325- ... if you are not attracted , if you do not believe, pray that you may be attracted , that you may believe
- Ibidem p 106

97-------

हो, इसकी चिन्ता न करके विनय करें तो अपने आप विनय करना आ जायगा । भगवान् को यह अजानता विनय भी अच्छी लगती है - 3.326

" भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ राम जपत मंगल दिसि दसहूँ "- 1.27.1

तुलसी ग्रंथों में अन्यथा विभिन्न विषयों का विनय में समावेश हुआ है । अन्यान्य प्रकरणों में विनय के द्वारा अभीष्ट सिद्धि का योग प्रस्तुत किया गया है । इन्हीं प्रसंगों में विनय का अभीष्ट भी प्रकट हुआ है ।

विनय संबद्ध विषयों को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं -

1- मांगलिक - मांगलिक अवसरों से संबंधित विनय,

एवं यथा सीता एवं उमा के विवाह प्रसंग तथा विदा प्रसंगों में प्रस्तुत विनय

आचारिक विषय- पूजन आदि तथा आचार से संबंधित विषय यथा,

सीता का गौरी पूजन, राम का शिव पूजन, एवं सागर से निवेदन, विभीषण का रावण से नीतिपरक निवेदन कि दूत का वध नहीं किया जाता है, ग्रामवधूटियों का आकर्षण तथा परिचय हेतु जिज्ञासा आदि ।

2- आपातिक विषय-

आपत्ति के अवसरों से संबंधित विषय

यथा, वनवास के अवसर पर सीता लक्ष्मण की विनय, कौशल्या की विनय, सुमंत्र की विनय, भरत की विनय ।

सतीमोह जन्य आपत्ति तथा सती की विनय,

उमा की साधना एवं विनय

3.326- The most insignificant of good deeds, in the same way, are pleasing to God. Lazily done they may be, and not with the full powers of the charity we possess; yet God values them.

Love of God p. 116

3- आध्यात्मिक विषय - अध्यात्म एवं ईश्वर प्रणिधान से संबंधित विषय यथा,

शिव शाप के अवसर पर गुरू विनय, भगवान् राम के लिये प्रस्तुत अन्यान्य स्तुतियाँ, आरती,

विनय पत्रिका के स्तुति विषयक, आत्मोपदेशक, संसार की असारता विषयक, आत्म अवगुण विषयक, राम के गुणगान विषयक, नाम महात्म्य विषयक तथा उद्बोधक एवं सचेतक निवेदन ।

4- अन्य विषय- अ- अपनी विवशता तथा असहायावस्था में सहायता याचक विषय- साहायक विषय यथा, मानस की प्रारंभ की कवि विनय ,

आ- हितसाधक विषय जिसमें छल विनय भी आती है तथा खल विनय भी ।

विनय अभीष्ट- उपर्युक्त विषयों के संदर्भ में विनय का अभीष्ट मंगल कामना, आपत्ति निवारण प्रार्थना, मनोरथ साधना, प्रभु चरणों में प्रीति प्रतीति की याचना आदि होता है । कतिपय उदाहरण अवलोकनीय है-

मंगल कामना एवं आशीर्वाद प्राप्त करने का अभीष्ट

- सीता की गौरी से विनय कि मेरा मनोरथ ।राम पति रूप में प्राप्त हों। सिद्धि हो-

मोर मनोरथ जानहु नीकें। बसहु सदा उरपुर सबही कें ।- 3.327

सुनु सिय सत्य असीस हमारी । पूजिहि मन कामना तुम्हारी ।।- 3.328

3.327- मानस- 1.235,3

3.328- मानस- 1.235.7

- महाराज जनक द्वारा गुरु वशिष्ठ का विनय पूजन तथा मंगल कामना हेतु आशीर्वाद प्राप्त करना -

कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही ।।- 3.329

- दोनों कुलगुरुओं द्वारा मांगलिक आचार करना तथा देवों का आशीर्वाद प्राप्त करना -

आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं ।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं ।।- 3.330

- सीता जी की गंगा जी से सकुशल वन से लौटने की मंगल कामना हेतु विनय-

सियँ सुरसरिहि कहेउ कर जोरी । मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ।।
पति देवर सँग कुसल बहोरी । आइ करौं जेहिं पूजा तोरी ।।- 3.331

विवाह के अवसर पर विदा के समय विनय एवं क्षमा याचना

- जनक द्वारा महाराज दशरथ से विनय एवं क्षमा याचना

कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों ।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों ।।
संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए ।
एहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लए ।।- 3.332
ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई ।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीट्यो कई ।।- 3.333

3.329-मानस- 1.319 छं. 3 ,

3.330- मानस- 1.322 छं. 1,2

3.331- मानस-2.102.2,3

3.332- मानस-1.325 छं.

3.333- मानस-1.325 छं. 3

100------

- सुनयना की राम से विनय -

करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहे ।

बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ बिदित गति सबकी अहै ।।

परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानबी ।

तुलसीस सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी ।।- 3.334

- ग्रामवधूटियों का क्षमा याचना सहित परिचय हेतु जिज्ञासा निवेदन -

स्वामिनी अबिनय छमबि हमारी ।बिलगु न मानब जानि गँवारी ।।- 3.335

आपत्ति निवारण हेतु विनय अभीष्ट

- असंभव की कल्पना एवं कामना तथा विनय जिससे विपत्ति टल जाय। यह एक मनोवैज्ञानिक स्थिति होती है जिससे असह्य आसन्न आपत्ति क्षणिक सह्य हो जाती है।-

दशरथ की कल्पना एवं कामना कि प्रातः न हो, राम उनकी आज्ञा का पालन न करें और उनको वनवास न हो

हृदयँ मनाव भोरु जनि होई । रामहि जाइ कहै जनि कोई ।।- 3.336

× × × × × × × × × × × ×

बिधिहि मनाव राउ मन माहीं । जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं ।।-3.337

× × × × × × × × × × × × × × ×

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी । बिनती सुनहु सदासिव मोरी ।।- 3.338

3.334- मानस- 1. 335 छं. , 3.335- मानस-2.115.7

3.336- मानस-2.36.2 3.337- मानस-2.43.6

3.338- मानस-2.43.7

101--------

तुम्ह प्रेरक सबके हृदय सोमति रामहि देहु ।

बचनु मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सील सनेहु ।।- 3.339

- प्रियजन चिन्तित एवं विकल न रहें तथा आपत्ति सह्य बन जाय, एतदर्थ विनय एवं धैर्य धारण कराना

- राम की महाराज दशरथ के लिये चिन्ता तथा उनके सकुशल रहने की कामना एवं सुमंत्र से विनय -

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरे । बिनती करउँ तात कर जोरें ।।

सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें । दुख न पाव पितु सोच हमारे ।।

3.340

× × × × × × × × × × × ×

तात प्रनामु तात सन कहेहु । बार बार पद पंकज गहेहू ।।

करबि पायँ परि बिनय बहोरी । तात करिअ जनि चिंता मोरी ।।- 3.341

बन मग मंगल कुसल हमारें । कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारें ।।

तुम्हरें अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं ।

प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं ।।

जननीं सकल परितोषि परि परि पायँ करि बिनती घनी ।

तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसलधनी ।।

गुर सन कहब सँदेसु बार बार पद पदुम गहि ।

करब सोइ उपदेसु जेहिं न सोच मोहि अवधपति ।।- 3.342

3.339- मानस- 2.44 , 3.340- मानस- 2.95.1,2

3.341- मानस- 1.150.6,7,8

3.342- मानस- 1.151

पुरजन परिजन सकल निहोरी । तात सुनाएहु बिनती मोरी ।।

सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जातें रह नरनाहु सुखारी ।।- 3.343

- सीता की सासु ससुर से विनय-

सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पायँ ।

मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ ।। - ॥ 2.98 ॥

- गीधराज का सीता को धैर्य धारण कराना -

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा । करिहउँ जातुधान कर नासा ।।- 3.344

- हनुमान् का सीता जी को धैर्य धारण कराना

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता । सुमिरु रामसेवक सुख दाता ।।

उर आनहु रघुपति प्रभुताई । सुनि मम बचन तजहु कदराई ।।- 3.345

निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु ।

जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु ।।- 3.346

- आपत्ति से मुक्ति हेतु विनय -

- सती की देह त्याग हेतु विनय जिससे परित्याग जन्य कष्ट दूर हो -

तौ मैं बिनय करहुँ कर जोरी । छूटहुँ बेगि देहि यह मोरी ।।- 3.347

- सीता की विरह मुक्ति हेतु अग्निदाह के लिये अशोक विटप से विनय-

सुनहि बिनय मम बिटप असोका । सत्य नाम कर हरु मम सोका ।।

नूतन किसलय अनल समाना । देहि अगिनि जनि करहि निदाना ।।-3.348

3.343- मानस- 1.51.1,2

3.344- मानस- 3.28.9

3.345- मानस- 5.14.9,10

3.346- मानस- 5.15

3.347- मानस-1.58.7 , 3.348-मानस -5.11.10,11

103--------

- प्रभु प्रीति एवं भक्ति प्राप्त करने का अभीष्ट

- कवि द्वारा-

बंदउँ पद धरि धरनि सिरु । बिनय करहुँ कर जोरि ।

बरनहुँ रघुबर बिसद जसु । श्रुति सिद्धान्त निचोरि ।।- 3.349

- कौशल्या द्वारा-

बार बार कौसिल्या बिनय करइ कर जोरि ।

अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि ।।- 3.350

- ग्रामतिय की सीता जी से पुन दर्शन देने हेतु विनय -

पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी । जौं एहि मारग फिरहिं बहोरी ।।

दरसनु देब जानि निज दासी । लखीं सीयँ सब प्रेम पिआसी ।।- 3.351

- बालि बिनय राम से

यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये ।

गहि बाँह सुर नरनाह आपन दास अंगद कीजिये ।।- 3.352

- स्वयं प्रभा की विनय राम से -

नाना भाँति बिनय तेहि कीन्हीं । अनपायनी भगत प्रभु दीन्हीं ।।- 3.353

- ब्रह्मा की विनय राम से

बिनय कीन्ह चतुरानन प्रेम पुलक अति गात ।

सोभा सिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात ।।- 3.354

3.349- मानस- 1.109 , 3.350- मानस- 1.202

3.351- मानस - 2.117.2,3, 3.352- मानस- 4.9 छं.

3.353- मानस-4.24.8, 3.354- मानस-6.111

104--------

- शिव विनय राम ते

परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि ।

पुलकित तन गदगद गिरा बिनय करत त्रिपुरारि ।। - 3.355

- अहिल्या विनय राम ते -

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना ।

पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ।।- 3.356

- अत्रि विनय राम ते

बिनती करि मुनि नाइ सिरू कह कर जोरि बहोरि ।

चरन सरोरूह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि ।।- 3.357

वशिष्ठ विनय राम ते

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु ।

जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ।। - 3.350

- कवि विनय-

माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं रामसिय मानस मोरे ।।-3.359

तुलसी राम-भगति बर माँगै - 3.360

ज्यौं त्यौं तुलसी कृपालु । चरन-सरन पावै - 3.361

अन्य विषयों संबंधी अभीष्ट -

-कार्य सफलता हेतु विनय अभीष्ट

- कवि द्वारा -

निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं । तातें विनय करहु सब पाहीं ।।- 3.362

होइ प्रसन्न देहु बरदानू । साधु समाज भनिति सनमानू ।।- 3.363

3.355- मानस-6.114 , 3.356-मानस-1.210छं., 3.357- मानस- 3.4
3.3.58-मानस 7.49, 3.359-विनय-1, 3.360-विनय-2, 3.361- विनय 79,
3.362-मानस-1.7.4, 3.363-मानस- 1.13.7 ,

105--------

- भगवान् द्वारा शिव से पार्वती पाणिग्रहण हेतु -

- अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु ।

जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु ।।- 3.364

- रावण द्वारा शिव से अजेयता प्राप्ति हेतु -

- करि बिनती पद गहि दससीसा । बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा ।।

हम काहू के मरहिं न मारें । बानर मनुज जाति दुइ बारें ।।- 3.365

- नारद विनय भगवान् राम से अपना रूप देने के लिये जिससे उन्हें विश्वमोहनी राजकुमारी वरण कर ले -

- ऐहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल ।

जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल ।। - 3.366

आपन रूप देहु प्रभु मोही । आन भाँति नहिं पावौं ओही ।।- 3.367

- भगवान् शिव से मायावश जीव पर क्रोध न करने के लिये विनय-

तब माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान ।

तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान ।।- 3.368

- विनय विकल्प के रूप में दण्ड विधान अभीष्ट

- राम का सागर की विनय न मानने पर इष्ट सिद्धि हेतु बल प्रयोग -

बिनय न मानत जलधि जड़ गये तीन दिन बीति ।

बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति ।।- 3.369

× × × × × × × × × × × × ×

बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहि पइ नव नीच ।- 3.370

3.364-मानस-1.76 , 3.365- मानस- 1.176.4, 3.366- मानस- 1.131 , 3.367- मानस- 1.131.6 , 3.368- मानस- 7.108ग, 3.369-मानस-5.57 , 3.370- मानस- 5.58,

106-------

- कवि द्वारा विघ्न उत्पन्न न हों, अभीष्ट से खल विनय -

बहुरि बंदि खल गन सति भाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ ।।
परहित हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरें हरष बिषाद बसेरे ।।- 3.371
देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब ।
बंदउँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब ।।- 3.372

3.4.8- विनय अंग -

विनय भक्ति के छः अंग माने गये हैं ।

1- प्रपत्ति

2- प्रतिकूलस्यवर्जनम्

3-रक्षिष्यतीति विश्वास:

4- गोप्तृत्ववरण

5- आत्म निक्षेप

6- कार्पण्य

प्रपत्ति - अनन्य शरणागत होने की भावना प्रपत्ति कहलाती है । भक्त का भगवान् के प्रति सर्वभावेन समर्पण का भाव प्रपत्ति की अपेक्षा होती है । अहं का समर्पण ही प्रपत्ति है । इस भाव को प्राप्त कर ही भक्त होता है ।

राखहु सरन समुझि प्रभुजाई । - 3.373

और मोहि को है काहि कहि हो ;
इतनी जिय लालसा दास के, कहत पानही गहिहों ।
दीजे बचन कि हृदय आनिये, तुलसी को पन निर्बहिहों ।।- 3.374

3.371- मानस- 1.3.1,2 , 3.372- मानस- 1.7 [घ]

3.373- विनय- 242 , 3.374- विनय- 231

107-------

दास तुलसी सरन आयो, राखिये आपने ।।- 3.375

प्रतिकूलस्यवर्जनम् - प्रभु अनुकूलता प्राप्त करने के लिये 'अनुकूलस्य संकल्प तथा प्रतिकूलस्य वर्जनम्' की अपेक्षा होती है । प्रबोध, परिताप, प्रतिज्ञा आदि भाव इस अंग के अन्तर्गत आते हैं । भक्त अपनी पतित स्थिति से अवगत होकर क्षुब्ध होता है तथा उससे मुक्ति पाने में अपनी विवशता को देखकर विकल हो उठता है । प्रभु शरणागति का भाव प्रस्तुत संदर्भ में दृढ़ता प्राप्त करता है -

" अब लौं नसानी अब न नसैहौं
परबस जानि हस्यौ इन इन्द्रिन्ह निज बस ह्वै न हसैहौं " - 3.376
है प्रभु मेरोई सब दोषु ।- 3.377
लाभ कहा मानस तन पाये ।- 3.378
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताये ।।
ऐसी मूढ़ता या मन की । - 3.379
तौ सौ हौं फिरि फिरि हित प्रिय पुनीत सत्य बचन कहत
सुनि मन गुनि समुझि क्यों न सुगम सुमग गहत ।।- 3.380

रक्षिष्यतीतिविश्वास:- विनय के इस अंग को भक्ति साधना का प्रमुख अवलंब कहना चाहिये । भक्त को यह विश्वास होना कि भगवान् कृपा करेंगें, रक्षा करेंगें, दया करेंगें, भक्त की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन के लिये दृढ़ संबल हैं जिनके संदर्भ में उसकी एकपक्षीय प्रेमाराधना चलती रहती है तथा प्रभु कृपा की प्रतीक्षा बनी रहती है । भक्त का

3.375- विनय- 160, 3.376- विनय-105
3.377-विनय- 159 3.378- विनय- 201
3.379- विनय- 90 3.380- विनय- 133

108--------

विश्वास ही भगवान् का साक्षात्कार कराता है । इस अंग से विश्वास की दृढ़ता संभव होती है तथा भक्ति,साधना के सहज स्वरूप में प्रेमस्वरूपा बन जाती है ।

ताते हौं बार बार देव , द्वार परि पुकार करत

- आरति नति दीनता कहैं प्रभु संकट हरत "- 3.381

- ऐसी हरि करत दास पर प्रीति

निज प्रभुता बिसारि जन के बस होत सदा यह रीति ।।- 3.382

<u>गो प्तृत्व वरण</u> - भगवान् की 'गो प्तृत्व' अर्थात् रक्षण शक्ति का वरण विनय के अंग के रूप में स्वीकार होकर भक्ति का एक साधन बना है ।

'रक्षिष्यतीति विश्वास:' की स्थिति के साथ भगवान् रक्षक हैं, रक्षण समर्थ हैं , भाव भगवान् को साकार सद्भावी सहायक के रूप में प्रस्तुत करता है तथा भक्त रक्षा के लिये विनय करता है एवं विकल हो उठता है । गोस्वामी जी ने भगवान् की इस रक्षणशक्ति को पितृस्नेहजन्य संरक्षण वृत्ति के रूप में प्रस्तुत कर इसके ममतामय स्वरूप की प्रतिष्ठा की है ।

कबहुँ कृपा करि रघुबीर ! मोहू चितैहौ ।

..... तुमही सब मेरे , प्रभु -गुरु, मातु पितै हो । - 3.383

विनय पत्रिका दीन की , बापु! आपु ही बाँचो ।- 3.384

<u>आत्मनिक्षेप</u> - भक्त का अपने आपको भगवान् की इच्छा पर छोड़ देना, आत्मनिक्षेप की स्थिति होती है । भगवान् के प्रति विश्वास की यह वह स्थिति है जिसमें कष्ट एवं दुःख भी भगवान् की इच्छा के कारण होते दिखलाई देते हैं। प्रिय और अनुकूल के साथ अप्रिय और प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी भगवान् की देन समझी जाती हैं और

3.381- विनय- 134

3.382-विनय- 98

3.383-विनय-270

3.384-विनय-277

109--------

उनसे भी किसी कल्याण की कल्पना एवं कामना की जाती है । इस स्थिति में भक्त 'लाभा लाभी' 'जया जयौ' दोनों प्रकार की परिस्थितियों में सम और शान्त बना रहता है ।

जाउँ कहाँ तजि चरन तिहारे

का को नाम पतित पावन जग केहि अति दीन उबारे ।।- 3.385

और कहँ ठोर रघुबंस- मनि मेरे - 3.386

कार्पण्य- अपना परम दैन्य एवं अपनी परम अकिंचनता विनय के कार्पण्यअंग के अंतर्गत आते हैं । कार्पण्य भक्ति की प्रथम एवं अंतिम अपेक्षा है । भक्ति का आधार ही कार्पण्य है । भक्त का अहं कार्पण्य के द्वारा नष्ट होता है तथा भगवान् का साक्षात्कार संभव होता है । 'अहं रहित' व्यक्तित्व में ही भगवान् का अस्तित्व प्रकट होता है । कार्पण्य के संदर्भ में ही भक्त अपने अनेकानेक दोषों , पापों एवं परितापों को अनुभव करता तथा विकल होता है ।

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।

माधवजू, मोसम मंद न कोऊ - 3.387

3.4.9 विनय की सात भूमिकायें -

3.4.9 विनय के छः अंगों के साथ विनय की सात भूमिकाओं की भी अपेक्षा की गई है । इन भूमिकाओं के संदर्भ में विनय भक्ति विकसित और दृढ़ होती है ।

1- दीनता

2- मानमर्षता

3- भयदर्शन

4- भर्त्सना

3.385-विनय- 101 , 3.386- विनय- 210

3.387- विनय- 92

110------

5- आश्वासन

6- मनोराज्य

7- विचारणा

दीनता- दीनता को भक्त की शोभा कहा जा सकता है । जीवन धारण के लिए अपेक्षित तत्वों के समान भक्त के लिए दीनता-वृत्ति आवश्यक एवं अपेक्षित होती है । " अहं वृत्ति " का ह्रास दीनता के विकास के लिये आवश्यक होता है । पूर्ण रूप से दीनता की प्राप्ति ही दूसरे शब्दों में तद्रूपता को जन्म देती है । अतएव दीनता के अन्तर्गत आर्त- प्रार्थना , अतिनिवेदन, प्रलाप तथा अश्रुमोचन आदि सब कुछ आ जाता है ।

अब तक के अध्ययन के अन्तर्गत आत्मनिक्षेप तथा कार्पण्य के लिये उद्धृत प्राय: सामग्री दीनता के अन्तर्गत आ जाती है । इसके साथ ही यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण पत्रिका ही दीनता की पत्रिका है ।

इस उपलक्षण पद्धति को लौकिक दीनता की अभिव्यक्ति या आत्मवृत्ति का द्योतक समझा जाय अथवा भाव रहस्य समझा जाय - 3.388 किन्तु यह तो स्पष्ट है कि उसके द्वारा दीनताजन्य करुणा आर्त एवं कातर भावों की प्रस्तुति हुई है । निम्नलिखित करुणापूर्ण तथा मर्मस्पर्शी शब्दों में कवि अपनी दीनता तथा असहायावस्था का दिग्दर्शन कराता है -

---

3.388- दैन्य भाव जिस उत्कर्ष को गोस्वामी जी में पहुँचा है , उस उत्कर्ष को और किसी भक्त कवि में नहीं । इस भाव रहस्य से अनभिज्ञ और इस उपलक्षण पद्धति को न समझने वाले ऊपर के पदों को देख कर यदि कहें कि तुलसीदास जी बड़े भारी मगन थे, हटाने से जल्दी हटते नहीं थे और खुशामदी भी बड़े भारी थे, तो उनका प्रतिवाद करना समय नष्ट करना ही है "-

(तुलसीदास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 76 पृ0- 95,96)

"द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परिपाहू
है दयालु दुनि दस दिसा दुखदोषदलनछम
किये न संभाषन काहू ।
तनु तज्यों कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातुपिताहू
काहे को रोष, दोष काहि यौं, मेरे ही अभाग
मोसों सकुचत छुइ सब छाँहू ।। "- 3.389

भक्ति-साधना में दीनता तुलसी का संबल है जिसके द्वारा वह अपनी साधना को सफल बना सके हैं । प्रथम प्रवेश में दीनता दीनबंधु से शाश्वत संबंध स्थापित करती है कवि इस संबंध की बात सोच कर मुग्ध हो जाता है -

" तुम सम दीनबंधु न दीन कोउ मो सम सुनहु
नृपति रघुराई "
मो सम कुटिल मोलिमन नहिं जग
तुम सम हरि न हरन कुटिलाई " - 3.390

प्रभुदरबार में प्रवेश करने के पश्चात् कवि को यह भय होता है कि कहीं कोई निकाल न दे । अत: वह अपने आने का कारण प्रकट करने लगता है - वह "सुजस स्रवन सुनि " " सरन" आया है ।
अति करूणापूर्णशब्दों में वह संभवत: दूर से ही प्रभु का ध्यान आकर्षित करने के लिये पुकार उठता है -" पाहि पाहि राम, पाहि रामभद्ररामचन्द्र "

इस द्वार पर ही आने का एक कारण है । वह लोक के सभी द्वारों से निराश वापिस हो आया है । कोई उसको शरण में लेने के लिए तैयार नहीं है । अतएव परम विवशता में कवि अति आर्तनिवेदन करने लगता है -

---

3.389- विनय-275

3.390- विनय-242

" तौ हौं बारबार प्रभुहिं पुकारिकैं खिझावतो न

जो पै मोको हो तो कहूँ ठाकुर ठहरू" - 3.391

इस द्वार से भी कहीं उसको चले जाने की आज्ञा न हो जाय, इस आशंका से विकल होकर कवि " रिरियाने " लगता है -

" दीनबंधु दूरि किये दीन को न दूसरी सरन

आपनी को भले हैं सब आपने को कोऊ कहूँ

सब को भले हैं, राम, रावरो चरन " - 3.392

अपनी विकलता में कवि अन्त में जैसे हो वैसे निभा लेने की प्रार्थना करता है। उसकी विकलतागत मर्मस्पर्शी वेदना में प्रत्येक भक्त अपना स्वर मिला सकता है-

" जैसो हौं तैसो हौं राम

रावरो जन जनि परिहरिये

कृपासिंधु कोसलधनी सरनागतपालक

ढरनि आपनी ढरिये " - 3.393

दीनता की पत्रिका समर्पित कर देने के पश्चात् कवि की आशंका पुनः जाग्रत हो जाती है। मानव मानस के विशेषज्ञ तुलसी भलीभाँति जानते हैं कि यदि किसी दूसरे ने पत्रिका को पढ़ कर सुनाया तो किया कराया सारा परिश्रम व्यर्थ सिद्ध हो सकता है। अतएव वह यही दीन प्रार्थना करते हैं -

" विनयपत्रिका दीन की बापु आपु ही बाँचो " 3.394

मानमर्षता- मानमर्षता के अन्तर्गत भक्त अभिमान रहित होकर शरणागति प्राप्त करने के लिये अग्रसर होता है। अपने अपराधों को स्वीकार करता है तथा अपनी दीनदशा पर परम दुःखी होता है। अपनी अनवरत प्रार्थना तथा शरणागति के लिये दीन याचना

3.391- विनय- 250 3.392- विनय- 257

3.393- विनय- 271 3.394- विनय-277

113----

को विफल देख कर प्रार्थना की उस विधि को जानने के लिये साधक विकल हो उठता है जो साधन सफलता प्राप्त करा सके । विभिन्न प्रकार से प्रार्थना एवं अनुनय विनय कर लेने के पश्चात् कवि की स्वाभाविक जिज्ञासा हो उठती है - प्रभु करूणा क्यों नहीं करते ?

प्रभु शरणागति प्राप्त करने के लिये अनन्यदशा अपेक्षित होती है । अनन्यदशा प्राप्त कर लेना जितना कठिन है उससे भी अधिक कठिन है भगवान् को अनन्यदशा का विश्वास करा देना । कवि ने लौकिक यातनाओं से पीड़ित होकर किसी प्रकार अनन्यदशा तो प्राप्त कर ली है किन्तु इसका विश्वास प्रभु को किस प्रकार कराया जाय यह उसके लिये एक समस्या है । आध्यात्मिक मार्ग के कुशल भक्त तुलसी को एक युक्ति सूझ जाती है । " प्रभु सर्वज्ञ एवं अन्तरयामी है " यह तथ्य तुलसी की समस्या को हल करने के लिये ठीक बैठता है । अतः वह कह उठते हैं -

" खोटो खरो रावरो हौं, रावरी हौं ,
रावरे सों झूठ क्यों कहौंगो ,
जानो सब ही के मन की .. " - 3.395

तथा " गरैगी जीह जो कहौं और को हौं
जानकी जीवन, जनम जनम जग ज्यायो
तिहारेहि कौर को हौं "- 3.396

अनन्यता का विश्वास करा देने के पश्चात् कवि शरणागति के लिए विनम्र आग्रह करता है । अपने अवगुणों एवं दोषों के कारण कवि को स्वाभाविक आशंका है कि कहीं उसकी प्रार्थना अस्वीकार न कर दी जाय । व्यवहार कुशल तुलसी " टूटी बाँह तथा " फूटी आँख " को निर्वाह करने का उदाहरण देकर अपनी कातरता

3.395- विनय- 75

3.396- विनय- 229

||4------

तथा प्रभु की क्षमता की ओर संकेत करते हैं । शरणागति प्राप्ति के लिए लालायित कवि की शोकानुभूति निम्न शब्दों में प्रकट होती है -

" जैसों हौं तैसो राम रावरो जन जनि परिहरिये "

अपराधी तउ आपनो तुलसी न बिसारिये

टूटियो बाँह गरे परे फूटेहु बिलोचन पीर होत

हित करिये " - 3.3(79)

साथ ही पौराणिक कथाओं के अनुकूल अपनी अनन्य गति को देख कर कवि को संतोष नहीं होता , जब वह देखता है कि प्रभुकृपा प्राप्त नहीं हो रही है । अतएव कवि-मानस में " कवन जतन " को जान लेने की लालसा भी जाग्रत हो जाती है । इन प्रसंगों के अन्तर्गत कवि की मानमर्षिता निम्नलिखित रूप में प्रकट होती है-

कस न करहु करूना हरे, दुखहरन मुरारि"

" कसन दीन पर द्रवहु उमावर- 3.398

दारून विपति हरन करूनाकर 3.399

" माधव, अब न द्रवहु केहि लेखे

प्रनतपाल पन तोर, मोर पन जिअहुँ कमल पद देखे "

" है हरि, कवन जतन सुख मानहु - 3.400

ज्यों गज-दसन तथा मम करनी सब प्रकार तुम जानहु "- 3.401

निज अपराध स्वीकृति का भाव प्रभुकृपा प्राप्त करने के प्रयत्न में जाग्रत होता है । जब भक्त की दृष्टि भगवान् को उपालम्भ देते हुये किसी प्रकार अपनी

3.3(79)- विनय- 271 3.398- विनय-109 , 3.399-विनय-7

3.400-विनय- 113 3.401- विनय-118

115-----

हीनदशा तथा अपने प्रतिकूल आचरण की ओर चली जाती है । वह अपनी अपराधी स्थिति को ज्ञात कर बिलख उठता है -

" कैसें देउँ नाथहि खोरि
काम लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि " - 3.402

" है प्रभु, मेरोई सब दोसु
सीलसिंधु कृपालु नाथ अनाथ आरत पोसु " - 3.403

तथा " है हरि, कवन दोस तोहि दीजै
जेहि उपाय सपनेहु दुरलभ गति, सोइ निसिबासर
कीजै " - 3.404

आर्तनिवेदन के अन्तर्गत कवि की परम वेदना मुखरित हो उठती है । अपने आराध्य की उदासीनता भक्त के लिये असह्यहो जाती है । आराध्य की अनुकूलता उसके जीवनका ध्येय रहता है । अतएव जब वह देखता है कि प्रभु उसकी ओर से " मन मैला " कर रहे हैं तथा"लोचन फेर " रहे हैं तो अपनी आर्त एवं करूण दशा में वह परम कातर हो उठता है । उसकी मार्मिक वेदना करूणक्रन्दन के रूप में प्रकट हो उठती है -

" तुम जनि मन मैलो करो लोचन जनि फेरो
सुनहु राम, बिनु रावरे लोकहु परलोकहु कोउ
न कहूँ हितु मेरो ...

....

दिन-हू - दिन देव ! बिगरि है , बलि जाउँ
बिलंब किये अपनाइये
सबेरो ..." - 3.405

3.402-विनय-158, 30 , 3.403-विनय-159, 3.404-विनय-117

3.405- विनय- 272 116--------

भय दर्शन - विनय भक्ति ही नहीं प्रत्युत सभी साधनाओं में मन की प्रमुख भूमिका रहती है । मन लगे और ऐसा लगे कि अन्य विषयों से विमुख होकर एकान्तिक रूप में लगे तो साधना सफल हो । इसको वश में करना बड़ा कठिन है । अभ्यास और वैराग्य से इसको वश में किया जा सकता है।- 3.406 इसी संदर्भ में भयदर्शन की अपेक्षा होती है । मन को जहाँ संसार की नश्वरता का भान कराया जाता है वहाँ संसार में लिप्त रहने के दुष्परिणामों से भयभीत कराने की भी आवश्यकता होती है । इसी स्थिति का विचार करते हुये " भय बिनु प्रीति " की बात कही गई है । भय विरति एवं उदासीनता के लिये अपेक्षित ही नहीं प्रत्युत आवश्यक भी होता है । मनोविज्ञान के इस सिद्धान्त को दृष्टिगत रखते हुये मानव मनोविज्ञान के पण्डित गोस्वामी तुलसीदास जी ने भयदर्शन और विनय की भूमिका की सुंदर प्रतिष्ठा की है ।

मन की भागदौड़ तथा भव ताप से मुक्ति के लिये छटपटाहट में गोस्वामी जी त्रयताप से त्रसित होने का भय दिखाते हैं । इस साधन को मन नहीं करना चाहता तो उसके अतिरिक्त कोई विकल्प न मिलने की विवशता प्रकट करते हैं और अन्यथा मन की भीति एवं विवशता में मन को उसी साधन के लिये आमंत्रित करते हैं ।

राम राम जीह जौं लौं तू न जपि है
तौ लौं , तू कहूँ जाय, तिहूँ ताप तपि है । - 3.407

xxxxx xx xx xx xx xx xx xx xx xxxxx

3.406- असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।। (गीता- 6 : 35)

3.407- विनय- 68

117-------

अन्यत्र गोस्वामी जी पापमय जीवन के दण्डविधान की चर्चा करते हुये जीव को तथा साधक के मन को भयभीत करते हैं कि यदि इन पापों को किया तो इस प्रकार के दण्ड भोगोगे, बच नहीं सकते । इसलिये " बड़े भाग मानस तनु पावा " का सौभाग्य मनाओ और भगवान् का भजन करो ।

> हर गुर निंदक दादुर होई । जन्म सहस्त्र पाव तन सोई ।।
> द्विज निंदक बहु नरक भोग करि । जग जनमइ बायस सरीर धरि ।।
> सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी । रौख नरक परहिं ते प्रानी ।
> होहिं उलूक संत निंदारत । मोह निसाप्रिय ग्यान भानु गत ।।
> सब कै निंदा जे जड़ करहीं । ते चमगादुर होइ अवतरहीं ।।- 3.408

इन पाप प्रताड़नाओं की भयावह स्थिति से मुक्ति का एकमात्र साधन हरि भजन है । इसलिये इन पापों से विरत होकर भगवत्भजन की ओर उन्मुख होना ही चाहिये।

> बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।
> बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ।।- 3.409

भर्त्सना - भय दर्शन का अङ्गी भाव भर्त्सना का है । भय दर्शन से जो काम बनता है वह भर्त्सना से भी बन सकता है । भर्त्सना से मन का मनोबल टूटता है और उसको यह बोध होता है कि वह पापरत है, बारबार समझाने बुझाने से भी नहीं मानता है तो अब भर्त्सना न की जाय तो क्या किया जाय । इन परिस्थितियों में मन की दुष्टगति बाधित हो सकती है और सुपथ की ओर अग्रसर हो सकता है ।

> "सुनि मन मूढ़ सिखावन मेरा
> हरिपद विमुख लह्यो न काहु सुख ,सठ, यह समुझ सवेरो "-3.410

× × × × × × × × × ×

3.408- मानस- 7.120.23-27, 3.409- मानस-7.122 (क)

3.410- विनय- 87

लाज न लागत दास कहावत ।

सो आचरन बिसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहँ भावत ।।- 3.411

× × × × × × × × × × ×

जो पै जानकिनाथ सों नातो नेह न नीच ।

स्वारथ-परमारथ कहा, कलि कुटिल बिगोयो बीच ।।- 3.412

× × × × × × × × × × ×

नीच, मीच जानत न सीस पर , ईश निपट बिसरायो ।।- 3.413

आश्वासन - मनोविज्ञान की प्रक्रिया में केवल, भय और भर्त्सना से काम नहीं चलता है । प्रत्युत इनकी अति होने पर मन विद्रोह भी कर बैठता है और तब सारी बात बिगड़ जाती है । उस स्थिति का कोई उपाय नहीं होता । इसलिये बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है । भय और भर्त्सना के साथ आश्वासन और मनोराज्य की भूमिकायें प्रस्तुत की जानी चाहिये जिससे मन जहाँ एक ओर प्रताड़ित हो वहाँ दूसरी ओर उसकी पीठ पर हाथ भी रखा जाय, उसे प्रोत्साहित एवं प्रेरित भी किया जाय । इस प्रकार सावधानी, सूझबूझ तथा चातुर्य से मन अनुकूल हो जाता है और साधन संभव हो जाता है । आश्वासन के अन्तर्गत मन को आराध्य की अहेतुक कृपा व दया की प्रवृत्ति से परिचित कराते हैं जिससे पापरत स्थिति में भी निराशा नहीं होती । भगवान् पापी से भी पापी को अपना लेते हैं, अंगीकार कर लेते हैं , यह सुखान्त एवं सुखदा आश्वासन मन के लिये बहुत बड़ा अवलंब एवं आधार बन जाता है ।

औढर-दानि, द्रवत पुनि थोरें

सकत न देखि दीन कर जोरें ।।- 3.414

3.411-विनय- 185 , 3.412- विनय- 192,

3.413-विनय-200 , 3.414- विनय-6

।19------

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे ।

किये दूर दुख सबनि के, जिन्ह जिन्ह कर जोरे ।।- 3.415

× × × × × × × × ×

जन डरपहि तोसे अनेक खल,

अपनाये जानकी नाथ - 3.416

× × × × × × × × × × ×

आरति, नति, दीनता कहे प्रभु संकट हरत । - 3.417

× × × × × × × × × ×

कलि नाम कामतरू रामको

दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोष घोर धन धाम को ।-3.418

× × × × × × × × ×

मनोराज्य - आश्वासन की भूमिका में मनोराज्य की सुखद स्थिति आ जाती है । प्रभु कृपा व दया की प्रीति प्रतीति होने पर सुंदर कल्पनायें, मोहक स्वप्न तथा मनोकामनायें मन की प्रसाद एवं प्रसन्नता की स्थिति को बल एवं वैभव प्रदान करती हैं । जैसे अनेक पतितों का उद्धार किया, उनको शरण में ले लिया, उन पर अहेतुकी कृपा की, उसी प्रकार हम पर भी प्रभु कृपा होगी । हम भी प्रभुरति प्राप्त करेंगे, भक्तों में हमारी गणना होगी, समाज में हमारा मान-सम्मान बढ़ेगा । कैसे सुखद मनोराज्य हैं और कैसी दया व कृपा होती है कि ये मनोराज्य मात्र सुख स्वप्न बनकर

3.415- विनय-8 , 3.416- विनय-84

3.417- विनय-134 3.418- विनय-156

120---------

ही नहीं रह जाते प्रत्युत सत्य और साक्षात् होते हैं और जीवन को कृतार्थ एवं सफल बनाते ही हैं ।

राम कबहुँ प्रिय लागि हौ जैसे नीर मीन को ।- 3.419

× × × × × × × × × ×

मैं तोहि अब जान्यो संसार ।

बाँधि न सकहिं मोहि हरि के बल, प्रगट कपट-आगार ।।- 3.420

× × × × × × × × × × ×

कबहुँ रघुबंसमनि ! सो कृपा करहुगे ।

जेहि कृपा ब्याध , गज, बिप्र, खल नर तरे,

तिन्हहिं सम मानि मोहि नाथ उद्धर हुगे ।। - 3.421

×× ×× ×× ×× ×× ×× ×× ×× ××

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।

मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो ।।- 3.422

विचारणा- विचारणा भक्त की साधनविवशताजन्य परिताप की वह दशा है जिसके अन्तर्गत भक्त की निराशा अपनी गंभीरता में अति वेदनापूर्ण बन जाती है । मन को समझाते हुए भक्त का सारा जीवन ही व्यतीत हो चुका , मन संत स्वभाव ग्रहण न कर सका , प्रभु उसको प्रिय न लग सके । इस प्रकार जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो गया । भक्त अपनी इस विवशता के कारण परम निराश तथा परम विकल हो जाता है । उसकी वेदना परिताप, प्रायश्चित तथा अतिनिवेदन के रूप में निम्नलिखित रूप में प्रकट होती है -

---

3.419- विनय-269, 3.420- विनय-188, 3.421-विनय- 211 ,

3.422- विनय- 226

प्रायश्चित एवं परिताप-

" जनम गयो बादिहिं बर बीति

परमारथ पाले न पर्यो कछु अनुदिन अधिक अनीति "- 3.423

" ऐसेहि जनम-समूह सिराने

प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने "- 3.424

मन की दुर्नीति-

" ऐसी मूढ़ता या मनकी

परिहरि राम-भगति - सुरसरिता आस करत ओसकन की "- 3.425

" कबहूँ मन बिश्राम न मान्यो

निसदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो "3.426

" यों मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यो

ज्यों छलछाँड़ि सुभाव निरन्तर रहत विषय अनुराग्यो "- 3.427

प्रभु ने भक्त को अपना लिया इसका विश्वास भक्त को किस प्रकार हो सकता है जब वह देखता है कि उसका मन " फिरा " नहीं तथा उसको स्वामी से सहज स्नेह हुआ नहीं। भक्त की यह भावना निम्न रूप में प्रकट हुई -

" तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै

जेहि सुभाव विषयनि लग्यो

तेहि सहज नाथ सों नेह छाड़ि छल करिहै" - 3.427 I I

इस मापदण्ड द्वारा गोस्वामी जी ने साधना की कर्मकाण्डगत विडम्बना को दूर कर भक्त के स्वभाव तथा व्यवहार के परिवर्तन को महत्त्व दिया है जिसके अन्तर्गत धार्मिक मतभेद का कोई स्थान नहीं रहता।

3.423-विनय-234, 3.424- विनय-235, 3.425- विनय- 90, 3.426-विनय 88

3.427- विनय- 170 , 3.427 I I - विनय268

122-----

विनय विवेचन

3.5.0 विनय प्रभाव -

- विनय एक अमोघ साधन है जिसका निश्चित रूप से अनुकूल प्रभाव पड़ता है। विनयकर्ता के आचार-विचार एवं व्यवहार में शालीनता, शिष्टता आती ही है तथा ब्रह्ममुखता प्राप्त होती है। यह अवश्य है कि जितनी निष्ठा, तल्लीनता भाव एवं भक्ति से विनय की जाती है, उतना ही अधिक प्रभाव पड़ता है।

- विनय वस्तुत: आराधक और आराध्य के हृदयों का सीधा संपर्क एवं संबंध स्थापित करती है [3.428] और एक हृदय की जितनी विकलता एवं व्यग्रता होगी, उतना ही दूसरा हृदय दयाद्रवित एवं करूणाप्लावित होगा। आराध्य की दया व करूणा आराधक के मनोबल को बढ़ा कर भक्ति के लिये उत्सुकता जागृत करती है और संसार की नश्वरता एवं निराशा के परिप्रेक्ष्य में आराध्य की ओर से आशा की एक स्फुलिङ्ग बन कर जीवन का संबल बन जाती है।

- मानव-मानस-संस्थान की संरचना कुछ इस प्रकार की है कि उसमें हरक्षण इच्छा एवं कामना की उर्मियाँ उठा करती हैं। उन इच्छाओं में प्रबलता एवं प्रमुखता के आधार पर इच्छाविशेष बलवती होती जाती है और उसकी पूर्ति की लालसा एवं कामना विभिन्न साधनों की ओर दृष्टि दौड़ाती है और इस प्रयास में विनय का अङ्ग साथ लग जाता है। आराध्य की ओर से इच्छापूर्ति का आश्वासन विनय को बल देता रहता है।

3.428- Prayer oneth the soul to God ...
- The Eng. Mystical Traditions 61; 133

" जो इच्छा करिहौ मनमाहीं

राम कृपा कछु दुर्लभ नाहीं ।।" - 3.429

विनय आराध्य और आराधक दोनों के लिये ही प्रभावपूर्ण होती है । विनय से जितनी प्रसन्नता आराध्य को होती है, उतनी ही शक्ति और तृप्ति आराधकको मिलती है ।- 3.430

3.5.1 प्रीति की अभिव्यक्ति -

विनय हृदय की अदृश्य प्रीति की व्यक्त अभिव्यक्ति है । विनय सुनकर आराध्य विनयकर्ता की प्रीति पहिचान लेते हैं तथा इस प्रकार बहुत बड़ा काम सध जाता है । हृदय की उमड़ती एवं आंदोलित भावनाओं को व्यक्त होने का साधन प्राप्त हो जाता है ।- 3.431

3.5.2 आराध्य की प्रसन्नता -

विनयवशता आराध्य की विशेषता है । वह विनयवश होकर आराधक की इच्छा पूर्ति करते हैं और इस लीला में स्वयं आनन्द का अनुभव करते हैं ।- 3.432

3.429- मानस-7.113.4

3.430- God not only heads his faithful children's prayers , he also grants but the wish they utter and brings courage to their hearts in prayer , so vigilantly does He watch over all who love Him , gracious to all that call upon Him. ready to hear their cry , grant their prayer.

- Love of God . p 333

3.431- लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती । बिनय सुनत पहिचानत प्रीती ।। 1.27.5

3.432- बिनय प्रेम बस भईं भवानी । खसी माल मूरति मुसुकानी ।- 1.235.5

बिस्वामित्र चलन नित चहहीं । राम सप्रेम बिनय बस रहहीं ।- 1.359.3

124------

आराधक से प्रसन्न होकर उसको अप्रतिम स्नेह समादर देते हैं और अपनी महिमा एवं अपने आपको प्रकट कर देते हैं ।- 3.433 यह सौभाग्य बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को भी सुलभ नहीं हो पाता जो योग यज्ञ जप तप आदि के लिये समर्पित होते हैं और कठिन एवं घोर साधना करते हैं । विनय प्रेम से ही यह सुलभ होता है-3.434

3.3.3 सम्मान प्रदर्शन -

विनय सम्मान प्रदर्शन का भी अंग है । वाणी के द्वारा प्रस्तुत एवं प्रकट सम्मान में विनय का ही योग रहता है तथा इसका बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ता है ।

करि बर बिनय ससुर सनमाने - 3.435

3.5.4 कष्ट निवारण -

विनय के द्वारा आपन्न कठिनाईयों और बाधाओं का निराकरण एवं निवारण संभव हो जाता है । इस प्रकार विनय लौकिक कष्टों के निवारण के लिये प्रयुक्त एवं प्रतिफलित होती है ।

3.433- जेहि लखि लखनहु ते अधिक मिले मुदित मुनि राउ

सो सीतापति भजन को प्रकट प्रताप प्रभाउ ।।- 2.243

- तुम्हरेइँ भजन प्रभाव अघारी । जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी ।।-
{3.12.5 }

3.434- सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।।
{ 2.126-3 }

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।

शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ।।- गीता : 11 :53

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ।।- गीता. 11:54

3.435- मानस-1.341.7

सीता जी चाप की गरूता से चिन्तित एवं विकल हैं । वह विकल एवं विह्वल होकर विनय करती हैं कि चाप की गरुता कम हो जायजिससे भगवान् राम उसको सहज ही उठा सकें। ऐसा हुआ भी मानों विनय के साथ-साथ चाप की गरूता कम होती गई । बात भी कुछ ऐसी ही है -

आरति, नति, दीनता कहें, प्रभु संकट हरत ।- 3.436

मनहीं मन मनाव अकुलानी । होहु प्रसन्न महेस भवानी ।।

करहु सफल आपनि सेवकाई । करि हितु हरहु चाप गरूआई ।।

॥ 1.256.5,6 ॥

बार-बार बिनती सुनि मोरी ।

करहु चाप गरूता अति थोरी ।।- 3.437

× × × × × × × ×

गुरहिं प्रनामु मनहिं मन कीन्हा । अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा ।।- 3.438

3.5.5 भक्ति की प्राप्ति -

विनय का प्रभाव भक्ति की प्राप्ति है तथा भक्ति प्राप्ति के लिये विनय अपेक्षित एवं आवश्यक है । विनय का यह मार्ग अन्यथा सरल, सहज और मानस वृत्ति के अनुकूल भी है ।

नाना भाँति बिनय तेहि कीन्ही ।

अनपायनी भगति प्रभु दीन्हीं ।।- 3.439

3.5.6 विनय की नीतिपरक अपेक्षा -

जीवन की व्यावहारिकता एवं नीति के अंतर्गत जहाँ बल प्रयोग से कार्य

3.436-विनय-134, 3.437- मानस-1.256.8 , 3.438-मानस-1.260.5 ,

3.439-मानस-4.24.8

सिद्धि संभव हो, वहाँ भी पहिले विनय कर लेनी चाहिये और विनय के प्रभाव को देख लेना चाहिये और जब विनय का कोई प्रभाव न पड़े जैसा कि कतिपय उदाहरणों में संभव है, तो वैकल्पिक साधन का प्रयोग करना चाहिये ।

कह लंकेस सुनहु रघुनायक । कोटि सिंधु सोषक तव सायक ।

जद्यपि तदपि नीति असि गाई । बिनय करिअ सागर सन जाई ।।-3.440

3.5.7 कार्य सिद्धि -

मनुस्मृति में विनय प्रभाव की चर्चा करते हुये कई उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं जिनमें विनय के प्रभाव से कार्य सिद्धि हुई है -

पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेव च ।

कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिज: ।। - 3.441

विनय प्रभाव से पृथु और मनु ने राज्य, कुबेर ने धन, एवं ऐश्वर्य और विश्वामित्र ने । क्षत्रिय होकर भी । ब्राह्मणत्व प्राप्त किया ।

3.5.8 मन की निर्मलता -

विनय प्रभाव को गोस्वामी जी आध्यात्मिक जीवन में देखना चाहते हैं । विनय भक्ति का प्रभाव हमारे आचार-विचार और व्यवहार पर यदि नहीं पड़ता तो हमारी विनय स्वीकार एवं सफल नहीं हुई, यह मानना पड़ेगा ।

तुम अपनायो तब जानिहौं, जब मन फिरि परिहै ।

जेहि सुभाव बिषयनि लग्यो, तेहि सहज नाथ सों नेह

छाड़ि छल करिहै ।।-3.442

3.440- मानस-5.49.7,8 , 3.441- मनु 7.42

3.442- विनय- 268

मन की इस सुगति को विनय प्रभाव का सीधा फल मानना चाहिये । साधन क्षेत्र का यह प्रथम और अंतिम अभीष्ट हुआ करता है । आराधक की सदा यही विनय एवं वंदना रहती है -

ताके जुग पद कमल मनावउँ
जासु कृपा निरमल मति पावउँ ।।- 3.443

3.5.9 स्थित प्रज्ञ स्थिति -

गोस्वामी तुलसीदास जी निर्मल मति के प्रभाव को मानव के व्यक्तित्व उदात्तीकरण में देखना चाहते हैं । व्यक्तित्व का ऐसा विकास हो जैसा स्थितप्रज्ञ व्यक्तित्व का होता है जिसकी कामना गीता में की गई है - 3.444

3.443- मानस- 1.17.8

3.444- प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।- 2.55
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतराग भय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरूच्यते ।।- 2:56
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।। 2:57

हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरि है ।

हानि-लाभ-दुख-सुख सबै समचित हित अनहित,

कलि-कुचालि परिहरि है ।।

प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै ।। 3.445

गीता में जिस स्थितप्रज्ञ स्थिति की व्याख्या की गई है, उसका साधन साख्य-योग है किन्तु गोस्वामी जी इस स्थिति को विनय-प्रेम योग से सिद्ध करना चाहते हैं तथा इस स्थिति को विनय भक्ति की सहज उपलब्धि मानते हैं । गोस्वामी जीकामुख्य प्रतिपाद्य प्रभु प्रेम है । विनय से प्रभुप्रेम जागृत हो और ऐसा जागृत हो कि प्रभु गुणगान सुनते हुये मन हर्षित हो तथा नेत्रों से प्रेमाश्रु का प्रवाह होने लगे तो इस विनयजन्य प्रभु प्रेम की सहज उपलब्धि स्थितप्रज्ञ स्थिति होगी । इसलिये गोस्वामीजी विनय प्रभाव की मुख्य भूमिका प्रभुप्रेम की प्राप्ति मानते हैं जिससे सब कुछ सिद्ध हो जाता है । सब साधनों का फल प्रभुप्रेम ही है ।

जप तप नियम जोग निज धर्मा । श्रुति संभव नाना सुभकर्मा ।।

ग्यान दया दम तीरथ मज्जन ।जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ।।

आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ।

तब पद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुंदर ।।- 3.446

इसी संदर्भ में भगवान् ने निजदास को सबसे श्रेष्ठ तथा सबसे अधिक प्रिय माना है । यही विनय प्रभाव अपेक्षित है कि जिसके फलस्वरूप भगवान् का दास बना जा सके ।

3.445- विनय- 268

3.446- मानस- 7.48.1-4

मनुष्य- मनुष्यों में द्विज- द्विजों में- वेदज्ञ-

- वेदज्ञों में धर्म पर चलने वाले -

- धर्माचारियों में वैराग्यवान-

- वैराग्यवानों में ज्ञानी -

- ज्ञानियों में विज्ञानी -

- विज्ञानियों में निजदास

प्रभु को क्रमानुसार अधिक, अधिकतर अधिकतम प्रिय हैं - 3.447

परहित एवं परसेवा - प्रभु-पद-पंकजमेंनिरंतर प्रीतिहैनिर्मल मन होगा जिसका प्रभाव होगा कि सब में अपने प्रभु के दर्शन होगें । मानव मात्र के लिये प्रेम उमड़ पड़ेगा । सियाराम मय सब जग दिखलाई देने लगेगा तब जीवन का लक्ष्य बनेगा - 3.448

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम अधमाई ।।- 3.449

3.447- सब ते अधिक मनुज मोहि भाए । तिन्ह महँ द्विज द्विजमँह श्रुतिधारी ।-

- तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी ।।-

तिन्ह महँ प्रिय बिर त पुनि ज्ञानी -

- ज्ञानिहु ते अति प्रिय बिज्ञानी ।।

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निजदासा ।।

7.85-4-7

3.448- Prayer does for the purification of the mind what the bucket and broom do for the cleaning up of our physical surroundings....
- Prayer Speewh Nov. 30, 1944.

Idealistically , it may be said that true service of others is itself worship .
- Harijan : Oct. 13, 1946

3.449-मानस-7.40.।

3.6.0. विनय: तुलना

3.6.1. पूजा वंदना विनय

- पूजा कर्म मूलभूत क्रिया है जिसकी वंदना और विनय अनुगत क्रियायें हैं । पूजा कर्म है तो वंदना उसका वचन है, विनय उसका मन है । इस प्रकार पूजा, वंदना और विनय से अध्यात्म का ध्येय पूरा होता है ।

पूजा-पाठ के प्रचलित शब्दयुग्म में पूजा आंगिक है तथा पाठ वाचिक ।

- पूजा की मूल अवधारणा भय-विस्मय के मूलमनोभावों में प्रकट होती है । भय-विस्मय के मूल मनोभावों की अनुगत मन:स्थिति को पूजा भाव कहा जा सकता है । अपनी विवशता , असहायावस्था , पराजय में सबल एवं सक्षम सत्ता के प्रति समर्पण अथवा उससे पलायन आदि पाषाणयुगीन सभ्यता की कहानी है । प्रकृति के अपराजेय तत्वों के प्रति भक्ति भावना , पूजाभाव एवं आराध्य के रूप में स्वीकृति विकास की सहज प्रक्रिया रही है । बिजली की चमक और कड़क को देवता का रूष्ट होना, क्रुद्ध होकर भयंकर रूप में प्रकट होना, समझकर पूजा, प्रार्थना करना अनुगत सहज वृत्ति बनी है । इस विकास क्रम को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं ।

भय, विस्मय-

- समर्पण
  - पूजा
    - वंदना
      - विनय

- दार्शनिक जेराल्ड हर्ड के अनुसार पूजा, गहन विस्मय और सुधबुध भुला देने वाले

अतिशय विस्मय का ऐसा समागम है जो आत्मा का उन्नयन और उद्धार करती है। पूजा का सार विस्मय है।- 3.449.1

संदर्भगत इस लेख में इस तथ्य को विभिन्न उदाहरणों के द्वारा पोषित तथा प्रस्तुत किया गया है। एनमारोलिंडबर्ग की " गिफ्ट फ्राम द सी " पुस्तक में दिये गये एक अनुभव की चर्चा की गई है -

वह किसी निर्जन सागर तट पर बनी कुटिया में छुट्टियाँ मना रही थी। उनके आसपास थे कुछ समुद्री पक्षी। इनके बीच उन्हें लगा, " जैसे मैं सृष्टि में घुल गई हूँ, खो गई हूँ जैसे कोई गिरजे में अनजाने भक्तों की वंदना गान की गूंज में खो जाता है।- 3.449.2

निष्कर्ष के रूप में कहा गया है कि पूजा के लिये हमें मानव की विलक्षण कृतियों, वास्तु शिल्प, चित्रांकन, काव्य और संगीत आदि से अधिक प्रेरणा और कोई वस्तु नहीं देती। प्राय: इनमें हमें एक महत्तर शक्ति की अनुभूति होती है - 3.449.3

गोस्वामी जी ने काव्य की इसी विशेषता को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है -

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई - 3.449.4

3.449.1 Worship ..mixture of profound awe and overwhelming, self-forgetful delight which is the true catharsis and deliverance of the soul.
'This, Too, Is Worship' Reader's Digest : Oct.' 82 p42

3.449.2 ..She felt melted into the universe, lost in it, as one is lost in a canticle of praise swelling from an unknown crowd in a cathedral. Ibidem p. 43

3.449.3 ..Nothing calls us to worship more urgently than the awesome creative works of man - his architecture, paintings, poetry and music. Often we can sense in them another, greater presence. Ibidem p.43

Worship can never be confined to the walls of church or temple, for it is an attitude towards life, a response to the universe around us - Ibidem p. 42

3.449.4- मानस- 1.13.9

सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान ।

सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान ।।- 3.449.5

- पूजा धर्म का कर्मकाण्डीय पक्ष है जिसमें निश्चित विधिविधान की अपेक्षा होती है जिसके लिये, कर्मकाण्ड का जानकार व्यक्ति जिसे पुजारी कहते हैं, नियुक्त होता है। पुजारी धार्मिक कर्मकाण्ड के लिये उत्तरदायी व्यक्ति है । वह पूजा कर्म को भाव कुभाव अनख आलस किसी भी रूप में कर सकता है जैसे अन्य सांसारिक कर्म किये जाते हैं । वह भक्त भी हो सकता है किन्तु पुजारी होने से ही कोई भक्त नहीं हो सकता । पुजारी और भक्त में अन्तर है । पुजारी के लिये जैसे पूजा कर्मविहित है, भक्त के लिये ऐसा कोई कर्म विहित नहीं होता । वह प्रेमी है, वह पूजा करे, वंदना करे विनय करे या कुछ न करे, सुधबुध खोये हुये अपने आराध्य के ध्यान में रहे, सब कुछ अनुस्यूत है ।
- गोस्वामी जी ने जिस पूजा का उल्लेख किया है , वह कर्मकाण्डीय पूजा नहीं है , वह भावविभोर भक्त की प्रेमाभिव्यक्ति है , अनुरक्त प्रेमी की मानसी मनोराज्य की व्यक्त अनुहार है । अनुगृहीत प्रेमीजन की आभार आराधना है । उनकी पूजा वंदना और विनय से संबद्ध है , मात्र कर्मकाण्ड के स्थान पर प्रेम की अनुभावगत कुछ करने की कामना है जो किसी विधिविधान से निर्देशित अथवा नियंत्रित नहीं है ।
इसीलिये गोस्वामी जी की पूजा देवपूजा से आगे बढ़ कर व्यक्ति पूजा बन गई है । जिसका अभीष्ट श्रद्धा निवेदन तथा सम्मान-समादर है । कतिपय उदाहरण अवलोकनीय हैं -

- कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही ।- 3.449.6

- बहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा । जानि ईस सम भाउ न दूजा ।।-3.449.7

3.449.5- मानस - 1.14 क । 3.449.6-मानस-1.319 छं. 7,

3.449.7- मानस-1.320.1

- एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा । सादर सासु ससुर पद पूजा ।।- 3.449.8

- कवच अभेद बिप्र गुर पूजा । एहि सम बिजय उपाय न दूजा ।।=3.449.9

विधिविधान के अनुसार पूजा करने के प्रसंग एक-दो ही हैं जहाँ प्रकरणवश ऐसी पूजा की अपेक्षा हुई है ।

भगवान् राम इस प्रकार की पूजा लिङ्ग स्थापना के पश्चात् करते हैं ।

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा । सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।- 3.449.10

- पूजा के पश्चात् वन्दना और विनय का अवसर आता है । पूजा के अनुगामी कर्म वन्दना और विनय के साथ पूजा कर्म पूर्ण होता है । केवल पूजा का कदाचित् कोई विधान न हो, कोई अर्थ न हो ।

वंदना एवं विनय-

- करि पूजा मुनि सुजसु बखानी । बोले अति पुनीत मृदु बानी ।।-3.449.11

विनय- कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही ।।- 3.449.12

- पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग बरु मागा ।।- 3.449.13

- पूजा के इस विकसित रूप के संदर्भ में ही पूजा वंदना विनय का अनुगामी क्रम अनिवार्य नहीं रहा । वंदना एवं विनय पूजा के उल्लेख के बिना भी प्रस्तुत हुई । इस प्रकार की वंदना एवं विनय में में भी पूजा का भाव नितान्त समाप्त हो गया , यह नहीं कहा जा सकता । कहना यह चाहिये कि पूजा का भाव सूक्ष्म होकर वंदना एवं विनय करने के साथ कृत विनम्र व्यवहार में प्रस्तुत होने लगा जिसका पृथक् से उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं समझी गई । वंदना एवं विनय के लिये विनम्र व्यवहार अनिवार्य अपेक्षा

3.449.8- मानस- 2.60.5, 3.449.9- मानस-6.79.10,

3.449.10- मानस-6.1.6 , 3.449.11- मानस-1.44.6.

3.449.12- 1.319 छं.7 , 3.449.13- 1.227.6

134-----

ही नहीं रही प्रत्युत विनम्र व्यवहार वंदना एवं विनय का आवश्यक अंग माना गया है।

विनय- चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही - 3.449.14

- नाइ सीस करि बिनय बहूता - 3.449.15

- नाइ चरन सिरु कह मृदुबानी । बिनय सुनहु प्रभु सारंग पानी ।।- 3.449.16

बंदना - बार-बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ ।।- 3.449.17

- बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि ।।- 3.449.18

अन्यान्य स्थलों पर वंदना पूजा का पर्य्याय भी हो गया है तथा पूजा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

- बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि - 3.449.19

- बंदउँ प्रथम महीसुर चरना 3.449.20

- बंदउँ संत असज्जन चरना 3.449.21

इस प्रकार गोस्वामीजी ने पूजा शब्द को विकसित कर वंदना और विनय के भावगत स्वरूप के समकक्ष ला दिया है तथा पूजा, वंदना, विनय तीनों शब्दों को भक्तिभाव को प्रकट करने के लिये समान रूप से प्रयुक्त किया है । इन शब्दों के अर्थ विकास के साथ भावाभिव्यक्ति को अन्य अधिक स्त्रोत एवं साधन मिले हैं तथा अभिव्यक्ति में विशेष लावण्य एवं माधुर्य संभव हुआ है ।

3.449.14- मानस-4.19.1 , 3.449.15- मानस- 5.23.7

3.449.16- मानस-6.115.2 3.449.17- मानस- 7.35

3.449.18- मानस- 1.109, 3.449.19- मानस-1.05 , 3.449.20-मानस 1.1.3

3.449.21- मानस- 1.4.3

135------

3.6.2 विनय, प्रीति और भय

समुद्र पार करने के लिये भगवान् राम सागर से विनय करते हैं किन्तु इस विनय का सागर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । इस प्रसंग में प्रीति के लिए विकल्परूप भय की अपेक्षा की गयी है तथा विनय प्रीति और भय के पारस्परिक संबंध का प्रश्न उठा है । संदर्भगत प्रसंग इस प्रकार है -

कह लंकेस सुनहु रघुनायक । कोटि सिंधु सोषक तव सायक ।।
जद्यपि तदपि नीति असि गाई । बिनय करिअ सागर सन जाई ।।- 3.450

× × × × × × × ×

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति ।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ।।- 351

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपन सन सुंदर नीती ।।
.... ऊसर बीज बएँ फल जथा ।।- 3.452

× × × × × × × × × × ×

काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच ।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच ।।- 3.453

× × × × × × × × × × × ×

- जिससे विनय की जाय, यदि वह जड़, सठ, नीच है तो वह विनय नहीं मानेगा और विकल्प में बल प्रयोग की आवश्यकता होगी । ऐसे व्यक्ति के लिये भय आवश्यक

3.450- मानस-5.49.7,8 3.451- मानस-5.57,
3.452- मानस- 5.57.2,4 3,453- मानस- 5.58

है । ऐसा व्यक्ति भयभीत होकर ही कुछ सुन और समझ सकता है ।

- इस उदाहरण से व्यावहारिक जीवन में विनय की सीमा का निर्धारण होता है तथा विनय की प्रभावशीलता की सीमा का स्पष्टीकरण होता है ।

- साथ ही इस उदाहरण से भय - प्रीति - विनय का पारस्परिक संबंध भी स्थापित होता है । भय से प्रीति होगी तथा प्रीति - संदर्भ में विनय प्रसंग अवतरित होगें ।

एक और उदाहरण सुग्रीव की भयजनित प्रीति का है जो विनय में व्यक्त एवं अभिव्यक्त होती है । सुग्रीव राज्य प्राप्त कर भोग विलास में लिप्त हो गये हैं । सीता की खोज का राम का कार्य भूल गये हैं । इस संदर्भ में राम को क्षोभ होता है और रोष आता है ।

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी । पावा राज कोस पुर नारी ।।

जेहि सायक मारा मैं बाली । तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली ।।-3.454

लक्ष्मणनेभगवान् को क्रोधवंत देखा तो धनुष वाण चढ़ा लिये । भगवान् राम लक्ष्मण को समझाते हुये कहते हैं -

तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव ।

भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव ।।- 3.455

यह भय दिखाना विकल्प से प्रीति जगाना है और प्रीति जागृत भी हुई ।

इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा । रामकाजु सुग्रीवँ बिसारा ।।

निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा । चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा ।।

सुनि सुग्रीवँ परम भय माना । बिषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना ।।

3.456

3,454- मानस-4.17.4,5 3.455-मानस- 4,18

3.456- मानस-4.18.1-3

भय बिनु प्रीति पर विचार करने से पूर्व प्रीति के स्वरूप पर विचार कर लेना आवश्यक होगा ।

प्रीति की प्रमुख अपेक्षा है आराध्य के प्रति अनन्यता । एकमात्र अपने आराध्य का बल विश्वास और भरोसा होना चाहिये । मन वचन कर्म से एक ही गति होनी चाहिये। यह निष्केवल या हेतु रहित अनुराग 3.457 से संभव होता है और यही प्रीति की अपेक्षा होती है ।

> चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई ।
>
> हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ।।- 3.458

- एकमात्र अपने आराध्य के ही बल, विश्वास भरोसे एवं गति की अपेक्षा भी अवलोकनीय है -

> जेहि गति मोरि न दूसरी आसा - 3.459
>
> बचन कर्म मन मोरि गति - 3.460
>
> उमा जोग जप दान तप नाना मख व्रत नेम ।
>
> राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल-प्रेम ।।- 3.461
>
> एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास - 3.462

3.457- A wonderful lover like that is not attracted to spiritual favours , delights , advantages or encouragements , for fear of being distracted in the slightest from the unrivalled love of the beloved . It is the beloved himself , not his favours , which the soul seeks...
- Love of God p. 504

3.458- विनय- 103 , 3.459- मानस-7.85.7

3.460- मानस- 3.16 , 3.461- 6.117 ख ।

3.462- वैरा0 - 15

आराध्य के प्रति अनन्यता ही प्रीति का सच्चा स्वरूप है । प्रीति कैसी भी हो और कैसे भी हो, यदि उसमें अनन्यता नहीं है तो वह चाहे और कुछ भी हो प्रीति नहीं हो सकती या प्रीति नहीं रह सकती ।

इस अनन्यता को बनाये रखने के लिये भय की अपेक्षा होती है । जब तक यह भय न होगा कि कहीं अनन्यता बाधित न हो जाय तब तक अनन्यता बनी नहीं रह सकती ।

इस प्रकार आराधनागत भय का स्वरूप भय के उस रूप से भिन्न है जिसके परिप्रेक्ष्य में भयभीत विरत होता है, भागता है , दूर होना चाहता है तथा प्रीति के स्थान में घृणा करता है । दूसरे शब्दों में कहें तो कहना चाहिये कि प्रीतिमूलक भय वस्तुतः आशंका भय है , संभ्रम है ।-----.........

एक का बल-विश्वास, आशा-भरोसा होने पर एक से तो भय बना रहता है किन्तु अन्यथा व्यक्ति अभय हो जाता है । यह एक प्रभु का भय तो वस्तुतः हमारी मूल मानव प्रवृत्ति है - 3.463

तुलसीदास रघुबीर -बाँह बल,
सदा अभय काहू न डरे ।

अनन्यता के लिये विभिन्न स्थितियाँ हो सकती हैं जिनसे आशंका भय हो तथा उनसे विरत रहने के लिये प्रयत्नशील हो ।

3.463 - So deeply is it impressed on human nature , the instinct to fear God .

– Love of God ; p 509

1- स्वयं अपना डर होता है- 3.464 कि मुझ जैसे पापी को कैसे अपनावेगें, कहीं शरण में लेने से मुँह न फेर लेवें । मेरी पापपीनता से कहीं आराध्य स्वयं न डरने लगें

तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो

सुनहु राम ! बिनु रावरे लोकहु परलोकहु कोउ न कहूँ

हितु मेरो ।।- 3.465

× * × × × × × × ×

मंदजन- मौलि मनि सकल साधन-हीन,

कुटिल मन , मलिन जिय जानि

जो डर हुगे । - 3.466

जग हँसिहै मेरे संग्रहे

कत इहि डर डरिये - 3.467

× × × × × × × × ×

जैसो हौं तैसो राम रावरो जन, जनि परिहरिये ।- 3.468

2- हम आराध्य को प्रसन्न करने के लिये क्या प्रयत्न करें । जैसी हमारी कामना है वैसा प्रसन्न कर पावेगें के नहीं । अपने पापों को देखते हुये कैसे आराध्य के सम्मुख उपस्थित होगें । चरन-रति कैसे हो जिससे बिपत्ति दूर हो । आदि आदि आशंकायें व भीति बनी रहती है और भगवद् प्रीति बढ़ती जाती है।- 3.469

3.464- बिनय करौं अपभयहु तें ‖ वि. 270 ‖

3.465- विनय-272 , 3.466- विनय-211, 3.467-विनय-271, 3.468-विनय271।

3.469- It is confident of never displeasing him , but afraid of not pleasing him to the extent love demands. p 504 Charity too, fpr all its courage , has its work cut out to survive on account of its dwelling -place , the human heart , chengeable and a pray to rebellious passions. So it harnesses fear in the struggle , and uses it to rout the enemy - Love of God . p. 506

नाहिं न चरन-रति ताहि तें सहौं बिपति - 3.470

× × × × × × × ×

नाथ सों कौन बिनती कहि सुनावौं ।

त्रिबिध बिधि अमित अवलोकि अघ आपने

सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं ।। - 3.471

× × × × × × × × × ×

कहौं कौन मुँह लाइ कै रघुबीर गुसाईं ।

सकुचत समुझत आपनी सब साइँ दुहाई ।।- 3.472

× × × × × × × × × × ×

कौन जतन बिनती करिये ।

निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ।।- 3.473

ज्यो ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु । त्यो त्यों दूरि परयो हौं ।

3.474 ‖ ‖

3- भयभीति तो राम प्रीति की मूल प्रेरणा ही है । आदि मानव प्रकृति प्रकोपों से जितना भयभीत रहता था तथा पंचतत्वों की एतदर्थ पूजा प्रार्थना करता था , उससे कही अधिक आधुनिक मानव भयभीत है जिसको अतिवृष्टि , अनावृष्टि , भूकम्प, उल्कापात आदि से भयंकर अणु और परमाणु विस्फोटों और सृष्टि विनाश की घोर भीति है । इनसे प्राण बचाने के लिये धर्म भीरुता

3.470- विनय- 197 , 3.471- विनय- 208

3.472- विनय- 148, 3.473- विनय- 186

3.474 ‖ ‖ - विनय- 266

तथा प्रभृति होना स्वाभाविक ही है । - 3.474 ।।

हृदय दहत पछिताय अनल अब ,

सुनत दुसह भव-भीति । - 3.475

× × × × × × × × ×

कहु केहि कहिय कृपानिधे ! भव-जनित बिपति अति ।

इंद्रिय सकल बिकल सदा , निज निज सुभाउ रति ।। - 3.476

× × × × × × × × × ×

एक तौ कराल कलिकाल सूल-मूल, तामें

कोढ़ में की खाजुसी सनीचरी है मीन की ।।- 3.477

× × × × × × × × × × ×

निज अघजाल , कलिकाल की करालता

बिलोकि होत ब्याकुल , करत सोई सोचुहौं ।।- 3.478

3.474 । b । Lighting , thunder, thunderbolts , storms, floods, earth quakes and similar sudden catastrphes prompt even the most impious to fear God. -p 508
Let the whole earth held the Lord in dread , let all the inhabitants of the world stand in awe of Him .Learn your lesson : tremble ,and serve the Lord , rejoicing in His presence , but with awe in your heart....
- Love of God p. 509
I want you to be superstitious enough with me to believe that the earthquake is a Divine chastisement for the great sin we have committed...
- M.K. Gandhi : Food for the soul 1970 p 42

3.475-विनय- 234, 3.476- विनय-110, 3.477-कवि0-177

3.478- कवि0 - 121

4- भवभीति के परिप्रेक्ष्य में सुख स्वप्नों की कल्पना और कामना ने स्वर्ग को जन्म दिया । स्वर्ग के सुख कल्पनातीत हैं । स्वर्ग की कामना जीवन का लक्ष्य बन जाती है । स्वर्ग खो देने की कल्पना जितनी आशंका एवं भयप्रद है , उससे अधिक नरक की यातनायें । स्वर्ग नरक की कल्पना सभी धर्मों में की गई है तथा मानव मात्र की धर्मभीरुता के मूल में जितनी प्रत्यक्ष भवभीति है उससे कहीं अधिक परोक्ष की भयाक्रान्तता ।

नरतन सम नहिं कवनिउ देही ....

नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी । ग्यान बिराग भगति सुभदेनी ।।-3.479

× × × × × × × × × × ×

कल्प कल्प भरि एक एक नरका । परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका ।।-3.480

कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ।।-3.481

भवभीति और स्वर्ग नरक की प्रीति भीति [3.482] से ईश्वर का भय जाग्रत होना चाहिये तथा मनुष्य को पापकर्मों से विरत रहना चाहिये । प्रभु भय का यह फल होना चाहिये । यदि ऐसा नहीं है , प्रभु प्रीति का भी दावा है और प्रभु भीति की भी दलील है किन्तु आचरण वैसे ही कलुष और पापयुत बने हुये हैं तो इस प्रीति-भीति का कोई अर्थ नहीं है। [3.483] धर्म भीरुता की बहुत बड़ी भूमिका का निर्वाह

3.479- मानस-7.120.9,10 , 3.480- मानस-7.99.4, 3.481-मानस-7.129 छं.

3.482- .. fear of being damned , of losing heaven , is so frightful , so agonizing.... p 505 Love of God

3.483 - ..fear that does not deter us from sinning , that fails to forestall our tendency to do so , is most assuredly bad... p510 Love of God

नागरिकता के उच्च आदर्शों की प्राप्ति में होता है , तभी धर्म की मानव समाज के लिये उपादेयता एवं अभीप्सा है किन्तु आज ऐसा नहीं हो रहा और कदाचार एवं अनाचार का बोल बोला हो रहा है ।

हमारी आचार परंपरा में जहाँ अनेक विषयों का विधान है , वहीं भय को भी स्थान दिया गया है । भय मानव को कायर बनाने के लिये नहीं अपितु नाना प्रकार की दुश्चिन्ताओं से विनिर्मुक्त करने के लिए है । उचित- अनुचित , कर्त्तव्या- कर्तव्य के विचार के मूल में भय ही व्याप्त है । भय हमें अनेक पापों से बचाता है और निष्पाप जीवन ही पूर्ण विकास को प्राप्त होता है । आज के जीवन में समाज के भय का अभाव है । न लोक का भय है न परलोक का । इसीलिए चारों ओर इतना अनाचार व्याप्त है ।- 3.484

लाभ कहा मानुष-तनु पाये ।
काय-बचन-मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये ।।
जो सुख सुरपुर -नरक, गेह-बन आवत बिनहिं बुलाये ।।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन , समुझत नहिं समुझाये ।।
पर दारा, पर द्रोह , मोह बस किये मूढ़ मन भाये ।
गरभबास दुखरासि जातना तीव्र बिपति बिसराये ।।- 3.485

× × × × × × × × × × ×

रामायन अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति ।
तुलसी सठ की को सुनैव कलि कुचालि पर प्रीति ।।- 3.486

3.484- आत्मनिरीक्षण : डा० प्रेमनारायण शुक्ल : साहित्यपर्यवेक्षक 2,73

3.485- विनय-201 , 3.486- दोहा0- 545

5- प्रीति - प्रतिष्ठा में कहीं कोई अपराध न हो जाय, इस आशंका के साथ संभ्रम की शालीनता एवं शिष्टतागत अपेक्षा होती है । समादृत एवं सम्मानित गुरूजन अथवा महाजन की सेवा में उपस्थिति किंचित् घबड़ाहट, सिटपिटाहट , संकोच , एवं दीनता के साथ होनी चाहिये । यह भय की सांस्कृतिक एवं आचारिक स्थिति है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस स्थिति का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है तथा कामना की है कि ऐसा शिष्टाचार समाज में होना चाहिये । भू पर स्वर्ग की कल्पना तथा आदर्श रामराज्य की स्थापना मानस की इस एक आचारिक व्यवस्था से ही संभव है , यदि कहीं यह सौभाग्य सुलभ हो जाय ।

भगवान् राम लक्ष्मण को लेकर धनुष मखशाला देखने गये हैं । किंचित् विलंब हो गया है । इस कारण दोनों भाईयों के मन में भय व त्रास है । वह बड़े सोच-संकोच के साथ गुरू के समीप पहुंचते हैं :-

चितवत चकित धनुष मखशाला ।।

कौतुक देखि चले गुरू पाहीं । जानि बिलंबु त्रास मन माहीं ।।- 3.487

सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ ।

गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ ।।- 3.488

इस प्रकरण से पूर्व नगर देखने की लक्ष्मण की लालसा को गुरू के समक्ष संकोच व भय सहित प्रस्तुत करते हैं । यह प्रसंग भी प्रस्तुत विवेचन में आचार का अनुपम आदर्श है ।

परम बिनीत सकुचि मुसुकाई । बोले गुर अनुसासन पाई ।।

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं । प्रभु सकोच डर प्रकट न कहहीं ।।- 3.489

3.487- मानस- 1.224.5,6

3.488- मानस-1.225

3.489- मानस-1.217.4,5

उधर सीता जी भी विलंब के लिए मा के भय से विकल हो जाती हैं, सखियाँ भी भयभीत होती हैं। एक ओर प्रेम प्रसंग का विपुल आकर्षण है तथा दूसरी ओर मा की भीति है, समाज की भीति है।

परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता ।।
पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली ।।
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ बिलंबु मातु भय मानी ।।-3.490

इस प्रकार आराधना के लिये भय की अपेक्षा अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रतिपादित हुई है। ईसाई संत फ्रांसिस डे सेल्स [St Francis De Sales] ने इस विषय पर विस्तार से विचार किया है तथा भय की अपेक्षा का निम्नलिखित रूप में प्रतिपादन किया है -

1- ऐसा मानना असंगत न होगा कि जैसे सुई से कसीदा काढ़ते हुये बीच में व्यवधान उपस्थित होने पर सुई कपड़े में लगा कर छोड़ देते हैं, उसी प्रकार आराधना रूपी कसीदाकारी में भगवान् की भय रूपी सुई को लगाये रखना आवश्यक है।

मानव में गुणों के सृजन के लिये प्रभुस्मरण, विनय आदि जैसे अङ्ग एवं प्रयत्न आवश्यक हैं, उसी प्रकार दुर्गुणों और विसंगतियों से भयभीत एवं आशंकित होकर डरने की भी आवश्यकता होती है। मानव की आचारिक उच्चता की दृढ़ता

3.490- मानस-1.233.5,6,7

आशंकापूर्ण होती है, इसलिये सावधान रहने के लिये भय अपेक्षित होता है 3.491
जब प्रेम से उल्लसित हों तब भी स्थिरता के लिये सावधानी अपेक्षित है ।

2- जिस प्रकार एक फल का छिलका उसके मूलभूत तत्व के लिये अनावश्यक है । हम किसी को फल देते हैं तो हमारा अभिप्राय यही होता है कि हम फल का गूदा व रस दे रहे हैं और इसी को दूसरा व्यक्ति ग्रहण करता है किन्तु फिर भी फल की सुरक्षा के लिये छिलके और गूदे का साथ बना रहना आवश्यक है । इसी प्रकार आध्यात्मिक फल की सुरक्षा के लिये भय रूपी छिलके और गुठली का साथ बना रहना आवश्यक होता है । मानव मन चंचल तथा वासनाओं एवं दुर्गुणों के ग्रहण के लिये संवेदनशील होता है । अतएव भय की अपेक्षा है कि संवेदनशीलता सद्ग्रहण के लिये दृढ़ बनी रहे ।-

3.492 (a)

3.491 So God in His goodness, when He means to embroider a a variety of virtues on human soul (like a woman embroidering) and finally to enrich it with charity, uses the needle of servile or mercenary fear to open the heart.
p. 505

During this life, in which charity is never so perfect as to be safe and sure, fear is ever necessary. while Love causes us to thrill with joy, we must have fear to keep us anxiously on our guard.
Love of God p 506

3.492(a) After all an apple skin has little value in itself, but it is a great protection for the apple it covers. Servile fear in the same way, though of small account in comparison with charity, is extremely useful for preserving it during the dangers of this mortal life.
- Love of God p507

भय और प्रीति अथवा भय बिनु प्रीति पर उपर्युक्त प्रीति-अपेक्षा के विचार के साथ यह भी विचार किया जा सकता है कि भय और प्रीति है क्या ? वस्तुतः भय और प्रीति एक सिक्के के दो पहलू हैं ठीक उसी प्रकार जैसे घृणा और प्रेम हैं, हर्ष और विषाद हैं।[3.492 (6)] भय का रूपान्तरण ही प्रीति है। भय एवं घृणा का प्रीति या प्रेम में रूपान्तरण सहज होता है। उदासीन स्थिति तथा आकर्षण और विकर्षण की स्थिति दो ही स्थिति हैं। विकर्षण और आकर्षण अथवा आकर्षण और विकर्षण उसी प्रकार एक हैं जैसे संयोग और वियोग अथवा वियोग और संयोग। इसी रूप में भय और प्रीति एक हैं। जैसे संयोग के लिये, संयोग की सुप्रियता के लिये वियोग अपेक्षित समझा जाता है वैसे ही प्रीति के लिये भय की अपेक्षा होती है तथा इसी रूप में कहा गया है -

भय बिनु होइ न प्रीति

3.7.0 - विनय स्थिति तथा वन्दना रूप

वन्दना एक व्यापक शब्द है जिसके विभिन्न रूप हैं [3.493] जिनका विवेचन वन्दना खण्ड में कर चुके हैं।

यहाँ इन रूपों में विनय की स्थिति पर विचार करना अभीष्ट है। वन्दना के विभिन्न रूप इस प्रकार हैं -

---

3.492 (6) - जब कभी कोई खुशी आई मेरे दिल के करीब।
मैंने यह समझा कि गमखाने का मौसम आ गया ।।
नश्तर : दीवाने गज़लि

3.493- 7.48.1-4

148-----
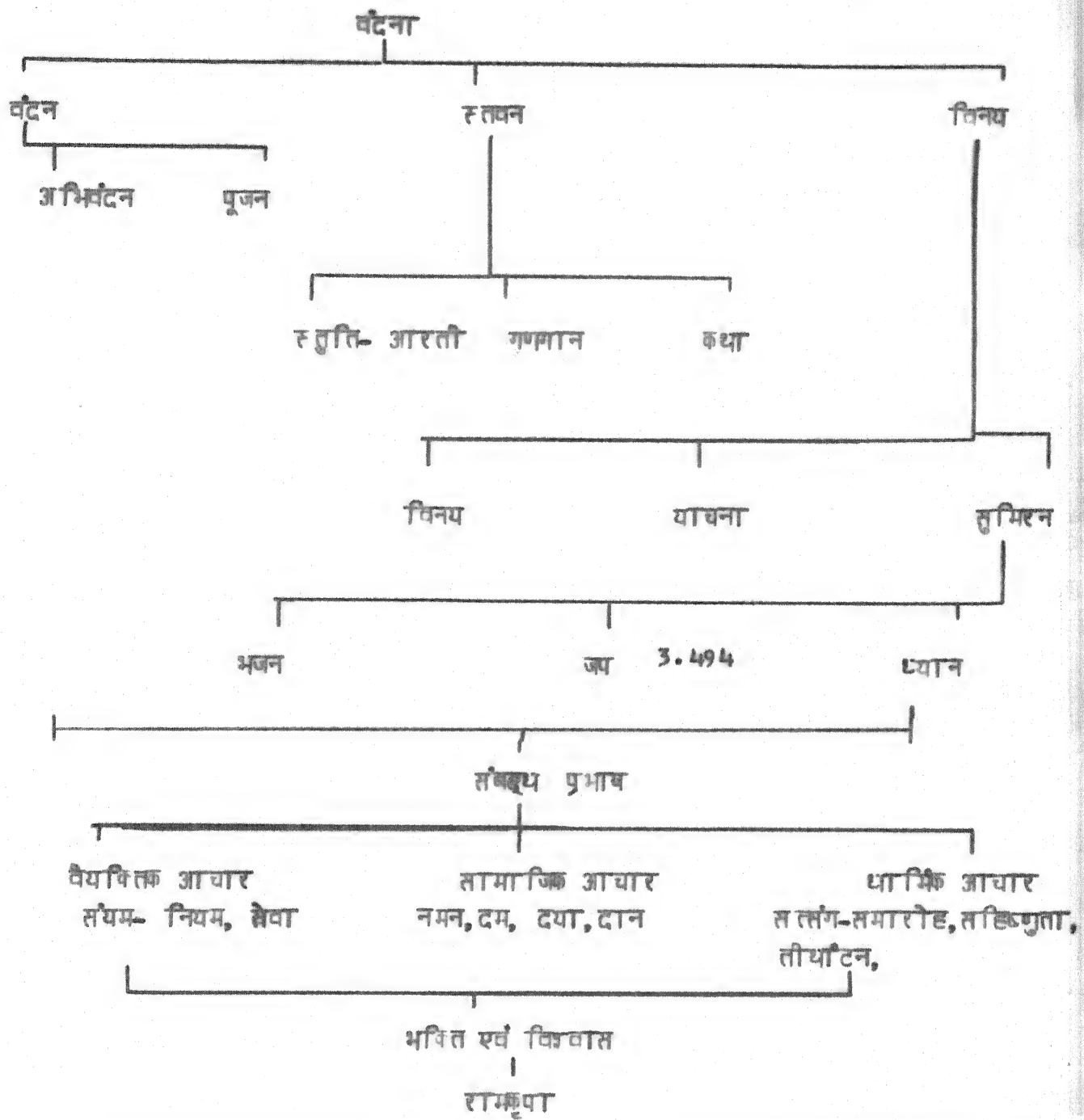
3.494- जप - यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि - गीता - 10.25

तप- शारीरिक , वाचिक , मानसिक - गीता - 17- 14,15,16

विनय निम्नलिखित रूपों में प्रस्तुत एवं अभिव्यक्त होती है -

- प्रकट
- प्रभासित
- प्रच्छन्न
- प्रलुप्त

प्रकट विनय -

स्तुति तथा गुणगान में, भजन पूजन तथा वाचिक जप में प्रकट विनय अभिव्यक्त होती है ।

स्तुति तथा गुणगान में वाचिक एवं प्रकट रूप में भगवान् के गुणों का गान किया जाता है । स्तोत्र एवं आरती भगवद् गुणगान के रूप हैं । कथा वार्ता में भगवान् के गुणगान के साथ भगवान् की महिमा का भी वर्णन एवं बखान रहता है ।

भजन पूजन में निर्धारित प्रक्रिया के अन्तर्गत भगवान् के गुणगान अथवा भगवान् को पुष्प गंध नैवेद्य आदि के समर्पण एवं पूजन में प्रकट एवं व्यक्त वाचिक अभिव्यक्ति रहती है । इस स्थिति में विनय का रूप सावधानी और सतर्कता का रहता है । प्रक्रियागत कोई त्रुटि न हो जाय यह सावधानी अपेक्षित होती है । निवेदन एवं याचना रहित होते हुये भी यह प्रक्रिया यों अपनेआप में विनय ही होती है । भगवान् से कल्याण कामना की अप्रत्यक्ष याचना बनी ही रहती है । वाचिक जाप के अन्तर्गत किसी मंत्र , बीज मंत्र या भगवान् के नाम का जाप आता है । भगवान् की भक्ति में भगवान् के नाम का ही जाप किया जाता है । मंत्र या बीज मंत्र के जाप तंत्र या योग के अंतर्गत आते हैं ।

प्रकट विनय में, स्तोत्र, आरती, भजन, कीर्तन तथा वाचिक जाप में शब्द रचना एवं शब्द चयन की प्रमुख भूमिका रहती है जिसका प्रभाव एकाकी अथवा सामूहिक रूप में उच्चरित एवं मुखरित वाणी में मधुर, प्रिय, आकर्षक तथा मनमानस को आनन्दित एवं उल्लसित करने वाला होता है। इनके साथ घंटा, घड़ियाल एवं स्तुति, आरती, भजन आदि इसी अभीष्ट हेतु राग-रागनियों में होते हैं तथा गानकला के द्वारा अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम हो जाते हैं। शंख ध्वनियाँ इस प्रभाव को और गुञ्जित एवं प्रतिध्वनित कर देती हैं। विनय के इस प्रकट रूप से वातावरण प्रभावित होता है तथा अनुक्रम में मानव मन-मानस प्रभावित होते हैं। विनय का अभीष्ट निर्मल मन, मुक्ति, रामधाम की प्राप्ति, विजय, विवेक, विभूति आदि की सिद्धि अप्रयास ही संभव होती है। इसी संदर्भ के हेतु अखण्ड पाठ एवं पारायण आदि आयोजित होते हैं।

ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन।

हरन दुख दुंद गोविंद आनन्दघन।।

× × × × × × × × × ×

करै सोइ तरै, परिहरै कामादि मल,

वदति इति अमलमति - दास तुलसी।। - 3.495

× × × × × × × × × ×

हरति सब आरती आरतीराम की।

दहन दुख दोष निर मूलिनी काम की।।

× × × × × × × × × × ×

3.495- विनय- 47

भक्त- हृदि -भवन , अज्ञान -तम- हारिनी ।

विमल विज्ञानमय तेज- बिस्तारिनी ।।

मोह-मद- कोह- कलि कंज - हिम जामिनी ।

मुक्ति की दूतिका , देह-दुति दामिनी ।। - 3.496

× × × × × × × × × × ×

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं ।

कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ।।- 3.497

× × × × × × × × × × ×

समर विजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान ।

विजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान ।।- 3.498

× × × × × × × × × × ×

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । ॥ ।-121-। ॥

प्रभासित विनय

जहाँ प्रकट रूप से कोई विनय, निवेदन या याचना नहीं की जाती प्रत्युत गुणकथन , स्तुति और स्मरण आदि प्रसंगों में प्रभासित रहती है । मन में बनी रहती है , अप्रकट रहती है । उन स्तोत्रों तथा उस स्मरण की शब्दावली एवं ध्यान प्रभासित विनय को प्रकट करते हैं जो अन्यथा विनय दृष्टि से प्रत्यक्षतः मौन दिखलाई देते हैं । भगवान् के जिन गुणों का स्तवन किया जायगा , जिस स्वरूप का स्मरण किया जायगा उन या उनसे संबंधित गुणों एवं स्वरूप की अभीप्सा ही अन्तर्निहित किन्तु इस प्रकार प्रतिभासित विनय होती है ।

3.496- विनय- 48 , 3.497- मानस-7.129 छं. , 3.498-मानस-6.121 क

यमुना स्तुति का एक उदाहरण अवलोकनीय है -

जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न ।

त्यों त्यों सुकृत-सुभट कलि भूपहिं, निदरि लगे बहु काढ़न ।।

ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जमगन मुख मलीन लहै आढ़न ।।

तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ मेघ लगे डाढ़न ।।- 3.499

इस स्तुति में प्रकट कोई निवेदन , याचना या विनय नहीं की गई है किन्तु यमुना जल के बढ़ने के साथ कलियुग की प्रतिष्ठा के गिरने, यमदूतों के मुख मलीन होने तथा पापों के नष्ट हो जाने का वर्णन है । इस वर्णन से प्रतिभासित विनय इस प्रकार प्रकट होती है -

हे यमुना जी ! आप कलियुग के तापों से मुझे मुक्ति दिलाइये , मुझे नरक यातना से बचाइये, मेरे पापों का नाश कीजिये । आप यह सब करने के लिये सक्षम एवं समर्थ हैं, मेरी विनय स्वीकार कीजिये ।

स्वरूप स्मरण के संदर्भ में भगवान् राम की एक छवि प्रस्तुत की जा रही है-

" हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई । गए जहाँ सीतल अवँराई ।।

भरत दीन्ह निज बसन डसाई । बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ।।

मारुतसुततब मारुत करई । पुलक बपुष लोचन जल भरई ।।- 3.500

इस सुंदर स्वरूप का दर्शन करते ही नारद मुनि मुग्ध होकर भगवान् की सुंदर कीर्ति का गान करने लगते हैं -

तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन

गावन लागे राम कल कीरति सदा नवीन ।।- 3.501

3.499- विनय-21 , 3.500- मानस- 7.49.5-8

3.501- मानस- 7.50

नारद जी भगवान् राम की स्तुति करते हैं , उनके बलवैभव का गुणगान करते हैं किन्तु कोई विनय नहीं करते । प्रस्थान करते समय इस स्वरूप को 'हृदय' में धारण करते हैं और स्मरण करते हुये विदा होते हैं ।

प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम ।

सोभा सिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम ।।- 3.502

शोभा सिंधु स्वरूप का ध्यान 'हृदय' में रख कर नारद विदा होते हैं । इस प्रसंग में प्रतिभासित प्रार्थना यही है कि यह सुंदर स्वरूप स्मरण करता हूँ, यह छबि नेत्रों में बसी रहे , किसी भी प्रकार बाधित न हो, विस्मृत न हो ।

स्मरण के अंतर्गत प्रतिभासित विनय क्रियाशील रहती है । विस्मृति की आशंकाजनित भीति स्मरण को गति और स्थिरता देती है ।

स्वरूप स्मरण का एक सुंदर प्रसंग विनय पत्रिका से भी उद्धृत है ।

मन इतनोई या तनुको परम फलु ।

सब अँग सुभग बिंदुमाधव -छबि, तजि सुभाव, अवलोकु एक पल ।।

× × × × × × × × × × × ×

तुलसिदास भवत्रास मिटै तब , जब मति येहि सरूप अटकै ।

नाहिंत दीन मलीन हीन सुख, कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै ।।- 3.503

इस प्रकरण में भी विनय प्रतिभासित है । इस सुंदर स्वरूप में मति के अटक जाने की कामना है । अटक जाना कह कर अनवरता, निरन्तरता तथा अनन्यता की कामना की गई है जो प्रतिभासित विनय है । परोक्ष रूप में इस साधन से भवत्रास मिट जाने का सुफल भी संकेतित है तथा भवत्रास से मुक्ति कामना भी प्रतिभासित विनय का

3.502- मानस- 7.51 3.503- विनय-63

अंग हो सकती है ।

तप [3.504] के अन्तर्गत अपेक्षित संयम एवं नियंत्रण में तो लक्ष्य प्राप्तिगत विनय प्रतिभासित रहती है तथा सावधानी एवं सतर्कता बरतते हुए प्रतिभासित विनय यथावसर प्रकट भी हो जाती है ।

मानस का तप भी प्रीति- प्रतीति एवं सुंदर स्वरूप के स्मरण ध्यान में अवधारित है । योग की तप- अपेक्षी कठोर साधना का प्रतिपादन नहीं है । यह अवश्य है कि शब्दावली वही है तथा कहीं-कहीं संदर्भ विशेष में वह भाव भी संकेतित है ।

भरत के लिये प्रयुक्त 'तप तनु कसहीं' शब्दावली का प्रेमानुरागी स्वरूप पूर्व संदर्भ से प्रकट होता है ।

" पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू । जीह नामु जप लोचन नीरू ।।

गीता में प्रतिपादित तीनों प्रकार के तपों में संयम नियम की ओर संकेत ही नहीं प्रत्युत स्पष्ट बल दिया गया है । गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति साधना का यह अनुपम प्रयोग है जिसमें योग, तंत्र, यमनियम सबका समाहार हो जाता है तथा प्रेमानुरागी भक्ति ही अभीष्ट रह जाती है ।

3.504- देव द्विज गुरू प्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।। गीता- 17.14

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।। गीता 17.15

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।

भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।। - गीता - 17.16

155------

भरत के इस तप में भी स्वरूप ध्यान तथा स्मरण प्रमुख साधन है तथा प्रभु कृपा बनी रहे , प्रभु सकुशल वापिस आकर शरण में लें, अपनी धरोहर सम्भालें , यह प्रतिभासित विनय अवलंब है ।

नाम स्मरण के प्रसंग में भी प्रतिभासित विनय क्रियाशील रहती है ।

सुमिरु सनेह सों तू नाम रामराय को ।
संबल निसंबल को , सखा असहाय को ।।
भाग है अभागेहू को , गुन गुनहीन को ।
गाहक गरीब को , दयालु दानि दीन को ।।

सेतु भवसागर को, हेतु सुखसार को ।
पतितपावन राम-नाम सो न दूसरो ।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ।। - 3.505

इस नाम स्मरण में निसंबल ,असहाय, अभागा, गुनहीन, गरीब, दीन आदि शब्दों से आराधक का तादात्म्य हो जाता है तथा उसकी विनय प्रतिभासित हो उठती है - मेरे लिये नाम संबल, सखा, भाग , गुण , ग्राहक , दयाल बने और नाम स्मरण से मेरा भी कल्याण हो ।

प्रच्छन्न एवं प्रलुप्त विनय ध्यान के अंतर्गत अभिव्यक्त होती है । ध्यान की क्रमिक उत्तरोत्तर तल्लीनता में प्रच्छन्न से प्रलुप्त विनय का क्षेत्र आता जाता है । प्रच्छन्न विनय में आराध्य स्वयं ही मनोकामना जान लेता है । जब आराधक की कोई कामना शेष नहीं रहती , केवल प्रेम के लिये प्रभु प्रेम होता है, प्रलुप्त विनय का क्षेत्र अवधारित होता है । प्रलुप्त विनय आराधक के निःकैवल प्रेम का अंग बन जाती है ।

3.505- विनय- 69

अनवरत ध्यानरस जब तक अनुभवगम्य रहता है, गोस्वामी जी इसी सीमा तक भक्तियोग का क्षेत्र मानते हैं, तब ध्यानरस के साथ प्रलुप्त विनय भी अङ्ग बनी रहती है तथा एक झीनी-सी कामना रूप में विनय प्रतिष्ठित ~~बनी~~ रहती है कि ध्यान बाधित न हो, अनवरत चलता रहे ।

सीताजी की प्रच्छन्न विनय का प्रसंग इससे पूर्व उल्लखित हो चुका है ।

मोर मनोरथु जानहु नीकें ।
बसहु सदा उरपुर सबही के ।।- 3.506

मनुसतरूपा प्रसंग में भी इसी प्रकार की स्थिति प्रस्तुत हुई है तथा प्रच्छन्न विनय के द्वारा अपना अभीष्ट निवेदित किया गया है । आंतरिक ध्यान से विचार विमर्श हो रहा है ।

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी ।
पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ।।- 3.507

प्रच्छन्न विनय ऐसे प्रसंगों में भी फलदा होती है जहाँ विनय अभीष्ट की स्पष्टता अवधारित नहीं होती जैसा सुख जैसी गति ऐसे आराधकों को प्राप्त होती है यह ध्यान ही होता है तथा तदनुकूल वैसे सुख व वैसी गति की याचना की जाती है । आराधक को स्पष्ट नहीं है कि कैसा सुख एवं कैसी गति होती है यह ध्यान अवश्य है कि बड़ा सुख और बड़ी अच्छी गति होती है ।

3.506- मानस- 1.235.3

3.507- मानस-1.148.7

मनुशतरूपा का ही प्रसंग है ।

> जे निज भगत नाथ तव अहहीं । जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ।।
> सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु ।
> सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु ।।- 3.508

सोइ सुख , सोइ गति आदि कहते हुये अपने मन में , अपने ध्यान में एक अपनी धारणा भी होती है जो आदर्श रूप में मन में प्रतिबिम्बित होती है । इस तथ्य से परिचित होने के कारण भगवान् ध्यानावधारित प्रच्छन्न वरदान देते हैं , " सोइ सोई" नहीं कहते प्रत्युत मानसगत ध्यान धारणा निर्मित आदर्श रुचि को ही स्वीकार करते हैं ।

> जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं ।
> मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं ।।- 3.509

प्रलुप्त विनय का क्षेत्र ध्यान की विकसित एवं उच्च स्थिति है । जिस स्थिति में ध्यानकर्ता और आराध्य ही अपनी अस्मिता अनुभव करते हैं । कोई कामना, वासना या इच्छा शेष या दोनों के बीच नहीं होती , उस स्थिति में प्रलुप्त विनय ध्यानकर्ता की आनन्दावस्था के साथ एकमेल होकर अङ्गागी अवस्थिति में बनी रहती है । जब ध्यान टूटता है तो प्रलुप्त विनय आभासित होने लगती है , विकलता हो उठती है , क्यों ध्यान टूट गया, कैसे प्रिय मिलन बाधित हो गया । इस ध्यानरस का आधार भगवान् का सुंदर, मनमोहक एवं आकर्षक रूप होता है और इसलिये सहज रूप से ही ध्यान लग जाता है । योग के ध्यान की भाँति प्रयास एवं प्रयत्न साध्य कठिन नहीं होता ।

3.508- मानस- 1.149.8 तथा 1.150

3.509- मानस- 1.150.2

भगवान् शिव श्री रघुनाथ जी के सुंदर रूप का ध्यान कर आनन्दमग्न हो जाते हैं तथा ध्यानलीन होकर कथा कहना भूल जाते हैं -

श्री रघुनाथ रूप उर आवा ।

परमानंद अमित सुख पावा ।।- 3.510

मगन ध्यानरस दण्ड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह ।

रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ।।- 3.511

× × × × × × × × × × × ×

मुनिसुतीक्ष्ण इस कामना से कि आज भगवान् के दर्शन होगें विह्वल हो जाते हैं । मुनि के हृदय में भगवान् का रूप प्रकट हो जाता है तथा वह ध्यानरस में मग्न हो जाते हैं, जगाने से भी नहीं जगते । पुनः जब हृदय में से भगवान् का रूप विलुप्त हो जाता है तो विकल होकर उठ बैठते हैं । इस प्रकरण में मुनि की प्रलुप्त कामना एवं विनय क्रियाशील रहती है कि प्रभु के स्वरूप का हृदय में दर्शन हो तथा तदनुकूल दर्शन होता है । केवल प्रभु दर्शन ही अभीष्ट है और कोई कामना एवं विनय नहीं है । इसलिये ध्यानरस का अपार सुख प्राप्त होता है । हृदय से स्वरूप की विरति होने पर प्रलुप्त विनय प्रकट हो जाती है, प्रभु दर्शन लालसा विकलता उत्पन्न कर देती है । भगवान् साक्षात् दर्शन देते हैं तथा मुनि की प्रलुप्त विनय, स्तुति में प्रकट होती है-

होइहैं सुफल आजु मम लोचन । देखि बदन पंकज भव मोचन ।।

निर्भर प्रेम मगन मुनिग्यानी । कहि न जाइ सो दसा भवानी ।।-

× × × × × × × × × × × ×

3.510- मानस-1.110-8

3.511- मानस- 1.111

अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा ।।

× × × × × × × × × × ×

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा । जाग न ध्यान जनित सुख पावा ।।

भूप रूप तब राम दुरावा । हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ।।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे । विकल हीन मनि फनिबर जैसें ।।

आगें देखि राम तन स्यामा । सीता अनुज सहित सुख धामा ।।–3.512

× × × × × × × × × × × ×

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी । अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी ।।–
3.513

× × × × × × × × × × × ×

इस प्रकार स्पष्ट है कि सभी विनय रूपों में वन्दना अङ्गी भाव से अवस्थित रहती है तथा विनय की भूमिका से वन्दना की प्राणवत्ता एवं प्रसाद स्थिति प्राप्त होती है ।

3.8.0 विनय के अन्तर्गत मन की भूमिका –

मन की व्यापक कार्यशीलता के संबंध में उपनिषद् में एक संदर्भ आया है–

3.512– मानस– 3.9–9, 10, 14, 17, 18, 19, 20,

3.513– मानस–3.10.1

170––––––

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् । संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं

मेधा दृष्टि धृतिर्मतिर्मनीषा जूति: स्मृति: संकल्प:

क्रतुरसु: कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य

नामधेयानि भवन्ति ।। - 3.514

इस प्रकार विचार उपस्थित करके उन्होनें सोचा कि जो यह हृदय अर्थात् अंत:करण है , यही पहिले बताया हुआ मन है , इस मन की जो यह सम्यक् प्रकार से जानने की शक्ति देखने में आती हैं - अर्थात् जो दूसरों पर आज्ञा द्वारा शासन करने की शक्ति, पदार्थों का अलग-अलग विवेचन करके जानने की शक्ति , देखे-सुने हुए पदार्थों को तत्काल समझने की शक्ति , बुद्धि अर्थात् निश्चय करने की शक्ति , मनन करने की शक्ति , स्मरण शक्ति , संकल्प शक्ति , मनोरथ शक्ति , प्राण शक्ति , कामना शक्ति, और स्त्री-सहवास आदि की अभिलाषा - इस प्रकार जो ये शक्तियाँ हैं , वे सब-की-सब उस स्वच्छ ज्ञानरूप परमात्मा के नाम हैं ।

मन की व्यापक क्रियाशीलता के संदर्भ में मन की संपूर्ण क्रियायें आ जाती हैं । तथा विनय का संपूर्ण क्षेत्र समाहित हो जाता है । विनय ही क्यों मानव की कोई भी क्रिया विना मन के योग के संभव ही नहीं हो सकती । गोस्वामी तुलसीदास जी इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से भलीभाँति परिचित थे । उन्होने लिखा है -

- पथ श्रम-लेसु-कलेसु न काहू ।।

मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही ।

बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही ।। - 3.515

3.514- एत० - 3 : 1 : 2

3.515- मानस-2.274,3,4

- सरल कबित कीरति बिमल ....

- सो न होइ बिनु बिमल मति 3.516

विनय की सम्पूर्ण अपेक्षाओं में मन की भूमिका आवश्यक रहती है । मन के योग से ही विनय संभव हो पाती है । संबद्ध संदर्भों में गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसका 3.517 ॥ ७ ॥ उल्लेख किया है । मन ईश्वर प्रणिधान की साधना के लिये सिद्ध हो, इसके लिये उसको निर्मल, विमल शुचि करना होता है जिसको योग-भाषा में मन निग्रह कहा जाता है ।

गीता में इस जिज्ञासा का समाधान किया गया है ।

भगवान् कृष्ण मन के निग्रह के लिये उपाय बताते हैं -

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।।- 3.517 ॥ ६ ॥

अभ्यास तथा वैराग्य से मन का निग्रह हो सकता है । यह अभ्यास कैसा हो, इसकी भी व्याख्या भगवान् करते हैं - 3.518

3.516- मानस- 1.14 क,ख, 3.517 ॥ 6 ॥ गीता - 6.35

3.517 ॥ ७ ॥ करहिं निछावर आरती महामुदित मन सासु । - मानस-1.335

3.518- गोस्वामी जी गीता के मत के साथ वरीयता भक्ति को देते हैं और उसको प्रथम पद पर अवस्थित कर प्रमुख अभीष्ट मानते हैं । गोस्वामीजीमन निग्रह के लिये वैराग्य व ज्ञान, योग, यज्ञ के योग के साधनों की चर्चा करते हैं और इनके साथ भक्ति, सत्संग, अनुराग, प्रभु कृपा का अतिरिक्त उल्लेख करते हैं जो उनके अभीष्ट हैं

भगति बिरति न ग्यान मन माहीं ।।- मानस- 3.9.6

नहिं सतसंग जोग जप जागा । नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा ।।- मानस-3.9.7

एक बानि करुनानिधान की । सो प्रिय जाकें गति न आनकी ।।- मानस-3.9.8

- अन्यत्र गोस्वामी जी किंचित् प्रतिवाद करते हुये कहते हैं कि प्रभु-मिलन, योग की प्रक्रिया से संभव नहीं हैं । केवल प्रेम अनुराग ही एक उपाय है -

- मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा । किएँ जोग तप ग्यान बिरागा ।मानस 7.61.1

- रामहि केवल पेमु पिआरा ....॥ मानस - 2.136.1 ॥

172-----

अभ्यासयोग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।

परमं पुरूषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ।।- गीता-8:8

सतत एक विषय का चिन्तन अभ्यास, अन्य विषयों से विमुखता तथा अभीष्ट विषय का अनुचिन्तन अभ्यास की प्रक्रिया है जिससे मन का निग्रह हो जाता है ।

यह प्रक्रिया योग प्रक्रिया है । गोस्वामी जी इस प्रक्रिया के स्थान पर विनय भक्ति का साधन अपनाने का आग्रह करते हैं । यह विनय भक्ति , ईश्वर प्रणिधान की योग की वैकल्पिक प्रक्रिया है । विनय भक्ति के द्वारा मन स्वतः आराध्य के प्रति ऐसा आकृष्ट हो जाता है कि न तो अन्य विषय की ओर उन्मुख होता है और न मूल विषय से विरत होता है । अभ्यास योग की प्रक्रिया में जो अनुचिन्तन की आशंसा की गई है उसका आशय यही है कि अपनी चंचलता के कारण मन एक विषय पर एकाग्र होता ही नहीं, अन्य विषयों का चिन्तन बीच-बीच में आता रहता है जिसके परिहार के लिये मूल विषय का अनुचिन्तन अपेक्षित होता है ।

गोस्वामी जी की मन के निग्रह की विनय भक्ति की साधना अवलोकनीय है-
विनय- आराधना से -

जनकसुता जगजननि जानकी
अतिसय प्रिय करूना निधान की ।।
ताके जुगपद कमल मनावउँ
जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ ।।- 3.519

विनय स्मरण से -

श्री गुर पद नख मनिगन जोती । सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती ।।- 3.520

सेवक सुमिरत नामु सप्रीती । बिनु श्रम प्रबल मोह दलजीती ।-
फिरत सनेहँ मगन सुख अपने । नाम प्रसाद सोच नहिं सपने ।।- 3.521

3.519- मानस-1.17 : 8.9 , 3.520- मानस- 1.0.5
3.521- मानस- 1.24.7,8

173-----

कथा श्रवण से -

रामचरित मानस एहि नामा । सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा ।।
मन करि बिषय अनल बन जरई । होइ सुखी जौं एहिं सर परई ।।- 3.522

प्रभु प्रसाद से -

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी - 3.523

प्रभु कृपा से -

राम कृपा तें पारबति सपनेहुँ तव मन माहिं ।
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं ।।- 3.524

- एक बानि करुनानिधान की । सो प्रिय जाके गति न आनकी ।।- 3.525

प्रभु चरित से -

बिमल बंस यहु अनुचित एकू । बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ।।
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई । हरउ भगत मन कै कुटिलाई ।।- 3.526

- एक सूल मोहि बिसर न काऊ । गुर कर कोमल सील सुभाऊ ।।

× × × × × × × × × × × ×

मन ते सकल बासना भागी । केवल रामचरन लय लागी ।।-3.527

धाम के प्रभाव से -

पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें । राम भगति उपजिहि उर तोरें ।।-3.528

× × × × × × × × × × × × ×

- अब जाना मैं अवध प्रभावा ।- 3.529
कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई । राम परायन सो परिहोई ।।

3.522-मानस- 1.34.7,8 , 3.523- मानस-1.35.1, 3.524-मानस-1.112 ,
3.525- मानस-2.9.8,~~4~~ , 3.526- मानस 2.9.7,8, 3.527- मानस-7.109.2,6
3.528- मानस-7.108.10, 3.529- मानस-7.96.5,6

174----

देखि परम पावन तव आश्रम । गयउ मोह संसय नाना भ्रम ।।- 3.530

नाम जाप से -

जपहु जाइ संकर सत नामा । होइ हि हृदयं तुरत बिश्रामा ।। -3.531 § §

- मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।-3.531 § §

- जान आदि कबि नाम प्रतापू । भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ।।-
3.531 § §

कथा श्रवण व गान से -

रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग ।।

राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग ।।- 3.531 § §

सत्संग से -

तबहिं होइ सब संसय भंगा । जब बहु काल करिअ सत्संगा ।।- 3.532

गोस्वामी जी मन साधन की, विनय-भक्ति की अपनी प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए एक-एक चरण की व्याख्या करते हैं -

अभीष्ट है - प्रभु चरणों में अनुराग

- निर्मल मन से यह संभव होता है -

निरमल मन जन सो मोहि पावा ।

मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।।- 3.533

निर्मल मन की प्रमुख बाधा है मोह जिससे विमुक्त हुये बिना रामचरण अनुराग नहीं हो सकता -

मोह का नाश होता है हरिकथा से ,

हरिकथा संभव होती है सत्संग से

3.530- मानस-7.63.2, 3.531- § § - मानस-1.137.5
3.531 § §- मानस-3.35.1, 3.531 § § - मानस-1.18.5,
3.531 § §- मानस- 3.46 , 3.532- मानस-7.60.4

3.533- मानस- 5:43:5

175---

बिनु सत्संग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग ।

मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ।।- 3.534

इस प्रकार गोस्वामी जी मन निर्मल करने के लिये विनय भक्ति के साधनों का प्रतिपादन करते हैं तथा निर्मल/विमल मन से ईश्वर प्रणिधान की स्थिति को प्राप्त करने का सुयोग सुलभ सिद्ध करते हैं -

- निरमल मन जन सो मोहिं पावा ।- 3.535

- सहज बिमल मन लागि समाधी ।- 3.536

- मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं ।।- 3.537

मलिन मन से बोध नहीं हो सकता , इस तथ्य को गोस्वामी जी बल देकर प्रतिपादित करते हैं -

- तदपि मलिन मन बोधु न आवा - 3.538

- अग्य अकोबिद अंध अभागी । काई बिषय मुकुर मन लागी ।

.... रामरूप देखहिं किमि दीना।।-3.539

विनय के स्वाधिक कार्य प्रत्यक्षतः मौखिक करने के साथ गोस्वामी जी मन से भी कराते हैं और इस प्रकार आंतरिक मानसिक ध्यान की ओर संकेत करते प्रतीत होते हैं- 3.540

3.534- मानस-7:61 , 3.535- मानस-5.43.5 , 3.536-मानस-1.124.4,

3.537- मानस-1.50 छं0 , 3.538- मानस-1.108.4, 3.539-मानस-1.114.1,4

3.540- मानस के पात्र आंतरिक मानसिक सम्पर्क रखते हैं तथा यह ध्यान योग आराध्य के सतत ध्यान व स्मरण से संभव हुआ है जिसका आधार अनन्य अनुराग है ।

- पिय हिय की सिय जाननहारी

मन मुदरी मन मुदित उतारी । मानस :2:101:3 ।

- राम अनुज मन की गति जानी । मानस : 1:217:3 ।

बंदना करना-	मन महुँ चरन बंदि सुख माना । - 3.541
नमन-प्रनमन -	गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा - 3.542
	सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा - 3.543
आशीर्वाद देना-	सीखँ असीस दीन्हि मनमाहीं - 3.544
आसन देना-	सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दये - 3.545
स्मरण करना-	मन महुँ रामहि सुमिर सयानी - 3.546
	सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं - 3.547
वास करना-	जौ सरूप बस सिव मन माहीं - 3.548
	राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।। - 3.549
विनय करना -	बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं - 3.550
	मनहीं मन मनाव अकुलानी ।। - 3.551
	बिधिहिं मनाव राउ मनमाहीं ।। - 3.552
गुणगान-	तासु चरित मन महुँ सबु गावा - 3.553
	प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं ।। - 3.554

विनय । लालसा/अभिलाषा ।-

- यह लालसा एक मन माहीं -3.555
- अब अभिलाषु एकु मन मोरें - 3.556
- रामदरस लालसा उछाहू 3.557

3.541- मानस-3.27.16 , 3.542- मानस- 1.260.5

3.543- मानस-1.99.7 3.544- मानस-2.241.5

3.545- मानस-1.320 छं0, 3.546- मानस-1.58.4 , 3.547-मानस-2.216.3

3.548- मानस-1.145.4 3.549- मानस-2.128.5, 3.550-मानस-1.248.2

3.351- मानस-1.256.5, 3.552-मानस-2.43.6 , 3.553-मानस-6.8.2

3.554-मानस-2.321.2 3.555- मानस-2.3.4 , 3.556-मानस-2.2.7

3.557-मानस-2.274.3

177-----

भजन करना- भजसि न मन तेहिं रामको कालु जासु कोदंड ।।- 3.558 । ।

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं ।।-3.558। ।

जाप करना- सदा,

राम जपु, राम जपु, राम जपु,रामजपु, रामजपु, मूढ़ मन बार बारं।।
3.558 । ।

आरती करना- ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन - 3.558 । ।

मन के मनोवैज्ञानिक इस तथ्य से भी गोस्वामी जी भलीभाँति परिचित हैं कि मन का दमन नहीं हो सकता । शमन या उदात्तीकरण से ही मनवशवर्ती या अनुकूल हो पाता है । उपर्युक्त विवरण के अंतर्गत यह स्पष्ट हो चुका है कि सारा खेल मन का ही है और यदि अनुकूल नहीं है उसका निग्रह नहीं हो पाया है तो कोई साधना नहीं हो सकती ।

शमन या उदात्तीकरण के लिये मन से आत्मीयता स्थापित कर उसको समझाते हैं । जैसे एक हठी बालक को अनुकूल करने के लिये पर्याप्त प्रयास करना पड़ता है , भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से समझाना होता है,उसी प्रकार मन को समझाने-बुझाने के लिये अनेक प्रकार के प्रयास करने पड़ते हैं । गोस्वामी जी ने जो प्रयास किये हैं, उनका लेखा लीजिये ।

- प्रेम पूर्वक आग्रह और अनुरोध के द्वारा -

-राम नाम-नव-नेह मेहको मन । हठि होहि पपीहा ।-3.559

-मन मेरे, मानहिं सिख मेरी । जो निजु भगति चहै हरि केरी ।।-

3.558 । । - मानस-6.01 , 3.558 । ।- वि0- 45

3.558 । । - वि0- 46 , 3.558। ।- वि0-47

3.559- विनय-65

- उर आनहि प्रभु-कृत हित जेते । सेवहि ते जे अपनपौ चेते ।।- 3.560

- सब अँग सुभग बिंदु-माधव छबि, तजि सुभाव, अवलोकु एक पलु ।।- 3.561

- मन ! माधव को नेकु निहारहि ।- 3.562

भगवान् की रूपमाधुरी की ओर आकर्षित करके -! यदि मन भगवान् की रूपमाधुरी के प्रति किसी प्रकार एक बार भी आकर्षित होकर उनकी शरण में जाता है तो फिर उस परम सौन्दर्य से ऐसा मुग्ध हो जायगा कि फिर स्वयं ही संसार को भूल जायगा, प्रभु को स्मरण करेगा -

- मन इतनोई या तनु को परम फलु ।
सब अँगसुभग बिंदु माधव-छबि, तजि स्वभाव, अवलोकु एक पलु ।।- 3.563

- इहै परमफलु, परम बड़ाई ।
नख सिख रुचिर बिंदुमाधव छबि निरखहिं नयन अघाई ।। - 3.564

- मन की मनमोदक प्रवृत्ति के संदर्भ में -

मन बड़ी ऊँची उड़ाने उड़ा करता है और मान बड़ाई आदि के लिये लालायित हुआ उनसे सुलभ सुखस्वप्नों में खोया रहता है । गोस्वामी जी उसकी इस दुर्बलता से परिचित हैं तथा उसी के संदर्भ में सुंदर सुझाव देते हैं कि यह मनमोदक सत्य हो सकते हैं ।

- मनोरथ मनको एकै भाँति ।
चाहत मुनि-गन-अगम सुकृत-फल , मनसा अघ न अघाति ।।- 3.565

3.560- वि0-126 , 3.561- वि0- 63 , 3.562- वि0-85
3.563- वि0- 63 3.564- वि0- 62 3.565- वि0- 233

- मन को अवसर बीत जाने की आशंका से सावधान करना

मन को यह समझाना कि समय रहते कुछ करने के लिये तैयार हो जायँ वरना अवसर बीत जाने पर केवल पछतावा रह जायेगा ।

- मन पछितैहै अवसर बीते ।

दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम बचन अरु ही ते ।।- 3.566

- तौ तू पछितैहै मन मींजि हाथ ।

भयो है सुगम तो को अमर-अगम तन, समुझिधौं कत खोवत अकाथ ।।- 3.567

- मन की माया मोह की भागदौड़ की व्यर्थता प्रकट करते हुये उसको समझाना कि केवल प्रभु भक्ति ही एक मात्र सार वस्तु है, उसका अनुसरण करे ।

- काहे को फिरत मूढ़ मन धायो ।

तजि- हरि -चरन- सरोज सुधारस, रविकर जल लय लायो ।।

× × × × × × × × × × × × ×

- जौ मन भज्यो चहै हरि - सुरतरू ।

तौ तजि विषय-विकार, सार-भज, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करू ।।-3.569

- जौ निज मन परिहरै विकारा ।

तौ कत द्वैत - जनित संसृति -दुख, संसय, सोक अपारा ।।- 3.570

- अपनी निष्ठा, हित कामना तथा सत्य कथन का विश्वास दिलाकर मन को आश्वस्त करना तथा अपनी ओर से मन को स्वयं सुन समझ कर निर्णय करने के लिये कह कर अपनी सत्यता का बोध कराना ।

3.566- वि0- 198 3.567- वि0 84, 3.568- वि0-199

3.569- वि0- 205 3.570- वि0- 124

180-----

- तो सो हौं फिरि-फिरि हित, प्रिय पुनीत सत्य बचन कहत ।

सुनि मन, गुनि समुझि, क्यों न सुगम सुभग गहत ।।

छोटो, बड़ो, खोटो खरो जग जो जहँ रहत ।

अपनो अपने को भलो कहहु, को न चहत ।।- 3.571

- भलो भली भाँति है जो मेरे कहे लागिहै । मन राम-नाम सौं सुभाय अनुरागि है ।।
3.572

× × × × × × × × × × × ×

राम-नाम काम-तरू जोइ जोइ माँगिहै । तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगि है ।-
3.572

- मन की मूढ़ता और हठवादिता को देख कर किंचित् क्षुब्ध होकर डाँट डपट करते

हुये समझाना -

- सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो ।

हरि-पद-बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ ! यह समुझ सबेरो ।। - 3.573

- ऐसी मूढ़ता या मन की ।

परिहरि राम-भगति सुरसरिता, आस करत ओस कनकी ।

भगवान् से शिकायत करना कि मन अपनी हठ नहीं छोड़ता है । आपकी ओर उन्मुख नहीं होता है । मुझे मेरे मन ने बड़ा छकाया है । भगवान् सर्व समर्थ हैं । उनसे शिकायत करने से तो काम बनेगा ही। वह सबके प्रेरक हैं । वही मन को सन्मार्ग पर लावेंगें ।

- मेरो मन हरिजू ! हठ न तजै ।

निसिदिन नाथ देउँ सिख बहु बिधि, करत सुभाउ निजै ।।

× × × × × × × × × × × ×

3.571- वि0-133 3.572- वि0-70

3.573- वि0-87

हौं हार्यो करि जतन बिबिध बिधि अतिसै प्रबल अजै ।

तुलसिदास बस होइ तबहि जब प्रेरक प्रभु बरजै ।। - 3.575

- मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो ।

याके लिये सुनहु करूनामय, मैं जग जनमि- जनमि दुख रोयो ।।- 3.576

- यों मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यो ।

ज्यौं छल छाँड़ि सुभाव निरंतर रहत बिषय अनुराग्यो ।।- 3.577

- रघुबरहि कबहुँ मन लागि है,

कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागि है ।। - 3.578

मन के शमन एवं उदात्तीकरण में गोस्वामी तुलसीदास जी गीता की योग पद्धति से कहीं आगे हैं । गीता की योग पद्धति में केवल अभ्यास एवं वैराग्य की बात कही गई है । गोस्वामी जी अभ्यास और वैराग्य की अपेक्षा को प्रभु की रूपमाधुरी के आकर्षण में पूरा करते हैं । परम सौन्दर्य से मन ऐसा आकर्षित होगा कि उसकी, फिर किसी ओर भटकने की, गति ही मंद पड़ जायगी । इस आकर्षण में ही बंध जायगा । साथ ही मन को विविध भाँति समझाते भी हैं । उनकी सबसे वरीयतर बात प्रभु से शिकायत करना है । प्रभु की विनय की लालसा है, प्रभु के दर्शन की कामना है, प्रभु परम अभीष्ट एवं आराध्य हैं तो उनके बीच यदि मन की गतिविधि से व्यवधान उपस्थित होता है, तो वही जाने, उनसे ही कहा जाये और वही मन की बाधा को दूर कर अपनी समीपता का साधन बनावें । तुलसी विनय भक्ति की जिस

3.575- वि0- 89 3.576- वि0- 245

3.577- वि0- 170 3.578- वि0- 224

उँचाई तक चढ़े हैं, उस स्थिति में उनकी " एक भरोसो, एक बल, एक आस, बिसबास " की गति हो ही जानी चाहिये। अर्जुन मन की चंचलता का समाधान योग मार्ग के संदर्भ में पूछते हैं। उसी संदर्भ में भगवान् उत्तर देते हैं। इसलिये विनय भक्ति के संदर्भ का उस जिज्ञासा के समाधान में आने का प्रश्न ही नहीं उठता। गोस्वामी तुलसीदास जी योग की वैकल्पिक साधना " ईश्वर प्रणिधान द्वा " का समर्थन करते हैं और विनय दर्शन की एक अघोषित कल्पना करते हैं, इसलिये उनकी सभी पद्धतियाँ विनय भक्ति के रंग में रंग जाती हैं। योग की हठ, कठोर अभ्यास और साधना के माध्यम से जो उपलब्धि किसी-किसी को कठिनाई से हो पाती है, वही उपलब्धि गोस्वामी जी की विनय-भक्ति से सहज साध्य है। गोस्वामी जी की साधना भी सरल, सुखद एवं रूचिकर है और उससे प्राप्य उपलब्धि भी सरलता एवं सहजता से सुलभ है। कैसा सुंदर सरल भाव है कि विनय से प्रभु प्रसन्न होते हैं तो विनय कैसे की जाय, यह प्रभु ही जानें। वह जैसी विनय चाहते हों, जिससे प्रसन्न होते हों, वैसी विनय करा लेवें। हमसे तो कुछ नहीं बन पावेगा। इसी संदर्भ में मन बीच में बाधा उत्पन्न करता है तो उसे भी वही कृपा कर सम्हालें, प्रेरित करें कि उनके श्री चरणों में अनुरक्ति हो, मन को वह प्रिय लगें - 3.579

3.579- यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।
यजु० अ० 34/म० ।

हे सर्वव्यापक जगदीश्वर ! जैसे जाग्रत अवस्था में मेरा मन दूर दूर घूमने वाला, सब इन्द्रियों का स्वामी तथा ज्ञान आदि दिव्य गुण वाला और प्रकाश स्वरूप रहता है, वैसे ही निद्रावस्था में भी शुद्ध और आनन्दयुक्त रहे। जो प्रकाश का भी प्रकाश करनेवाला और एक है। हे परमेश्वर ! ऐसा जो मेरा मन है सो आपकी कृपा से कल्याण करनेवाला और शुद्ध स्वभावयुक्त हो जिससे अधर्म कामों में कभी प्रवृत्त न हो।

- नाथ । गुनगाथ सुनि होत चित चाउ-सो ।

राम रीझिबे को जानौं भगति न भाउ सो ।। - 3.580

× × × × × × × × × × × × × ×

- कौन जतन बिनती करिये ।

निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ।।

× × × × × × × × × × × × × × ×

जब कब निज करूना सुभावतें, द्रवहु तौ निस्तरिये ।।- 3.581

× × × × × × × × × × × × × × ×

- जनम जनम हौं मन जित्यो,- 3.582

अब मोहि जितै हौ । - 3.583

3.580- वि0-182, 3.581- वि0- 186,

3.582- मन की जीत का एक उदाहरण भगवान् राम की मन की गति के द्वारा भी प्रस्तुत किया गया है । कदाचित् इस उदाहरण से मन साधना के प्रसंग में यह अभीष्ट प्रकट रहा हो कि प्रबल आवेग की स्थिति में मनवशावर्ती नहीं रहता और ऐसे अवसरों को साधना के अपवाद समझ कर परेशान नहीं होना चाहिए । यह बड़ा स्वाभाविक ही नहीं प्रत्युत प्रेमानुराग के प्रसंगों में अपेक्षित ही है । जब दो प्रेमी जनों में से एक का मन दूसरे के प्रति अभिभूत हो तो दूसरे का मन भी प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता । भगवान् सीता की मोहक छवि देख चुके हैं । सीता राम की छवि पर मुग्ध हो चुकी हैं । दोनों ने एक दूसरे को आकृष्ट एवं मुग्ध होकर देख लिया है । इसी प्रसंग में राम को संध्या करने जाना है । इस संध्या में प्रभु की विनय और वंदना के स्थान पर सीता का ध्यान आना स्वाभाविक है । संध्या में सीता का ध्यान ही मन को भाता है और उसी में लग जाता है । भगवान् राम को संध्या की आचारिक व्यवस्था पूरी करना संभव नहीं हो पाती । मन की ही जीत होती है ।

बिगत दिवसु मुनि आयसु पाई । संध्या करन चले दोउ भाई ।।
प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा । सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा ।।
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं । सीय बदन सम हिमकर नाहीं ।।
1.236.6,7,8

इस संदर्भ में मानस मयङ्क कार की टिप्पणी अवलोकनीय है -

जब श्री रामचन्द्र जी संध्या करने चले तभी चन्द्रमा को उगा हुआ देखा । इससे यह सूचित होता है कि उस दिन आषाढ़ पूर्णिमा थी और रामचन्द्र जी जानकी जी के स्मरण में ऐसे फसे थे कि न तो संध्या कर सके, न गुरू सेवा ही हो सकी और न नींद ही पड़ी ।

नारद मोह प्रसंग में स्पष्ट कहा है - जप तप कछु न होइ तेहि काला । मानस- 1.130.8

3.283- वि0 - 270

3.9. विनय : अन्तराय एवं साधन

3.9.0. विनय अन्तराय - विनय साधना में भी अनेक विघ्न संभावित होते हैं जिनके कारण विनय संभव नहीं हो पाती है । सबसे प्रमुख अन्तराय तो अहम् है । विनय की अनिवार्य अपेक्षा दैन्य है तथा दीनता प्राप्त हो नहीं सकती जब तक अहम् का प्रभाव एवं तज्जन्य दूरी बनी रहती है ।

नारद मोह कथा में केवल अहम् की ही घातक भूमिका है । काम जीत लेने से नारद को अहंकार हुआ तथा वह अपने अहं के प्रभाव में अपनी उपलब्धि की गौरव गाथा गाते फिरे । भगवान् ने देखा कि नारद के मन में अहंकार का अंकुर उत्पन्न हो गया है -

नारद कहेउ सहित अभिमाना । कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ।।
करूनानिधि मन दीख बिचारी । उर अंकुरेउ गरब तरू भारी ।।-3.584

इस प्रकरण में नारद विनय- अपेक्षी व्यवहार करते हैं किन्तु यह व्यवहार अहं की दुर्वासना से दूषित है । मात्र कहने के लिये विनय है अन्यथा उपेक्षा एवं अविनय है -

'सहित अभिमान' तथा 'चले हृदयँ अहमिति अधिकाई' इस व्यवहार के विनय प्रतिकूल विशेषण हैं तथा विनय के अन्तराय हैं -

नारद कहेउ सहित अभिमाना । कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ।।

तब नारद हरि पद सिर नाई । चले हृदयँ अहमिति अधिकाई ।।-
3.585

3.584- मानस- 1.128.4,5

3.585- मानस- 1.128.7

185------

एक अन्य प्रकरण हनुमान् का लंका दहन करके सीता का समाचार लाकर भगवान् को देने का है । इस प्रकरण में हनुमान् की भगवान् राम बड़ी प्रशंसा करते हैं, आश्चर्यचकित होकर उनसे पूछते हैं 'केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका'

इस अवसर पर हनुमान् भी नारद जैसा उत्तर देते हैं किन्तु उसमें अहम् का नाम नहीं है ।

सो सब तब प्रताप रघुराई । नाथ न कछू मोरि प्रभुताई ।। -3.586

"कृपा तुम्हारि सकल भगवाना " तथा "सो सब तब प्रताप रघुराई " दोनों अभिव्यक्तियाँ परिप्रेक्ष्य एवं शब्द-योजना की दृष्टि से एक-सी हैं किन्तु एक अविनय है और दूसरी विनय है । एक में अहंकार है और दूसरी में दैन्य है ।

दूसरा अन्तराय मन की मलिनता है, छलकपट है जिसके प्रभाव में की गई विनय , विनय नहीं होती प्रत्युत विनय के वेश में प्रवंचना होती है । यह अन्तराय मन से संबंधित है । कलुषित मन की यही भूमिका होती है । वह छल विनय करने में कुशल होता है । रावण मारीच के पास जाता है तथा इसी प्रकार की विनय करता है ।

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा । नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ।। 3.587

गोस्वामी जी नीच की नवनि का इस संदर्भ में उल्लेख करते हैं ।

नीच मनुष्य की दीनता एवं विनय अत्यन्त दुःखदायी होती है जैसे अंकुश, धनुष, सर्प, और बिल्ली की । - 3.588

3.586- मानस- 5.32.9

3.587- मानस- 3.23.6

3.588- नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ।।
मानस-3.23. 7

186-----

दुष्ट प्रकृति एवं नीचता विनय के अन्तराय हैं तथा ऐसे नीच एवं दुष्टों से विनय बन नहीं सकती ।

इसी प्रकार की टिप्पणी गोस्वामी जी सागर विनय प्रसंग में करते हैं । शठ से विनय करने का कोई लाभ नहीं होता । वह अपनी दुष्ट प्रकृति से विवश होता है । उसकी दुष्ट प्रकृति उसकी विनय के अन्तराय होते हैं ।

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपन सन सुंदर नीती ।।

ममता रत सन ग्यान कहानी । अति लोभी सन बिरति बखानी ।।-3.589

क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा । ऊसर बीज बएँ फल जथा ।।

गोस्वामी जी ने कुसंग को विनय बाधा के रूप में लिया है -

को न कुसंगति पाइ नसाई । रहइ न नीच मतें चतुराई ।।- 3.590

xxxxxxxx x x x x x x x x xxxxxxxxx

हानि कुसंग सुसंगति लाहू । लोकहुँ बेद बिदित सब काहू ।।-3.591

कुसंग से ज्ञान नष्ट होता है तथा सुसंग से ज्ञान प्राप्त होता है, इस तथ्य का गोस्वामी जी प्रतिपादन करते हैं -

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग ।

बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ।।- 3.592

गोस्वामी जी ने असंतों के स्वाभाव 3.593 वर्णन में ईर्ष्या, काम, क्रोध, मद, लोभ,

---

3.589- मानस- 5.57.2,3,4

3.590- मानस- 2.23.8 3.591- मानस-1.6.8, 3.592- मानस- 4.15

3.593- .... जरहिं सदा पर संपति देखी ।

काम क्रोध मद लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ।

बयरु अकारन सब काहू सों ।

झूठइ लेना झूठई देना । - मानस- 3.38.3.8

छलकपट , निर्दयता, शत्रुता, असत्य भाषण आदि अवगुणों का उल्लेख किया है । यह अवगुण विनय के अन्तराय हैं । गोस्वामी जी ने ऐसे दुष्ट व्यक्तियों के कुसंग से सदा विरत रहने का परामर्श दिया है -

सुनहु असन्तन्ह केर सुभाऊ । भूलेहु संगति करिअ न काऊ । 1-3.594

नारद भक्ति सूत्र में भी अहंकार, कुसंग, दंभ आदि को बाधा कहा गया है -3.595

विनय के साधन - विनय के अन्तरायों का त्याग ही विनय के साधन हैं । अहंकार, दंभ, मद, मोह, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, आदि का त्याग करना चाहिये । इनके त्याग के लिये गोस्वामी जी निम्नलिखित साधन बतलाते हैं -

1- सत्संग -

सत्संग की महिमा का वर्णन करते हुये गोस्वामी जी काक के मरालहो जाने का आश्वासन देते हैं अर्थात् दुष्ट प्रकृति तथा दुर्विनीत स्वभाव के बदल जाने का विश्वास दिलाते हैं । उनका यह कथन अनुभूति सिद्ध रहा है । इसलिये इसकी आशंसा की गई है । जैसे पारस मणि के स्पर्श से लोहा स्वर्ण हो जाता है , उसी प्रकार सठ व्यक्ति सुधर जाते हैं -

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधात सुहाई ।1- 3.596

3.594- मानस- 7.38.1

3.595- नारद भक्ति सूत्र । प्रेम दर्शन । गीताप्रेस : सोलहवाँ संस्करण ,

दुःसङ्गः सर्वथैव त्याज्यः सूत्र 43

कामक्रोध मोह स्मृति भ्रंश बुद्धिनाश सर्वनाश कारणत्वात् ।। सूत्र 44

- दुःसंग का सर्वथा ही त्याग करना चाहिये ।

क्योंकि वह काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाश का कारण है ।

अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम् ।।सूत्र 64

अभिमान दंभ आदि का त्याग करना चाहिये ।

3.596- मानस- 1.2.9

188-----

मज्जन फल पेखिअ ततकाला । काक होहिं पिक बकउ मराला ।।

सुनि आचरज करै जनि कोई । सतसंगति महिमा नहिं गोई ।। - 3.597

2- स्मरण -

भगवन्नाम के जाप का प्रभाव भी चित्तवृत्ति को शान्त तथा प्रकृति को विनयशील बनाता है । इसका एक निश्चित अवधि तक किया गया प्रयोग फलदा होता ही है,

जपहु जाहि संकर सत नामा । होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा ।।-3.598

× × × × × × × × × × × ×

पय अहार फल खाइ जपु राम नाम षट मास ।

सकल सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास ।। - 3.599

3- सेवा -

विनय भक्ति का प्रमुख कृत्य सेवा है [3.600] जिससे आराध्य प्रसन्न होते हैं तथा विनय स्वीकार करते हैं -

गननायक बरदायक देवा । आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा ।।

बार बार बिनती सुनि मोरी । करहु चाप गुरुता अति थोरी ।।- 3.601

- सेवा के समान कोई धर्म नहीं है तथा सेवा करना संत का सहज स्वभाव होता है ।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।।- 3.602

× × × × × × × × × × × × ×

पर उपकार बचन मन काया । संत सहज सुभाउ खगराया ।- 3.603

3.597- मानस- 1.2-1,2 , 3.598- मानस- 1.137.5

3.599- दोहावली- 5

3.600- चर अरु अचर नाग नर देवा । सकल करहिं पद पंकज सेवा ।।
मानस-1.106.8

3.601-मानस-1.256.7,8 ,3.602-मानस-7.40.1, 3.603-मानस-7.190.14

182----

- सेवा के लिये शालीता, विनम्रता, आदि गुण अपेक्षित हैं तथा सेवा भाव अपनाने से इन गुणों का विकास होता है । इस प्रकार सेवा विनय का साधन बन जाती है -

तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे । सेवा जोगु न भाग हमारे ।।-3.604

सेवा से आराध्य की प्रसन्नता ही नहीं प्राप्त होती, प्रत्युत वशवर्ती भी हो जाते हैं-

हैं तुम्हरी सेवा बस राऊ ।। 3.605

× × × × × × × × × × × × ×

सीयँ सासु सेवा बस कीन्हीं ।- 3.606

विनय शील का अंग है तथा गोस्वामी जी का दृढ़ मत है कि शील एवं विनय, बिना बुधजन की सेवा के संभव नहीं हैं ।

सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई ।।- 3.607

4- श्रद्धा विश्वास - आराध्य में श्रद्धा विश्वास होना चाहिये । बिना श्रद्धा विश्वास के विनय करने का प्रश्न ही नहीं उठेगा । जितना अधिक श्रद्धा विश्वास होगा, उतनी ही दीन और विनम्र विनय होगी । श्रद्धा विश्वास वस्तुतः धर्म, भक्ति, साधना, सब के लिये आवश्यक हैं । गोस्वामी जी इस तथ्य से भलीभाँति परिचित हैं । उनके मानस का आरंभ ही श्रद्धा विश्वास को लेकर होता है । आगे श्रद्धा विश्वास की धर्म और भक्ति के लिये अनिवार्यता प्रतिपादित करते हैं ।

भवानी शङ्करौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ ।।

याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम् ।।- 3.608

× × ×× × × × × × × × × ×

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई । बिनु महि गंध कि पावइ कोई ।।- 3.609

× × × × × × × × × × × ×

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु ।।- 3.610

3.604- मानस-2.250.1 , 3.605- मानस-2.20.8, 3.606- मानस-2.251.4

3.607- मानस- 7.89.6, 3.608- मानस-1.0.2 , 3.609- मानस-7.89.4,

3.610-मानस- 7.90 (क)

।90-----

5- कथा श्रवण - भक्ति-साधना के लिये कथा श्रवण प्रथम आवश्यकता है । कथा वार्ता में मन रमता भी है । इसलिये यह अंग बड़ा सरल और सहज साध्य है । कथा वार्ता सुनने से मन के राग द्वेष काम क्रोध आदि दोष शांत हो जाते हैं, भ्रम नष्ट हो जाते हैं तथा प्रभु चरणों में विश्वास जाग्रत होता है तथा विनय भक्ति का अंग सहज ही प्रबल एवं प्रमुख बन जाता है ।

सुनहु परम पुनीत इतिहासा । जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा ।।
उपजइ राम चरन बिस्वासा । भवनिधि तर नर बिनहिं प्रयासा ।।-3.611

× × × × × × × × × × × ×

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास ।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ।।- 3.612

× × × × × × × × × × × × ×

मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास ।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास ।। - 3.613

विनय के अन्तराय और साधनों में इस प्रकार मूलतः संस्कार और सत्संग प्रमुख रूप से क्रियाशील रहते हैं । अच्छे संस्कार और सत्संग सुलभ हुए तो साधन बन जाते हैं । कुसंस्कार एवं कुसंगति मिली तो अन्तराय बन जाते हैं । इसलिये बालकों की शिक्षादीक्षा में प्रारम्भ से ही अच्छे संस्कार डालने तथा सत्संग सुलभ कराने का प्रयत्न किया जाता है जिसके फलस्वरूप शालीन स्वभाव एवं व्यवहार बनते हैं जो विनय में प्रकट एवं अभिव्यक्त होते हैं । गोस्वामी जी ने इसलिये व्यवहार को व्यक्तित्व की सुगंध के समान माना है-

---

3.611- मानस- 7.54.8,9 , 3.612- मानस- 7.103 (क)
3.613- मानस-7.126

(9)-----

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू ।

सोन सुगंध सुधा ससि सारू ।- 3.614

3.00- विनय दर्शन - विवेचन -

'विनय की दार्शनिक विवेचना हो सकती है', इस प्रस्तावना को लेकर चलेंगे । गोस्वामी तुलसीदास जी किसी मत, सम्प्रदाय अथवा नई मान्यता की स्थापना एवं फलस्वरूप अपनी मान्यता के प्रति सदा उदासीन ही रहे थे । इस कारण उनकी नई मान्यतायें प्रचलित नहीं हो सकीं किन्तु प्रतिपादन तथा पक्ष प्रस्तुत करने में गोस्वामी जी ने कोई कसर नहीं उठा रखी । अपने चिन्तन एवं अनुभव के आधार पर उन्होंने अपनी मान्यताओं को मौलिकता प्रदान की तथा उनकी पूर्ण प्रतिष्ठा की ।
विनय को दर्शन की श्रेणी में प्रतिष्ठित करने की गोस्वामी जी की कोई आग्रहपूर्ण कामना थी या अनायास ही विवेचन के अन्तर्गत नई मान्यता का प्रतिपादन हुआ ; इस विषय पर चर्चा करना समीचीन नहीं है । वह परम भागवत थे एवं उनके व्यक्तित्व में किसी आग्रह की कल्पना करना अपनी संकुचित दृष्टि का ही द्योतक है ।
फिर भी, विनय, दर्शन के रूप में प्रतिपादित एवं प्रतिष्ठित हुई है, इसमें कोई शंका नहीं है । योग के प्रमुख शब्द समाधि को लेकर भी प्रतिपादन किया गया है । विनय दर्शन के लिये जिस समाधि की अपेक्षा है उसको गोस्वामी जी ने 'स्नेह समाधि' नाम से अभिहित किया है तथा योग की समाधि से भेद स्पष्ट कर अपने पक्ष को प्रस्तुत किया है। योग समाधि की प्रक्रिया में और स्नेह समाधि की प्रक्रिया में भेद है, अन्यथा जो योग समाधि का अभीष्ट है, वह स्नेह समाधि से पूर्णतया सिद्ध होता है और इस दृष्टि से विनय दर्शन की कोटि में आ जाता है ।

3.614- मानस- 2.287.।

192--------

- समाधि की स्थिति से पूर्व अथवा समाधि की स्थिति की पहुँच ध्यान से होती है। यह ध्यान भी योग का प्रमुख शब्द है तथा 'ध्यान-धारणा' के युग्म में प्रचलित है। धारणा मन की वह स्थिति है जिसमें केवल ब्रह्म का ही ध्यान रहता है। इस प्रकार ध्यान और धारणा मन की एक रस एकाग्रता का नाम है जो मन के निग्रह के अभीष्ट से कृत योग की सतत कठोर साधना का सुफल होती है। गोस्वामी ने इस एकाग्रता तथा फलस्वरूप ध्यान धारणा की प्राप्ति को योग की साधना से पृथक् विनय आराधना के अन्तर्गत सुलभ सिद्ध किया है। इस स्थिति को भी योग की स्थिति से भिन्नता है। इसलिये गोस्वामी जी ने ध्यान को 'ध्यान रस' नाम से अभिहित किया है। परोक्ष रूप में योग के ध्यान की अरसता की ओर भी संकेत किया है जो वस्तुतः कष्टकर मन न रमने वाले अभ्यासगत योग स्थिति की व्याख्या है।

गोस्वामी जी की विनय स्नेह और प्रेम का पर्य्याय है तथा स्नेह और प्रेम की अनुभूति-गत स्थिति से जो परिचित हैं, वे भलीभाँति समझ सकते हैं कि स्नेह और प्रेम के परिप्रेक्ष्य में ध्यान, एकाग्रता, एकान्तिक चिन्तन, अनन्यता, कितने सहज एवं सरल रूप से सुलभ होते हैं।

जप तप तथा यम नियम शब्द योग की साधन प्रक्रिया के द्योतक हैं। गोस्वामी जी ने इन शब्दों का प्रयोग स्नेह और प्रेम के संदर्भ में किया है। प्रेम विरह में अनायास जप तप यम नियम बन जाते हैं। इनको सप्रयास करने की तो योग की अपेक्षा होती है। यों वर्तमान काल में योग की क्रियाओं को करने की क्षमता एवं सुविधा भी शेष नहीं रही है।

कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान जोग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहि ते चतुर नर ।।- 3.615

3.615- मानस- 3.6 (ख)

साथ ही इन साधनों से भी कहीं अधिक श्रेष्ठ साधन प्रेमरूपा भक्ति एवं वंदना तथा विनय है जिनका आधार प्रेम है तथा जो करने चाहिये ।

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा । किएँ जोग तप ग्यान बिरागा ।।
3.616

× × × × × × × × × × × × ×

जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा ।।-3.617

× × × × × × × × × × ×

जप तप मख सम दम ब्रत दाना । बिरति बिबेक जोग बिग्याना ।।
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा । तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा ।।- 3.618

× × × × × ×

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना । ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ।।
जाते बेगि द्रवउँ मैं भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ।।- 3.619

यौग और दर्शन अभिधान -

योग और दर्शन अभिधान-, भारतीय षड्दर्शन की प्रसिद्धि एवं विश्व विश्रुति से जहाँ एक ओर विशेष साधन प्रक्रिया का बोध कराते हैं वहाँ ब्रह्म विद्या संबंधी ज्ञान के सूचक भी बन गये हैं । आत्मा का परमात्मा से योग तथा आत्मा को परमात्मा के दर्शन अथवा आत्म साक्षात्कार इन अभिधानों का सामान्य अभीष्ट बन गया है । इसी अर्थ में इनका प्रयोग अन्यथा होता है ।

3.616- मानस- 7.61.1 , 3.617- मानस- 3.7~~7~~7

3.618- मानस- 7.94.5,6 3.619- मानस- 3.15.1,2

मानस में गोस्वामी जी भक्ति योग का उल्लेख करते हैं ।

भगति जोग सुनि अति सुख पावा । लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा ।।- 3.620

यह भक्तियोग क्या है ? इसका विवरण गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया है -

संत चरन पंकज अति प्रेमा । मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ।।

गुरु पितु मातु बंधु पति देवा । सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ।।

मम गुन गावत पुलक सरीरा । गद गद गिरा नयन बह नीरा ।।

काम आदि मद दंभ न जाके । तात निरंतर बस मै ताके ।।

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।

तिन्ह के हृदय कमल महुँ करौ सदा बिश्राम ।।- ~~36~~ 3.621

इस भक्तियोग में भक्त का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है । उसके आचार विचार एवं प्रेमभावगत अनुभावों का उल्लेख हुआ है । विनय की " निःकाम " स्थिति का विशेष आग्रह है । विनय कामना रहित हो जाय, विनय विनय के लिये बन जाय यही योग की पूर्व-अपेक्षा है । आराध्य प्रिय लगेगी तो फिर उससे क्या माँगना, क्या विनय करना शेष रहेगा ? यह भक्ति योग ही विनय योग या विनय दर्शन की आधार भूमि है । प्रेमरूपा भक्ति की अभिव्यक्ति ही तो विनय है । 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' सूत्र से चित्त वृत्तियों का निरोध योग कहलाता है । यह योग, योग की अन्यान्य कठिन क्रियाओं से जहाँ दुःसाध्य है वहाँ प्रेमरूपा भक्ति एवं निष्काम विनय की स्थिति में सहज ही सुलभ एवं प्राप्य है ।

दर्शन -"षड् दर्शनों की भाँति नारद भक्ति सूत्र भी एक दर्शन माना गया है । इसे भक्तगण सप्तम दर्शन कहते हैं । 3.622

3.620- मानस- 3.16.1 , 3.621- मानस- 3.15.9-12 3.16

3.622- प्रेमदर्शन (भक्तिसूत्र) गीताप्रेस ।6वाँ संस्करण पृ0- 6,

योग में जिस प्रकार आत्मा और परमात्मा का योग है उसी प्रकार दर्शन में आत्मा को परमात्मा के दर्शन हैं या आत्म-साक्षात्कार है । यह दर्शन योगीजन अन्त:करण में करते हैं । गोस्वामी जी इस अन्तर्दर्शन से कहीं अधिक बाह्य प्रत्यक्ष दर्शन के पक्षपाती हैं। अन्तर्दर्शन से जो वितण्ड़ा वाद फैला, जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई तथा जिस प्रकार ढोंग का प्रचार हुआ, उससे गोस्वामी जी को बड़ा क्षोभ हुआ तथा उन्हें दर्शन के अर्थ का पुनराख्यान करना पड़ा । 'अन्तर जामिहु ते बड़ बाहर जामी' कह कर तथा अलख के स्थान पर लख की प्रतिष्ठा कर गोस्वामी ने भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन का आग्रह किया-

हम लखि लखहि हमार लखि हम हमार के बीच ।
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जपु नीच ।।- 3.623

गोस्वामी जी बाह्य दर्शन निम्नलिखित रूप में करते हैं -

तीर्थ स्थलों में - मम कृत सेतु जो दरसनु करिही ।
बिनु श्रम भवसागर तरिही ।।- 3.624

× × × ×

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं ।
ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं ।।- 3.625

संत दर्शन में- संत बिसुद्ध मिलहिं परितेही ।
चितवहिं राम कृपा करि जेही ।।- 3.626
- जानेसु संत अनंत समाना ।- 3.627

3.623- दोहावली - 19 3.624- मानस- 6.2.4

3.625- मानस- 6.2.1 , 3.226- मानस- 7.68.7

3.627- मानस- 7.108.12

चराचर में- जड़ चेतन जग जीव जत
सकल राममय जानि ।
बंदउँ सब के पद कमल
सदा जोरि जुग पानि ।।- 3.628

नाम में- देखिअहिं रूप नाम आधीना । रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना ।।-3.629

× × × × ×

अगुन सगुन दोइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ।।
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें । किए जेंहि जुग निज बस निज बूतें ।।-3.630

× × × × × ×

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू ।।-3.631

कथा में- रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं ।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ।।- 3.632

विनय में- इन दर्शन संदर्भों के साथ विनय में तो आपको हर समय भगवद् दर्शन होते हैं। मानस तथा अन्यान्य ग्रन्थों के विनय प्रसंगों के अतिरिक्त विनयपत्रिका के विनय प्रसंग तो साक्षात भगवद् दर्शन तथा उनसे विनय के प्रत्यक्ष प्रकरण बन गये हैं 3.633 ( ) पाठक को स्पष्टतः प्रतिलक्षित होता है कि भगवान् राम का दरबार लगा हुआ है । गोस्वामीजीने पंचायतन के सभी सदस्यों

3.628- मानस- 1.7 (ग) - उपनिषद् की भी यही मान्यता है -

" ईशावस्यामिदं सर्वं; यत्किञ्चजगत्यां जगत् "
ईशावास्योपनिषद् =1

3.629- मानस- 1.20.4, 3.630- मानस- 1.22.1,2

3.631- मानस-1.26.7 3.632- मानस- 7.129 छं. 2

3.633 ( ) - गोस्वामी जी का विश्वास है कि भगवान् भक्ति और प्रेम के वशवर्ती होकर साकार एवं प्रत्यक्ष हो जाते हैं -

अगुन अरूप अलख अज जोई ।
भगति प्रेम बस सगुन सो होई ।।

से प्रार्थना की है एवं सबको अपने अनुकूल बना लिया है । अब अंत में स्वयं भगवान्
से प्रार्थना कर रहे हैं -

बिनय पत्रिका दीनकी, बापु! आपु ही बाँचो

और करुणासागर, दयानिधि भगवान् उस पत्रिका को सही कर देते हैं -

" बिहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की,
परी रघुनाथ हाथ सही है ।- 3.633 ॥ ॥

विनय दर्शन के लिये अपेक्षित विवेचन संदर्भ गोस्वामी जी की कृतियों में विस्तार से मिलते हैं । विनय की व्याख्या के अंतर्गत विभिन्न दृष्टिकोणों तथा मतों का आश्रय लेकर विनय की दर्शन पक्षीय प्रतिष्ठा की गई है । विनय स्वरूप का विवरण प्रस्तुत करते हुये विनयकर्ता तथा विनय आराध्य के स्वरूप के विश्लेषण के साथ कब, कहाँ, कैसे आदि विनय संबंधी अन्यान्य प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत हुआ है जिनसे विनय की शास्त्रीय स्थिति सुस्पष्ट हुई है। विनय प्रभाव के साथ, विनय की अन्य समानार्थी रूपों के साथ तुलना प्रस्तुत की गई है जिससे विनय का सूक्ष्म भाव एवं भेद प्रतिपादित हुआ है । विनय की मनमानसगत स्थिति का विवेचन विनय के मूल स्वरूप को और स्पष्ट करता है । विनय के अन्तराय और साधनों के द्वारा विनय साधना का स्वरूप प्रस्तुत हुआ है । इस प्रकार विनय दर्शन का विवेचन सभी अपेक्षाओं के संदर्भ में संपादित हुआ है ।

" सुख संपादन समन बिषादा "

3.633 ॥ ॥ वि० - 279

005 -

उपसंहार

वंदना एवं विनय की परम्परा - विषय प्रवेश के अंतर्गत वंदना एवं विनय की परंपरा का विवरण दिया गया है । सिद्धों, नाथों तथा संतों की परंपरा में भगवान् के निर्गुण रूप की प्रतिष्ठा रही तथा उस रूप को ही साधना का परम अभीष्ट माना गया , किन्तु साधना के आरंभ से ही निर्गुण , निराकार भगवान् की कल्पना भाव एवं भावना प्रधान मानव मानस को व्यावहारिक न बन सकी । उस निराकार के प्रति भी भावोद्रेक के क्षण झंकृत हुए और 'मोरे घर आए राजाराम भरतार' जैसी अभिव्यक्तियाँ सहज ही मुखरित हो उठीं । उस निराकार से भी संपर्क , संयोग एवं निवेदन करने की लालसाप्रबल बनी रही । उसकी वंदना एवं उससे विनय करने का उपक्रम साधना का प्रमुख अंग बना ही रहा । आगे सगुण भक्ति काल में तो वंदना और विनय ही साधना बन गये ।

- वंदना और विनय को भजन कहा गया जिसकी भवतरण के लिये अनिवार्य अपेक्षा रही।
हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं

× × × ×

बारि मथे घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भवतरिअ यह सिद्धान्त अपेल ।।

- यह भजन सेवक सेव्य भाव के अंतर्गत संभव है

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि ।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि ।।

- राम पद पंकज का भजन उनके स्मरण गान में बन पाता है ।

एहि कलिकाल न साधन दूजा, जोग जग्य व्रत जप तप पूजा ।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि संतत सुनिय राम गुन ग्रामहि ।।

- राम के यह स्मरण, गान तथा गुणग्राम का श्रवण, वंदना और विनय के ही रूप हैं , जिनके माध्यम से भजन होता है ।

वंदना एवं विनय की भाव भूमि - वंदना एवं विनयकर्ता के संस्कार, परिवेश एवं व्यक्तित्वगत आशा-अपेक्षाओं में वंदना एवं विनय के स्वरूप का निर्माण होता है । हमारा भगवान् हमारे आदर्शों एवं मान मानकों का अभीप्सित रूप है । गोस्वामी जी ने अपने लिये दैन्य का आदर्श चुना, प्रेम एवं श्रद्धा को संबल बनाया तथा परम शील सौन्दर्य उनके लिये प्रेरणा एवं आकर्षण सिद्ध हुए । फलस्वरूप उनकी वंदना एवं विनय , दीनता, अश्रु एवं पुलक तथा अनन्यता के संदर्भों में प्रस्तुत हुई।

'मो सम दीन न दीन हित तुम समान रघुबीर' गोस्वामी का एकमात्र नाता है जिसको वह प्रभु से मानते हैं और जिसको मूल आधार बना कर वह वंदना, विनय तथा प्रभु प्राप्ति की साधना करते हैं । साधनागत विनय, जप तथा ध्यान तीनों स्थितियों में अश्रु एवं पुलक प्रमुख भावभूमि रहती है ।

विनय - अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा
मुख नहिं आवइ बचन कही ।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी
जुगल नयन जलधार बही ।। - (1.210 छं.)

जप - पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू
जीह नामु जप लोचन नीरू ।। - (2.325.1)

ध्यान- हर हियँ राम चरित सब आए
प्रेम पुलक लोचन जल छाए । - (1.110.7)

वंदना- विनय के भगवान् - गोस्वामी जी की वंदना और विनय की भावभूमि भगवान् की वत्सलता के संदर्भ में दिपती जीवन्त तथा सप्राण है । उनके भगवान् तो अहेतुक कृपा व दया के लिये प्रसिद्ध हैं । फिर यदि भक्त की ओर से भावपूर्ण वंदना, विनय, आराधना, साधना की जाती है तो वह स्वयं भी भाव **विह्वल** हो उठते हैं । उनकी 'लोचन नीर पुलक अति **गाता**' दशा हो जाती है । अनाथहित , प्रनतहित , दीन हित, भगत हित, जनहित तथा गरीबनिवाज उनकी वृत्ति है तथा इन्हीं हितों को लेकर वह अवतार **लेते** हैं .। वह करुणाकर, करुणानिधान, करुनानिधि, करुनासिंधु,

करुनायतन आदि रूपों में विनयकर्ता पर अहेतुक करुणा करते हैं

जौं अनाथ हित हम पर नेहूँ तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू ॥मनु शतरूपा॥
....कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही । ॥जयंत॥
॥3.1.10॥

मो सम दीन न दीन हित तुम समान रघुबीर - ॥7.130॥

राम भगत हित नर तनु धारी - ॥1.23.1॥

कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं - ॥1.121.1॥

तू गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो - ॥वि. 78॥
बारक कहिये कृपालु तुलसिदास मेरो

आरत लोग राम सबु जाना । करुनाकर सुजान भगवाना ।। - ॥2.243.1॥
एक बानि करुनानिधान की । सो प्रिय जाकें गति न आन की ।।- ॥3.9.8॥

विनोबा जी ने विनयांजलि में भगवान् की करुणा को राष्ट्रपति की मरसी-पेटिशन के अधिकार के समकक्ष मानते हुए, भगवान् के करुणामय होने की अपेक्षा की है । मर्यादा व क्षमा दोनों के निर्वाह के लिये गोस्वामी जी के इस उद्धरण को वह प्रस्तुत करते हैं -

तुलसी प्रभु सुभाव सुरतरु सों,
ज्यों दरपन मुख कांति ॥ वि. 145॥

विनय की प्रासांगिकता - अपने अहंकार के कारण अपने आपको पतित, दुखी, दीन, अनाथ और निराधार माना ही नहीं, तब पतितपावन, दीनदयाल, निराधार के आधार भगवान् की कृपा कैसे हो , यही विनय की प्रासांगिकता का पक्ष है तथा यही विभ्रम, मोह, और फलस्वरूप विषाद का कारण है जिसको लेकर गीता और रामचरित मानस की रचना होती है -

पतित पावन हित आरत अनाथनिको,
निराधार को आधार, दीनबंधु , दई
इन्ह में न एकौ भयौ .... ॥वि. 252॥

- इसी संदर्भ को लेकर विनय, क्यों, कब, कैसे, कहाँ आदि जैसी जिज्ञासायें उभर कर सामने आती हैं, विनय की प्रासांगिकतावंदना और विनय से भगवत्कृपा व दया को सुलभ कराती हैं, समाधि की तांत्रिक कष्टसाध्य कल्पना संतों की सहज समाधि में विकसित होती हुई वंदना विनय की स्नेह समाधि में परिणित हो जाती है और वंदना विनय का एक दर्शन प्रतिष्ठित हो जाता है । गोस्वामी जी का आग्रह इस प्रकार के पृथक् दर्शन की स्थापना न रहा हो किन्तु इस प्रकार के पृथक् प्रयोग में उनकी आस्था थी, इसको नकारा नहीं जा सकता । इसमें भी दो मत नहीं कि साधना का मूल उपदान एवं उपचार वंदना एवं विनय रहे हैं चाहे उसको किसी भी नाम से अभिहित किया जाता रहा हो । गोस्वामी जी ने ऐसा प्रतीत होता है मानो साधना की वास्तविकता को उद्‌घाटित करके रख दिया है जिसको करते सब थे किन्तु जोग जग्य व्रत जप तप पूजा, जैसे भिन्न भिन्न नामों से कहते थे ।

- संत विनोबा भावे ने विनयपत्रिका के संबंध में अपना ऐसा ही अनुभव लिखा है -

..... विनयपत्रिका के तीन पारायण चिंतन-मननपूर्वक मैंने किये थे । यह सन् 1918 से 1921 का जमाना । फिर सात-आठ साल वह पड़ी रही शीतागार में- यानि मेरे हृदय में, जिसे उस पत्रिका ने शीतल बनाने का कार्य किया था । ..... मैंने रामायण की तुलना बाइबिल से की । वैसे तुलना ही करनी हो तो विनयपत्रिका को ओल्ड टैष्टामेंट के साम्स की कोटि में डाल सकते हैं .....

-विनयांजलि
दूसरा संस्करण

समाधान-अपेक्षी समस्यायें - प्रस्तुत अनुशीलन के अंतर्गत कतिपय ऐसी समस्यायें शोधार्थी के समक्ष प्रस्तुत हुई हैं जिनका समाधान अपेक्षित रहा है । अनुगामी शोधार्थी इन समस्याओं का समाधान खोजेंगे, इस आशा से उन्हें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है -

- स्तुति और आरती का रचना संबंधी भेद - स्तुति और आरती की रचना संबंधी कोई सीमा रेखा खींची जा सकती है, यह एक समस्या रही है ; श्री रामचन्द्र कृपाल भजुमन .... पद विनयपत्रिका में स्तुति के अंतर्गत रखा गया है अन्यथा आरती में गाया जाता है तथा गीताप्रेस के आरती संग्रह में रखा भी गया है ।

- विशेष संख्या में प्रयोग - गोस्वामी जी ने कहीं 5, कहीं 7 व, कहीं 11 तथा कहीं 21 की गणना में शब्द विशेष के प्रयोग किये हैं । इन प्रयोगों के परिप्रेक्ष्य में गोस्वामी जी का कोई विशेष आशय रहा है , यह समस्या समाधान अपेक्षी है ।

श्री रामचन्द्र कृपाल भजुमन .... पद में ही 5 बार कंज उपमान का प्रयोग हुआ है जो पाँच उपमेय लोचन, मुख, कर, पद तथा हृदय के लिये प्रयुक्त हुआ है ।

इसी प्रकार अनुगामी पद में राम जपु की 5 बार आवृत्ति है ।

- उपमानों का रचना विशेष के लिये ससीमन - गोस्वामी जी की शब्द आवृत्तिगत अध्ययन की अपेक्षा है जिसमें शब्दों के ससीम प्रतिबंधों का उद्घाटन होगा और इस प्रकार के प्रयोगों की अपेक्षाओं का अनुशीलन किया जाना अभीष्ट रहेगा । उदाहरणस्वरूप एक प्रयोग का उल्लेख करें । मानस में मुख के लिये शशि, कमल (7.6.3) पंकज (1.258.1) आदि उपमानों का प्रयोग हुआ है किन्तु कंज का नहीं हुआ । कंज का प्रयोग विनयपत्रिका में हुआ है ।

- दृष्टिपात संबंधी आग्रह - शील और शक्तिस्वरूपों के संदर्भों में दृष्टिपातगत विवरण क्रमशः नीचे से ऊपर तथा ऊपर से नीचे दिया गया है । वंदना के अंतर्गत इसका (पृ. 144.) उल्लेख किया गया है । यह विवरण भेद किसी विशेष अभीष्ट को प्रकट करता है या मनोविज्ञानगत साधारण भावभूमि का परिचायक है , इस समस्या का समाधान अपेक्षित है।

- वंदनागत विभिन्न आरेखों के माध्यम से जो सांख्यकीय विवरण प्राप्त हुआ है , उसकी पृष्ठभूमि में गोस्वामी जी का कोई विशेष अभीष्ट रहा है, यह समस्या समाधान अपेक्षी है।

नयी दिशायें - अनुगामी कार्य के रूप में निम्नलिखित शोधसंभावनाओं के प्रति निर्देश किया जा सकता है ।

(1) गोस्वामी जी के मानसेतर रचनाओं की शबद सूची तथा उसकी मानस शब्द सूची से तुलना ।

(2) प्रयोग आवृत्तिगत विभिन्न शब्द भेदों का अध्ययन ।

(3) गोस्वामी जी का उपमान-अनुशीलन

(4) वंदना के विभिन्न उपचारों का विभिन्न रचनाओं के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन

(5) विनय का विकास परक अन्य कवियों से तुलनात्मक अनुशीलन

परिशिष्ट

संदर्भ ग्रंथ सूची

गोस्वामी जी की रचनायें - रामचरित मानस — गीताप्रेस गोरखपुर के प्रकाशन

विनयपत्रिका	,,	,,	,,
गीतावली	,,	,,	,,
दोहावली	,,	,,	,,
कवितावली	,,	,,	,,
जानकीमंगल	,,	,,	,,
पार्वतीमंगल	,,	,,	,,
बरवै रामायण	,,	,,	,,
वैराग्य संदीपनी	,,	,,	,,
रामाज्ञा प्रश्न	,,	,,	,,
हनुमान बाहुक	,,	,,	,,
मानस पीयूष	,,	,,	,,
विनय पीयूष	,,	,,	,,
पात जलयोग प्रदीप	,,	,,	,,
प्रेम दर्शन : भक्ति सूत्र	,,	,,	,,
ईशादि नौ उपनिषद	,,	,,	,,
श्रीमद भगवद गीता	,,	,,	,,

स्मृतियाँ : बीस स्मृतियाँ 1968 संस्कृति संस्थान : बरेली

चिन्तामणि : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : सं0 56

तुलसीदास ,, ,, सं0 2003 वि

संक्षिप्त शब्द सागर : रामचन्द्र वर्मा वि.सं. 2008ई.

Ancient Psyco-Synthesis Versus Modern Psyco-Analysis: Dr. Bhagwan Dass.
Bible: Gospel according to John;1961.Ed.
Complete Essays ofSchopen hour translated by T.Baily Samders: Sufferings of the World.
Love of God: St. Francis;'62Ed.
Outline of Psychology: '49.
Philosophy of Fine Arts: Hegd.
Prayer '71: Ruhani Satsang Publication.
Selected Works of M.Gandhi.:'69.
The English Mystical Tradition: D.Knowles.
The Psycology of Emotions.:Ribet. 1st.Ed.
The Story of Mysticism.:Hilda Gralf.Peter Devies : '66.
What is Mysticism.:D.Knowles. '67.
Young India : English Weekly.

शोध प्रबंध की मौलिकता -

" मुख्य रूप से विचारों और भावों को नवीन रूप में प्रस्तुत करने की कला (शैली) में ही मौलिकता रहती है न कि स्वयं विचारों और भावों में "

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - विचार प्रवाह प्र.सं.-पृ. 102

मौलिकता के संबंध में व्यक्त आचार्य जी के उपर्युक्त विचार शोध प्रबंध की मौलिकता का अंकन करने के लिये एक मानक माना जाता है ।

प्रस्तुत विषय के अंतर्गत वंदना, वंदनीय गुरुजन एवं विनय के परंपरागत भावों को विनय दर्शन की प्रतिष्ठा के संदर्भ में नवीन रूप में प्रस्तुत करने का मौलिक प्रयास किया गया है गोस्वामी जी की योग और दर्शन संबंधी नवीन शब्दावली से इस प्रपत्ति की पुष्टि हुई है

प्रस्तुत अनुशीलन विवरणात्मक (Descriptive) आधार लेकर किया गया है । शोध का यह अभिनव प्रयोग है ।

- शोध विषय अपने आप में मौलिक है तथा इस रूप में गोस्वामी जी की रचनाओं का अध्ययन-अनुशीलन अपेक्षित रहा है ।

- विनय की दर्शन के रूप में मान्यता एवं प्रतिष्ठा होनी चाहिये , इस मौलिक प्रपत्ति को सप्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । इस संबंध में योगदर्शन, योगवशिष्ठ गीता तथा उपनिषदों से तथा मनोविज्ञान एवं विनय संबंधी पुस्तकों से पोषक प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं । अन्यथा प्रतिपादन गोस्वामी जी के मानस, विनयपत्रिका एवं अन्यान्य ग्रंथों से ही किया गया है । इस शोध संधान में स्पष्ट प्रतिलक्षित हुआ है कि गोस्वामी जी की कदाचित् विनयदर्शन जैसी मान्यता थी जिसके लिये उन्होने योग से भिन्न स्नेह समाधि, ध्यानरस, साधन-सिद्धि जैसे पारिभाषिक शब्दों की भी कल्पना की है तथा विनय, क्यों, कब, कैसे, कहाँ आदि जिज्ञासाओं का भी समाधान किया है। गोस्वामी जी ने दर्शन को प्रत्यक्ष दर्शन की सरल व्याख्या में प्रस्तुत कर विनयपत्रिका की विनय को भगवद् दर्शन का साधन सिद्ध किया है । इस दृष्टि से भी विनय दर्शन का प्रतिपादन होता है ।

- वंदना खण्ड में विनय की शास्त्रीय व्याख्या का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत किया गया है । इस खण्ड में वंदना के स्वरूप की व्याख्या एवं विश्लेषण किया गया है जिसमें अभिवादन , स्तुति, आरती, विनय की विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है ।

- विभिन्न वर्गों की अभिवादन पद्धति की व्याख्या अभिवादन की मौलिकता है । स्तुति एवं आरती की रचना, एवं संबद्ध प्रकरणों की व्याख्या मानस की 28 स्तुतियों का सामग्री संकलन तथा विनयपत्रिका की स्तुतियों का विवेचन, स्तवन अंग की मौलिकता है । स्तुतियों के वर्णनगत दृष्टिपात की विधा मौलिक अनुसंधान है जो गोस्वामी जी की वर्णन शैली की सूक्ष्म भाव-भावना की द्योतक है । विनय के अंतर्गत अन्यान्य विनय प्रसंगों के साथ भरत की विनय का मन-मानस के संदर्भ में मौलिक विवेचन है तथा भरत-मन की दशा का रेखांकन मौलिक प्रस्तुति है ।

- वंदना मानव की सहजवृति तथा वंदना उपचार भक्त मन की ललक एवं कामनाओं के प्रतिफलित प्रतिरूप हैं । इसी मौलिक प्रतिस्थापना में गोस्वामी ने परंपरित षोडश उपचारों से इतर अन्यान्य उपचारों की कल्पना की है और उनका विवरण प्रस्तुत किया है । वंदना वस्तुतः स्तुति, आरती, अर्चन, पूजन, वंदन आदि विभिन्न आयामों में प्रस्फुटित होती हुई विनय में समायोजित होती है ।

- इस खण्ड में विभिन्न तथ्यों के सूचक रेखाकंन (ग्राफ) प्रस्तुत करना मौलिक प्रयास है। साहित्य में सांख्यकीय साधनों को अपनाकर चाक्षुषबोध का यह अभिनव प्रयोग है ।आवृति आकलन करते हुए कृतिकार की रुचि का सहज ही प्रकटीकरण भी होता हैजो अनुशीलन एवं अनुसंधान की मौलिक खोज होती है और जिसकी प्रामाणिकता में कोई शंका नहीं होती ।

वंदनीय गुरुजन - वंदनीय गुरुजन के व्याख्या संबंधी विभिन्न मतों का विवेचन किया गया है तथा वंदनीय गुरुजनों को पूजनीय, वंदनीय, नमनीय एवं स्मरणीय वर्गों में आकलित कर मौलिक अवधारणा प्रस्तुत की गई है ।

- विषय प्रवेश के अंतर्गत वंदना, स्तुति एवं विनय की परंपरागत विकासपरक स्थिति का अनुशीलन किया गया है जो अपने आप में ऐतिहासिक दृष्टि से सामग्री संकलन का मौलिक प्रयास है ।

- कतिपय प्रकरणों को आगे अनुशीलन के लिये संकेतित किया गया है । अन्य ऐसे प्रकरण भी हैं जिनके समाधान में शोधार्थी ने शोध विषय की अनपेक्षागत अथवा अन्यथा अक्षमता स्वीकार की है ।

- शोध कार्य में इस प्रकार की स्वीकृति (CONFESSION) शोधार्थी की सत्यनिष्ठा की धोतक मौलिक वृत्ति है जो अनुकरणीय सिद्ध होगी ।

- रामकथा के प्रति किसी भी मिस लगाव होना ही एक मौलिक सद्भाव होता है । इस दृष्टि से शोधार्थी को अपने को कृतार्थ समझना ही चाहिये ।

" अति हरि कृपा जाहि पर होई । पाउँ देइ एहिं मारग सोई "

-----:0:-----

इ त्य ल म्

को

करि

सोचु

मरै

तुलसी

हम

जा
न
की
ना
थ
के

हाथ

बिकाने

(कवि०— १०५)